नवनाथ चरित्र

राजेश दीक्षित

दो शब्द

नाथ संप्रदाय की स्थापना एवं उसके योगियों के विषय में जनश्रुति है कि कलिकाल का प्रारंभ होते समय कुसंग, कदाचार आदि के प्रभाव से उत्पन्न दुःख-दारिद्रय, रोग-क्षोभ आदि कष्टों से कलियुग के लोगों को मुक्ति प्रदान करने के उद्देश्य से भगवान शंकर ने 'नाथ-पंथ' की स्थापना करने का विचार किया था। देवाधिदेव के उक्त विचार को कार्यरूप में परिणत करने हेतु ब्रह्मा एवं विष्णु भी सहमत हो गए। फलस्वरूप (1) कविनारायण, (2) हरिनारायण, (3) अंतरिक्ष नारायण, (4) प्रबुद्ध नारायण (5) द्रुमिल नारायण (6) करभाजन नारायण (7) चमस नारायण (8) आविर्होत्रि नारायण तथा (9) पिप्पलायन नारायण त्रिदेवताओं के प्रतिरूप इन नौ नारायणों ने क्रमशः (1) मत्स्येंद्रनाथ, (2) गोरखनाथ, (3) जालंधरनाथ, (4) कानीफानाथ, (5) भर्तृहरिनाथ, (6) गहिनीनाथ, (7) रेवण ।नाथ, (8) नागनाथ तथा (9) चर्पटीनाथ के रूप में पृथ्वी पर अवतार ग्रहण कर नाथ-पंथ की स्थापना एवं प्रचार-प्रसार के लोकोपयोगी कार्य किए।

नौ नारायणों के उक्त सभी अवतार अयोनिसंभव थे अर्थात् इनमें से किसी का जन्म स्त्री के गर्भ से नहीं हुआ था। कोई मछली के पेट से, कोई अग्निकुंड से, कोई हाथी के कान से, कोई हाथ की अंजली से, कोई भिक्षापात्र से, कोई नागिन के पेट से और कोई कुश की झाड़ी आदि से प्रकट हुआ था। ये सभी नाथ योग-विद्या, अस्त्र-शस्त्र विद्या, तप एवं समाधि आदि विषयों में पारंगत थे। पृथ्वी, आकाश, पाताल– सभी स्थानों में इनकी गति थी। परकाया-प्रवेश, मुर्दे को जीवित कर देना तथा क्षण भर में ही कुछ भी कर दिखाने की इनमें अपूर्व क्षमता थी।

महासती अनुसूया के पतिव्रता धर्म की परीक्षा लेने के लिए गए ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव– इन तीनों देवताओं को जब बालक बन जाना पड़ा था, उस समय अनुसूया की प्रार्थना पर इन तीनों देवताओं ने उन्हें वरदान दिया था कि वे तीनों अपने-अपने अंश द्वारा अनुसूया के गर्भ से जन्म लेकर उनके पुत्र कहलाएंगे। समयानुसार ब्रह्मा के अंशरूप में चंद्रमा, शिव के अंशरूप में दुर्वासा ऋषि एवं विष्णु के अंशरूप में भगवान दत्तात्रेय का जन्म हुआ। यद्यपि भगवान दत्तात्रेय मुख्यतः विष्णु के अंश से उत्पन्न हुए थे, फिर भी उनमें ब्रह्मा तथा शिव– इन दोनों देवताओं का अंश एवं रूप भी विद्यमान था। भगवान दत्तात्रेय के तीन मुंह तथा छह हाथ हैं। विष्णु के चौबीस अवतारों में एक गणना 'दत्तात्रेय अवतार' की भी की जाती है।

भगवान दत्तात्रेय नाथ-पंथ के आदिगुरु थे। नवनारायणों के अवतार रूपी मुख्य नवनाथों की दीक्षा भगवान दत्तात्रेय के द्वारा ही हुई थी और उन्होंने सभी नाथों को अस्त्र-शस्त्र, मंत्र तथा योग-विद्या आदि का अभ्यास कराया था।

नवनाथों में मत्स्येंद्रनाथ का स्थान सबसे प्रमुख था, क्योंकि भगवान दत्तात्रेय ने सर्वप्रथम उन्हीं को अपना शिष्य बनाया था। मत्स्येंद्रनाथ के शिष्यों में गोरखनाथ का नाम बहुत प्रसिद्ध है।

नाथ योगियों की वेशभूषा में (1) मुद्रा, (2) धांधरी, (3) सुमिरनी, (4) आधारी, (5) कंथा, (6) सोटा, (7) भस्म, (8) त्रिपुंड, (9) गुदड़ी तथा (10) खप्पर का स्थान प्रमुख है। कुछ योगी (1) शृंगी, (2) चिमटा, (3) त्रिशूल आदि भी धारण करते हैं। ये मस्तक पर जटाएं रखते, शरीर पर भस्म लगाते तथा कोपीन धारण करते हैं। मत्स्येंद्रनाथ तथा गोरखनाथ के अनुयायी कान के मध्य भाग को फाड़कर उसमें मुद्रा (हाथीदांत, हिरन के सींग अथवा किसी अन्य धातु का बना हुआ गोल छल्ला जैसा कुंडल) पहनते हैं तथा जालंधरनाथ एवं कानीफानाथ के अनुयायी कान की लौर (निचले भाग) में छेद करके मुद्रा धारण करते हैं और कहीं कोई विशेष अंतर इस समुदाय में नहीं पाया जाता है।

पूर्वोक्त नौ नाथों को अमर माना जाता है और पंथ के भक्तों द्वारा विश्वास किया जाता है कि ये सभी नाथ विभिन्न लोकों, पर्वतों, वनों तथा अन्य स्थानों में आज भी गुप्त रूप से रह रहे हैं तथा अपने प्रिय भक्तों को यदा-कदा दर्शन भी देते रहते हैं। इन नाथों के चमत्कारों की कहानियां तो भारतवर्ष के घर-घर में प्रचलित हैं।

उक्त नवनाथों के उपरांत चौरासी सिद्धों की परंपरा में अन्य योगियों ने भी भारतवर्ष तथा इतर देशों में नाथ-पंथ का बहुत कुछ प्रचार किया था। नाथ-पंथ की महिमा के साक्षी स्वरूप गोरखपुर आदि नगर, गोरक्ष क्षेत्र आदि स्थान, विभिन्न मठ एवं योगियों के समाधि-स्थान आदि देश में यत्र-तत्र बिखरे हुए हैं।

प्रस्तुत पुस्तक में नाथ संप्रदाय, इसके मुख्य नौ नाथ तथा इस पंथ के अनुयायी, कुछ अन्य योगियों के जन्म, कर्म, तप, चमत्कार तथा अन्य क्रियाकलापों से संबंधित सामग्री का संकलन विभिन्न ग्रंथों, दंत कथाओं, लोकगीतों आदि के आधार पर किया गया है। यह विवरण ऐतिहासिक प्रमाणों की अपेक्षा नहीं रखता, क्योंकि श्रद्धालु-भक्तों के हृदय में अपने धर्म-संप्रदाय, आराध्य अथवा महापुरुषों के प्रति शंका के लिए कोई स्थान नहीं होता। इसी दृष्टि से हमें भक्ति-वैराग्य-चमत्कारपूर्ण इस ग्रंथ का अध्ययन एवं मनन करना चाहिए।

—राजेश दीक्षित

समर्पण

साप्ताहिक 'आवाज' के संपादक
भरतपुर-निवासी अपने परम आत्मीय

श्री तुलसीरामजी मीतल
को सस्नेह

अनुक्रमणिका

भाग-7 श्री गहिनीनाथ-चरित्र 237

भाग-8 श्री रेवणनाथ-चरित्र 245

भाग-9 श्री नागनाथ-चरित्र 261

भाग-10 श्री चर्पटीनाथ-चरित्र 285

भाग-11 श्री चौरंगीनाथ-चरित्र 301

नवनाथ चरित्र सागर

भाग-1

श्री दत्तात्रेय-चरित्र

(ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव के संयुक्त अवतार)

सम्पत्सु महतां चितं भवेदुत्पल कोमलम्।
आपत्सु च महाशैलशिलासंयातकर्कशम्।।

☆☆☆

गंगा पापं शशी तापं दैन्यं कल्पतरुस्तथा।
पापं तापं च दैन्यं च घ्नंति संतो महायशा:।।

☆☆☆

अभयं सर्वभूतेभ्यो यो ददाति दयापर:।
अभयं तस्य भूतानि ददतीत्यनुशुश्रुम।।

☆☆☆

यथा नदीनदा: सर्वे: सागरे यान्ति संस्थितिम्।
तथैवाश्रमिण: सर्वेगृहस्थे यान्ति संस्थितिम्।।

पूर्व-कथा

एक बार अलख, निरंजन, अनादि, अनंत, निराकार, परब्रह्म ने अपने मन में यह विचार किया कि मैं अकेला हूं। अतः अपने बहुत से रूपों को प्रकट करके विविध प्रकार की लीलाएं करूं।

उस समय संपूर्ण सृष्टि में कहीं कुछ भी नहीं था। महाशून्य में एकमात्र निराकार ब्रह्म का ही अस्तित्व था।

पूर्वोक्त 'एकोऽहं बहुष्याम' (मैं एक हूं, अनेक हो जाऊं) विचार के आते ही निराकार ब्रह्म ने स्वयं को (1) ब्रह्मा, (2) विष्णु तथा (3) शिव– इन तीन रूपों में प्रकट किया, साथ ही सृष्टि-प्रपंच की भी रचना की।

ब्रह्मा ने अपने निवास के लिए 'ब्रह्मापुरी' को चुना, विष्णु ने 'क्षीरसागर' में रहने लगे तथा शिव 'कैलास पर्वत' पर स्थित हुए।

ब्रह्मा में सतोगुण की प्रधानता थी, विष्णु में रजोगुण प्रधान रहा एवं शिव में तमोगुण की प्रधानता रही। ब्रह्मा ने सृष्टि को उत्पन्न करने का, विष्णु ने पालन करने का तथा शिव ने संहार करने का कार्य अपने ऊपर लिया। ब्रह्मा की पत्नी सावित्री, विष्णु की पत्नी लक्ष्मी एवं शिव की पत्नी पार्वती हुईं।

इन तीनों देवताओं ने मिलकर सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति एवं प्रलय का कार्य आरंभ कर दिया। जिस प्रकार किसी भी कार्यक्रम का संचालन करने के लिए उसका वर्गीकरण कर दिया जाता है, उसी प्रकार सृष्टि-कार्य का संचालन करने के लिए भी उसे चार युगों में विभाजित कर दिया गया। पहले युग का नाम सतयुग, दूसरे का नाम त्रेतायुग, तीसरे का द्वापरयुग और चौथे का कलियुग पड़ा।

जब सृष्टि उत्पन्न करने का कार्य पूरा हो चुका तथा पशु-पक्षी, मनुष्य, देवी-देवता, राक्षस, ऋषि-मुनि, पृथ्वी-आकाश, पाताल, स्वर्ग-नर्क, नदी-पर्वत, वन-वृक्ष, पाप-पुण्य, सुख-दुःख, हर्ष-विषाद, सूर्य-चंद्र, नक्षत्र, अग्नि-जल, वायु आदि की उत्पत्ति हो चुकी, तब उन्हीं परब्रह्म ने इन

सम्पत्सु महतां चितं भवेदुत्पल कोमलम्।
आपत्सु च महाशैलशिलासंयातकर्कशम्।।

☆☆☆

गंगा पापं शशी तापं दैन्यं कल्पतरुस्तथा।
पापं तापं च दैन्यं च ध्नंति संतो महायशाः।।

☆☆☆

अभयं सर्वभूतेभ्यो यो ददाति दयापरः।
अभयं तस्य भूतानि ददतीत्यनुशुश्रुम।।

☆☆☆

यथा नदीनदाः सर्वेः सागरे यान्ति संस्थितिम्।
तथैवाश्रमिणः सर्वेगृहस्थे यान्ति संस्थितिम्।।

पूर्व-कथा

एक बार अलख, निरंजन, अनादि, अनंत, निराकार, परब्रह्म ने अपने मन में यह विचार किया कि मैं अकेला हूं। अतः अपने बहुत से रूपों को प्रकट करके विविध प्रकार की लीलाएं करूं।

उस समय संपूर्ण सृष्टि में कहीं कुछ भी नहीं था। महाशून्य में एकमात्र निराकार ब्रह्म का ही अस्तित्व था।

पूर्वोक्त 'एकोऽहं बहुष्याम' (मैं एक हूं, अनेक हो जाऊं) विचार के आते ही निराकार ब्रह्म ने स्वयं को (1) ब्रह्मा, (2) विष्णु तथा (3) शिव– इन तीन रूपों में प्रकट किया, साथ ही सृष्टि-प्रपंच की भी रचना की।

ब्रह्मा ने अपने निवास के लिए 'ब्रह्मापुरी' को चुना, विष्णु ने 'क्षीरसागर' में रहने लगे तथा शिव 'कैलास पर्वत' पर स्थित हुए।

ब्रह्मा में सतोगुण की प्रधानता थी, विष्णु में रजोगुण प्रधान रहा एवं शिव में तमोगुण की प्रधानता रही। ब्रह्मा ने सृष्टि को उत्पन्न करने का, विष्णु ने पालन करने का तथा शिव ने संहार करने का कार्य अपने ऊपर लिया। ब्रह्मा की पत्नी सावित्री, विष्णु की पत्नी लक्ष्मी एवं शिव की पत्नी पार्वती हुईं।

इन तीनों देवताओं ने मिलकर सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति एवं प्रलय का कार्य आरंभ कर दिया। जिस प्रकार किसी भी कार्यक्रम का संचालन करने के लिए उसका वर्गीकरण कर दिया जाता है, उसी प्रकार सृष्टि-कार्य का संचालन करने के लिए भी उसे चार युगों में विभाजित कर दिया गया। पहले युग का नाम सतयुग, दूसरे का नाम त्रेतायुग, तीसरे का द्वापरयुग और चौथे का कलियुग पड़ा।

जब सृष्टि उत्पन्न करने का कार्य पूरा हो चुका तथा पशु-पक्षी, मनुष्य, देवी-देवता, राक्षस, ऋषि-मुनि, पृथ्वी-आकाश, पाताल, स्वर्ग-नर्क, नदी-पर्वत, वन-वृक्ष, पाप-पुण्य, सुख-दुःख, हर्ष-विषाद, सूर्य-चंद्र, नक्षत्र, अग्नि-जल, वायु आदि की उत्पत्ति हो चुकी, तब उन्हीं परब्रह्म ने इन

सभी में अपनी शक्ति को अंशरूप से वितरित करके विभिन्न प्रकार की लीलाएं करना आरंभ कर दिया।

धर्म की स्थापना, अधर्म का नाश, साधु-संतों की रक्षा तथा दुष्टों का दमन करने के लिए उक्त तीनों देवों ने समय-समय पर विभिन्न रूपों में पृथ्वी पर जन्म लिया, जिन्हें 'अवतार' के नाम से संबोधित किया जाता है।

अब तक ब्रह्मा, विष्णु और शिव के अनेक अवतार हो चुके हैं, परंतु उनमें विष्णु के अवतारों का सर्वाधिक महत्त्व है। विष्णु के चौबीस अवतार हुए हैं, जिनमें दस अवतार मुख्य माने जाते हैं। राम, कृष्ण, नरसिंह, कच्छ, मच्छ, वाराह, कल्कि आदि सभी विष्णु के अवतार हैं। ये अवतार सतयुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग और कलियुग आदि विभिन्न युगों में हुए हैं। उदाहरण के लिए कच्छ, मच्छ, वाराह, नरसिंह आदि के अवतार सतयुग में हुए, राम का अवतार त्रेतायुग में हुआ, कृष्ण का द्वापरयुग में हुआ और कल्कि भगवान का अवतार कलियुग में होगा।

कालक्रम के सतयुग, त्रेतायुग तथा द्वापरयुग समाप्त हो चुके हैं। वर्तमान काल में कलियुग चल रहा है।

सृष्टि-क्रम के नियमानुसार सतयुग में मनुष्य पूर्ण धार्मिक स्वभाव के होते हैं। त्रेतायुग में धर्म के प्रति लोगों की आस्था का एक चतुर्थांश कम हो जाती है। द्वापरयुग में धार्मिक आस्था का अर्द्धांश समाप्त हो जाता है तथा कलियुग के प्रारंभ में धार्मिक आस्था का केवल एक चतुर्थांश रह जाता है, जो धीरे-धीरे कम होता चला जाता है। कलियुग के अंत में जब धर्म पूर्ण रूप से समाप्त हो जाता है, तब प्रलयकाल उपस्थित होता है। प्रलय में भगवान शिव संपूर्ण सृष्टि को नष्ट कर देते हैं। तत्पश्चात् कुछ समय तक कहीं कुछ भी नहीं रहता। फिर परब्रह्म की इच्छा से ब्रह्माजी नए सिरे से सृष्टि को उत्पन्न करते हैं। यह क्रम निरंतर इसी प्रकार चलता रहता है। हर बार नवीन सृष्टि होती है और हर बार उसका अंत प्रलय में होता है।

अब तक असंख्य बार सृष्टि और प्रलय हो चुकी है तथा भविष्य में भी यह क्रम निरंतर इसी प्रकार चलता रहेगा। मायामय भगवान अपनी माया का इसी प्रकार विस्तार करते और उसे समेटते रहते हैं। ऐसा वे किसलिए

करते हैं– इस संबंध में कोई कुछ नहीं कह सकता। जिस प्रकार मदारी के इशारे पर बंदर नाचता रहता है, उसी प्रकार ईश्वर की इच्छा पर संपूर्ण सृष्टि चलती रहती है।

द्वापरयुग के अंत में पराशर ऋषि के पुत्र वेदव्यास मुनि ने अठारह पुराणों की रचना की थी। उनमें एक पुराण का नाम 'भविष्य पुराण' है। 'भविष्य पुराण' में व्यासजी ने कलियुग की स्थिति का वर्णन किया है तथा यह भी लिखा है कि कलियुग में जो लोग भगवान की भक्ति करेंगे, वे ही मुक्ति को प्राप्त कर सकेंगे। सतयुग, त्रेतायुग तथा द्वापरयुग इन तीन युगों में तप, ज्ञान एवं यज्ञ का माहात्म्य प्रमुख था, परंतु कलियुग में केवल भक्ति-मार्ग की ही प्रधानता रहेगी। अतः कलियुग के निवासियों को भगवद्-भक्ति में अपना मन अधिकाधिक लगाकर अपने लोक तथा परलोक को सुधारने का प्रयत्न करना चाहिए।

नारायण के अवतार

'भविष्य पुराण' में एक श्लोक है–

"कवि हर्रिंतरिक्षः प्रबुद्धः पिप्पलायनः।
आविर्होत्रोऽथ द्रुमिलः चमसः करभाजनः।।"

अर्थात्– (1) कवि, (2) हरि, (3) अंतरिक्ष, (4) प्रबुद्ध, (5) पिप्पलायन, (6) आविर्होत्र, (7) द्रुमिल (8) चमस और (9) करभाजन – ये नव नारायण के स्वरूप हैं।

नाथ पंथियों के विश्वास के अनुसार कलियुग के प्रारंभ में इन नवनारायणों ने नाथ योगियों के रूप में अवतार लेकर भक्ति-मार्ग तथा योग-मार्ग का प्रचार-प्रसार किया।

(1) कविनारायण ने 'मत्स्येंद्रनाथ' के रूप में, (2) हरिनारायण ने 'गोरखनाथ' के रूप में, (3) अंतरिक्ष नारायण ने 'जालंधरनाथ' के रूप में, (4) प्रबुद्ध नारायण ने 'कानीफानाथ' के रूप में, (5) पिप्पलायन नारायण ने 'चर्पटीनाथ' के रूप में, (6) आविर्होत्र नारायण ने 'नागनाथ' के रूप में, (7) द्रुमिल

नारायण ने 'भर्तृहरिनाथ' के रूप में, (8) चमस नारायण ने 'रेवणनाथ' के रूप में तथा (9) करभाजन नारायण ने 'गहिनीनाथ' के रूप में अवतार लिया।

नवनारायण के ये सभी अवतार लगभग एक ही समय में कुछ ही आगे-पीछे हुए थे। इन सभी नाथों की परस्पर भेंट भी हुई थी और इन्होंने साथ रहकर विभिन्न स्थानों की यात्राएं भी की थीं।

भगवान विष्णु ने सती अनुसूया के गर्भ से दत्तात्रेय के रूप में अवतार लिया था। दत्तात्रेय ने स्वयं ही इन नौ नाथों को दीक्षा दी थी। अत: दत्तात्रेय नाथ-पंथ के आदिगुरु माने जाते हैं।

नवनारायण के अवतार उक्त नौ मुख्य नाथयोगी अमर कहे जाते हैं। नाथ पंथियों को विश्वास है कि ये सभी योगी विभिन्न स्थानों पर गुप्त रूप से निवास कर रहे हैं और कभी-कभी अपने प्रिय भक्तों को प्रत्यक्ष दर्शन भी देते हैं।

नाथ-पंथ के प्रवर्तक तथा प्रचारक इन सिद्ध योगियों को अनेक प्रकार की सिद्धियां प्राप्त थीं। ये अपनी इच्छानुसार पृथ्वी, आकाश, पाताल, स्वर्ग, नर्क आदि सभी स्थानों में प्रवेश कर सकते थे। किसी भी देवी-देवता से प्रत्यक्ष भेंट कर सकते थे। स्तंभन, मारण, मोहन, उच्चाटन आदि की क्रियाओं पर इन्हें पूर्ण अधिकार प्राप्त था। मृत संजीवनी विद्या (जिसके द्वारा मृत व्यक्ति को पुनरुज्जीवित कर दिया जाता है) के ये लोग जानकार थे। इन योगियों ने वेद-मंत्रों से भिन्न साबरी मंत्रों की रचना की थी। ये अपने साबरी मंत्रों द्वारा भस्म को अभिमंत्रित करके क्षण भर में ही सब कुछ कर दिखाने का सामर्थ्य रखते थे और भस्म तथा मंत्रों के योग से विभिन्न प्रकार के अस्त्रों को प्रकट कर देते थे।

भक्तियोग का प्रचार

इन सिद्ध योगियों ने देश-देशांतरों में भ्रमण करते हुए भक्तियोग का प्रचार किया था। इनके उपदेशों को सुनकर तथा चमत्कारों को देखकर हजारों-लाखों व्यक्ति इनके शिष्य और भक्त बने। उनमें साधारण स्थिति के लोगों से लेकर राजा-महाराजा तक थे।

मत्स्येंद्रनाथ के शिष्यों में चौरंगीनाथ तथा अड़बंगनाथ के नाम प्रसिद्ध है। जालंधरनाथ के शिष्य गोपीचंदनाथ बहुत यशस्वी हुए हैं। चर्पटीनाथ के शिष्य मीननाथ, रेवणनाथ के शिष्य धुरंधरनाथ, मीननाथ के शिष्य करनारिनाथ, धुरंधरनाथ के शिष्य निरंजननाथ एवं निरंजननाथ के शिष्य दूरंगतनाथ ने अपने समय में अत्यधिक ख्याति अर्जित की थी।

जिस समय उक्त प्रमुख नाथ सक्रिय थे, उसी समय महर्षि वाल्मीकि तुलसीदास के रूप में, शुकदेव मुनि कबीरदास के रूप में, व्यास मुनि जयदेव के रूप में, उद्धव नामदेव के रूप में, जांबवंत नरहरि स्वामी के रूप में, बलराम पुंडरीक के रूप में, कैलासपति शंकर निवृत्तिनाथ के रूप में तथा आदिमाया मुक्ताबाई के रूप में पृथ्वीतल पर प्रकट हुए थे। इन सभी ने अपने-अपने क्षेत्र में और अपने-अपने तरीके से भक्तियोग का प्रचार किया था।

वायुपुत्र हनुमान का इन नाथ योगियों से बहुत संपर्क रहा था। कहते हैं कि बाद में हनुमानजी स्वयं भी रामदास के रूप में पृथ्वी पर प्रकट हुए थे।

इन सभी नाथ योगियों का जन्म कलियुग के प्रारंभ में हुआ था। जन्म के बाद सैकड़ों वर्षों तक इन्होंने भूमंडल पर प्रत्यक्ष रूप से भ्रमण तथा धर्म-प्रचार का कार्य किया। तदुपरांत ये गुप्त स्थानवासी बन गए।

कानीफानाथ एवं मत्स्येंद्रनाथ मढ़ी नामक स्थान में रहे। जालंधरनाथ तथा गहिनीनाथ ने गर्भाद्रि पर्वत पर निवास किया। नागनाथ ने बड़वाल नामक गांव में समाधि ली। माण देश के विटे गांव के समीपवर्ती पर्वत के ऊपर रेवणनाथ तथा गिरिनार पर्वत के ऊपर दत्तात्रेय आश्रम के समीप गोरखनाथ स्थिर हुए। भर्तृहरिनाथ पाताललोक के निवासी हुए, मीननाथ स्वर्गलोक में जा बसे। गोपीचंदनाथ, मैनावती तथा धर्मनाथ भगवान विष्णु के विमान में बैठकर वैकुंठलोक को चले गए।

इसके पश्चात् चौरासी सिद्धों की परंपरा द्वारा नाथ-पंथ का प्रचार चलता रहा। इस समय भी भारतवर्ष तथा नेपाल आदि देशों में नाथ-पंथ के विभिन्न मठ, क्षेत्र, समाधि आदि स्थान विद्यमान हैं।

सौराष्ट्र में 'गोरखमढ़ी' गुरु गोरखनाथ के स्थान के रूप में प्रसिद्ध है। वहां गिरिनार पर्वत के ऊपर आदिगुरु दत्तात्रेय तथा गोरखनाथजी की पादुकाएं रखी हुई बताई जाती हैं। पेशावर के पास 'गोरस क्षेत्र' नामक स्थान है। उत्तर प्रदेश का 'गोरखपुर' नगर गोरखनाथ के नाम पर ही बसा हुआ है। यहां पर नाथ-पंथ का एक प्रसिद्ध मठ भी है। दक्षिण में कोल्हापुर के समीप बत्तीस शिराले नामक एक गांव है, जोकि गोरखनाथ का प्रसिद्ध स्थान माना जाता है।

योगियों की समाधि

जालंधरनाथ तथा मत्स्येंद्रनाथ ने जीवित समाधि ले ली थी। तदुपरांत नाथ परंपरा में ज्ञाननाथ के अतिरिक्त अन्य नाथों ने भी समाधि लेने की विधि को ही अपनाया। कहा जाता है कि इन नाथ योगियों को यवन-राज्य (मुस्लिम शासन) के आने का पूर्वाभास हो गया था। अतः उन्होंने अपनी समाधि का आकार 'कब्र' जैसा रखा था। इसलिए कि मुसलमान लोग उन समाधियों को कब्र समझकर नष्ट न करें।

कहा जाता है कि एक बार औरंगजेब ने नाथ योगियों की समाधियों के विषय में जानकारी प्राप्त करनी चाही थी, उस समय लोगों ने उससे 'यह आपके पूर्वजों' की कब्रें हैं- कह दिया था। तब औरंगजेब ने नाथ योगियों की अनेक समाधियों के ऊपर मस्जिदें बनवाकर उन्हें 'दरगाह' का स्वरूप दे दिया। इस प्रकार की दरगाहों में जालंधरनाथ की समाधि 'जानपीर', गहिनीनाथ अथवा गैबीनाथ की समाधि 'गैबीपीर', मत्स्येंद्रनाथ की समाधि 'मायबाबलोन' तथा कानीफानाथ अथवा कनफड़नाथ की समाधि 'कान्होबा' की दरगाह के रूप में प्रसिद्ध बताई जाती हैं।

चर्पटीनाथ, चौरंगीनाथ तथा अड़बंगनाथ अभी तक गुप्त रूप से तीर्थ यात्रा कर रहे हैं- ऐसी नाथ पंथियों की मान्यता है।

मत्स्येंद्रनाथ के जन्म की कथाएं

नाथ-पंथ भारतवर्ष, नेपाल आदि कई देशों में आज भी प्रचलित है। देश के विभिन्न भागों में नाथ-पंथी योगी पाए जाते हैं। नाथ शब्द की व्युत्पत्ति के लिए 'नाकारोऽनादि रूपं थकार: स्थाप्यते सदा' कहा जाता है अर्थात् 'ना' शब्द अनादि रूप का प्रतीक है और 'थ' स्थापना अथवा त्रिभुवन का प्रतीक है।

नाथ संप्रदाय के संस्थापक भगवान शंकर माने जाते हैं। इसीलिए उन्हें 'आदिनाथ सर्वेषाम् नाथानाम् प्रथम:' कहा जाता है।

नाथ परंपरा के आदि दीक्षा-गुरु भगवान दत्तात्रेय माने जाते हैं तथा नाथ परंपरा के गुरुओं में 'मत्स्येंद्रनाथ' का स्थान सर्वप्रथम है। नेपाली अनुश्रुति के अनुसार मत्स्येंद्रनाथ को भगवान अवलोकितेश्वर का अवतार माना जाता है।

मत्स्येंद्रनाथ के विषय में एक कथा यह भी है कि एक बार जब भगवान शंकर समुद्रतट पर बैठे हुए पार्वतीजी को योग-विद्या का उपदेश कर रहे थे, उस समय विष्णुजी ने एक मत्स्य के उदर में प्रवेश किया और वे उस उपदेश को गुप्त रूप से सुनने लगे। उपदेश सुनते समय पार्वतीजी अचानक समाधिस्थ हो गईं। उस समय यह सोचकर कि कहीं भगवान शंकर योग-चर्चा को बंद न कर दें, मत्स्य के पेट में विराजमान विष्णु पार्वतीजी के स्थान पर स्वयं हुंकारी भरने लगे। कुछ देर बाद जब शिवजी का ध्यान उस ओर गया तो विष्णुजी उनके सामने बालक रूप में प्रकट हो गए। शिवजी ने प्रसन्न होकर उन्हें योग-विद्या में प्रवीण होने का आशीर्वाद दिया। आगे चलकर यही बालवेषधारी विष्णु योगी मत्स्येंद्रनाथ के नाम से संसार में प्रसिद्ध हुए। मत्स्येंद्रनाथ को ही 'मछिंदरनाथ' भी कहा जाता है।

'स्कंद पुराण' तथा 'बृहन्नारद पुराण' में मत्स्येंद्रनाथ की उत्पत्ति के विषय में एक दूसरी ही कथा मिलती है। इन पुराणों के अनुसार किसी समय एक मछली ने उस बालक को, जिसे अशुभ नक्षत्र में उत्पन्न होने के कारण माता-पिता ने समुद्र में फेंक दिया था, निगल लिया। एक समय

समुद्रतट पर बैठे हुए शिवजी पार्वतीजी को ज्ञानोपदेश कर रहे थे, उसी समय वह मछली भी वहीं समीप आ पहुंची। शिव-पार्वती के संवाद को सुनकर मत्स्य के उदर में स्थित वह बालक 'आदेश-आदेश' कहकर चिल्ला उठा। उसके शब्द को सुनकर पार्वतीजी ने मछली की ओर देखा तो वह बालक को बालू के ऊपर अपने मुंह से उगलकर पानी में भाग गई।

पार्वतीजी ने उस बालक को अपनी गोद में उठा लिया और उसका नाम 'मत्स्येंद्रनाथ' रखा। तत्पश्चात् भगवान शंकर ने उसे योग-विद्या का उपदेश दिया। आगे चलकर इसी बालक ने संसार में योग-विद्या का प्रचार किया। मत्स्येंद्रनाथ का लिखा हुआ 'मत्स्येन्द्र-संहिता' नामक योग-विषयक ग्रंथ प्राप्त होता है।

कहा जाता है कि एक बार नेपाल के राजा बसंतदेव राजच्युत होकर गुरु मत्स्येंद्रनाथजी की शरण में गए थे। मत्स्येंद्रनाथजी के आशीर्वाद से उन्हें पुनः अपने राज्य की प्राप्ति हुई। तब उन्होंने मत्स्येंद्रनाथजी को शिवजी का रूप मानकर उनका मंदिर स्थापित किया तथा नेपाल के घर-घर में उनकी पूजा का प्रचलन किया।

नेपाल के भोजमती नामक गांव में मत्स्येंद्रनाथजी का प्रमुख धाम है। वहां प्रतिवर्ष वैशाख में तीन दिन तक बड़ा उत्सव मनाया जाता है तथा उनकी सवारी बड़ी धूमधाम से निकाली जाती है। नेपाल सरकार के पुस्तकालय में मत्स्येंद्रनाथ लिखित 'कौल ज्ञान निर्णय' नामक एक पुस्तक की पांडुलिपि अभी तक सुरक्षित बताई जाती है। उसकी लिपि आदि से यह प्रतीत होता है कि उस पुस्तक को ईस्वी सन् की नवीं शताब्दी के आस-पास लिखा गया होगा।

मत्स्येंद्रनाथजी के जन्म की नाथ-पंथ कथा का वर्णन आगे दूसरे अध्याय में विस्तारपूर्वक किया जाएगा।

नाथ-पंथ के चिह्न आदि

नाथ-पंथी योगियों के वेष को 'योगी वेष' कहा जाता है। इस पंथ की दीक्षा वसंत पंचमी के दिन ली जाती है।

नाथ-पंथ में दीक्षित होने वाले योगी के सर्वप्रथम कान फाड़े जाते हैं। मत्स्येंद्रनाथ तथा गोरखनाथ के अनुयायियों के कान मध्य से फाड़े जाते हैं तथा जालंधरनाथ एवं कानीफानाथ (कनफड़नाथ) के अनुयायी कान की लौरी (कान का निचला भाग) फड़वाते हैं। कान फट जाने पर जब छिद्र हो जाते हैं, तब उनमें मुद्रा पहनी जाती है। यह एक प्रकार का गोल मोटा छल्ला-सा होता है। पहले मिट्टी की मुद्रा पहनी जाती थी, परंतु वह शीघ्र टूट जाती थी। इसके बाद में उन्हें किसी धातु, हाथीदांत अथवा हिरन के सींग आदि से बनाया जाने लगा। मुद्रा धारण करना नाथ समुदाय का मुख्य चिह्न है। मुद्रा धारण करने वाले योगियों को आम बोलचाल की भाषा में 'कनफटा' अथवा 'कानफड़ा' भी कहा जाता है।

मुद्रा पहनाने के बाद गुरु द्वारा शिष्य के कान में गुरु-मंत्र फूंका जाता है। मंत्रोपदेश करने को ही 'मंत्र फूंकना' कहा जाता है। कान फाड़ने की क्रिया भी वसंत पंचमी के दिन ही की जाती है तथा उस समय कोई रजस्वला स्त्री सामने न पड़े, इसका विशेष रूप से ध्यान रखा जाता है। कान फड़वाए बिना कोई भी व्यक्ति नाथ-पंथ में प्रविष्ट नहीं हो सकता।

नाथ-पंथ के मुख्य चिह्न निम्नलिखित होते हैं–

1. **मुद्रा**– जिसका वर्णन ऊपर किया जा चुका है।
2. **धांधरी**– यह लोहे अथवा लकड़ी का बना हुआ एक प्रकार का चक्र-सा होता है। इसके बीच में छिद्र होता है। इसमें कोड़ी अथवा मनकों की माला को पिरो दिया जाता है। मंत्र-जाप करते समय इसमें माला को फिराया जाता है। 'धंधारी' अथवा 'धांधरी' के भीतर माला फिराने की क्रिया कुछ कठिन होती है। उसे अभ्यास से ही सिखाया जाता है। नाथ पंथियों का विश्वास है कि मंत्र का जाप करते हुए जो नाथ इस 'धांधरी' में पड़ी हुई माला के डोरे को अलग कर सकता है, गुरु की कृपा से उससे ईश्वर प्रसन्न हो जाते हैं और वह संसार-चक्र से छुटकारा पाकर आवागमन से मुक्त हो जाता है। कुछ लोग इस धांधरी को गोरखधंधा भी कहकर पुकारते हैं।

3. **किंगरी**– इसे 'सारंगी' भी कहते हैं। यह हाथ में रहती है और ध्यान एकाग्र करने के काम आती है।

4. **सिंगी**– यह हिरन के सींग से बनाई जाती है। इसके साथ ही रुद्राक्ष का मनका झूलता रहता है। संध्याकाल की उपासना करते समय तथा भोजन करने से पूर्व इसे बजाया जाता है। फूंक मारने पर इसमें से तीव्र ध्वनि निकलती है।

5. **सुमिरनी**– यह रुद्राक्ष की माला होती है। माला में 32, 64, 84 अथवा 108 रुद्राक्ष के दाने होते हैं। छोटी माला में 18 अथवा 28 मनके होते हैं। उसे कलाई में बांधा जाता है। रुद्राक्ष का अर्थ है– रुद्र + अक्ष= रुद्राक्ष) शिवजी की तीसरी आंख। इसमें खरबूजे की फांक जैसी रेखाएं दिखाई पड़ती हैं, उन्हें 'मुख' कहा जाता है। ऐसी रेखाओं वाले पंचमुखी रुद्राक्ष का विशेष महत्त्व माना जाता है। एकमुखी रुद्राक्ष शुभ माना जाता है। कहते हैं कि जो व्यक्ति अपने गले में एक मुखी रुद्राक्ष धारण किए रहता है उसके ऊपर शक्ति काम नहीं करती। ग्यारह मुखी रुद्राक्ष अत्यंत पवित्र माना जाता है। गृहस्थ योगियों के लिए द्विमुखी रुद्राक्ष श्रेष्ठ बताया गया है। रुद्राक्ष के विषय में यह मत है कि यह जिस घर में होता है, वहां लक्ष्मी का निवास हमेशा बना रहता है।

6. **आधारी**– लकड़ी के एक छोटे से गोल डंडे के ऊपर दोनों बाजुएं रखी रहें, ऐसा एक लकड़ी का मजबूत गोल पट्टा लगा रहता है। नाथयोगी इसे अपने साथ लेकर घूमते हैं। यदि उन्हें बैठने की आवश्यकता पड़े तो वे पृथ्वी पर न बैठकर इस आधारी को पृथ्वी के ऊपर जमा देते हैं और स्वयं उसके पट्टे के ऊपर बैठ जाते हैं। इस पर स्थिरतापूर्वक बैठने के लिए भी अभ्यास करने की आवश्यकता पड़ती है।

7. **सोटा**– यह काली लकड़ी का गोल बना हुआ हाथ-डेढ़ हाथ लंबा डंडा होता है। इसे भैरवनाथ अथवा गोरखनाथ का सोटा अथवा 'डंका' भी कहा जाता है। दुःखी व्यक्ति के सामने बैठकर मंत्र पढ़कर फूंक मारने के बाद उस सोटे को उसके सामने ऊपर से नीचे की ओर उतारा (चलाया) जाता है।

8. **मेखला**– यह कमर में बांधने के लिए मूंज की बनी हुई रस्सी होती है। इसके द्वारा लंगोटी को बांधा जाता है।

9. **सिंहनाद जनेऊ**– यह काले रंग की ऊन द्वारा बनाया जाता है। इसमें हिरन के सींग अथवा तांबा, पीतल आदि धातुओं से निर्मित 'पवित्री' को बांधकर रखा जाता है। कुमायूं के योगी सूत का बना हुआ मोटा सिंहनाद जनेऊ पहनते हैं। कुछ योगी इसे पहनते ही नहीं हैं। वे यह कहते हैं कि हमने इस चिह्न को अपने हृदय में धारण कर रखा है। कहा जाता है कि मस्तनाथ नामक एक सिद्ध योगी ने इस सिद्धांत को पहली बार प्रतिपादित किया था। जिस प्रकार हनुमानजी अपने हृदय के भीतर रामचंद्रजी के स्वरूप को हर समय धारण किए रहते थे और एक बार उन्होंने अपनी छाती चीरकर उसे प्रत्यक्ष भी कर दिखाया था। उसी प्रकार मस्तनाथजी ने भी यज्ञोपवीत को मानसिक रूप से अपने हृदय में धारण कर लिया था। तभी से मस्तनाथजी के अनुयायी सिद्ध योगी सिंहनाद जनेऊ को धारण नहीं करते हैं।

10. **कंथा**– गेरुए रंग की खादी की लंबी कफनी को 'कंथा' कहा जाता है। गेरुआ रंग अथवा लाल रंग ब्रह्मचर्य का साधक रंग माना जाता है। इस रंग का वस्त्र धारण करने से वीर्य-स्तंभन की शक्ति बढ़ती है। प्रचलित दंतकथा यह भी है कि सर्वप्रथम पार्वतीजी ने अपने शरीर के रक्त से रंगकर एक कफनी गोरखनाथजी को पहनने के लिए दी थी, उसी की स्मृति में कंथा का रंग गेरुआ अथवा लाल रखा जाता है। कंथा को कथरी भी कहते हैं। इसे तहमद की भांति पहना जाता है।

11. **गूदड़ी**– यह भी गेरुआ अथवा लाल रंग का वस्त्र होता है। इसे ओढ़कर शरीर को ढकने का काम लिया जाता है।

12. **खप्पर**– यह घड़े को फोड़कर उसके नीचे के अर्द्ध भाग द्वारा तैयार किया जाता है। दरियाई नारियल आदि से भी खप्पर तैयार किए जाते हैं। कुछ योगी लोग कांसे का बना हुआ खप्पर भी रखते हैं। इस खप्पर में भस्म भरकर रखी जाती है। कुछ योगी खप्पर को जलपात्र, भोजनपात्र अथवा भिक्षापात्र के रूप में भी काम में लाते हैं।

13. **त्रिपुंड**– यह नाथ पंथियों का विशेष चिह्न है। इसे भस्म के द्वारा ललाट, हृदय तथा भुजाओं पर बनाया जाता है।

14. **भस्म-स्नान**– जली हुई लकड़ी की राख को 'भस्म' कहा जाता है। इस भस्म को संपूर्ण शरीर पर लगाने का नाम ही 'भस्म-स्नान' है। कहते हैं कि मत्स्येंद्रनाथ द्वारा घोर तपस्या किए जाने पर जब शंकर भगवान प्रकट हुए और उनसे वर मांगने के लिए कहा, उस समय मत्स्येंद्रनाथ ने उनसे अपने स्वरूप का दान करने के लिए कहा। तब शंकरजी ने पहले तो उनके मस्तक पर भस्म लगाई, तत्पश्चात् उनके संपूर्ण शरीर को भस्म-स्नान कराया अर्थात् संपूर्ण शरीर पर भस्म मलवाई। इस प्रकार उन्हें अपने स्वरूप का दान करने के उपरांत शिवजी ने कहा– 'हे मत्स्येन्द्र! इस भस्म-स्नान का तात्पर्य यह है कि योगी को मानापमान का विचार किए बिना स्वयं को पृथ्वी के समान जड़ समझना चाहिए। जिस प्रकार अग्नि के संयोग से लकड़ी जल जाती है, उसी प्रकार योगी को चाहिए कि वह ज्ञानाग्नि द्वारा कठोरता आदि दुर्गुणों को जलाकर नष्ट कर दे तथा अपने सभी कर्मों को ज्ञानाग्नि में ही भस्म करता रहे।'

    इसके अतिरिक्त नाथयोगी सिर पर जटाएं धारण करते हैं। जटाओं में बरगद का दूध लगाया जाता है। कुछ योगी सोटे के स्थान पर हाथ में त्रिशूल अथवा चिमटा भी धारण करते हैं।

बड़े-बड़े रुद्राक्ष की मालाओं तथा बालों की मोटी रस्सियों को कमर, पीठ, कंठ तथा भुजाओं में लपेटने एवं पैरों में पीतल के बड़े-बड़े घुंघरू पहनने का भी इन योगियों में प्रचलन है।

सामान्यतः नाथ-पंथ के योगी अपने सिर पर जटा तथा दाढ़ी और मूछों के केशों को बढ़ाए रखते हैं, परंतु आधुनिक काल में कुछ नाथ-पंथी महंत लोग जटाजूट, दाढ़ी आदि नहीं रखते। वे बालों को सफाचट रखते, गेरुए रंग के रेशमी वस्त्र पहनते तथा रुद्राक्ष की माला गले में धारण किए रहते हैं। ऐसे महंत लोग मस्तक पर तो भस्म का त्रिपुंड लगाते हैं, परंतु संपूर्ण शरीर पर भस्म नहीं मलते।

नाथयोगी भिक्षा मांगकर अपने लिए भोजन जुटाते हैं। वे गृहस्थों के दरवाजे पर जाकर 'अलख' शब्द का उच्चारण करते हैं, शृंगीनाद करते हैं अर्थात् सींगी बजाते हैं और पांव के घुंघरुओं की आवाज करते हैं। वे 'भिक्षा चाहिए' शब्द का उच्चारण नहीं करते। केवल मात्र पूर्वोक्त संकेत करने पर यदि कोई व्यक्ति उनके खप्पर में भिक्षा डाल दे तो उसे स्वीकार कर लेते हैं, अन्यथा आगे बढ़ जाते हैं।

कुछ नाथ-पंथी योगी भिक्षा एकत्र करने के लिए अपने कंधे पर एक छोटी-सी झोली भी लटकाए रहते हैं। भिक्षा से प्राप्त होने वाली वस्तु को वे अपनी उसी झोली में डलवा लेते हैं, परंतु उनके हाथ में खप्पर अवश्य होता है। खप्पर में भस्म भरी रहती है। उसमें से धूप आदि का धुआं भी उठता रहता है। भिक्षा देने वाले अथवा अन्य किसी भी व्यक्ति के मस्तक पर नाथयोगी अपने खप्पर में से थोड़ी-सी भस्म निकालकर लगा देते हैं। उस भस्म को आशीर्वाद का तिलक समझा जाता है।

नाथयोगी किसी स्थान पर न तो बैठते हैं और न एकदम स्तब्ध रूप से खड़े ही होते हैं। यदि वे किसी जगह खड़े भी हों तो अपने दोनों पांवों को क्रम से ऊंचा-नीचा उठाते-गिराते रहते हैं, जिसके कारण उनके पांवों में बंधे हुए घुंघरुओं से आवाज निकलती रहती है। जब कभी उन्हें विश्राम करना होता है, उस समय वे आधारी का सहारा ले लेते हैं।

महासती अनुसूया

ब्रह्मा के पुत्र अत्रि ऋषि दस प्रजापतियों में से एक थे। सप्तर्षि मंडल में उनका प्रमुख स्थान था। उनकी पत्नी अनुसूया परमसाध्वी, ज्ञानवान, गुणवती तथा पतिपरायण थी। पतिव्रता स्त्रियों में अनुसूया का नाम अग्रगण्य है। आज भी उनके नाम का लोग अत्यंत आदर के साथ स्मरण करते हैं।

त्रेतायुग में भगवान रामचंद्र जब वनवास को गए थे, उस समय वे एक बार अपने भाई लक्ष्मण तथा पत्नी सीता के साथ इन्हीं अत्रि ऋषि के आश्रम में दर्शनार्थ पहुंचे थे। उस समय अत्रि ऋषि ने श्रीरामचंद्रजी को पंचवटी में निवास करने की सम्मति दी थी तथा अत्रि-पत्नी अनुसूया ने सीताजी को पतिव्रता-धर्म

का उपदेश दिया था। तत्पश्चात् उन्होंने सीताजी की मांग में सिंदूर भरकर उन्हें एक ऐसी माला पहनाई थी, जिसके फूल कभी न मुरझाएं तथा उन्हें एक ऐसा वस्त्र दिया था, जो सदैव उज्ज्वल बना रहे। ये तीनों वस्तुएं- (1) सिंदूर, (2) माला और (3) वस्त्र वनवास की संपूर्ण अवधि में सीताजी के रक्षक बने रहे और उनका सौभाग्य सुरक्षित बना रहा।

एक समय की घटना है कि अत्रि ऋषि ने भजन-पूजन से निवृत्त होकर अनुसूया से पीने के लिए पानी मांगा। पति की आज्ञा सुनकर अनुसूया पानी लाने के लिए अपने स्थान से उठीं, परंतु जिस समय वे पानी लेकर अत्रि ऋषि के पास पहुंची, उसी बीच ऋषि की समाधि लग गई। पति को समाधिस्थ देखकर अनुसूया जलपात्र हाथ में लिये हुए उनके सामने ही खड़ी हो गईं। उन्होंने सोचा कि जिस समय ऋषि की समाधि भंग होगी, तब वे जलपात्र उन्हें दे देंगी। समाधिस्थ अवस्था में किसी प्रकार की रोका-टोकी को महापाप समझकर अनुसूया मौन खड़ी रहीं।

ऋषि की वह समाधि कुछ क्षण के लिए न थी। बारह वर्ष का लंबा समय व्यतीत हो गया। इस बीच ऋषि समाधिमग्न बने रहे और अनुसूया उनके सामने ज्यों-की-त्यों जलपात्र को हाथ में लिये हुए स्थिर खड़ी रहीं। इस लंबी अवधि में उन्होंने अन्न-जल कुछ भी ग्रहण नहीं किया। उनका संपूर्ण शरीर सूखकर कांटा हो गया। बारह वर्ष बाद जब ऋषि की समाधि भंग हुई तो वे अनुसूया को इस स्थिति में खड़े देखकर परम प्रसन्न हुए। उनके पतिव्रता-धर्म की ऋषि ने अत्यंत सराहना की।

अत्रि ऋषि बारह वर्ष तक समाधिमग्न रहे और अनुसूया इस अवधि तक उनके समक्ष जलपात्र हाथ में लिये निश्चल खड़ी रहीं– यह समाचार तीनों लोकों में फैल गया। ब्रह्मलोक, विष्णुलोक तथा कैलास पर्वत पर अनुसूया के इस तप की सर्वत्र बड़ा प्रशंसा की जाने लगी। लोग कहने लगे कि त्रिलोकी में सती स्त्रियां तो बहुत हैं, परंतु अनुसूया उन सबमें श्रेष्ठ हैं। अनुसूया की समता करने वाली सती नारी अन्य कोई नहीं है।

अनुसूया के पतिव्रत की इस महिमा एवं प्रशंसा से अन्य देवियों के सतीत्व की महत्ता कम हो गई। ऐसी स्थिति में ब्रह्मा की पत्नी सावित्री, विष्णु की पत्नी लक्ष्मी तथा शिव की पत्नी पार्वती ने अपने-अपने पतियों

से प्रार्थना की कि वे अनुसूया के पास जाकर उसके सती धर्म की परीक्षा लें। दूसरे शब्दों में, वे कोई ऐसा कार्य करें, जिससे अनुसूया के सतीत्व पर प्रभाव पड़े और उनका महत्त्व कम अथवा नष्ट हो जाए।

अनुसूया की परीक्षा

ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव– तीनों देवता अनुसूया के पतिव्रत धर्म की महत्ता से भली-भांति परिचित थे। फिर भी उन्होंने अपनी पत्नियों के मनस्तोष के लिए अनुसूया के सतीधर्म की परीक्षा लेने का निश्चय किया।

एक समय जबकि अत्रि ऋषि अपने आश्रम में नहीं थे, उक्त तीनों देवता ब्राह्मण मुनियों का वेष बनाकर उनके आश्रम में जा पहुंचे। तीनों के मस्तक पर जटाएं सुशोभित थीं। तीनों अपने हाथों में कमंडल लिये हुए थे।

अत्रि ऋषि की कुटिया के द्वार पर पहुंचकर मुनिरूपी तीनों देवताओं ने 'भगवती भिक्षा दीजिए' कहकर आवाज लगाई।

अतिथियों की आवाज सुनकर सती अनुसूया अपनी कुटी से बाहर निकलीं। द्वार पर खड़े हुए तीन मुनियों को देखकर उन्होंने कहा– "हे मुनिवरो! आप आसन पर विराजिए। मैं आप लोगों के लिए भिक्षा लेकर अभी आती हूं।"

मुनि वेषधारी तीनों देवता आसनों पर बैठ गए। अनुसूया कुटी के भीतर से फल तथा जलपात्र लेकर पुनः बाहर आ गईं। इसी बीच मुनि वेषधारी तीनों देवताओं ने अनुसूया के सतीत्व की परीक्षा लेने का एक उपाय निश्चित कर लिया था। अस्तु, जब अनुसूया फल तथा जल लेकर बाहर आईं और उन्हें अतिथियों के आगे परोसने के पश्चात् भोग लगाने का आग्रह किया तो वे तीनों कपट वेषधारी अतिथि कुछ देर तक ज्यों-के-त्यों चुपचाप बैठे रहे।

यह देखकर अनुसूया ने प्रार्थना की– "हे अतिथि श्रेष्ठ! मेरे घर में रूखा-सूखा जो कुछ भी उपलब्ध था, वह आपकी सेवा में प्रस्तुत है। अब आप लोग भोजन क्यों नहीं कर रहे हैं?"

यह सुनकर विष्णु ने उत्तर दिया– "देवी! हम लोग सामान्य भिक्षुक नहीं हैं। आप इस प्रकार जो भिक्षा दे रही हैं, उसे हम ग्रहण नहीं करेंगे।"

अनुसूया बोली– "मेरे द्वार से अब तक कोई अतिथि भिक्षा ग्रहण किए बिना नहीं लौटा। आप लोग किस विधि से भिक्षा ग्रहण कर सकेंगे, यह बताने की कृपा करें। आप मुझे जो भी आज्ञा देंगे, मैं उसका पालन करूंगी।"

विष्णु ने हंसते हुए कहा– "भगवती! यदि आप क्रुद्ध न हों तो हम अपनी बात कहें? यदि आप हमारी मांग के अनुसार भिक्षा देंगी तो हम उसे ग्रहण कर लेंगे।"

अनुसूया ने उत्तर दिया– "घर आए हुए अतिथि पर क्रोध करने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। आपकी जो भी आज्ञा हो, उसे निर्भय होकर कहें। आपकी प्रसन्नता के लिए मैं उसका पालन निश्चित रूप से करूंगी।"

यह सुनकर मुनि वेषधारी विष्णु ने कहा– "देवी! यदि नग्न (नंगी) होकर हमें भिक्षा देना स्वीकार करें तो हम उसे ग्रहण कर लेंगे, अन्यथा हम भिक्षा लिये बिना ही आगे चले जाएंगे।"

विष्णु के मुख से इन शब्दों को सुनकर अनुसूया को अत्यंत आश्चर्य हुआ। वे सोचने लगीं– 'ये कैसे मुनि हैं, जो इस प्रकार की मांग कर रहे हैं। कहीं ये मुनि के वेष में कोई ढोंगी पुरुष तो नहीं आ पहुंचे हैं।' यह विचार करके अनुसूया ने जब ज्ञान-दृष्टि से ध्यान किया तो उन्हें पता चल गया कि मुनि का वेष धारण किए हुए ये तीनों अतिथि और कोई नहीं, साक्षात् ब्रह्मा, विष्णु और शिव हैं और ये मेरे पतिव्रत की परीक्षा लेने के लिए यहां आए हैं। इसीलिए इन्होंने भिक्षा ग्रहण करने हेतु इस प्रकार की टेढ़ी शर्त रखी है, ताकि पर-पुरुष के सामने नग्न हो जाने के फलस्वरूप मेरा सतीत्व कलंकित हो जाए।

अनुसूया के मन में पहले तो कुछ क्रोध उत्पन्न हुआ, परंतु उन्होंने अपने दिए हुए वचन का ध्यान करते हुए तुरंत ही उसे अपने मन में दबा लिया। फिर उन्होंने निश्चिय किया कि इन देवताओं को अपने सतीत्व की

महिमा का ज्ञान करा देना चाहिए और अतिथि-धर्म के साथ ही अपने पतिव्रता-धर्म की रक्षा भी करनी चाहिए।

यह सोचकर अनुसूया ने तीनों से कहा– "हे अतिथियो! आपने भिक्षा ग्रहण करने की जो शर्त रखी है, मैं उसका पालन करूंगी। अब आप लोग निश्चिंत रहें। मैं पूर्ण नग्न होकर ही आपको भिक्षा प्रदान करूंगी।"

विष्णु बोले– "हमें यह स्वीकार है।"

तब अनुसूया ने अपने हाथ में थोड़ा-सा जल लिया और उच्च स्वर में बोलीं– "यदि मैं सच्ची पतिव्रता हूं और मैंने स्वप्न में किसी पर-पुरुष का चिंतन न किया हो तो मेरे सामने बैठे हुए ये तीनों अतिथि छह-छह महीने के बालक बन जाएं।"

यह कहकर अनुसूया ने अपनी अंजुलि का जल उन तीनों देवताओं पर छिड़क दिया। जल के छींटे शरीर पर गिरते ही वे तीनों देवता छह-छह महीने के बालक बनकर रोने लगे। तब अनुसूया ने उन्हें बारी-बारी से अपनी गोद में उठाकर स्तनपान कराया। फिर उन्हें पालने में लिटा दिया।

कुछ देर बाद अत्रि ऋषि आश्रम में आए। उन्होंने पालने में लेटे हुए तीनों बालकों को देखकर अनुसूया से पूछा– "देवी! ये बालक किसके हैं?"

अनुसूया ने हंसते हुए उत्तर दिया– "ये अपने ही पालित बालक हैं। आपके जाने के बाद ये तीनों यहां आ गए थे, सो मैंने इन्हें स्तनपान कराने के उपरांत पालने में लिटा दिया है।"

मुनि ने ध्यान-दृष्टि से संपूर्ण घटना की जानकारी प्राप्त की तो वे भी मुस्करा गए। तत्पश्चात् वे पिता की भांति उन तीनों बालकों का लालन-पालन करने लगे। इस प्रकार कुछ दिन व्यतीत हो गए।

महादेवियों की शरणागति

सती अनुसूया के सतीत्व की महिमा का वर्णन सावित्री, लक्ष्मी तथा पार्वती– इन तीनों महादेवियों ने देवर्षि नारद के मुख से सुना था। तभी उन्होंने ईर्ष्या के वशीभूत होकर अपने पतियों ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव को

उनकी परीक्षा लेने के लिए भेजा था। तीनों देवता जब महासती अनुसूया के सतीत्व की परीक्षा लेने के लिए गए तो वहां जाकर छह-छह महीने के बालक बनकर रोने लगे– यह बात जब नारदजी को ज्ञात हुई तो उन्हें बड़ा आनंद आया।

नारदजी अपनी वीणा बजाते हुए अत्रि ऋषि के आश्रम में जा पहुंचे। वहां तीनों देवताओं को बालक रूप में देखकर उन्हें हंसी आ गई। उन्हें प्रणाम करने के उपरांत नारदजी देवलोक को चल दिए। वहां पर सावित्री, लक्ष्मी और पार्वतीजी बहुत दिनों से अपने पतियों के न लौटने के कारण अत्यंत चितिंत हो रही थीं। उस समय वे उन्हें ढूंढने के लिए अत्रि ऋषि के आश्रम की ओर जाने की तैयारी कर रही थीं।

नारदजी ने जब उन तीनों देवियों के चेहरे पर दृष्टि डाली तो उन्हें उनकी चिंता का कारण तत्काल समझ में आ गया। उन्होंने तीनों देवियों को संबोधित करते हुए कहा– "हे देवियो! आपके हृदय में सती शिरोमणि अनुसूया के सतीत्व के प्रति ईर्ष्या उत्पन्न हुई थी, इसलिए आपने अपने-अपने पतियों को उनके सतीत्व की परीक्षा लेने के लिए भेजा था। आपके पति मुनियों का वेष बनाकर अत्रि ऋषि के आश्रम में भिक्षा मांगने के लिए पहुंचे थे और उन्होंने महासती अनुसूया से नग्न होकर भिक्षा देने की मांग की थी। भगवती अनुसूया उनके कपट को जान गईं, परंतु अतिथि-धर्म का पालन करने के लिए उन्होंने आपके पतियों की इच्छा को स्वीकार कर लिया और उन्हें अपने पतिव्रता-धर्म के प्रभाव से छह-छह महीने का बालक बनाने के उपरांत नग्न होकर स्तनपान करा दिया। इस समय वे तीनों देवता बालक बने हुए अत्रि ऋषि के आश्रम में पालने के भीतर लेटे हैं और अत्रि ऋषि तथा महासती अनुसूया माता-पिता के रूप में उनका लालन-पालन कर रहे हैं। मैं उन्हें वहां अपनी आंखों से देखकर आप लोगों को खबर देने के लिए आया हूं।"

नारदजी के मुंह से यह शब्द सुनकर तीनों देवियों का मुंह लज्जा के कारण झुक गया। तत्पश्चात् उन्होंने कहा– "नारदजी! हम लोगों से बड़ी भूल हुई, जो हमने अपने पतियों को महासती अनुसूया के पतिव्रता-धर्म की परीक्षा लेने के लिए भेजा। अब हम लोग महासती अनुसूया के पास

जा रही हैं। वहां उनसे अपने अपराध की क्षमा मांगेंगी तथा उन्हें प्रसन्न करके अपने पतियों को लौटा देने की प्रार्थना करेंगी। आप भी हमारे साथ अत्रि ऋषि के आश्रम में चलें।''

नारदजी बोले– ''माताओ! मुझे महासती अनुसूया के शाप का भय लगता है, अतः मैं आप लोगों के साथ उनके सामने नहीं जाऊंगा। आप स्वयं ही जाकर प्रयत्न कर लीजिए।''

इतना कहकर नारदजी वीणा बजाते हुए चले गए। तदुपरांत तीनों देवियां अत्रि ऋषि के आश्रम में जा पहुंची। कुटिया के द्वार पर खड़े होकर उन्होंने बाहर से ही आवाज लगाई– ''माताजी! क्या हम लोग भीतर आ सकती हैं?''

अनुसूया ने प्रश्न किया– ''आप लोग कौन हैं?''

इससे पूर्व कि देवियां कोई उत्तर दें, पालने में पड़े हुए तीनों बालरूप देवताओं ने कहा– ''ये तीनों आपकी पुत्र-वधुएं सावित्री, लक्ष्मी और पार्वती हैं।''

यह सुनकर अनुसूया ने तीनों को कुटिया के भीतर लाकर आसन पर बैठाते हुए कहा– ''अरे, यह तो तुम्हारा ही घर है। अपने घर में आने के लिए तुम्हें आज्ञा मांगने की आवश्यकता क्यों आ पड़ी?''

तीनों देवियों ने महासती अनुसूया के चरण स्पर्श किए। फिर हाथ जोड़कर अत्यंत विनीत भाव से कहा– ''हे सती शिरोमणि! हमने ईर्ष्या एवं अज्ञान के वशीभूत होकर बहुत बड़ा अपराध किया, जो अपने पतियों को आपके सतीत्व की परीक्षा लेने के लिए यहां भेज दिया। अब आप कृपा करके हमारे अपराध को क्षमा करें तथा हमें हमारे पति लौटाकर यश की भागी बनें। आप परम साध्वी तथा सती शिरोमणि हैं। आपसे बढ़कर पतिव्रता स्त्री तीनों लोकों में और कोई नहीं है, इस बात को हम सभी ने भली-भांति अनुभव कर लिया है।''

तीनों देवियों की प्रार्थना सुनकर परम दयालु अनुसूया मुस्करा उठीं। उन्होंने बिना कोई तर्क-वितर्क किए अपनी अंजुलि में पानी लेकर उसे मंत्र द्वारा अभिमंत्रित किया तथा बालकरूपी तीनों देवताओं के ऊपर छिड़क

दिया। उस मंत्रयुक्त जल के शरीर पर गिरते ही तीनों देवता पुनः अपने मूलस्वरूप को प्राप्त हो गए। उन्होंने भगवती अनुसूया तथा महामुनि अत्रि ऋषि के चरणों में दंडवत् करते हुए उनसे वर मांगने के लिए कहा।

दत्तात्रेय का जन्म

ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव– तीनों देवता जब अपने यथार्थ स्वरूप में प्रकट हुए, उस समय अत्रि ऋषि तथा साध्वी अनुसूया ने उनका यथाविधि पूजन, वंदन एवं प्रदक्षिणा द्वारा सम्मान किया। उस समय तीनों देवताओं ने प्रसन्न होकर अत्रि तथा अनुसूया से कहा– "हम तीनों आप दोनों से अत्यंत प्रसन्न हैं। अब आप हमसे कोई वर मांग लो।"

यह सुनकर सती अनुसूया बोलीं– "यदि आप प्रसन्न हैं तो आप तीनों देवता पुत्र बनकर मेरे गर्भ से जन्म लेने की कृपा करें– यही हमारी कामना है।"

तीनों देवता 'तथास्तु' कहकर बोले– "हम तीनों अपने अंशरूप में तुम्हारे गर्भ से जन्म लेंगे और तुम्हें अपना माता-पिता बनाएंगे।"

इतना कहकर तीनों देवता अत्रि ऋषि तथा साध्वी अनुसूया को प्रणाम करने के उपरांत सावित्रि, लक्ष्मी तथा पार्वती के साथ वाहनों पर बैठकर अपने-अपने लोक को चले गए। तीनों लोकों में महासती अनुसूया की कीर्ति और अधिक फैल गई। सर्वत्र उनकी जय-जयकार होने लगी।

कुछ समय व्यतीत होने पर तीनों देवताओं ने अपने अंशरूप में महासती अनुसूया के गर्भ से जन्म लिया। विष्णु के अंशरूप में भगवान दत्तात्रेय, ब्रह्मा के अंशरूप में चंद्रमा तथा शिव के अंशरूप में दुर्वासा ऋषि उत्पन्न हुए।

भगवान दत्तात्रेय का जन्म मुख्यतः विष्णु के अंश से हुआ था, परंतु उनमें तीनों देवताओं का अंश परिलक्षित हुआ था। दत्तात्रेय का स्वरूप सबसे अनोखा था। उनके तीन मुंह तथा छह हाथ थे। उनमें शिव की योग शक्ति, विष्णु की संरक्षक शक्ति तथा ब्रह्मा की ज्ञान-शक्ति का समन्वय था। इनका जन्म मार्गशीर्ष शुक्ला पूर्णिमा को हुआ था।

दत्तात्रेय के जन्म के विषय में एक दूसरी प्रचलित कथा यह है कि एक बार ब्रह्माजी ने अत्रि ऋषि को पुत्र उत्पन्न करने के लिए कहा। अत्रि ऋषि संतान-प्राप्ति की इच्छा लेकर ऋक्ष पर्वत के ऊपर निर्विंध्या नदी के तट पर जाकर एक वन में ईश्वर-चिंतन करते हुए तपस्या करने लगे। कुछ समय उपरांत उनके उग्र तप से प्रसन्न होकर ब्रह्मा, विष्णु और शिव- ये तीनों देवता उनके सम्मुख प्रकट हुए और उनसे वर मांगने के लिए कहा।

अत्रि ऋषि ने तीनों देवताओं का विधिवत् पूजन करने के उपरांत कहा- "हे देवताओ! मैं तो पुत्र-प्राप्ति के लिए एक परमात्मा का चिंतन कर रहा था, आप तीनों महापुरुष कौन हैं और यहां किसलिए पधारे हैं- यह रहस्य मुझे समझाने की कृपा करें?"

यह सुनकर तीनों देवताओं ने उत्तर दिया- "हे ऋषि! तुम जिस एक परमात्मा का चिंतन कर रहे हो, हम तीनों उसी के रूप हैं। हम तीनों में कोई अंतर नहीं है। तुमने पुत्र-प्राप्ति के लिए 'परमात्मा' का तप किया था, अतः परमात्मा के अंशरूप में हम तीनों देवता तुम्हारे सम्मुख उपस्थित हुए हैं। अब हम तुम्हारे तप से प्रसन्न होकर तुम्हें यह वरदान देते हैं कि हम तीनों के अंश से तुम्हारे यहां तीन पुत्रों का जन्म होगा।"

इतना कहकर तीनों श्रेष्ठ देवता अंतर्ध्यान हो गए। तत्पश्चात् अत्रि ऋषि को तीन पुत्रों की प्राप्ति हुई। ब्रह्मा के अंशरूप में चंद्रमा, शिव के अंशरूप में दुर्वासा तथा विष्णु के अंशरूप में दत्तात्रेय का जन्म हुआ।

एक मान्यता यह भी है कि दत्तात्रेय का जन्म ब्रह्मा, विष्णु और शिव- इन तीनों देवताओं के सम्मिलित अंश के रूप में हुआ था। अत्रि ऋषि के पुत्र होने के कारण ही उनका नाम (दत्तः + आत्रेय) 'दत्तात्रेय' पड़ा था।

दत्तात्रेय के चौबीस गुरु

भगवान दत्तात्रेय को अवधूत माना जाता है। पहले बताया जा चुका है कि उनके तीन सिर तथा छह हाथ थे। वे अपने ऊपर के दो हाथों में शंख और चक्र, बीच के दो हाथों में त्रिशूल और डमरू तथा नीचे के दो

हाथों में माला और कमंडल अर्थात् क्रमशः विष्णु, शिव एवं ब्रह्मा– इन तीनों देवताओं के आयुधादि को एक साथ धारण किए रहते थे।

आदियुग में भगवान दत्तात्रेय ने भक्तराज प्रह्लाद को उपदेश किया था। अजगर मुनि के वेष में उन्होंने प्रहलाद को अवधूत की स्थिति के विषय में समझाया था। फिर महाराजा अलर्क को भी उन्होंने उपदेश किया था।

दत्तात्रेय का प्रथम शिष्य सहस्रार्जुन, द्वितीय शिष्य पादुराजा तथा तृतीय शिष्य श्रीकृष्ण को माना जाता है। कलियुग में उन्होंने नाथ-पंथ के मुख्य नौ नाथों को स्वयं दीक्षा दी थी। अतः भगवान दत्तात्रेय को नाथ-पंथ का आदिगुरु भी माना जाता है।

भगवान दत्तात्रेय ज्ञान-प्राप्ति के लिए सदैव लालायित रहते थे। उन्होंने गुरु-पद की महिमा स्थापित करने हेतु अपने अलग-अलग चौबीस गुरु बनाए थे।

एक समय अवधूत के वेष में निर्भय विचरते हुए भगवान दत्तात्रेय को देखकर धर्म देवता यदुराजा ने उनसे पूछा था– "हे भगवन्! संसार में सभी प्राणी काम तथा लोभरूपी दावानल में जल रहे हैं, परंतु जिस प्रकार गंगाजी के जल में खड़ा हुआ हाथी शांत दिखाई देता है, उसी प्रकार आप विषय-भोगों से दूर रहकर सदैव आनंदित दिखाई देते हैं। इसका कारण क्या है, यह बताने की कृपा करें।"

यह सुनकर भगवान दत्तात्रेय ने उत्तर दिया– "हे राजन्! मैंने अनेक गुरुओं द्वारा ज्ञान एवं बुद्धि को प्राप्त किया है, इसीलिए मैं ऐसे विरक्त एवं विमुक्त भाव से भ्रमण करता रहता हूं और मुझे संसार का कोई भी प्रपंच नहीं व्यापता। जिन गुरुओं से मैंने उपदेश ग्रहण किया है, वे इस प्रकार हैं–

1. **पृथ्वी**– पृथ्वी को सभी प्राणी अपने पांवों से दबाते हैं, परंतु वह अपने स्थान से विचलित नहीं होती। इसी प्रकार यदि कोई प्राणी दैव के वशीभूत होकर स्वयं को दुःख दे तो धीर पुरुष को चाहिए कि वह अपने मार्ग से विचलित न हो। दूसरे, पृथ्वी अपने वृक्ष एवं पर्वतों के रूप में सदैव परोपकार करती रहती है, उसी प्रकार श्रेष्ठ पुरुष को भी चाहिए कि वह अपनी समस्त चेष्टाओं द्वारा परोपकार

करता रहे। बहुत से लोग वृक्ष के पौधे को उखाड़कर दूसरे स्थान पर ले जाते हैं और वह अपनी पराधीन स्थिति में उस कष्ट को सहन कर लेता है, उसी प्रकार मनुष्य को भी पराधीनता की स्थिति में दुःख एवं कष्टों को सहन कर लेना चाहिए और किसी से कोई शिकायत नहीं करनी चाहिए।

2. **वायु**– वायु भिन्न-भिन्न धर्म वाले पदार्थों के संयोग को पाकर सुगंधित अथवा दुर्गंधित प्रतीत होती है, परंतु वस्तुतः वह गंधरहित ही रहती है। इसी प्रकार योगी पुरुष को चाहिए कि वह भिन्न-भिन्न धर्म वाले विषयों को प्राप्त होकर भी उनके गुण-दोषों से अपने चित्त को निर्लिप्त बनाए रहे और उनमें आसक्त न हो। शरीर के धर्मरूप बाल्यादि अवस्थाओं का आश्रय लेकर भी योगी शारीरिक धर्मों से असंपृक्त ही बना रहता है। जिस प्रकार प्राणवायु केवल आहार की अपेक्षा रखता है, परंतु रूप, रस आदि इंद्रियों के विषयों की अपेक्षा नहीं रखता तो उसी प्रकार श्रेष्ठ पुरुष को चाहिए कि वह केवल आहार आदि से ही संतुष्ट बना रहे, परंतु जो विषय इंद्रियों को प्रिय हैं, उनकी ओर दृष्टिपात न करें। भोजन न मिलने पर मन व्यग्र हो जाता है, मन की व्यग्रता से ज्ञान नष्ट हो जाता है, अस्तु शरीर का निर्वाह करने के लिए भोजन करना आवश्यक है, जिससे मन व्यग्र न हो और ज्ञान नष्ट न होने पाए। जिह्वा के स्वाद के लिए आहार (भोजन) नहीं करना चाहिए।

3. **आकाश**– आकाश जिस प्रकार सर्व-व्यापक होते हुए भी सबके संग से रहित है, उसी प्रकार आत्मा भी देहादि पदार्थों के संग रहते हुए भी उनसे तथा उनकी मर्यादा, क्षणभंगुरता आदि धर्मों से पृथक है– ऐसा समझना चाहिए।

4. **जल**– जल जिस प्रकार स्वभावतः स्वच्छ, मधुर तथा दूसरों को पवित्र करने वाला होता है, उसी प्रकार श्रेष्ठ पुरुष को भी राग-द्वेषादि मलों से रहित, मधुरभाषी एवं अन्य प्राणियों के लिए तीर्थस्थान रूप बना रहना चाहिए।

5. **अग्नि–** अग्नि जिस प्रकार तेजस्वी, प्रदीप्त, अपराजित, उदर आदि स्थानों में अप्रकट रूप से रहने वाली, सर्वभक्षी तथा किसी का भी दोष ग्रहण न करने वाली होती है, उसी प्रकार श्रेष्ठ पुरुष को भी किसी स्थान पर गुप्त और किसी स्थान पर प्रकट रूप में रहना चाहिए। उसे कल्याणकारी इच्छाओं की उपासना करने वाला तथा अपने समस्त पापों को नष्ट करने की शक्ति रखने वाला होना चाहिए। जिस प्रकार अग्नि कष्ठादि में छुपी रहती है और कभी प्रकट भी हो जाती है, उसी प्रकार आत्मा भी है। वह अविद्या से उत्पन्न शरीर में प्रवेश करके कभी-कभी स्वरूप धारण कर लेती है, परंतु यथार्थ में आत्मा का कोई स्वरूप नहीं है– ऐसा समझना चाहिए। जिस प्रकार अग्नि की लपटें प्रतिक्षण उत्पन्न और नष्ट होती रहती हैं, उसी प्रकार शरीर का भी प्रतिपल जन्म और प्रतिपल विनाश होता रहता है–यह विचार स्थिर रखना चाहिए।

6. **चंद्रमा–** जिस प्रकार चंद्रमा की कलाओं की वृद्धि एवं ह्रास का क्रम निरंतर चलता रहता है, परंतु यथार्थ में चंद्रमा में स्वयं कोई घट-बढ़ नहीं होती, उसी प्रकार जन्म-मृत्यु आदि विकार केवल शरीर के ही हैं, आत्मा इन विकारों से रहित है–ऐसा समझना चाहिए।

7. **सूर्य–** सूर्य जिस प्रकार आठ महीने तक पानी को चूसकर वर्षा ऋतु में निरभिमान भाव से पृथ्वी को लौटा देता है, उसी प्रकार योगी पुरुष को चाहिए कि वह समयानुसार इंद्रियों द्वारा विषयों को ग्रहण करे और किसी समय यदि कोई याचक उनकी मांग करे तो उन्हें दान कर दे, परंतु उसने किसी वस्तु को ग्रहण किया अथवा किसी वस्तु का दान कर दिया– इसका अभिमान नहीं करना चाहिए। इसके अतिरिक्त सूर्य जिस प्रकार एक होते हुए भी विभिन्न वस्तुओं में प्रतिबिंबित होने के कारण अनेक रूपों में दिखाई देता है, उसी प्रकार आत्मा एक है और वह देहादि उपाधियों के कारण अनेक रूपों में परिलक्षित होती है–यह समझना चाहिए।

8. **कबूतर–** किसी वृक्ष पर एक कबूतर तथा एक कबूतरी रहते थे। उन दोनों में परस्पर अत्यंत प्रेम था। कालांतर में कबूतरी ने

बच्चों को जन्म दिया। कबूतर तथा कबूतरी, दोनों ही उन बच्चों को अत्यधिक स्नेह करने लगे। एक दिन कबूतर और कबूतरी दोनों दाना-पानी लेने के लिए गए हुए थे। इसी बीच एक शिकारी ने आकर अपना जाल बिछाया और उसमें उनके बच्चों को फांस लिया। उसी समय कबूतर और कबूतरी भी दाना-पानी लेकर लौट आए। जब कबूतरी ने यह देखा कि शिकारी ने उसके बच्चों को अपने जाल में फांस लिया है तो वह स्वयं भी शोक-विह्वल होकर शिकारी के जाल में जा फंसी। अपने बच्चों और पत्नी को तड़पते हुए देखकर कबूतर भी उनके साथ ही जाल में जा गिरा। इस प्रकार एक दूसरे के मोह के कारण पूरा कुटुंब शिकारी के जाल में फंस गया और नष्ट हो गया। इसी प्रकार सांसारिक मनुष्य भी अपने परिवार के लोगों के कारण भांति-भांति के दुःख प्राप्त करते हैं और अपने जीवन को नष्ट कर लेते हैं। ज्ञानी पुरुष को चाहिए कि वह अपने परिवार के लोगों को दुःख का कारण समझकर उनके मोह में न फंसे और सावधान होकर अपनी मुक्ति का प्रयत्न करता रहे।

9. **अजगर–** अजगर जिस प्रकार अपनी आजीविका के लिए प्रयत्न नहीं करता और प्रारब्ध के योग से जो कुछ मिल जाए तो वही उसी को खाकर संतुष्ट बना रहता है, उसी प्रकार श्रेष्ठ पुरुष को भी चाहिए कि वह आत्म-चिंतन में लीन रहे और प्रारब्ध के योग से आजीविका के रूप में जो कुछ मिल जाए, उसी में संतुष्ट बना रहे।

10. **समुद्र–** समुद्र जिस प्रकार बाहर से प्रसन्न अर्थात् आंदोलित-सा दिखाई देता है, परंतु भीतर से गंभीर, दुष्पविश्य, दुर्लघ्य, अनंत तथा अक्षोभ्य होता है, साथ ही वर्षा ऋतु में अधिक पानी मिलने पर भी न तो छलकता है और न ग्रीष्म ऋतु में कम पानी मिलने के कारण सूख जाता है, उसी प्रकार ज्ञानी पुरुष को भी ऊपर से प्रसन्न तथा भीतर से गंभीर बने रहना चाहिए। विषयभोगादि की अधिक प्राप्ति के समय न तो उसे अत्यधिक आनंदित होना चाहिए और इस सबके न मिलने पर उसे शोक भी नहीं करना चाहिए। उसे ईश्वरपरायण रहना चाहिए, विषयपरायण नहीं होना चाहिए।

11. **पतिंगा**– पतिंगा दीप की ज्योति के रूप पर लुब्ध होता है और उसकी अग्नि में पड़कर मारा जाता है। ज्ञानी पुरुष को चाहिए कि वह रूप के आकर्षण में न पड़े, अन्यथा उसका विनाश निश्चित है।

12. **भ्रमर**– भ्रमर गंध का लोभी होता है, फलतः वह कमल के भीतर बंद होकर कष्ट उठाता है। अतः ज्ञानी पुरुष को चाहिए कि वह गंध का लोभी न बने, अन्यथा उसे भी कष्ट उठाना पड़ेगा। हां, जिस प्रकार भ्रमर पुष्पादि को कष्ट पहुंचाए बिना उसके रस को लेकर अपना निर्वाह करता है, उसी प्रकार विरक्त पुरुष को चाहिए कि वह गृहस्थ लोगों को कष्ट दिए बिना भिक्षा मांगकर आहार प्राप्त कर ले और उससे अपने शरीर का निर्वाह करे।

13. **हाथी**– हथिनी के शरीर का स्पर्श पाने के लोभ में हाथी गड्ढे में जा गिरता है और बंधन को प्राप्त होता है। अतः ज्ञानी पुरुष को चाहिए कि वह स्पर्श के लोभ को भी त्याग दे, क्योंकि वह बंधन का कारण बनता है।

14. **हिरन**– हिरन मधुर शब्द पर लुब्ध होने के कारण बंधन में जकड़ा जाता है। अतः ज्ञानी पुरुष को चाहिए कि वह शब्द पर आसक्त न हो, क्योंकि शब्द भी बंधन का एक कारण है।

15. **मछली**– मछली बंसी की नोक पर लगी हुई वस्तु के स्वाद के लोभ में मछियारे के हाथ में जा पड़ती है और मृत्यु को प्राप्त होती है। अतः ज्ञानी पुरुष को चाहिए की वह स्वाद के लोभ में न पड़े, अन्यथा उसका विनाश निश्चित है।

16. **शहद इकट्ठा करने वाला**– शहद इकट्ठा करने वाला व्यक्ति मधुमक्खियों द्वारा अत्यंत कष्ट उठाकर संचित किए हुए शहद का स्वयं उपयोग करता है। इसी प्रकार योगी पुरुष को चाहिए कि वह गृहस्थ लोगों द्वारा तैयार किए गए पदार्थों का स्वयं उपभोग करे। दूसरी बात यह है कि लोभी पुरुष द्वारा दान अथवा उपभोग न करके जो वस्तु बचाई जाती है, उसका उपभोग दूसरे लोग ही करते हैं।

17. **पिंगला**– विदेह नगर की रहने वाली पिंगला नामक वेश्या एक दिन वस्त्राभूषण, श्रृंगारादि से सुसज्जित होकर किसी धनी पुरुष के

आगमन की आशा में आधी रात तक घर के दरवाजे पर बैठी रही, परंतु कोई भी पुरुष नहीं आया। तब वह आशा छोड़कर अपने घर के भीतर चली गई और जाकर सो गई। उस रात उसे खूब गहरी नींद आई। इसी प्रकार जो व्यक्ति क्षणिक, भाग्यवशात् प्राप्त अथवा नाशवान विषयों की आकांक्षा को छोड़ देते हैं, वे अधिक सुखी रहते हैं। आशा ही परम दु:ख और निराशा ही परम सुख है।

18. **गिद्ध**– एक गिद्ध कहीं से मांस का टुकड़ा ले आया। उसे देखकर आस-पास के अनेक पक्षी उसे चोंच मार-मारकर घायल करने लगे। यह देखकर उसने मांस का टुकड़ा छोड़ दिया, जिसके कारण अन्य पक्षी उससे दूर हट गए और उसे सुख प्राप्त हुआ। ज्ञानी पुरुष को यह समझना चाहिए कि परिग्रह दु:ख देने वाला होता है और उसका त्याग सुखकारक रहता है।

19. **बालक**– बालक को किसी प्रकार के मानापमान का ध्यान नहीं होता, साथ ही वह कुटुंब के भरण-पोषण की चिंता से भी मुक्त रहता है। इसी कारण वह खेल-कूद की क्रीड़ाओं में मस्त रहता है। इसी प्रकार श्रेष्ठ व्यक्ति को चाहिए कि वह मानापमान तथा भरण-पोषण की चिंता छोड़कर परमात्मा की ध्यानरूपी क्रीड़ा में मग्न बना रहे।

20. **कुमारी कन्या**– एक कुंवारी कन्या के माता-पिता कहीं बाहर गए हुए थे, उसी समय उसे लज्जित करने वाले मेहमान घर में आ पहुंचे। कन्या ने उन मेहमानों को भोजन कराने के लिए अनाज कूटना आरंभ किया, परंतु अनाज कूटते समय उसके हाथ की चूड़ियां खनकने लगीं। यह देखकर कन्या ने सोचा कि यदि मेहमानों के कान में मेरी चूड़ियों का शब्द पहुंचेगा तो वे पहचान जाएंगे कि इस घर में दरिद्रता है। भोजन का सामान पहले से ही तैयार करके नहीं रखा गया है, इसीलिए इस समय यह लड़की अनाज कूटने बैठी है। अत: उन मेहमानों के कान में चूड़ियों की आवाज न पहुंचे, इसलिए उस कन्या ने दो-दो चूड़ियों के अतिरिक्त अपने हाथों की अन्य सभी चूड़ियां उतार दीं, परंतु जब उसने फिर अनाज कूटना आरंभ

किया तो वे दो-दो चूड़ियां भी आपस में खटककर आवाज करने लगीं। यह देखकर कन्या ने अपने दोनों हाथों में से एक-एक चूड़ी और उतार दी, केवल एक चूड़ी ही पहने रही। उसके बाद फिर अनाज कूटने पर चूड़ियों का शब्द नहीं हुआ। ज्ञानी पुरुष को यह समझ लेना चाहिए कि अनेक व्यक्तियों के साथ रहने पर बातचीत करने में ही समय व्यतीत हो जाता है। एकांत का आध्यात्मिक चिंतन नहीं हो पाता है। अतः आध्यात्मिक-चिंतन के इच्छुक श्रेष्ठ व्यक्ति को लोगों की भीड़-भाड़ से दूर रहकर एकांतवास करना चाहिए।

21. **बाण बनाने वाला–** एक बाण बनाने वाला व्यक्ति बाण को सीधा करने में इतना तल्लीन था कि उसके एकदम निकट से गाजे-बाजे के साथ राजा की सवारी निकल गई, परंतु उसका उसे ज्ञान नहीं हुआ। इसी प्रकार योगी पुरुष को भी चाहिए कि वह आत्म-चिंतन के समय मन को एकाग्र कर दे।

22. **सर्प–** जिस प्रकार सर्प अकेला घूमता है और अपने लिए घर नहीं बनाता, बल्कि पराये (चूहे आदि) घर में निवास करके सुखी रहता है। वह कभी एक ही स्थान पर पड़ा नहीं रहता तथा अप्रमादी बनकर एकांतवास भी करता है। उसी तरह ज्ञानी पुरुष को भी किसी एक स्थान पर अपना घर बनाकर नहीं रहना चाहिए, उसे चाहे जहां जाकर ठहर जाना चाहिए। किसी पर अपने स्वभाव को प्रकट नहीं करना चाहिए, किसी की सहायता नहीं लेनी चाहिए और बहुत थोड़ा बोलना चाहिए।

23. **मकड़ी–** मकड़ी जिस प्रकार अपने ही मुंह से सूत निकालकर जाल पूरती है और फिर उसे स्वयं ही निगल जाती है, उसी प्रकार परमपिता परमात्मा स्वयं ही इस सृष्टि को उत्पन्न करते हैं और बाद में स्वयं ही इसे नष्ट कर देते हैं। श्रेष्ठ व्यक्ति को चाहिए कि वह यह बात भली-भांति समझ ले कि परमात्मा के अतिरिक्त दूसरा कोई नहीं है, वही सबका आश्रयरूप है। अतः एकमात्र भाव से उसी की उपासना करनी चाहिए।

24. **तितली–** जिस प्रकार तितली जिस फूल पर बैठती है, उसका रंग वैसा ही प्रतीत होने लगता है, उसी प्रकार जो व्यक्ति अपने मन में राग-द्वेष, भय आदि को स्थान देता है, वह वैसा ही बन जाता है। अस्तु, पुरुष को चाहिए कि वह अपने मन को राग-द्वेषादि की ओर से हटाकर केवल आध्यात्म-चिंतन में लगाए रहे।''

अपने इन चौबीस गुरुओं का वर्णन करने के उपरांत दत्तात्रेयजी ने कहा– ''हे राजा! मैंने अपने स्वयं के शरीर से यह शिक्षा प्राप्त की है कि इस शरीर को प्रिय करने की इच्छा से मनुष्य, स्त्री-पुत्र आदि के वर्ग का विस्तार करता है और उनका पालन-पोषण करने के लिए अत्यंत कष्ट उठाकर धन इकट्ठा करता है। अंत में वह मर जाता है, परंतु जिन स्त्री-पुत्रादि के लिए उसने अपने जीवनकाल में अनेक कष्ट भोगे थे, वे उसकी मृत देह को भी जलाकर नष्ट कर देते हैं। अस्तु, श्रेष्ठ पुरुष को चाहिए कि वह मनुष्य शरीर पाकर स्वयं को विषय-भोग तथा स्त्री-पुत्रादि के मोह से बचाए रहे। विषय-भोगों की प्राप्ति तो अन्य योनियों में भी होती है, परंतु परमात्मा का साक्षात्कार एवं मुक्ति को प्राप्त करने के लिए केवल मनुष्य-शरीर ही एकमात्र साधन है। धीर पुरुष को चाहिए कि वह शरीर के नष्ट होने से पूर्व तक मोक्ष-प्राप्ति के लिए प्रयत्न करता रहे और विवेक-वैराग्य को अपने हृदय में स्थान दिए रहे।

हे राजन्! इस प्रकार अनेक गुरुओं के संसर्ग से उत्पन्न विशिष्ट ज्ञान के कारण मैं सदैव आत्मा में स्थित रहता हूं तथा सबका संपर्क त्यागे हुए हूं। इसीलिए मैं अहंकार रहित होकर इस पृथ्वी पर अनासक्त भाव से भ्रमण करता रहता हूं। केवल एक ही गुरु द्वारा प्राप्त ज्ञान अत्यंत स्थिर तथा पुष्कल नहीं हो पाता, क्योंकि ऋषियों ने अद्वितीय ब्रह्म का भी अनेक प्रकार से वर्णन किया है।''

कार्तवीर्य अर्जुन को वरदान

कार्तवीर्य राजा के पुत्र अर्जुन को, जो कार्तवीर्य अर्जुन के नाम से प्रसिद्ध था, भगवान दत्तात्रेय ने अभीप्सित वरदान दिया था। इस संबंध में

यह कथा प्रसिद्ध है कि एक बार कार्तवीर्य अर्जुन द्वारा की गई सेवा से प्रसन्न होकर श्री दत्तात्रेय ने उससे अभीप्सित वर मांगने के लिए कहा।

कार्तवीर्य अर्जुन ने दत्तात्रेय जी को प्रसन्न देखकर कहा– "हे प्रभु! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो मुझे ऐसा ऐश्वर्य तथा शांति प्रदान करें कि मैं प्रजा-पालन के कार्य में अधर्म का भागीदार न बनूं। मैं दूसरों के मन की बात को जान सकूं। मुझे कोई पराजित न कर सके। युद्ध क्षेत्र में मुझे हजार भुजाएं प्राप्त हों तथा पृथ्वी, आकाश, पाताल, जल एवं पर्वतों पर मेरी अबाध गति बनी रहे। मेरा वध मुझसे श्रेष्ठ पुरुष के द्वारा हो। यदि मैं कभी कुमार्ग पर चलूं तो मुझे सन्मार्ग दिखाने वाले उपदेशक प्राप्त हों। मेरे यहां श्रेष्ठ अतिथियों का आगमन होता रहे, निरंतर दान करते रहने पर भी मेरे घर में लक्ष्मी की कमी न हो तथा आपके चरणों में मेरी अनन्य भक्ति बनी रहे।"

कार्तवीर्य अर्जुन की प्रार्थना सुनकर दत्तात्रेयजी अत्यंत प्रसन्न हुए एवं 'तथास्तु' कहते हुए बाले– "हे राजन्! तुमने जो वर मांगे हैं, वे सभी तुम्हें प्राप्त होंगे और मेरी कृपा से तुम चक्रवर्ती सम्राट बनकर अनेक प्रकार के सुखों का उपभोग करोगे।"

दत्तात्रेय के अवतार

कलियुग के जीवों पर कृपा करने के हेतु भगवान दत्तात्रेय ने मनुष्य के रूप में अनेक अवतार लिये हैं, यह बात अत्यंत प्रचलित है। दत्तात्रेय के दो अवतारों के विषय में यहां संक्षिप्त उल्लेख किया जा रहा है।

श्रीपादवल्लभ स्वामी

पूर्व प्रदेश के पंढरपुर नामक गांव में आपलराजा नामक एक ब्राह्मण रहता था। उसकी पतिव्रता पत्नी का नाम सुमता था। वह देवता और पितरों में भक्ति रखने वाली तथा अतिथियों का सम्मान करने वाली स्त्री थी। एक दिन ब्राह्मण के घर में श्राद्ध का आयोजन था। उसी समय भगवान दत्तात्रेय

अतिथि के रूप में उसके घर उपस्थित हुए और उन्होंने श्राद्ध के ब्राह्मण-भोजन से पूर्व ही भिक्षा देने की मांग की। सुमता ने उनकी मांग को पूरा किया, जिसके कारण भगवान दत्तात्रेय अत्यंत प्रसन्न हुए और उसे अपने यथार्थ रूप में दर्शन दिया।

सुमता ने उनका विधिवत् पूजन करके स्तुति-वंदना की। जब दत्तात्रेयजी ने उससे वर मांगने के लिए कहा तो वह हाथ जोड़कर कहने लगी– "हे प्रभु! मेरे गर्भ से जो भी पुत्र जन्म लेते हैं, वे मर जाते हैं। केवल दो पुत्र जीवित हैं, परंतु उनमें से एक अपंग है और दूसरा अंधा है। अस्तु, आप मुझे अपने जैसा एक पुत्र प्रदान करने की कृपा कीजिए।"

यह सुनकर दत्तात्रेयजी ने उत्तर दिया– "हे माता! तूने जैसी मांग की है, वैसा ही पुत्र तुझे प्राप्त होगा। वह कलियुग में अत्यंत प्रसिद्ध तथा तेरे वंश का उद्धार करने वाला होगा। वह तेरे पास अधिक समय तक नहीं रहेगा, परंतु तेरे समस्त दैन्य, दुःख एवं दरिद्रता को नष्ट कर देगा।"

यह वरदान देकर दत्तात्रेयजी अंतर्धान हो गए। सुमता ने यह बात अपने पति को बताई तो ब्राह्मण भी अत्यंत प्रसन्न हुआ। भगवान दत्तात्रेय के वरदान के अनुसार कुछ दिनों बाद सुमता गर्भवती हुई और उसने एक दिव्य कांतिवान पुत्र को जन्म दिया।

पुत्र-जन्म के उपलक्ष में माता-पिता ने बड़ा उत्सव मनाया तथा उसका नाम श्रीपाद रखा। सात वर्ष की आयु में श्रीपाद का यज्ञोपवीत संस्कार कराया गया। सोलह वर्ष की आयु में बालक संपूर्ण वेद-वेदांग विद्याओं में पारंगत हो गया। उस समय माता-पिता ने उसके विवाह का निश्चय किया, परंतु श्रीपाद ने अपना विवाह करना स्वीकार नहीं किया। उसने माता-पिता से कहा– "मेरा परिणय तो वैराग्य नामक स्त्री के साथ हुआ है। मैं दत्तात्रेय का अवतार हूं। मैंने दीन-दुःखी लोगों का उद्धार करने के लिए जन्म लिया है। अतः मैं विवाह के बंधन में नहीं बंधूंगा और वैराग्य ग्रहण करूंगा।"

यह सुनकर माता-पिता ने रोना आरंभ कर दिया। तब श्रीपाद ने अपने लंगड़े तथा अंधे दोनों भाइयों को योगबल से दिव्य कांतियुक्त बनाते हुए

कहा– "हे माता-पिता! आज से मेरे ये दोनों भाई आपकी सेवा किया करेंगे और आपके घर में लक्ष्मी का सदैव निवास बना रहेगा। अब आप मुझे घर छोड़ने की आज्ञा दीजिए, जिससे मैं काशीपुरी में संन्यास की दीक्षा ले सकूं।"

अंततः माता-पिता से आज्ञा लेकर श्रीपाद काशी गए। वहां संन्यास धर्म की दीक्षा लेकर वे बदरीनाथ की यात्रा पर चले गए। तीर्थाटन करते हुए वे गोकर्ण और उसके बाद श्रीगिरि पर पहुंचे। वहां उन्होंने लोगों को धर्म का उपदेश दिया। फिर वे दीन-हीनजनों के दुःख दूर करते हुए कृष्णा नदी के तट पर स्थित कुरवपुर नामक स्थान पर आकर रहने लगे। संसार में श्रीपादवल्लभ स्वामी के नाम से उनका यश सर्वत्र फैल गया।

श्रीपादवल्लभ स्वामी ने एक धोबी को राजा होने का वर दिया था। दूसरे जन्म में वह यवन कुल में उत्पन्न हुआ और राजसिंहासन पर बैठा। कल्पवृक्ष की भांति श्रीपादस्वामी ने अपने भक्तों के विविध मनोरथों को पूरा किया। अनेक वर्षों तक कुरवपुर में निवास करने के उपरांत एक समय आश्विन कृष्ण द्वादशी के दिन मृगशिरा नक्षत्र में कृष्णा नदी में स्नान करते समय वे अदृश्य हो गए। उनके अनेक चमत्कारों की कथाएं श्रद्धालु भक्तजनों में आज तक प्रचलित हैं।

श्री नरसिंह सरस्वती

माता अंबा भवानी के गर्भ से जन्म लेने के समय बालक ने गर्भ से बाहर निकलते ही जब 'ओंकार' शब्द का उच्चारण किया तो उसके पिता माधव को यह समझने में देर नहीं लगी कि यह बालक कोई अवतारी महापुरुष है।

माता-पिता ने बालक का नाम नरहरि रखा। बालक बड़ा हुआ, परंतु वह 'ॐ नमः शिवाय' के अतिरिक्त किसी अन्य शब्द का उच्चारण नहीं करता था। सात वर्ष की आयु में जब आचार्य ने आकर उसका यज्ञोपवीत-संस्कार किया, उस समय वह बालक स्वयं ही वेद-मंत्रों का

उच्चारण करने लगा। यह देखकर सभी को पूर्ण रूप से विश्वास हो गया कि यह बालक निश्चित रूप से कोई अवतारी महापुरुष है।

यज्ञोपवीत-संस्कार के समय ही बालक ने अपने माता-पिता से गृह-त्याग कर तीर्थाटन के लिए आज्ञा देने की मांग की तो वे दोनों रोने लगे।

माता ने कहा– "पुत्र! मेरी कोई अन्य संतान नहीं है। यदि तुम भी घर छोड़कर चले जाओगे तो हम लोगों की सेवा कौन करेगा?"

यह सुनकर नरहरि ने उत्तर दिया– "हे माता! तुम चिंता मत करो। तुम्हारे चार पुत्र होंगे और वे सब तुम्हारी सेवा करेंगे।"

माता बोली– "जब मेरे घर में दूसरे पुत्र का जन्म हो जाए, तब तुम यहां से चले जाना।"

नरहरि ने माता की बात मान ली। कुछ समय बाद अंबा भवानी के गर्भ से दो पुत्रों ने जन्म लिया। तब नरहरि ने माता-पिता के समक्ष अपनी मांग को फिर रख दिया। माता-पिता ने जब फिर रोना आरंभ किया तो नरहरि ने कहा– "मैं त्रिमूर्ति का स्वरूप हूं। पूर्व जन्म में तप करने के कारण तुमने मुझे पुत्ररूप में प्राप्त किया है। अब मुझे अपने अवतारी कार्य पूरे करने हैं, इसीलिए मैं जा रहा हूं। तुम जिस समय भी मेरा स्मरण करोगे, उसी क्षण मैं आपके समीप प्रकट हो जाया करूंगा।"

लाचार होकर माता-पिता ने जब आज्ञा दे दी तो नरहरि ने काशी में पहुंचकर अष्टांग योग की साधना की। वहीं वे कृष्ण सरस्वती नामक एक वृद्ध संन्यासी के नाम से प्रसिद्ध हुए।

कुछ ही दिन में नरहरि सरस्वती के शिष्यों की संख्या सहस्रों में पहुंच गई। उन्होंने शिष्यों के साथ भूमंडल पर भ्रमण करते हुए दीन-दुःखी, रोगी तथा पतित लोगों के उद्धार का कार्य आरंभ कर दिया और मुमुक्षुओं को धर्मोपदेश करके ईश्वरीय मार्ग दिखाया।

एक बार नरसिंह सरस्वती अकेले भ्रमण करते हुए कृष्णा नदी और भीमा नदी के संगम-स्थल के समीप अमरपुर (औरवाड़) नामक गांव में जा पहुंचे। वहां उन्होंने एक कल्पवृक्ष के समान उदुंबर वृक्ष के नीचे

बैठकर चार वर्ष तक अनुष्ठान किया, जिसके कारण वह स्थान तीर्थ-क्षेत्र बन गया। इसी स्थल के समीप चौंसठ योगिनियों के स्थान भी थे। वे योगिनियां मध्याह्न काल में गुरु नरसिंह स्वामी का पूजन किया करती थीं।

अमरपुर से चलकर नरसिंह स्वामी गाणगापुर नामक स्थान पर पहुंचे। वहां उन्होंने अनेक प्रकार के चमत्कार प्रदर्शित किए तथा अनेक लोगों को उपदेश करके सन्मार्ग पर प्रेरित किया। कुछ ही समय में उनका यश चारों ओर फैल गया तथा स्थान-स्थान के लोग उनका दर्शन करने के लिए गाणगापुर आने लगे।

पूर्वजन्म में श्रीपादस्वामी ने जिस धोबी को राजा बनने का वर दिया था, वह भी नरहरि स्वामी के समय में मलेच्छ राजा था। गुरु की कृपा से उसे अपने पूर्वजन्म का ज्ञान था। अत: वह श्री नरहरि स्वामी को अपना गुरु मानकर सपरिवार उनकी सेवा में जा पहुंचा। नरहरि स्वामी ने उसे ज्ञान देकर उसका उद्धार कर दिया।

कलियुग के प्रभाव को अधिक बढ़ता हुआ देखकर श्री नरहरि स्वामी ने गुप्त वास करने का विचार किया। उनके इस निश्चय के संबंध में भक्तजनों को जब पता चला, तब वे सब अधीर होकर रोने लगे। उस समय श्री नरहरि स्वामी ने उन्हें संबोधित करते हुए कहा– "हे भाइयो! अब समय बदल गया है। मैं प्रकट रूप में तो पर्वतों पर विचरण करूंगा, परंतु गुप्त रूप से इस भीमा नदी के तट पर सदैव उपस्थित रहूंगा। जो लोग मेरे सच्चे भक्त होंगे, उन्हें इसी स्थान पर मेरे दर्शन मिला करेंगे। मैं इस स्थान पर अपनी पादुकाएं छोड़ जाता हूं। जो व्यक्ति इन पादुकाओं का पूजन करेगा, उसके सभी मनोरथ सफल होंगे।"

इस प्रकार सबको समझा-बुझाकर बहुधान्य नामक संवत्सर में, जबकि बृहस्पति कन्या लग्न पर थे और कुंभ की संक्रांति थी, उस समय माघ कृष्ण प्रतिपदा शुक्रवार के दिन श्री नरसिंह सरस्वती निजानंद में प्रविष्ट हो गए।

गाणगापुर में आज भी श्री नरसिंह स्वामी का गुप्त वास माना जाता है। श्रद्धालु भक्तजन वहां पहुंचकर त्रिमूर्ति भगवान के दर्शन प्राप्त करते हैं। गुरु के प्रताप से उस स्थान की गणना महान तीर्थों में की जाती है।

नवनाथ चरित्र सागर

भाग-2
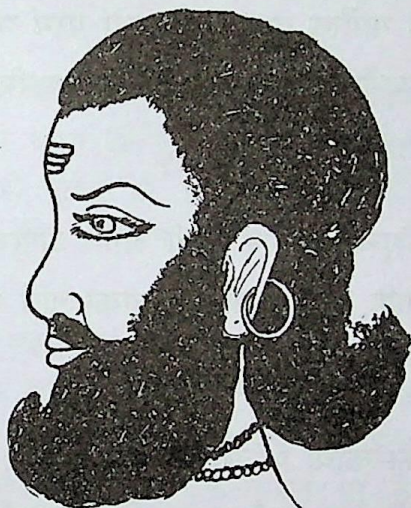
श्री मत्स्येंद्रनाथ-चरित्र

(कविनारायण के अवतार)

बध्वायेन विमुच्यंते नाथमार्गमतः परम्।
तमहं कथयिष्यामि तव प्रीत्या सुरेश्वरि।।
नाना मार्गैस्तु दुष्प्राप्यं केवल्यं परमं पदम्।
सिद्धमार्गेण लभ्येत नान्यथा शिवभाषितम्।।

☆☆☆

बस्ती न शून्यं-शून्यं न बस्ती अगम अगोचर ऐसा।
गगन सिखर महि बालक बोलहि बाका नांव धरहुंगे केसा।।

☆☆☆

सप्त धातु का काया प्यंजरा ता मांहि जुगति बिन सूवा।
सतगुरु मिलै त उबरै बाबू नहिं तौ परलै हूवा।।

शिव-पार्वती संवाद

एक बार कैलास पर्वत पर विराजमान देवाधिदेव भगवान शंकर से पार्वतीजी ने कहा– ''हे भगवन्! आप अजर-अमर हैं और मुझे बारंबार जन्म लेना पड़ता है, इसका क्या कारण है? इसके साथ ही आप जिस मंत्र का जाप करते हैं, उसे मुझे भी देने की कृपा करें, जिससे मेरा अज्ञान दूर हो सके।''

यह सुनकर शिवजी बोले– ''हे पार्वती! भव-बंधन से मुक्त कर, अजर-अमर बनाने वाला जो ज्ञान तथा मंत्र है, वह परम गुह्य है। यदि तुम उसे जानना ही चाहती हो तो मेरे साथ किसी ऐसे एकांत स्थान में चलो, जहां अन्य कोई प्राणी न हो। वहां बैठकर मैं तुम्हें उस ज्ञान का उपदेश दूंगा।''

पार्वतीजी के सहमत होने पर शिवजी उन्हें साथ ले, नंदी पर बैठकर समुद्र तटवर्ती एक गहन वन में जा पहुंचे। वह वन इतना घना था कि वहां किसी मनुष्य का कभी पद-संचार भी नहीं हुआ था। वहां पहुंचकर शिव-पार्वती बाघांबर बिछाकर एक स्थान पर बैठ गए। शिवजी ने पार्वतीजी के समक्ष तत्वज्ञान का वर्णन करना आरंभ किया। पार्वतीजी उसे सुनने लगीं।

कुछ देर तो पार्वतीजी ध्यानमग्न होकर ब्रह्मज्ञान के उपदेश को सुनती रहीं, परंतु फिर दैवसंयोग से वे बैठी-बैठी ही समाधि (निद्रा) मग्न हो गईं। शिवजी ने समझा कि पार्वतीजी आंखें बंद करके उनकी बातों को सुन रही हैं, अतः उन्होंने अपना उपदेश जारी रखा।

जब उपदेश पूर्ण हुआ, तब शिवजी ने पार्वतीजी को संबोधित करते हुए कहा– ''हे देवी! मैंने जिस रहस्यमय ज्ञान का उपदेश दिया है, वह तुम्हें कैसा लगा? तुम्हारी समझ में वह यथावत् आया या नहीं, यह मुझे बताओ?''

पार्वतीजी तो निद्रा-मग्न हो चुकी थीं, सो वे उत्तर कैसे देतीं? परंतु उसी समय समुद्रतट से एक आवाज आई, जो इस प्रकार थी-

''शास्त्रार्थः संपरिज्ञातो जातं प्रेम महेश्वर।
प्रेमानंद प्रकारेण द्वैतं विस्मरणं गतम्॥
शिवः कर्ता शिवो भोक्ता शिवः सर्वेश्वरेश्वरः।
शिव आत्मा शिवो जीवः शिवादन्यन्न विफते॥

भावार्थ- 'हे महेश्वर! आपने शास्त्रों का जो रहस्य समझाया है, उसे सुनकर मुझे अत्यंत आनंद हुआ है तथा प्रमानंद के कारण मेरी द्वैत बुद्धि नष्ट हो गई है। आपके उपदेश का सारांश यह है कि शिव ही कर्ता हैं, शिव ही भोक्ता हैं, शिव ही सबके स्वामी हैं, शिव ही आत्मा हैं, शिव ही जीव हैं, अस्तु शिव के अतिरिक्त अन्य कोई नहीं है।'

समुद्र के तटवर्ती जल में से निकलने वाली इस आवाज को सुनकर शंकर पहले तो कुछ आश्चर्यचकित हुए कि यहां पर किसी मनुष्य का चिह्न भी नहीं है, फिर मेरे परम गुह्य ज्ञानोपदेश को यहां किस अन्य प्राणी ने सुन लिया और कौन इस प्रकार उत्तर दे रहा है? तत्पश्चात् ध्यान-दृष्टि से देखने पर उन्हें ज्ञात हुआ कि समुद्र के तटवर्ती जल में एक मछली पड़ी हुई है। वह मछली गर्भवती है और उसके गर्भ में 'कविनारायण' अवस्थित हैं। उन्हीं कविनारायण ने मेरे ज्ञानोपदेश को सुना है और उन्हीं ने मछली के गर्भ के भीतर बैठे हुए उक्त शब्द कहे हैं।

यह जानकर शिवजी ने मत्स्यगर्भ स्थित कविनारायण को संबोधित करते हुए कहा- ''हे कविनारायण! आप यहां उपस्थित हैं, यह बात मुझे ज्ञात नहीं थी। आपने मेरे ज्ञानोपदेश के रहस्य को भली-भांति समझ लिया, यह जानकर मुझे अत्यंत हर्ष हुआ है। आप जैसे अधिकारी पात्र को मंत्रतत्व का रहस्य प्राप्त हुआ, इससे मुझे कोई असंतोष नहीं है, अपितु आप तत्वज्ञान प्राप्त करने के योग्य हैं। इस बात को मैं जानता हूं। हे कविनारायण! इस समय आप गर्भ में हैं, अतः इस तत्वज्ञान का मनन करते रहें। जब आप जन्म लें, तब यथा समय बदरिकाश्रम आकार मुझसे मिलें। वहां मैं सिद्धों के परम गुरु भगवान दत्तात्रेय द्वारा आपको दीक्षा एवं उपदेश कराऊंगा। उसे ग्रहण करके आप अजर-अमर हो जाएंगे।''

यह कहकर शिवजी ने पार्वतीजी को नींद से जगाया। फिर उन्हें साथ ले, नंदी पर सवार होकर कैलास पर्वत को चले गए।

जिस प्रकार हिरण्यकशिपु की पत्नी कयाधु के गर्भ में प्रह्लाद ने देवर्षि नारद के उपदेश को ग्रहण कर लिया था, उसी प्रकार मछली के गर्भ में स्थित कविनारायण ने भी भगवान शंकर के उपदेश द्वारा ब्रह्मज्ञान के तत्व को सहज ही प्राप्त कर लिया।

मत्स्येंद्रनाथ का जन्म

एक समय सृष्टि की रचना करते हुए पितामह ब्रह्मा दैववश अपने द्वारा उत्पन्न की गई परम सुंदरी सरस्वती नामक कन्या के मनमोहक स्वरूप को देखकर कामासक्त हो गए। उस कामातुरावस्था में उनका वीर्य स्खलित हो गया। वह वीर्य छिटककर अनेक स्थानों पर जा गिरा। उसी वीर्य से ८८ हजार ऋषियों का जन्म हुआ था। उसी वीर्य का एक अंश समुद्र में भी जा गिरा था, जिसे एक मछली ने निगल लिया। उस अमोघ वीर्य के प्रताप से मछली गर्भवती हो गई और उस गर्भ में कविनारायण ने प्रवेश किया।

जिस समय शिव-पार्वती समुद्रतट पर बैठे हुए ज्ञान-चर्चा कर रहे थे, उस समय उक्त मछली तट के पास आ पहुंची थी। शिवजी ने पार्वतीजी को जो ज्ञानोपदेश किया, उसे मछली के गर्भ में स्थित कविनारायण ने सुन लिया था और जब शिवजी ने निद्रामग्न पार्वतीजी से पूछा कि तुम्हें मेरा उपदेश कैसा लगा, उस समय पार्वतीजी के स्थान पर मत्स्य-गर्भ में स्थित कविनारायण ने ही शिवजी को उत्तर दिया था, जिसका वर्णन पहले किया जा चुका है।

प्रसव के समय मछली ने अपने गर्भ-स्थित अंडे को, जिसके भीतर कविनारायण विद्यमान थे, समुद्रतट पर ही छोड़ दिया। वह अंडा समुद्रतट पर पड़ा हुआ था कि वहां पर कुछ बगुले आ पहुंचे। एकाध बगुले ने उस अंडे पर अपनी चोंच मारी। चोंच लगते ही अंडा फूट गया और उसके भीतर स्थित तेजस्वी बालकरूपी कविनाराण प्रकट होकर रोने लगे।

बालक के रोने का शब्द सुनकर बगुले आदि पक्षी तो वहां से उड़कर भाग गए, परंतु तभी दैवसंयोग से 'कामिक' नामक एक मछुआरा उस स्थान पर मछली पकड़ने के लिए आ पहुंचा।

कामिक को कोई संतान नहीं थी। उसने समुद्रतट पर जब बालक के रुदन का शब्द सुना तो वह उसके समीप जा पहुंचा। जब उसने यह देखा कि इतना सुंदर और तेजस्वी बालक इस निर्जन स्थान पर अकेला पड़ा हुआ रो रहा है और कहीं कोई उसका संरक्षक दिखाई नहीं देता तो उसके हृदय में वात्सल्य-प्रेम उमड़ पड़ा। उसने बालक को अपनी गोद में उठाकर हृदय से लगा लिया। बहुत देर तक वह उसे पुचकारता और दुलारता रहा। बालक भी उसकी गोद में जाकर शांत हो गया। उसी समय यह आकाशवाणी हुई– "हे कामिक! यह बालक सामान्य शिशु नहीं है। यह कविनारायण का अवतार है। उसने मछली के पेट से जन्म लिया है। तेरे धन्य भाग्य हैं, जो तूने इस बालक को प्राप्त किया। अब तू इस बालक को अपने घर ले जाकर यत्नपूर्वक लालन-पालन कर। यह बालक ब्रह्मविद्या में पारंगत है। यह तुझे कृतार्थ कर देगा और तेरे गृहस्थाश्रम को आनंदमय बनाएगा। आगे चलकर यह बालक बहुत बड़ा योगीश्वर होगा और देवताओं का आशीर्वाद प्राप्त करके सहस्रों व्यक्तियों का कल्याण करेगा। तू इस बालक का नाम मत्स्येन्द्र रखना।"

इस आकाशवाणी को सुनकर कामिक के हर्ष की सीमा न रही। वह बालक को गोद में उठाकर अपने घर लौट आया।

कामिक की पत्नी का नाम था 'शारद्वता'। कोई संतान न होने के कारण वह मन-ही-मन अत्यंत दुःखी रहा करती थी। कामिक ने समुद्रतट से लौटकर जब उसकी गोद में उसे परम मनोहर दिव्य तेजस्वी सुंदर शिशु को सौंपा और उसे आकाशवाणी के संबंध में बताया तो वह प्रसन्नता में डूब गई। उसकी आंखों में हर्ष के आंसू भर आए। उसने अत्यंत गद्‌गद स्वर में अपने पति से कहा– "ईश्वर ने अत्यंत कृपा करके ही हम संतानविहीनों की मनोकामना को पूरा किया है। मैं इस बालक को अपने कलेजे से लगाकर रखूंगी।"

यह कहकर जैसे ही शारद्वता ने उस बालक को अपनी छाती से लगाया, वैसे ही उसके स्तनों से अपने आप दूध की धार निकलने लगी। बालक आनंदित होकर स्तनपान करने लगा।

कामिक और शारद्वता ने बालक का नाम मत्स्येन्द्र रखा। वे अत्यंत स्नेहपूर्वक उसका लालन-पालन करने लगे। धीरे-धीरे बालक की आयु पांच वर्ष की हो गई।

कामिक तथा शारद्वता प्रतिदिन समुद्रतट पर मछलियां पकड़ने के लिए जाया करते थे। उसी से उनकी आजीविका चलती थी। वे बालक मत्स्येन्द्र को भी अपने साथ समुद्रतट पर ले जाने लगे।

बालक मत्स्येन्द्र ने चूंकि मछली के गर्भ से जन्म लिया था और वह ज्ञानवान था, सो उसे अपने माता-पिता के इस कार्य से अत्यंत घृणा उत्प. न्न होती थी। पानी से बाहर निकाली हुई मछलियों को तड़पते हुए देखकर उसके हृदय में दया का संचार होता था। फलतः जब उसके माता-पिता मछली पकड़ने का कार्य कर रहे होते, उस समय वह उनसे अलग रहते हुए समुद्र तटवर्ती बालू पर खेला करता था।

मत्स्येंद्रनाथ का गृह-त्याग

एक दिन शारद्वता को ज्वर आ गया। कामिक मत्स्येन्द्र को साथ लेकर अकेला ही मछली पकड़ने के लिए चल दिया। समुद्रतट पर पहुंचकर उसने मत्स्येन्द्र को टोकरी के पास बैठा दिया और स्वयं पानी में उतरकर मछलियां पकड़ने लगा।

कामिक ने बहुत-सी मछलियां पकड़कर टोकरी में रख दीं। उसके बाद वह फिर पानी के भीतर घुस गया। इधर टोकरी के पास बैठे हुए मत्स्येन्द्र ने जब मछलियों को तड़पते हुए देखा तो उसने उन सब मछलियों को टोकरी में से निकालकर समुद्र के पानी में डाल दिया।

कामिक फिर कुछ मछलियां लेकर जब मत्स्येन्द्र के पास आया तो उसने टोकरी को खाली देखकर मत्स्येन्द्र से पूछा- ''इस टोकरी में से मछलियां कहां चली गईं?''

मत्स्येन्द्र ने निर्भीकता से उत्तर दिया– ''आप जिन मछलियों को पकड़कर लाए थे, उन्हें तड़पता हुआ देखकर मैंने उन्हें पुनः पानी में डाल दिया।''

यह सुनकर कामिक बोला– ''बेटे! तूने तो अपनी दयालुता के कारण मछलियों को छोड़ दिया और मेरी अब तक की सारी मेहनत बेकार कर दी, परंतु तू यह तो सोच कि यदि हम लोग मछलियों को नहीं पकड़ेंगे तो हमारी गुजर कैसे होगी? मछलियां पकड़ना ही हमारी कुल–धर्म है और उसी से हम लोगों की आजीविका चलती है। अस्तु, अब तक तूने जो कुछ किया, वह तो किया, परंतु अब आगे कभी ऐसा मत करना। मैं और मछलियां पकड़कर ला रहा हूं, तू उनकी देखभाल करते रहना।''

इस प्रकार समझा-बुझाकर कामिक तो दुबारा मछलियां पकड़ने के लिए समुद्र के पानी में घुस गया। इधर मत्स्येन्द्र ने सोचा कि यह व्यक्ति मछली पकड़ने का काम नहीं छोड़ेगा और मुझसे मछलियों की ऐसी करुणाजनक स्थिति देखी नहीं जाएगी, इसलिए मुझे इसका साथ छोड़कर कहीं अन्यत्र चले जाना चाहिए।

यह विचार करके बालक मत्स्येन्द्र मछलियों की टोकरी के पास से उठकर एक ओर चल दिया। कामिक समुद्र के पानी में धंसा हुआ मछलियां पकड़ने में तल्लीन था, अतः उसे बालक के चले जाने के संबंध में कुछ पता नहीं चला।

कुछ देर बाद जब कामिक पानी से बाहर निकलकर टोकरी के पास आया और उसने वहां मत्स्येन्द्र को न देखा तो यह समझा कि मत्स्येन्द्र यहीं कहीं खेलने के लिए चला गया। अस्तु, वह पकड़ी हुई मछलियों को टोकरी में रखकर पुनः समुद्र में घुस गया।

संध्या होने तक कामिक मछलियां पकड़ता रहा। अंत में उसने अपना काम समाप्त करके बालक की खोजबीन की तो मत्स्येन्द्र का कहीं भी पता न चला। बहुत देर तक ढूंढने के बाद अंततः निराश होकर वह घर को लौट आया। घर आकर शारद्वता से उसने बालक द्वारा मछलियों को पानी में छोड़ने तथा बाद में उसके गायब हो जाने से संबंधित सारी बात विस्तारपूर्वक कही।

शारद्वता यह सुनकर अत्यंत दुःखी हुई। उसने कामिक को बहुत कुछ भला-बुरा कहा, बहुत कुछ चीखी-चिल्लाई और रोई भी, परंतु 'पछताए अब होत क्या, जब चिड़िया चुग गई खेत' न्याय के अनुसार उसकी संपूर्ण छटपटाहट निष्फल ही सिद्ध हुई। दोनों पति-पत्नी मन मारकर रह गए। बालक मत्स्येन्द्र के चले जाने का दोनों के ही मन में अत्यंत दुःख था।

मत्स्येंद्रनाथ बदरिकाश्रम में

समुद्रतट से हटकर बालक मत्स्येन्द्र गर्भ में प्राप्त परम ज्ञान के उच्च संस्कारों की प्रेरणा से 'शिव-पार्वती' का जप करता हुआ चलते-चलते बदरिकाश्रम जा पहुंचा। जिस प्रकार पांच वर्ष की आयु के बालक ध्रुव ने कठिन तपस्या करके नारायण को प्रसन्न किया था, उसी प्रकार बदरि. काश्रम में पहुंचकर, गंगातट के एक निर्जन स्थान में बैठकर मत्स्येन्द्र ने तपस्या करनी आरंभ कर दी।

आरंभ में तो उसने कुछ दिनों तक कंद-मूल-फल आदि का सेवन किया, परंतु बाद में उन सबको भी छोड़कर निर्जल तप करते हुए केवल वायु-भक्षण करना आरंभ कर दिया। मत्स्येन्द्र ने बारह वर्ष तक ऐसी कठिन तपस्या की। उसका शरीर अस्थिपंजर मात्र रह गया, परंतु वह किसी प्रकार भी विचलित नहीं हुआ।

बालक मत्स्येन्द्र के उस उग्र तप को देखकर भगवान दत्तात्रेय का हृदय द्रवित हो गया। तब वे भगवान शंकर को अपने साथ लेकर बदरिकाश्रम में जा पहुंचे।

मत्स्येन्द्र जिस स्थान पर तप कर रहा था, उससे कुछ दूरी पर भगवान शंकर को बैठाकर दत्तात्रेय अकेले ही मत्स्येन्द्र के सम्मुख ज़ाकर उपस्थित हुए। तत्पश्चात् उन्होंने मत्स्येन्द्र को सावधान करते हुए उसका नाम और तपस्या करने का कारण पूछा।

मत्स्येन्द्र ने दत्तात्रेयजी के प्रश्न का उत्तर देने से पूर्व स्वयं प्रश्न किया- ''पहले मुझे यह बताने की कृपा कीजिए कि आप कौन हैं और मेरे पास किसलिए पधारे हैं?''

मत्स्येन्द्र ने निर्भीकता से उत्तर दिया– ''आप जिन मछलियों को पकड़कर लाए थे, उन्हें तड़पता हुआ देखकर मैंने उन्हें पुनः पानी में डाल दिया।''

यह सुनकर कामिक बोला– ''बेटे! तूने तो अपनी दयालुता के कारण मछलियों को छोड़ दिया और मेरी अब तक की सारी मेहनत बेकार कर दी, परंतु तू यह तो सोच कि यदि हम लोग मछलियों को नहीं पकड़ेंगे तो हमारी गुजर कैसे होगी? मछलियां पकड़ना ही हमारी कुल-धर्म है और उसी से हम लोगों की आजीविका चलती है। अस्तु, अब तक तूने जो कुछ किया, वह तो किया, परंतु अब आगे कभी ऐसा मत करना। मैं और मछलियां पकड़कर ला रहा हूं, तू उनकी देखभाल करते रहना।''

इस प्रकार समझा-बुझाकर कामिक तो दुबारा मछलियां पकड़ने के लिए समुद्र के पानी में घुस गया। इधर मत्स्येन्द्र ने सोचा कि यह व्यक्ति मछली पकड़ने का काम नहीं छोड़ेगा और मुझसे मछलियों की ऐसी करुणाजनक स्थिति देखी नहीं जाएगी, इसलिए मुझे इसका साथ छोड़कर कहीं अन्यत्र चले जाना चाहिए।

यह विचार करके बालक मत्स्येन्द्र मछलियों की टोकरी के पास से उठकर एक ओर चल दिया। कामिक समुद्र के पानी में धंसा हुआ मछलियां पकड़ने में तल्लीन था, अतः उसे बालक के चले जाने के संबंध में कुछ पता नहीं चला।

कुछ देर बाद जब कामिक पानी से बाहर निकलकर टोकरी के पास आया और उसने वहां मत्स्येन्द्र को न देखा तो यह समझा कि मत्स्येन्द्र यहीं कहीं खेलने के लिए चला गया। अस्तु, वह पकड़ी हुई मछलियों को टोकरी में रखकर पुनः समुद्र में घुस गया।

संध्या होने तक कामिक मछलियां पकड़ता रहा। अंत में उसने अपना काम समाप्त करके बालक की खोजबीन की तो मत्स्येन्द्र का कहीं भी पता न चला। बहुत देर तक ढूंढने के बाद अंततः निराश होकर वह घर को लौट आया। घर आकर शारद्वता से उसने बालक द्वारा मछलियों को पानी में छोड़ने तथा बाद में उसके गायब हो जाने से संबंधित सारी बात विस्तारपूर्वक कही।

शारद्वता यह सुनकर अत्यंत दुःखी हुई। उसने कामिक को बहुत कुछ भला-बुरा कहा, बहुत कुछ चीखी-चिल्लाई और रोई भी, परंतु 'पछताए अब होत क्या, जब चिड़िया चुग गई खेत' न्याय के अनुसार उसकी संपूर्ण छटपटाहट निष्फल ही सिद्ध हुई। दोनों पति-पत्नी मन मारकर रह गए। बालक मत्स्येन्द्र के चले जाने का दोनों के ही मन में अत्यंत दुःख था।

मत्स्येंद्रनाथ बदरिकाश्रम में

समुद्रतट से हटकर बालक मत्स्येन्द्र गर्भ में प्राप्त परम ज्ञान के उच्च संस्कारों की प्रेरणा से 'शिव-पार्वती' का जप करता हुआ चलते-चलते बदरिकाश्रम जा पहुंचा। जिस प्रकार पांच वर्ष की आयु के बालक ध्रुव ने कठिन तपस्या करके नारायण को प्रसन्न किया था, उसी प्रकार बदरि. काश्रम में पहुंचकर, गंगातट के एक निर्जन स्थान में बैठकर मत्स्येन्द्र ने तपस्या करनी आरंभ कर दी।

आरंभ में तो उसने कुछ दिनों तक कंद-मूल-फल आदि का सेवन किया, परंतु बाद में उन सबको भी छोड़कर निर्जल तप करते हुए केवल वायु-भक्षण करना आरंभ कर दिया। मत्स्येन्द्र ने बारह वर्ष तक ऐसी कठिन तपस्या की। उसका शरीर अस्थिपंजर मात्र रह गया, परंतु वह किसी प्रकार भी विचलित नहीं हुआ।

बालक मत्स्येन्द्र के उस उग्र तप को देखकर भगवान दत्तात्रेय का हृदय द्रवित हो गया। तब वे भगवान शंकर को अपने साथ लेकर बदरिकाश्रम में जा पहुंचे।

मत्स्येन्द्र जिस स्थान पर तप कर रहा था, उससे कुछ दूरी पर भगवान शंकर को बैठाकर दत्तात्रेय अकेले ही मत्स्येन्द्र के सम्मुख जाकर उपस्थित हुए। तत्पश्चात् उन्होंने मत्स्येन्द्र को सावधान करते हुए उसका नाम और तपस्या करने का कारण पूछा।

मत्स्येन्द्र ने दत्तात्रेयजी के प्रश्न का उत्तर देने से पूर्व स्वयं प्रश्न किया- ''पहले मुझे यह बताने की कृपा कीजिए कि आप कौन हैं और मेरे पास किसलिए पधारे हैं?''

दत्तात्रेय ने कहा– "मैं दत्तात्रेय हूं। तुम्हारे कठोर तप को देखकर तुम्हें वर देने के लिए आया हूं। अब तुम्हारी जो इच्छा हो, वह मुझसे कहो।"

यह सुनकर मत्स्येन्द्र ने दत्तात्रेयजी को साष्टांग दंडवत् प्रणाम किया। तत्पश्चात् कहा– "हे प्रभु! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो मुझे सब प्रकार से कृतार्थ करने की कृपा कीजिए।"

दत्तात्रेय ने मत्स्येन्द्र के मस्तक पर हाथ रखते हुए 'तथास्तु' कहा। दत्तात्रेय के हाथ का स्पर्श पाते ही मत्स्येन्द्र का शरीर हृष्ट-पुष्ट हो गया और उसे संपूर्ण जगत् ब्रह्ममय भासित होने लगा। तुदपरांत दत्तात्रेयजी ने उसके कान में मंत्र पढ़कर नाथ-पंथ की दीक्षा दी। इस प्रकार बालक मत्स्येन्द्र 'मत्स्येंद्रनाथ' बन गए। वे नाथ-पंथ के आदिगुरु दत्तात्रेय के सबसे पहले शिष्य हुए, इसीलिए आगे चलकर सभी नाथों में मत्स्येंद्रनाथ को प्रथम स्थान प्राप्त हुआ।

नाथ-पंथ में दीक्षित करने के उपरांत दत्तात्रेयजी मत्स्येंद्रनाथ को अपने साथ लेकर उस स्थान पर जा पहुंचे, जहां भगवान शंकर विराजमान थे।

मत्स्येंद्रनाथ ने देवाधिदेव शंकर के चरणों में गिरकर साष्टांग दंडवत् किया। शिवजी ने उन्हें उठाकर हृदय से लगा लिया। फिर दत्तात्रेयजी से कहा– "हे दत्तात्रेय! इस दिव्य तपस्वी बालक ने समुद्र के बीच मत्स्य के गर्भ में रहते समय मेरे द्वारा उपदेश किए गए दिव्य ज्ञान के रहस्य को प्राप्त किया है। यह बालक साक्षात् कविनारायण का अवतार है। आपने इसे नाथ-पंथ की प्रथम दीक्षा देकर बहुत अच्छा कार्य किया है। अब आप इसे अन्य संपूर्ण विद्याओं में पारंगत बनाइए। मेरे आशीर्वाद से यह बालक संपूर्ण संसार में अक्षय कीर्ति प्राप्त करेगा।"

इतना कहकर भगवान शंकर मत्स्येंद्रनाथ को आशीर्वाद देकर कैलास पर्वत को चले गए। तदुपरांत दत्तात्रेयजी ने शिवजी की आज्ञानुसार मत्स्येंद्रनाथ को योग-विद्या, वेदांत, मंत्र-विद्या शास्त्र-विद्या आदि का अभ्यास कराकर उनको प्रवीण बना दिया। फिर उन्हें तीर्थाटन करने की आज्ञा प्रदान की।

सप्तश्रृंग पर्वत पर गमन

गुरु दत्तात्रेय की आज्ञा पाकर मत्स्येंद्रनाथ तीर्थों का भ्रमण करने के लिए चल दिए। विभिन्न तीर्थों की यात्रा करते हुए कुछ समय पश्चात् वे दक्षिण दिशा में सप्तश्रृंग नामक पर्वत पर पहुंचे। उस पर्वत के ऊपर भगवती अष्टभुजी जगदंबा का निवास था।

मत्स्येंद्रनाथ ने अत्यंत भक्तिपूर्वक जगदंबा के दर्शन किए और उनकी स्तुति की। उसी समय उनके मन में 'साबरी विद्या' (मंत्र-विद्या) की कविता करने का विचार उत्पन्न हुआ, परंतु कोई भी मंत्र-विद्या तब तक उपयोगी नहीं होती, जब तक उसे देवताओं का आशीर्वाद प्राप्त न हो, क्योंकि यदि किसी मंत्र-विद्या द्वारा देवता प्रसन्न ही न हो तो उसकी सिद्धि का अर्थ ही क्या रहा।

अस्तु, स्वरचित साबरी मंत्रों की सिद्धि के लिए मत्स्येंद्रनाथ ने जगदंबा को प्रसन्न करने का संकल्प किया। उन्होंने एक सप्ताह तक वेद-मंत्रों का पाठ करते हुए जगदंबा का अनुष्ठान किया। अनुष्ठान के पूर्ण होने पर महाशक्ति जगदंबा ने प्रत्यक्ष प्रकट होकर मत्स्येंद्रनाथ से वरदान मांगने के लिए कहा।

भगवती जगदंबा के प्रत्यक्ष दर्शन पाकर मत्स्येंद्रनाथ के हर्ष की सीमा न रही। उन्होंने सर्वप्रथम महादेवी को साष्टांग प्रणाम किया। तदुपरांत उनकी स्तुति एंव पूजन करने के बाद यह कहा– "हे भगवती! आप संपूर्ण ब्रह्मांड की उत्पत्ति, स्थिति एवं लय करने वाली हैं। ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि सभी देवता हर समय आपकी उपासना करते रहते हैं।" आप अपने भक्तों को वरदान देकर अभय बना देती हैं। आपकी स्तुति एवं प्रशंसा करने योग्य शब्द मेरे पास नहीं हैं। आपने मुझ बालक पर अनुग्रह करके प्रत्यक्ष दर्शन देने की जो कृपा की है, तदर्थ मैं अत्यंत आभारी हूं। हे मातेश्वरी! मैं प्रचीन वेद-मंत्रों के समान नवीन साबरी मंत्रों का सृजन करना चाहता हूं। मैं साबरी मंत्रों की कविता में सफल होने के लिए आपके आशीर्वाद की कामना करता हूं। यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो मेरे इस मनोरथ को पूरा कीजिए।"

मत्स्येंद्रनाथ की प्रार्थना सुनकर जगदंबा बोलीं– "मैं तुम्हारी इच्छा पूर्ण करूंगी।" यह कहकर भगवती अंबादेवी मत्स्येंद्रनाथ का हाथ पकड़कर, उन्हें अपने साथ मार्तंड पर्वत के ऊपर ले गईं। उस पर्वत पर 'नाग अश्वत्थ' नामक एक दिव्य वृक्ष था। उस वृक्ष के नीचे ले जाकर जगदंबा ने बीजमंत्रों द्वारा मत्स्येंद्रनाथ से हवन कराया। हवन पूरा होते ही वह नाग अश्वत्थ वृक्ष सुवर्णमय दिखाई देने लगा और उसकी असंख्य डालियों के ऊपर भैरव, वेताल, डाकिनी, यक्षिणी, हनुमान, अष्टसिद्धि, चामुंडा, योगिनी, वीरभद्र तथा बावनवीर आदि देवी-देवता बैठे हुए दिखाई देने लगे।

उन सबको देखकर मत्स्येंद्रनाथ को अत्यंत आश्चर्य हुआ, परंतु वे सब देवी-देवता चुप बैठे हुए थे। मत्स्येंद्रनाथ के ऊपर प्रसन्न नहीं दिखाई देते थे। तब अंबिका भवानी ने उन देवताओं को एक के बाद एक प्रसन्न करने के लिए मत्स्येंद्रनाथ को उपाय बताया।

जगदंबा ने कहा– "हे मत्स्येन्द्र! तुम ब्रह्मगिरी के समीपवर्ती अंजन पर्वत के ऊपर जाओ। वहां विराजमान महाकाली देवी के दर्शन करके, नदी के प्रवाह को पार करते हुए आगे चले जाना। वहां पर तुम्हें एक सौ की संख्या में श्वेत कुंड दिखाई देंगे। तुम उसी स्थान पर उत्पन्न होने वाल श्वेत बेल का एक टुकड़ा तोड़ लेना। उस बेल को तुम उन कुंडों में डालते जाना। जिस कुंड के जल का स्पर्श होने पर श्वेत बेल के टुकड़े में कल्ले फूट उठें और वह हरी हो जाए, तुम उस कुंड में स्नान करना। उस कुंड के जल का स्पर्श होने पर मूर्च्छा आने लगती है। जब कुंड में स्नान करते समय मूर्च्छा आने लगे, उस समय तुम आदित्य स्तोत्र का पाठ आरंभ कर देना। स्तोत्र का पाठ करने से तुम्हें मूर्च्छा नहीं आएगी।

हे मत्स्येन्द्र! स्नान करने के उपरांत तुम उसी कुंड से जल लेकर आदित्य स्तोत्र का पाठ करते हुए इस नागअश्वत्थ वृक्ष के समीप आकर जल को वृक्ष के ऊपर छिड़क देना। ऐसा करने से इस वृक्ष के ऊपर रहने वाला प्रत्येक देवता तुम पर प्रसन्न हो जाएगा और तुम्हें वरदान देगा।

इसी प्रकार छह महीने तक तुम प्रतिदिन श्वेत कुंड में स्नान करके और उसमें से जल ला-लाकर इस वृक्ष पर छिड़कते रहना। इस अवधि में वृक्ष के निवासी सभी देवता तुम पर प्रसन्न हो जाएंगे और इच्छित वरदान देकर तुम्हारी मनोकामना पूरी करेंगे।"

इतना कहकर जगदम्बा अंतर्धान हो गईं।

भगवती जगदंबा के निर्देशानुसार मत्स्येंद्रनाथ अंजन पर्वत पर गए। वहां महाकाली के दर्शन करने के उपरांत उन्होंने श्वेत बेल का एक टुकड़ा तोड़कर प्रत्येक कुंड की परीक्षा करना आरंभ कर दिया। उनमें से एक कुंड के जल का स्पर्श करते ही बेल के टुकड़े में नई कोपलें फूट गईं। वह 'संजीवन कुंड' था। मत्स्येंद्रनाथ ने उस कुंड के जल में स्नान किया। स्नान तथा जलपान करते समय जब उन्हें मूर्च्छा आने लगी तो देवी के बताए अनुसार उन्होंने आदित्य स्तोत्र का पाठ आरंभ कर दिया। स्तोत्र का पाठ करते ही वहां पर आदित्यनारायण प्रकट हुए। उन्होंने मत्स्येंद्रनाथ की मूर्च्छा दूर कर दी। तब मत्स्येंद्रनाथ उसी आदित्य स्तोत्र का पाठ करते हुए कुंड में से जल भरकर नाग अश्वत्थ वृक्ष के समीप जा पहुंचे और उन्होंने कुंड के जल को वृक्ष के ऊपर छिड़क दिया। कुंड का जल वृक्ष पर गिरते ही सर्वप्रथम सूर्यनारायण प्रकट हुए। उन्होंने मत्स्येंद्रनाथ से वर मांगने के लिए कहा। मत्स्येंद्रनाथ ने कहा– "हे प्रभु! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो मेरे द्वारा रचित साबरी मंत्र सिद्धि को प्राप्त हों। मुझे यह वरदान देने की कृपा कीजिए।"

यह सुनकर सूर्यनारायण 'तथास्तु' कहकर बोले– "तुम मेरे नाम का जो मंत्र बनाओगे, उसका जाप करते ही मैं प्रकट होकर सहायता किया करूंगा।" इतना कहकर सूर्यनारायण अंतर्धान हो गए।

मत्स्येंद्रनाथ ने जगदंबा देवी के निर्देशानुसार प्रतिदिन श्वेत कुंड में स्नान करके उसके जल को नाग अश्वत्थ वृक्ष पर छिड़कने का क्रम बनाए रखा। फलस्वरूप छह महीने की अवधि में उस वृक्ष पर निवास करने वाले सभी देवताओं ने एक-एक करके प्रकट होकर मत्स्येंद्रनाथ को आशीर्वाद और साबरी मंत्रों की सफलता के लिए वर प्रदान किया।

नाग अश्वत्थ वृक्ष पर निवास करने वाले देवताओं से अपने साबरी मंत्रों की सफलता का वरदान पाकर मत्स्येंद्रनाथ बंगाल के वरणा जिले में आए। वहां रहकर उन्होंने 'कौप्त-ज्ञान निर्णय' नामक ग्रंथ की रचना की तथा साबरी मंत्रों की सिद्धि के अन्य अनेक ग्रंथों को भी लिखा।

मत्स्येंद्रनाथ तथा गोरखनाथ द्वारा रचित साबरी मंत्रों के चमत्कार के विषय में संपूर्ण भारत में सहस्रों दंतकथाएं प्रचलित हैं। साबरी मंत्रों को संपूर्ण सिद्धियों का प्रदायक तथा समस्त मनोकामनाओं को पूर्ण करने वाला कहा जाता है। आजकल इन मंत्रों के द्वारा सामान्य लोगों को सफलता प्राप्त नहीं होती तो उसका कारण यही समझना चाहिए कि मंत्र का साधन करने वाले व्यक्ति यम, नियम तथा पवित्रता का यथाविधि पालन नहीं कर पाते हैं। जो लोग मंत्रानुष्ठान के समय यम, नियम, पवित्रता आदि का यथाविधि पालन करते हैं और जो जिज्ञासु शिष्य बनकर अधिकारी गुरु से मंत्र प्राप्त करते हैं, उन्हें सफलता निश्चित रूप से प्राप्त होती है– ऐसा समझना चाहिए।

सरस्वती को वरदान

साबरी मंत्रों की रचना का कार्य पूरा करने के पश्चात् मत्स्येंद्रनाथ तीर्थ-यात्रा के लिए निकल पड़े। विभिन्न स्थानों पर भ्रमण करते हुए वे बंगाल के चंद्रगिरि नामक एक गांव में पहुंचे (कुछ विद्वान 'चंद्रगिरि' गांव के स्थान पर 'जयश्री' नामक नगर बताते हैं)।

उस गांव में सर्वोपदयाल नामक एक विशिष्ट गोत्री गोड़ ब्राह्मण निवास करता था। उसकी पत्नी का नाम 'सरस्वती' था सर्वोपदयाल कर्मकांडी तथा सद्‌गुणी ब्राह्मण था। उसी प्रकार उसकी पत्नी सरस्वती भी रूपवती, बुद्धिमती एवं पतिव्रता थी, परंतु कोई संतान न होने के कारण दोनों पति-पत्नी हर समय चिंतित और दुःखी रहते थे।

चंद्रगिरि गांव में भिक्षा मांगते समय एक बार मत्स्येंद्रनाथ ने सर्वोपदयाल ब्राह्मण के द्वार पर पहुंचकर 'अलख' शब्द का उच्चारण किया। सरस्वती ने अतिथि को दरवाजे पर आया हुआ देखकर अत्यंत सम्मान सहित भिक्षा भेंट की। साधु के तेजस्वी स्वरूप को देखकर सरस्वती अत्यंत प्रभावित हुई थी। अतः भिक्षा देने के बाद उसने मत्स्येंद्रनाथजी से यह प्रार्थना की– "हे प्रभु! आपकी कृपा से मैं हर प्रकार से सुखी हूं, परंतु मेरी कोई संतान नहीं है। अतः आप मुझे ऐसा आशीर्वाद दीजिए, जिससे मेरी गोद भर जाए।"

यह सुनकर मत्स्येंद्रनाथजी को सरस्वती पर बहुत दया आई। 'परोपकाराय इदम् शरीरम्' के सिद्धांत वाले योगी ने परोपकार की इच्छा से सरस्वती का दुःख दूर करने का निश्चय किया।

मत्स्येंद्रनाथ ने अपनी झोली में से एक चुटकी भस्म निकालकर उसे सूर्य-मंत्र से अभिमंत्रित किया। फिर उसे सरस्वती को देते हुए कहा– "हे देवी! तुम इस भस्म को रात्रि में सोते समय खा लेना। इस भस्म के प्रभाव से तुम्हारे गर्भ से साक्षात् हरिनारायण सूर्य बालकरूप में जन्म लेंगे। मैं बारह वर्ष बाद तुम्हारे घर फिर आऊंगा, तब उस बालक को उपदेश करूंगा। इस भस्म के प्रताप से उत्पन्न बालक महायशस्वी होगा। संपूर्ण सिद्धियां उसकी आज्ञा में रहेंगी तथा संसार में वह विपुल कीर्ति अर्जित करेगा।"

इतना कहकर मत्स्येंद्रनाथ वहां से चल दिए।

सरस्वती की श्रद्धा डिगी

मत्स्येंद्रनाथ के चले जाने पर सरस्वती ने उस भस्म को पुड़िया में बांधकर अपनी शय्या के सिरहाने रख दिया। सोचा कि इसे रात को सोते समय खा लूंगी। उसी समय सरस्वती की कुछ पड़ोसन स्त्रियां मिलने के लिए आप पहुंची। वार्तालाप के प्रसंग में सरस्वती ने योगी द्वारा दी गई भस्म के संबंध में उन्हें बताया। उसे सुनकर एक पड़ोसन ने कहा– "सरस्वती! तुम बड़ी भोली हो, जो इस प्रकार के रमते राम जोगियों की बात पर विश्वास कर लेती हो। ऐसी अभिमंत्रित भस्म सेवन करने का न जाने क्या प्रभाव होगा? जोगी लोग तो मोहन, वशीकरण आदि किया करते हैं। यदि कोई ऐसी बात हो गई तो तुम्हारा पतिव्रत धर्म नष्ट हो जाएगा।"

दूसरी पड़ोसन ने कहा– "हे सखी! तू तो अंध श्रद्धालु है। यदि योगियों के पास ऐसी ही चमत्कारपूर्ण शक्ति हो कि वे कुछ भी कर दिखाया करें तो स्वयं भीख मांगते हुए घर-घर क्यों घूमें? ये जोगी लोग बड़े बदमाश होते हैं। किसी-न-किसी बहाने से स्त्रियों को भस्म खिलाकर उन्हें पागल बना देते हैं। फिर उनका धन-माल लेकर चंपत हो जाते हैं।"

तीसरी पड़ोसन बोली– ''आजकल जोगियों के भेष में चोर-उचक्के बदमाश घूमा करते हैं। वे लोग इसी बहाने से गृहस्थों के घर में घुसकर उनका सामान आदि देख जाते हैं। फिर उन्हें भस्म वगैरह खिलाकर बेहोश कर देते हैं और रात के समय घर की चोरी करके सब सामान निकाल ले जाते हैं। मेरी छोटी बहन इसी तरह के एक जोगी के चक्कर में पड़कर बरबाद हो चुकी है। सो मेरी राय में तो ऐसे जोगियों पर भूलकर भी विश्वास नहीं करना चाहिए।''

चौथी पड़ोसन जो सबसे अधिक आयु की थी, सरस्वती से कहने लगी– ''बेटी! तेरी आधी अवस्था बीत चली। अभी तक तेरे गर्भ से किसी संतान ने जन्म नहीं लिया। यदि भगवान को तुझे संतान देनी ही होती तो वे कभी की दे देते। अब तू इस जोगी की दी हुई भस्म को खाकर संतान प्राप्त करने का जो सपना देख रही है, वह तेरी बड़ी भूल है। संतान तो अपने भाग्य से ही मिला करती है। जोगियों की भभूत से नहीं मिलती, इसलिए तू मेरा कहना मानकर भभूत वगैरह के चक्कर में मत पड़। तू तो सच्चे मन से भगवान का भजन किया कर। यदि तेरे भाग्य में लिखा होगा तो भगवान कृपा करके तुझे वैसे ही संतान दे देंगे।''

पड़ोसनों की बातें सुनकर सरस्वती की श्रद्धा डगमगा गई। उसने मत्स्येंद्रनाथ द्वारा दी गई अभिमंत्रित भस्म को चूल्हे में फेंक दिया। फिर वह भस्म समेत चूल्हे की राख को गांव के बाहर एक ऐसे गड्ढे में पटक आई, जिसमें लोग गोबर-कूड़ा डाल दिया करते थे।

पारसमणि के हाथ में आ जाने पर भी यदि कोई व्यक्ति उसे पत्थर समझकर फेंक दे तो इसमें पारसमणि का क्या दोष है?

हनुमान की जन्मकथाएं

हनुमान की माता का नाम अंजनी था। वे 'केसरी' नामक वानर की पत्नी थीं। केसरी और अंजनी ने ऋष्यमूक पर्वत पर जाकर पुत्र-प्राप्ति के लिए शिवजी का तप किया।

जब उन्हें कठोर तपस्या करते हुए सात हजार वर्ष व्यतीत हो गए तो शिवजी ने प्रसन्न होकर उन्हें दर्शन दिए और अंजनी से कहा–

"हे अंजनी! कल प्रातःकाल तुम सूर्यनारायण के सम्मुख अंजुलि बांधकर खड़ी जो जाना, उस समय तुम्हारी अंजुलि में जो कुछ गिरे, उसका सेवन कर लेना। उसके प्रभाव से तुम्हें अत्यंत तेजस्वी तथा अजर-अमर पुत्र की प्राप्ति होगी।"

यह कहकर शिवजी अंतर्धान हो गए। दूसरे दिन प्रातःकाल अंजनी सूर्यनारायण के सम्मुख अंजुलि बांधकर खड़ी हो गई। उसी दिन अयोध्या नगरी में महाराजा दशरथ ने पुत्रेष्टि यज्ञ पूरा किया था। यज्ञ की समाप्ति पर अग्नि देवता हवि लेकर प्रकट हुए और उन्हें उस हवि के तीन भाग करके तीनों रानियों को खिला देने की आज्ञा प्रदान की थी। अग्निदेव के आदेशानुसार महाराजा दशरथ ने हवि के तीन भाग करके एक-एक भाग अपनी तीनों रानियों– (1) कौशल्या, (2) केकैयी और (3) सुमित्रा को दे दिया।

(अंजनी-पुत्र श्रीहनुमानजी)

रानी केकैयी ने जिस समय हवि के भाग को हाथ में लिया, उसी समय वहां एक चील आ पहुंची और वह रानी केकैयी के हाथ में स्थित हवि के भाग का कुछ अंश अपनी चोंच में भरकर झपट्टा मारती हुई उड़ गई।

ऋष्यमूक पर्वत पर, जहां अंजनी अंजुलि बांधे सूर्यनारायण के सम्मुख खड़ी हुई थी, पूर्वोक्त चील अयोध्या से चलकर वहीं आ पहुंची और उसकी चोंच में से हवि का अंश निकलकर अंजनी की अंजुलि में जा गिरा। अंजनी ने उसे सूर्यनारायण का दिया हुआ प्रसाद समझकर ग्रहण कर लिया। उसी के फलस्वरूप अंजनी के गर्भ से रामभक्त हनुमान का जन्म हुआ।

हनुमानजी के जन्म के विषय में दूसरी प्रचलित कथा यह है कि अंजनी गौतम ऋषि की पुत्री थी। वह अत्यंत रूपवती थी। एक बार उसके सौंदर्य पर आसक्त होकर देवराज इंद्र कपटवेष धारण करके उसके समीप जा पहुंचे। गौतम ऋषि उस समय घर में नहीं थे, परंतु इससे पूर्व कि इंद्र अपने मंतव्य में सफल हो, ऋषि आश्रम में आ पहुंचे। इंद्र उन्हें आया हुआ जानकर, भयभीत हो भाग गया।

इंद्र को अपनी पुत्री के घर में से बाहर निकलते हुए देखकर गौतम ऋषि को अंजनी पर अत्यंत क्रोध आया। उन्होंने उसे शाप दिया कि तू जीवनभर कुंवारी (अविवाहिता) बनी रहेगी।

शाप देने के बाद जब ऋषि ने योग-दृष्टि द्वारा संपूर्ण घटना को देखा तो अपनी निरपराध पुत्री को शाप दिए जाने पर उन्हें अत्यंत खेद हुआ। अस्तु, उन्होंने शाप का निवारण करने के उपदेश से कहा– "हे पुत्री! तेरे गर्भ से एक महाप्रतापी पुत्र का जन्म होगा। उसके कारण तेरी कौमार्यावस्था कलकिंत नहीं होगी।"

यह सुनकर अंजनी पिता से आज्ञा लेकर तप करने के लिए वन में चली गई।

एक बार भस्मासुर ने शिवजी की तपस्या करके उनसे यह वर प्राप्त किया था कि वह जिसके सिर पर अपना हाथ रख दे, वही भस्म हो जाए। जब शिवजी उसे वर दे चुके थे, वह पार्वती पर अपना अधिकार करने के लिए शिवजी के मस्तक के ऊपर ही हाथ रखने के लिए चल दिया। यह देखकर शिवजी बहुत घबराए। उस समय भगवान विष्णु ने मोहिनी का रूप धारण कर भस्मासुर की बुद्धि को भ्रमित करके उसका हाथ स्वयं उसी के सिर पर रखवा दिया, जिस कारण भस्मासुर अपने

आप ही जलकर भस्म हो गया और शिवजी सहित अन्य सब लोगों का कष्ट भी दूर हुआ। विष्णु की उस माया को शिवजी नहीं जान सके। विष्णु के मोहिनी स्वरूप को देखकर शिवजी स्वयं कामासक्त होकर उनके पीछे दौड़े। यह देखकर विष्णु मोहिनी रूप छोड़कर अपने यथार्थ रूप में प्रकट हुए, जिसके कारण शिवजी को अपने कृत्य पर बहुत लज्जा आई और उनका वीर्य स्खलित हो गया।

इसी समय नारदजी वहां पहुंच गए। उन्होंने शिवजी के वीर्य को अपने हाथ में उठा लिया और उसे लेकर वहां जा पहुंचे, जहां अंजनी तपस्या कर रही थी।

नारदजी ने अंजनी से कहा– "हे पुत्री! गुरु से उपदेश प्राप्त किए बिना तप की सिद्धि नहीं होती, अत: मैं तुम्हें उपदेश देने के लिए आया हूं।"

अंजनी की सहमति पाकर नारदजी ने उसे ज्ञानोपदेश किया। तदुपरांत नारदजी ने वायु का ध्यान धरकर शिवजी के उस स्खलित वीर्य को अंजनी के पेट में पहुंचा देने के लिए कहा। वायु ने नारदजी की आज्ञा से उस अमोघ वीर्य को कान के मार्ग द्वारा अंजनी के पेट में पहुंचा दिया। उसके फलस्वरूप अंजनी गर्भवती हो गई और उसने यथा समय हनुमान को जन्म दिया। शिव के वीर्य से उत्पन्न होने के कारण ही हनुमान को शिवजी का अवतार माना जाता है और उस वीर्य को वायु ने अंजनी के गर्भ में पहुंचाया था, इसलिए उन्हें वायु-पुत्र अथवा पवन-पुत्र भी कहा जाता है।

बड़े होकर हनुमानजी ने अनेक लीला-चरित्र किए, जिनका वर्णन रामायण तथा अन्य अनेक ग्रंथों में विस्तारपूर्वक किया गया है। यहां पर केवल मत्स्येंद्रनाथ से हनुमानजी की भेंट और उनसे संबंधित चरित्रों का वर्णन किया जाएगा।

मत्स्येंद्र-हनुमान युद्ध

हनुमानजी प्रतिदिन सेतुबंध रामेश्वर स्थान पर समुद्र-स्नान करने के लिए जाया करते थे। एक बार मत्स्येंद्रनाथ भी तीर्थाटन करते हुए सेतुबंध रामेश्वर जा पहुंचे।

उस समय हनुमान समुद्र में स्नान कर रहे थे। जब वे स्नान करके बाहर निकले, उसी समय बड़े जोर की वर्षा होने लगी। वर्षा होती हुई देखकर हनुमान पानी से बचने के उद्देश्य से समुद्रतट की बालू को खोदकर गुफा बनाने लगे।

मत्स्येंद्रनाथ उनसे परिचित नहीं थे। अस्तु, जब उन्हें गुफा बनाते हुए देखा तो हंसकर कहने लगे– "अरे वानर! तू तो आग लगाने के बाद कुआं खोद रहा है! इतनी भयानक वर्षा हो रही है और तू समुद्र की बालू को खोद रहा है। क्या तुझे इतना भी ज्ञान नहीं है कि ऊपर से गिरने वाली तीव्र जलधारा के प्रभाव से यह बालू भीतर को धंस जाएगी और तू गुफा के भीतर दब जाएगा? तेरा शरीर तो हृष्ट-पुष्ट दिखाई देता है। क्या तू इतनी वर्षा को वैसे ही सहन नहीं कर सकता?"

मत्स्येंद्रनाथ की बात सुनकर हनुमान ने क्रुद्ध होते हुए कहा– "तुम स्वयं को बड़ा होशियार समझते हो? तुम कौन हो और तुम्हारा नाम क्या है?"

मत्स्येंद्रनाथ ने उत्तर दिया– "मैं योगी हूं और मेरा नाम मत्स्येंद्रनाथ है।"

हनुमान बोले– "तुम अपने आपको योगी कहते हो। क्या तुम्हें पता है कि योगी किसे कहते हैं?"

मत्स्येंद्रनाथ ने कहा– "मेरे शक्ति-प्रताप को देखकर ही लोग मुझे योगी कहते है।"

हनुमान बोले– "अच्छा, ऐसी बात है? मैंने तो आज तक केवल हनुमान को ही योगी सुना था। उनके अतिरिक्त भी कोई और योगी है, यह बात मुझे आज ही मालूम हुई है। खैर, मैं योगी हनुमान का सेवक हूं और कुछ समय उनके पास भी रहा हूं। मैंने योग-शक्ति का एक बहुत छोटा-सा अंश हनुमानजी से प्राप्त किया है। मैं उसे प्रत्यक्ष करके दिखाता हूं। तुम मेरी उस शक्ति का निवारण करके दिखाओ, अन्यथा स्वयं को योगी कहना छोड़ दो।"

मत्स्येन्द्रनाथ ने उत्तर दिया– "मैं इसके लिए तैयार हूं। तुम अपनी योग-शक्ति का प्रदर्शन करो। मैं गुरु की कृपा से उसका निवारण कर दूंगा।"

यह सुनते ही हनुमान आकाश में उड़ गए और अत्यंत भयानक रूप धारण करके मत्स्येंद्रनाथ के ऊपर भारी-भारी पत्थरों की वर्षा करने लगे। यह देखकर मत्स्येंद्रनाथ ने बिना किसी घबराहट के वातास्त्र मंत्र द्वारा उन बड़े-बड़े पत्थरों को आकाश में ही अधर में रोक दिया। हनुमान ने जब पूरे-के-पूरे पर्वत उखाड़कर फेंकना आरंभ किया तो मत्स्येंद्रनाथ ने उन्हें भी बीच आकाश में स्तंभित कर दिया। इस प्रकार दोनों के बीच बहुत समय तक युद्ध चलता रहा।

फिर मत्स्येंद्रनाथ ने वाताकर्षण मंत्र पढ़कर स्वयं हनुमान को भी बीच आकाश में स्तंभित कर दिया। हनुमानजी अपने मस्तक के ऊपर जो पर्वत उठाए हुए थे, वे उसी के साथ चिपककर अधर में लटके रह गए।

हनुमान की इस दयनीय स्थिति को देखकर उनके पिता वायु देवता को दया आई। उन्होंने उसी स्थान पर प्रकट होकर मत्स्येंद्रनाथ से प्रार्थना की कि वे उनके पुत्र को स्तंभन की स्थिति से मुक्त कर दें। मत्स्येंद्रनाथ ने वायु देवता की इस प्रार्थना को स्वीकार कर लिया। उन्होंने जल को मंत्र से अभिमंत्रित करके आकाश में फेंका। उसके प्रभाव से हनुमान जिस पर्वत से चिपके हुए थे, वह ऊपर आकाश में उठकर हट गया और हनुमान सकुशल पृथ्वी पर उतर आए।

हनुमान का गर्व-खंडन

इस समय तक हनुमान का गर्व पूर्ण रूप से खंडित हो चुका था। वे समझ गए कि यह व्यक्ति कोई साधारण योगी नहीं है, अपितु किसी पूरे गुरु का चेला है। तब उन्होंने मत्स्येंद्रनाथ के समीप पहुंचकर हाथ जोड़ते हुए 'धन्य, धन्य' कहा। फिर बोले- "आप सच्चे योगी हैं, इस बात को मैंने भली-भांति अनुभव कर लिया है।"

उस समय वायु देवता ने हनुमानजी से कहा- "हे पुत्र! ये योगी साक्षात् कविनारायण के अवतार हैं। इन्हें भगवान शंकर तथा दत्तात्रेयजी का आशीर्वाद प्राप्त है। इन्होंने अपने तप और भक्ति के प्रभाव से सभी देवताओं को वश में कर लिया है।"

पारस्परिक परिचय के बाद जब मत्स्येंद्रनाथ को ज्ञात हुआ कि वानर कोई साधारण वानर नहीं है, बल्कि साक्षात् पवन-पुत्र हनुमान हैं तो उन्होंने स्वयं ही आगे बढ़कर वायुदेव एवं हनुमान, दोनों के चरणों का स्पर्श किया तथा आशीर्वाद देने की प्रार्थना की।

पिता-पुत्र मत्स्येंद्रनाथ के इस भक्ति भाव से अत्यंत प्रसन्न हुए। उन्होंने मत्स्येंद्रनाथ को आशीर्वाद देते हुए विश्वास दिलाया कि भविष्य में हम दोनों तुम्हारे सहायक रहेंगे।

मैत्रीपूर्ण वार्ता

हनुमान तथा मत्स्येंद्रनाथ में मित्रता स्थापित कराने के उपरांत वायुदेव अदृश्य हो गए। तब मत्स्येंद्रनाथ ने हनुमानजी से पूछा– "हे प्रभो! आप तो त्रिकालदर्शी हैं, साथ ही नाग अश्वत्थ वृक्ष के नीचे मुझे आप अपना आशीर्वाद भी दे चुके थे। फिर आप यहां मेरे साथ मिथ्या वितंडावाद में सम्मलित हुए?"

यह सुनकर हनुमानजी बोले– "हे मत्स्येंद्रनाथ! मैं तुम्हें भली-भांति जानता हूं। जब तुम यहां आए थे, उस समय मैंने तुम्हें देखते ही पहचान भी लिया था। मैं तुम्हारी योग-शक्ति की परीक्षा लेना चाहता था, इसीलिए मैंने तुम्हारे साथ यह निरर्थक विवाद खड़ा किया। अब मैं तुम्हारी शक्ति और सामर्थ्य की परीक्षा लेकर अत्यंत प्रसन्न हुआ हूं। मुझे विश्वास हो गया है कि भविष्य के जीवन में तुम्हें जिन संघर्षों का सामना करना पड़ेगा, उनमें तुम पूर्ण सफलता प्राप्त करोगे। मैं तुम्हें आशीर्वाद देता हूं कि तुम्हें कभी भी असफलता एवं पराजय का सामना नहीं करना पड़ेगा।"

हनुमानजी का आशीर्वाद पाकर मत्स्येंद्रनाथ अत्यंत प्रसन्न हुए। कुछ देर मौन रहने के उपरांत उन्होंने हनुमानजी से प्रश्न किया– "हे प्रभु! क्या इन दिनों आप यहीं निवास कर रहे हैं?"

हनुमानजी ने उत्तर देते हुए कहा– "हे मत्स्येंद्रनाथ! मैं प्रातःकाल स्नान तथा रामेश्वर का पूजन करने के लिए तो यहां आता हूं, परंतु उसके बाद बहुत-सा समय मुझे स्त्री-राज्य में व्यतीत करना पड़ता है।"

मत्स्येंद्रनाथ ने आश्चर्यचकित होते हुए पूछा– "हे प्रभु! आप तो ऊर्ध्वरेता बालब्रह्मचारी तथा योगी हैं। फिर आपको त्रियाराज्य में जाने की क्या आवश्यकता पड़ गई? आप मुझे इसका संपूर्ण रहस्य समझाने की कृपा करें?"

हनुमान के त्रियाराज्य-गमन का वृत्तांत

हनुमानजी ने कहा– "हे मत्स्येंद्रनाथ! मैं तुम्हें अपने त्रियाराज्य में जाने का कारण समझाता हूं। इस संपूर्ण वृत्तांत को तुम ध्यानपूर्वक सुनो–

त्रेतायुग में रावण का संहार करने के उपरांत भगवान रामचंद्र जब अयोध्या लौटे तो वे मुझे अपना परम भक्त जानकर अपने साथ ले गए थे।

अयोध्या में पहुंचकर राज्याभिषेक के कुछ दिनों बाद माता जानकीजी ने अपने मन में विचार किया कि हमारे सभी भक्त स्त्री-पुत्र, धन-धान्य आदि सुखों का उपभोग कर रहे हैं, अकेला हनुमान ही ब्रह्मचारी होने के कारण विरक्त जीवन व्यतीत कर रहा है। अतः अब इसे भी गृहस्थ बना देना चाहिए।

यह विचारकर एक समय माता जानकीजी ने मुझे अपने पास बुलाकर कहा– 'हनुमान! तुम्हें मेरी एक इच्छा पूरी करनी होगी। यदि तुम उसे पूरा करने का वचन दो तो मैं तुमसे कहूं।'

माताजी के मुख से यह वचन सुनकर पहले तो मैं स्तब्ध रह गया, क्योंकि माता जानकी एवं स्वामी श्री रामचंद्रजी जिस काम को करने की आज्ञा दें, उसे मैं न करूं तो ऐसा कभी संभव ही नहीं था। यह जानते हुए भी माताजी ने मुझे पहले ही वचनबद्ध क्यों करना चाहा– यही मेरे आश्चर्य का कारण था।

मैंने विनीत भाव से निवेदन किया– 'हे माता! आप मुझे जो भी आज्ञा देंगी, उसे मैं स्वीकार करूंगा।'

यह सुनकर माता जानकीजी ने कहा– 'हे हनुमान! मैं यह चाहती हूं कि अब तुम विवाह करके गृहस्थ बन जाओ।'

माता जानकीजी का यह आदेश सुनकर मैं संकट में पड़ गया और सीधे रामचंद्रजी के पास पहुंचकर उनके समीप उदास भाव से गुमसुम बैठ गया। इस स्थिति को देखकर जब रामचंद्रजी ने मेरी चिंता और दुःख का कारण पूछा तो मैंने उन्हें माता जानकीजी के आदेश का संपूर्ण वृत्तांत कह सुनाया।

हे मत्स्येन्द्र! रामचंद्रजी ने धैर्य बंधाते हुए कहा– 'हे हनुमान! तुम्हें चिंतित होने की आवश्यकता नहीं है। त्रियाराज्य में जितनी भी स्त्रियां हैं, वे सब तुम्हारी ही पत्नियां हैं। उनके साथ तुम विवाह किए बिना भी गृहस्थ जीवन का पालन कर सकते हो। अस्तु, तुम त्रियाराज्य में चले जाया करो।'

यह सुनकर मैंने रामचंद्रजी से निवेदन किया– 'हे प्रभु! मैं तो बालब्रह्मचारी हूं। आप मुझे त्रियाराज्यरूपी महान विपत्ति में क्यों भेज रहे हैं?'

तब श्री रामचंद्रजी ने कहा– 'हे हनुमान! प्रत्येक चतुर्युग में मुझे रामावतार ग्रहण करना पड़ता है और उस समय रावण, जानकी, लक्ष्मण तथा हनुमान आदि को भी जन्म लेना पड़ता है। इस प्रमाण से मैं निन्यानवां रामचंद्र हूं और इस युग के रावण, सीता आदि भी निन्यानवें हैं। तुम्हारा जन्म भी निन्यानवीं बार हुआ है। हे पवन-पुत्र! भूतकाल में भी प्रत्येक जन्म में सीता ने यही इच्छा प्रकट की है और तुमने प्रत्येक बार मुझसे इसी प्रकार का प्रश्न किया है, तदुपरांत तुम्हें हर बार त्रियाराज्य में जाना भी पड़ा है। अस्तु, इस बार भी जो काम तुम्हें अवश्य करना है, उसके लिए मन को छोटा मत करो और त्रियाराज्य में जाकर अपने अवतार-कार्य को पूरा करो।'

मैंने भगवानजी से कहा– 'हे प्रभु! मैं तो बालब्रह्मचारी हूं। मेरे शरीर में काम जाग्रत नहीं हो सकता। तब मेरे त्रियाराज्य में जाने का लाभ ही क्या है?'

इसके उत्तर में श्री रामचंद्रजी बोले– 'तुम ऊर्ध्वरेता हो, यह बात सत्य है, परंतु त्रियाराज्य में जाकर तुम्हें वहां की स्त्रियों के साथ सहवास करने की आवश्यकता ही नहीं पड़ेगी। तुम्हारी महान गर्जना को सुनकर ही वहां की स्त्रियां गर्भवती हो जाया करेंगी। इस प्रकार तुम्हारा ब्रह्मचर्य खंडित नहीं होगा और जानकीजी की आज्ञा का पालन भी हो जाएगा।'

हे मत्स्येंद्रनाथ! महाराज रामचंद्रजी के मुख से इस वृत्तांत को सुनकर तथा माता जानकीजी की आज्ञा को शिरोधार्य करके मैं कामरूप देश के स्त्री-राज्य में गया। उस स्त्री-राज्य में पुरुषों का कहीं नामोनिशान तक नहीं है। मनुष्यों में ही क्यों, पशु-पक्षियों में भी वहां कोई नर नहीं है। वहां की रानी का नाम मैनाकिनी है। मैंने वहां जाकर जैसे ही गर्जना की, वैसे ही वहां की स्त्रियां गर्भवती हो गईं। फलतः वहां की सभी स्त्रियां पतिरूप में मेरा स्मरण करने लगीं।

हे मत्स्येन्द्र! एक समय स्त्री-राज्य की स्वामिनी मैनाकिनी ने मेरी प्राप्ति के लिए एक वृहद् अनुष्ठान करके मुझे प्रसन्न कर लिया। जब मैंने उससे वर मांगने के लिए कहा तो उसने प्रार्थना की– 'हे हनुमानजी! आपकी गर्जना एवं श्वास वायु के संयोग से स्त्री-राज्य की स्त्रियां गर्भवती हो जाया करती हैं, इस कारण आप यहां की सभी स्त्रियों के पति हैं, परंतु हे अंजनी-पुत्र! संपूर्ण संसार के स्त्री-पुरुष परस्पर रति-विलास करते हुए अलौकिक आनंद का उपभोग करते हैं। मेरा क्या अपराध है, जो आप मुझे उस परम सुख से वंचित रखे हुए हैं? मेरे मन में पुरुष के साथ प्रत्यक्ष सहवास करने की इच्छा है। अब आप कृपा करके मेरे साथ प्रत्यक्ष सहवास कीजिए तथा काम की प्रबल ज्वाला से दग्ध होने वाले मेरे शरीर को शांति प्रदान कीजिए।'

हे मत्स्येन्द्र! मैनाकिनी की इस प्रार्थना को सुनकर मैं धर्मसंकट में पड़ गया। तब मैंने उससे कहा– 'हे मैनाकिनी! मैंने माता के गर्भ से ही स्वर्ण-कौपीन के साथ जन्म लिया। अतः मुझमें काम-वासना का उदय नहीं होता। मैं ऊर्ध्वरेता ब्रह्मचारी हूं, इसलिए मेरी गर्जना तथा श्वास ही से तुम लोगों की काम-वासना शांत हो जाती है और यही पर्याप्त है। किसी स्त्री के साथ समागम कर पाना मेरे लिए शक्य ही नहीं है, परंतु तुमने अनुष्ठान करके मुझे प्रसन्न किया है, इसलिए मैं तुम्हारी अभिलाषा पूर्ण करने हेतु यह करूंगा कि पृथ्वी पर कविनारायण के अवतार मत्स्येंद्रनाथ ने जन्म लिया है। मैं उन्हें तुम्हारे पास भेज दूंगा, वे तुम्हारी इच्छा पूर्ण कर देंगे।'

हे मत्स्येंद्रनाथ! इस प्रकार मैंने त्रियाराज्य की रानी मैनाकिनी को जो वचन दे रखा है, अब तुम्हें उसे पूरा करना है। मैं यहां पर तुम्हारे आने

की ही प्रतीक्षा कर रहा था। मुझे भूत, भविष्य तथा वर्तमान, तीनों कालों का ज्ञान रहता है। मैं जानता था कि तुम यहां जरूर आओगे। सो, अब तुम मेरी आज्ञा मानकर त्रियाराज्य के लिए प्रस्थान करो।''

हनुमानजी का यह आदेश सुनकर मत्स्येंद्रनाथ ने कहा– ''हे पवन-पुत्र! आप मुझे यह कैसी आज्ञा दे रहे हैं? मैं ऊर्ध्वरेता ब्रह्मचारी हूं। यदि मैं ब्रह्मचर्य से भ्रष्ट होकर स्त्री-संसर्ग करूंगा तो संसार में मेरी अत्यंत हंसी होगी। अतः आप अपने आदेश पर एक बार पुनर्विचार करने की कृपा कीजिए।''

हनुमानजी बोले– ''हे मत्स्येंद्र! जिस प्रकार भगवान रामचंद्रजी ने मुझे बताया था कि मैं निन्यानवां हनुमान हूं, उसी प्रकार मैं भी तुम्हें यह बताता हूं कि तुम निन्यानवें मत्स्येंद्रनाथ हो। प्रत्येक कल्प में यह घटना इसी प्रकार घटती आई है। अपने पिछले जन्मों में भी तुम त्रियाराज्य में गए थे। अतः अब इस जन्म में भी तुम वहां जाकर अपना कर्तव्य पूरा करो। जिस प्रकार कमलपत्र जल में रहते हुए भी उससे असंपृक्त बना रहता है, उसी प्रकार तुम विषय-भोगों का उपभोग करते हुए भी उनसे निर्लेप बने रहोगे। तुम्हारे अंश से मीननाथ नामक एक महान तत्वज्ञानी पुत्र का जन्म होगा। ज्ञानी पुरुष कर्म के बंधनों से मुक्त बने रहते हैं। अतः तुम किसी प्रकार का संदेह किए बिना मेरे आदेश को स्वीकार करो।''

यह सुनकर मत्स्येंद्रनाथ ने सोचा– 'पवन-पुत्र हनुमान झूठ नहीं बोल सकते। अनेक कल्पों से जो होता चला आ रहा है, उसकी पुनरावृत्ति इस जन्म में भी अवश्य होगी ही, तब मुझे हर प्रकार का संदेह त्यागकर हनुमानजी की आज्ञा का पालन करना चाहिए। विधाता ने भाग्य में जो कुछ लिख दिया है, उसे तो किसी प्रकार मिटाया ही नहीं जा सकता।'

यह विचार कर मत्स्येंद्रनाथ ने हनुमानजी से कहा– ''हे प्रभु! मुझे आपकी आज्ञा स्वीकार है। मैं कुछ समय बाद त्रियाराज्य में पहुंच जाऊंगा।''

हनुमान यह सुनकर प्रसन्नतापूर्वक वहां से चले गए।

अष्ट भैरवों के साथ युद्ध

इस प्रकार हनुमानजी के साथ स्नेह संबंध स्थापित करके मत्स्येंद्रनाथ हिंगलाज देवी का दर्शन करने के लिए चल दिए। मंदिर के द्वार पर अष्ट भैरव खड़े हुए पहरा दे रहे थे। उन्होंने मत्स्येंद्रनाथ की विद्या की परीक्षा लेने के उद्देश्य से संन्यासी रूप धारण करके मत्स्येंद्रनाथ को मंदिर में प्रवेश करने से रोकते हुए कहा– "तुम कौन हो और कहां जा रहे हो?"

मत्स्येंद्रनाथ ने उत्तर दिया– "मैं मत्स्येंद्रनाथ नामक योगी हूं। हिंगलाज देवी का दर्शन करने के लिए जा रहा हूं। तुम मुझे रोकने वाले कौन हो?"

संन्यासी वेषधारी अष्ट भैरवों ने कहा– "हम इस स्थान के द्वारपाल हैं। जो व्यक्ति यहां दर्शन के लिए आता है, उसे पहले अपने पाप-पुण्य का हिसाब देना पड़ता है। अतः तुम हमें अपने पाप-पुण्य का विवरण दो। जो व्यक्ति हमें सच्ची बात नहीं बताता, उसे हम लोग मार-मारकर यहां से बाहर निकाल देते हैं।"

मत्स्येंद्रनाथ ने उत्तर दिया– "मैं पाप-पुण्य के विषय में कुछ नहीं जानता, क्योंकि मेरे सभी कर्म ईश्वर को समर्पित होते हैं।"

संन्यासीरूपी भैरवों ने कहा– "यदि झूठ बोलोगे तो मैं तुम्हें शिक्षा (दंड) दूंगा। इसलिए जो भी सत्य हो, उसे कह डालो।"

यह सुनकर मत्स्येंद्रनाथ बोले– "सबको शिक्षा देने के लिए तो मेरा अवतार हुआ है। मुझे शिक्षा देने की शक्ति अन्य किसी में नहीं है। मेरे आगे तुम्हारी एक नहीं चल सकती, इसलिए तुम मुझे मंदिर के भीतर चुपचाप जाने दो।"

यह सुनते ही भैरवों ने क्रुद्ध होकर हथियार उठा लिये और कहा– "तुम्हें इतना घमंड है तो अपना प्रताप प्रदर्शित करो।"

तब मत्स्येंद्रनाथ ने मंत्र पढ़कर दसों दिशाओं में विभूति फेंकी तथा वज्रमंत्र से अभिमंत्रित भस्म को अपने शरीर पर लगा दिया, जिस कारण उनकी संपूर्ण देह वज्र जैसी हो गई। फिर उन्होंने भैरवों को ललकारते हुए कहा– "अब तुम अपने सब अस्त्र-शस्त्रों का प्रयोग मेरे ऊपर कर देखो।"

यह सुनते ही अष्ट भैरवों ने अपने संपूर्ण अस्त्र-शस्त्रों का प्रयोग मत्स्येंद्रनाथ के शरीर पर किया, परंतु वे उन्हें पुष्प-वृष्टि जैसे प्रतीत हुए। फिर मत्स्येंद्रनाथ ने अपनी मंत्र-क्रिया द्वारा समस्त भैरवों को निश्चेष्ट बना दिया। यह बात जब अंबिका देवी के कानों में पहुंची तो उन्होंने चामुंडा, शंखिनी, योगिनी आदि को मत्स्येंद्रनाथ के पास भेजा। उन्होंने जाते ही मत्स्येंद्रनाथ के ऊपर शस्त्र बरसाना आरंभ कर दिया। तब मत्स्येंद्रनाथ ने मोहिनी अस्त्र छोड़कर उन सभी को मोहित कर लिया, जिसके फलस्वरूप वे लड़ना छोड़कर हंसने और नाचने-गाने लगीं। फिर मत्स्येंद्रनाथ ने अपनी विद्या के प्रभाव से उनके शरीर के वस्त्रों को उड़ा दिया और अनेक मायावी पुरुष उनके सामने खड़े कर दिए। उन्हें देखकर चामुंडा, योगिनी, शंखिनी आदि लज्जित होकर भागती हुई अंबिका देवी के पास जा पहुंची और उनसे इस प्रकार फरियाद करने लगीं– "हे माता! बाहर कोई योगी खड़ा है। उसने आठों भैरवों को बंधन में डालकर हम लोगों की यह दुर्दशा की है। वह योगी अब यहीं आने वाला है, अतः आप हम लोगों को किसी अन्य स्थान पर ले चलें, अन्यथा वह सबकी दुर्दशा कर डालेगा।"

देवी द्वारा मत्स्येंद्रनाथ को वरदान

यह सुनकर अंबिकाजी ने ध्यान-दृष्टि से विचार किया तो उन्हें पता चला कि योगी के रूप में आने वाला सिद्ध पुरुष कविनारायण का अवतार मत्स्येंद्रनाथ है। तब उन्होंने अपनी सखियों को निर्भय रहने का आश्वासन देकर उन्हें वस्त्र आदि पहनाए और उन्हें अपने साथ लेकर स्वयं ही मत्स्येंद्रनाथ के समीप मंदिर के द्वार पर जा पहुंची।

देवी को अपने सामने उपस्थित देखकर मत्स्येंद्रनाथ ने साष्टांग दंडवत् करके प्रार्थना की। उस समय देवी ने प्रसन्न होकर उनके मस्तक पर अपना हाथ रखा तथा आशीर्वाद दिया कि तुम्हारे प्रताप, शक्ति, तप और योग सदैव अपराजित बने रहेंगे।

(शक्ति अंबा भवानी)

देवी से यह आशीर्वाद पाकर मत्स्येंद्रनाथ ने अष्ट भैरवों को जाग्रत कर दिया। फिर मत्स्येंद्रनाथ तीन दिन उसी स्थान पर रहे। देवी ने उन्हें अनेक चमत्कारपूर्ण विद्याएं सिखाईं तथा आशीर्वाद स्वरूप स्पर्शास्त्र तथा भिन्नास्त्र नामक दो अस्त्र प्रदान किए। चौथे दिन देवी को प्रणाम करके मत्स्येंद्रनाथ वहां से विदा हुए।

वेतालादि की पराजय

अनेक स्थानों का भ्रमण करते हुए मत्स्येंद्रनाथ ने एक रात को 'द्वादशमल्हार' नामक वन में स्थित एक मंदिर में विश्राम किया।

अर्द्धरात्रि के समय वहां पर अनेक भूत-प्रेत अपने हाथों में मशाल लिये हुए वेताल का दर्शन करने के लिए आ रहे थे। मत्स्येंद्रनाथ को तब तक नींद नहीं आई थी। उन्होंने भूत-प्रतों को मंदिर के बाहर ही स्पर्शास्त्र मंत्र द्वारा जहां-का-तहां पृथ्वी से चिपका दिया।

जब प्रतिदिन के नियमानुसार भूत-प्रेत मंदिर में नहीं पहुंचे तो उस मंदिर में स्थित वेताल ने अपने गणों को उन्हें देखने के लिए भेजा। वेताल

के गणों ने मंदिर के बाहर जाकर भूत-प्रेतों को पृथ्वी से चिपके हुए देखा तो प्रश्न किया- "तुम्हारी यह दशा किसने की है?"

भूत-प्रेतों ने कहा- "मंदिर के भीतर कोई योगी है, उसी ने हमें इस प्रकार पृथ्वी से चिपका दिया है।"

यह सुनकर वेताल के गणों ने मंदिर के भीतर जाकर तलाश की तो एक स्थान पर मत्स्येंद्रनाथ को लेटे हुए देखा। उन्होंने मत्स्येंद्रनाथ से कहा- "तुमने हमारे स्वामी वेताल के दर्शनार्थ आने वाले भूत-प्रेतों को बांध दिया है, यह अच्छी बात नहीं है। तुम उन्हें तुरंत मुक्त कर दो, अन्यथा हमारे स्वामी वेताल तुम्हारी दुर्दशा कर डालेंगे।"

यह सुनकर मत्स्येंद्रनाथ ने उत्तर दिया- "तुम्हारा स्वामी वेताल यदि पराक्रमी है, वह स्वयं आकर इन भूत-प्रेतों को मुक्त करा ले जाए।"

यह बात वेताल के गणों ने वेताल से जाकर कही। वह क्रोध में आकर अनेक गणों को साथ लेकर मत्स्येंद्रनाथ के समीप जा पहुंचा। मत्स्येंद्रनाथ ने अपने चारों ओर वज्रशक्ति का घेरा बनाकर रखा था, जिस कारण कोई उनके एकदम निकट नहीं पहुंच सकता था। वेताल ने उस घेरे के बाहर रहकर ही मत्स्येंद्रनाथ के ऊपर अस्त्र-शस्त्रों की वर्षा करना आरंभ की तो वे सब-के-सब निष्फल सिद्ध होने लगे।

तभी मत्स्येंद्रनाथ ने स्पर्शास्त्र का प्रयोग करके वेताल सहित उसके सब गणों को पृथ्वी से चिपका दिया। यह देखकर वेताल ने मत्स्येंद्रनाथ की अधीनता स्वीकार की और कहा- "हे सिद्ध पुरुष! अब आप हम लोगों को प्राणदान दीजिए। हम सब आपकी सेवा में बने रहेंगे और जिस समय भी जहां कहीं आप स्मरण करेंगे, वहीं उपस्थित हो जाएंगे।"

यह सुनकर मत्स्येंद्रनाथ बोले- "मैंने साबरी मंत्रों का सृजन किया है। उनकी सिद्धि के लिए तुम लोग मुझे यह आश्वासन दो कि जो भी व्यक्ति उन मंत्रों का विधिवत् जाप करे, उसकी तुम लोग सहायता किया करोगे। यदि तुम यह वचन देने के लिए तैयार हों तो मैं तुम लोगों को मुक्त कर सकता हूं।"

वेताल, गण तथा भूत-प्रेतों ने मत्स्येंद्रनाथ की इस बात को स्वीकार कर लिया। तब मत्स्येंद्रनाथ ने विभक्तास्त्र का प्रयोग करके उन सबको मुक्त कर दिया और वेताल से मित्रता स्थापित कर ली।

वहां से मत्स्येंद्रनाथ कोंकण प्रदेश के कुडाल नामक गांव में पहुंचे। वहां उन्होंने कालिका देवी के समक्ष वाताकर्षक प्रयोग का चमत्कार प्रदर्शित किया। कालिकाजी ने उन्हें अपना आशीर्वाद प्रदान किया और वहीं पर भगवान शंकर ने भी प्रकट होकर मत्स्येंद्रनाथ की सहायता करने का वचन दिया।

वीरभद्र के साथ युद्ध

गदा तीर्थ में पहुंचने पर मत्स्येंद्रनाथ की भेंट वीरभद्र के साथ हुई। वहां उन दोनों में किसी बात पर विवाद छिड़ गया, जिसके फलस्वरूप दोनों युद्ध करने पर उतर आए। वह युद्ध इतना भयंकर था कि तीनों लोकों में हाहाकार मच गया। उस समय ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव– इन तीनों देवताओं ने प्रकट होकर दोनों में समझौता करा दिया और उन्हें परस्पर मित्र बना दिया। मैत्री हो जाने पर वीरभद्र ने भी मत्स्येंद्रनाथ को यह आश्वासन दिया कि वे उनके द्वारा रचित साबरी मंत्रों को सफल बनाएंगे। उसी जगह अन्य देवताओं ने भी मत्स्येंद्रनाथ को अपने-अपने अस्त्र प्रदान किए। विष्णु ने चक्र, शंकर ने त्रिशूल और ब्रह्मा ने शापादवी अस्त्र (वाणी सिद्ध होने का वरदान) दिया। इसके अतिरिक्त इंद्र ने वज्रास्त्र, कुबेर ने सिद्धि मंत्र, वरुण ने पाश तथा जल का मंत्र एवं अग्नि ने अग्नि मंत्र प्रदान किया। इन सभी अस्त्र तथा मंत्रों को पाकर मत्स्येंद्रनाथ अत्यंत शक्तिशाली बन गए। फिर वे देवगंगा में स्नान करने की इच्छा से विष्णु भगवान के यान में बैठकर वैकुंठलोक में पहुंचे। वहां से कैलास, स्वर्ग, अमरावती एवं ब्रह्मलोक में भ्रमण करते हुए कुछ समय पश्चात् पुनः भूमंडल पर आ गए।

अयोध्या के राजा को चमत्कार दिखाना

विभिन्न तीर्थस्थानों का भ्रमण करते हुए मत्स्येंद्रनाथ अयोध्या में पहुंचे। वहां उन्होंने मंदिर में जाकर भगवान रामचंद्र के दर्शन करने चाहे, उस समय अयोध्या का पाशुपत नामक राजा अपने परिवार सहित मंदिर के भीतर बैठा हुआ रामचंद्रजी का पूजन कर रहा था।

मत्स्येंद्रनाथ ने जब मंदिर के भीतर प्रवेश करना चाहा तो द्वारपाल ने उन्हें रोकते हुए कहा– ''महाराजा पूजन करके जब बाहर आ जाएं, तभी तुम मंदिर के भीतर जा सकोगे।''

यह सुनकर मत्स्येंद्रनाथ ने कहा– ''भगवान के मंदिर में किसी भी समय किसी के प्रवेश को नहीं रोका जा सकता। मैं तो इसी समय मंदिर के भीतर जाकर दर्शन करूंगा।''

द्वारपाल जब फिर भी नहीं माने तो मत्स्येंद्रनाथ ने इसके लिए राजा को ही दंड देने का विचार करके स्पर्शास्त्र द्वारा राजा को जहां-का-तहां स्तंभित कर दिया। पूजन के समय जब राजा ने दंडवत् करने के लिए उठना चाहा तो वह पृथ्वी से इस तरह चिपका हुआ था कि लाख प्रयत्न करने पर भी अपने शरीर को टस-से-मस नहीं कर सका। राजा को उठाने वाले सेवक भी स्तंभित रह गए।

राजा की इस स्थिति को देखकर सर्वत्र हलचल मच गई। तब राजा ने अपने मन में कुछ विचार करके मंत्रियों से कहा– ''ऐसा प्रतीत होता है कि कोई सिद्ध पुरुष इस स्थान पर आया है। उसी ने हम लोगों की यह दशा की है। आप लोग उसे तलाश करके यहां ले आओ।''

यह सुनकर मंत्रीगण मंदिर के बाहर आए। वहां उन्होंने भीड़ के बीच खड़े हुए मत्स्येंद्रनाथ के तेजस्वी मुख को देखकर अनुमान लगाया कि हो न हो, यह सब करामात इसी महात्मा की है। अस्तु, वे अत्यंत विनम्रभाव से मत्स्येंद्रनाथजी के पास गए और दंडवत् करने के उपरांत उनसे प्रार्थना की कि आपको राजा मंदिर के भीतर बुला रहे हैं। कृपा कर आप वहां शीघ्र चलिए।

मंत्रियों के विनीत वचन सुनकर मत्स्येंद्रनाथ को दया आ गई। वे उनके साथ मंदिर के भीतर जा पहुंचे। मत्स्येंद्रनाथ ने वहां जाकर राजा तथा उसके सेवकों को विभक्तास्त्र का प्रयोग करके भूमिस्पर्श से मुक्त कर दिया। इस चमत्कार को देखकर राजा सहित राजकुल के सभी लोगों ने मत्स्येंद्रनाथ की जय-जयकार करते हुए उन्हें दंडवत् प्रणाम किया तथा अपने द्वारपालों द्वारा किए गए अपराध की क्षमा मांगी।

दयालु मत्स्येंद्रनाथ ने सबको आशीर्वाद देकर राजा से कहा– ''तुम्हारी जो भी कामना हो, वह मुझसे कहो। मैं उसे पूरा करूंगा।''

यह सुनकर राजा हाथ जोड़कर बोला– ''हे महात्मन! मैं अपने पूर्वपुरुष भगवान रामचंद्रजी के प्रत्यक्ष दर्शन करना चाहता हूं, यदि आप ऐसा करा सकें तो मैं अत्यंत अनुग्रहीत होऊंगा।''

तब मत्स्येंद्रनाथजी ने हनुमानजी का स्मरण किया और उनसे रामचंद्रजी का दर्शन करा देने की प्रार्थना की। हनुमानजी की कृपा से वहां सब लोगों को रामचंद्रजी के प्रत्यक्ष दर्शन प्राप्त हुए। राजा सहित सभी लोग उसी समय मत्स्येंद्रनाथजी के शिष्य बन गए।

गोरखनाथ का प्राकट्य

तीर्थयात्रा करते हुए जब बारह वर्ष का समय व्यतीत हो गया, तब एक दिन मत्स्येंद्रनाथ को ध्यान आया कि उन्होंने चंद्रगिरि गांव की सरस्वती नामक स्त्री को पुत्र होने का वरदान दिया था और यह भी कहा था कि मैं बारह वर्ष बाद स्वयं आकर उस बालक को उपदेश दूंगा। अस्तु, इस बात का स्मरण आते ही मत्स्येंद्रनाथ चंद्रगिरि गांव को चल दिए।

गांव में पहुंचकर मत्स्येंद्रनाथ सरस्वती के घर के दरवाजे पर जा पहुंचे और वहां 'अलख' शब्द का उच्चारण किया।

सरस्वती 'अलख' शब्द को सुनते ही पहचान गई कि जो योगी आज से बारह वर्ष पूर्व उसे पुत्र-प्राप्ति के उद्देश्य से भस्म दे गया था और जिसे उसने चूल्हे में फेंक दिया था, वही अपने वादे के अनुसार दोबारा आ पहुंचा है। योगी क्रुद्ध होकर शाप आदि न दे बैठे, इस भय से सरस्वती घर से बाहर निकलकर नहीं आई।

सरस्वती को आने में जब देर हुई तो मत्स्येंद्रनाथ ने उच्च स्वर में कहा– ''सरस्वती मैया! बाहर क्यों नहीं आ रही हो?''

सरस्वती इस भय से कि कहीं इस बार भी बाहर न जाने पर योगी शाप ही न दे दे, भिक्षा लेकर दरवाजे पर आ पहुंची। उसे देखते ही मत्स्येंद्रनाथ ने पूछा– ''मैया मेरा बालक कहां है?''

सरस्वती ने इस बार कुछ छिपाना उचित नहीं समझा। उसने सब सच्ची घटना मत्स्येंद्रनाथ को बता दी और पड़ोसनों की सलाह के कारण उसकी जो श्रद्धा डिग गई थी, उस अपराध के लिए क्षमायाचना भी की।

मत्स्येंद्रनाथ अब तक स्त्री-जाति की स्वाभाविक अज्ञानता से सुपरिचित हो चुके थे। अतः उन्होंने क्रोध प्रकट न करके सरस्वती से कहा– "मेरी भस्म का प्रभाव नष्ट नहीं हो सकता। तुमने उस भस्म को किस जगह फेंका था, वह स्थान मुझे दिखा दो।"

सरस्वती मत्स्येंद्रनाथ को साथ लेकर गांव के बाहर उस गड्ढे के समीप जा पहुंची, जिसमें बारह वर्ष पूर्व उसने अभिमंत्रित भस्म को डाल दिया था।

मत्स्येंद्रनाथ ने उस गड्ढे के भीतर दृष्टि डालते हुए कहा– "हे सूर्य पुत्र हरिनारायण! तुमने यदि जन्म ले लिया हो तो गड्ढे से बाहर निकल आओ।"

उसी समय गड्ढे के भीतर से उत्तर आया– "हे गुरुजी! मैं यहां गड्ढे के भीतर उपस्थित हूं, मेरे ऊपर गोबर-कूड़े का ढेर लगा हुआ है। सो, आप उसे हटाकर मुझे बाहर निकाल दीजिए।"

यह सुनकर मत्स्येंद्रनाथ बोले– "हे पुत्र! तुम्हारा जन्म गायों के गोबर वाले गड्ढे में हुआ है। इसलिए मैं तुम्हारा नाम गोरखनाथ रखता हूं। अब मैं तुम्हारे ऊपर से गोबर-कूड़ा हटा देता हूं, तुम बाहर आकर मुझसे भेंट करो। मेरा नाम मत्स्येंद्रनाथ है और मेरे द्वारा दी गई भस्म के प्रभाव से ही तुम्हारा जन्म हुआ है।"

यह सुनकर मत्स्येंद्रनाथ ने उस गड्ढे का गोबर-कूड़ा निकालकर बाहर कर दिया। तभी उसके भीतर से बारह वर्षीय एक परम तेजस्वी बालक निकलकर बाहर आ गया। बालक ने बाहर आते ही मत्स्येंद्रनाथजी को दंडवत् प्रणाम किया। मत्स्येंद्रनाथ ने उसे अपने हृदय से लगाकर आशीर्वाद प्रदान किया।

सरस्वती इस दृश्य को देखकर स्तंभित रह गई। उसका अभी तक कोई पुत्र नहीं हुआ था। वह यह सोचकर रोने लगी कि यदि मैंने योगी

की दी हुई भस्म को पड़ोसनों की बातों में आकर फेंका न होता तो आज मैं इस बालक की माता होती।

मत्स्येंद्रनाथ ने सरस्वती को रोते हुए देखकर कहा– "मैया! अब तुम्हारा रोना-धोना व्यर्थ है। तुम्हारे भाग्य में पुत्र-सुख लिखा ही नहीं था, इसीलिए तुमने मेरे द्वारा दी गई भस्म को इस गड्ढे में पटक दिया था। अब तुम अपने घर जाओ और भगवद् भजन करते हुए समय व्यतीत करो।"

इतना कहकर मत्स्येंद्रनाथजी ने गोरखनाथ को नाथ-दीक्षा दी और उन्हें अपने साथ लेकर तीर्थयात्रा को निकल पड़े। गोरखनाथ के चरित्र का विशेष वर्णन अगले अध्याय किया जाएगा।

त्रियाराज्य में गमन

मत्स्येंद्रनाथ तीर्थाटन करते हुए पुनः सेतुबंध रामेश्वरम गए तो वहां पर उनकी हनुमानजी से फिर भेंट हुई। हनुमानजी ने उनसे कहा– "हे मत्स्येंद्रनाथ! आज अनेक वर्षों बाद तुमसे भेंट हुई है, परंतु तुम अभी तक त्रियाराज्य में नहीं गए हो। मैं चाहता हूं कि अब तुम और अधिक विलंब किए बिना त्रियाराज्य में जाओ और मैंने रानी मैनाकिनी को भी वचन दिया है, उसे पूरा करो।"

यह सुनकर मत्स्येंद्रनाथ ने इस बार त्रियाराज्य में आने का दृढ़ निश्चय किया। वे हनुमान के साथ त्रियाराज्य की राजधानी श्रृंगमूरत नगर में जा पहुंचे।

मत्स्येंद्रनाथ ने वहां जाकर देखा कि उस स्थान में केवल स्त्रियां-ही-स्त्रियां हैं। वे एक-से-एक सुंदर, यौवनमती, बुद्धिमती, गुणवती एवं सब प्रकार के श्रृंगारों से परिपूर्ण हैं। वहां के प्रत्येक कार्य का संचालन वे स्वयं ही कर रही हैं।

मत्स्येंद्रनाथ के नगर में प्रवेश करते ही कुछ सेविकाओं ने रानी के पास पहुंचकर एक तेजस्वी योगी को साथ लेकर हनुमानजी के आने की सूचना दी। मैनाकिनी तो जैसे उनके आगमन की प्रतीक्षा कर रही थी। अतः वह दिव्य-वस्त्र भूषण धारण कर सब प्रकार के श्रृंगारों से सुसज्जित हो, षोडश वर्षीया नवयौवना का रूप बनाए हुए हनुमानजी तथा

मत्स्येंद्रनाथ का स्वागत करने हेतु अपनी सहेलियों तथा परिचारिकाओं के साथ राजमहल के द्वार पर उपस्थित हुई।

हनुमानजी तथा मत्स्येंद्रनाथ को देखकर मैनाकिनी ने उनका यथोचित स्वागत-सम्मान किया, फिर उन्हें अपने साथ ले जाकर स्वर्ण सिंहासन पर बैठाया। उस समय अनेकानेक सुंदर स्त्रियां नृत्य-गायन, वादन आदि का कार्यक्रम प्रस्तुत करने लगीं। कोई चंवर डुला रही थी तो कोई तांबूल समर्पित कर रही थी। सब ओर हर्ष, आनंद एवं प्रसन्नता का समुद्र-सा उमड़ रहा था।

कुछ समय बाद मैनाकिनी ने हनुमानजी से पूछा– ''आपके साथ पधारने वाले ये नवीन अतिथि कौन हैं?''

हनुमानजी ने उत्तर दिया– ''हे मैनाकिनी! अनेक वर्षों पूर्व मैंने तुम्हें वचन दिया था कि मत्स्येंद्रनाथ आकर तुम्हारे विषय-विलास की कामना पूरी करेंगे, सो वे यही योगी मत्स्येंद्रनाथ हैं। अब तुम इनकी सेवा करो और इनके साथ रहकर इच्छित सुख का उपभोग करो। मैं इन्हें तुम्हारे पास अपने वचन को पूरा करने के लिए ही लाया हूं।''

हनुमानजी के मुख से इन शब्दों को सुनकर मैनाकिनी की प्रसन्नता की सीमा न रही और उसने मत्स्येंद्रनाथ के चरणों का स्पर्श किया।

तीन दिन त्रियाराज्य में रहने के बाद हनुमानजी मत्स्येंद्रनाथ को मैनाकिनी के पास छोड़कर सेतुबंध रामेश्वर को चले गए और वहीं रहने लगे। तब से उन्होंने त्रियाराज्य में जाना बंद कर दिया।

मैनाकिनी का वृत्तांत

मैनाकिनी का जन्म सिंहलद्वीप में हुआ था। उसका दूसरा नाम तिलोत्तमा था। वह अत्यंत रूपवती एवं स्वर्ग की अप्सराओं के समान आकर्षक थी।

एक बार सिंहलद्वीप के ऊपर होकर किसी देवता का विमान जा रहा था। विमान में बैठे हुए देवता का लिंग वस्त्र हट जाने के कारण विमान के नीचे निकला हुआ दिखाई दे रहा था।

मैनाकिनी की दृष्टि विमान पर पड़ी। उसके साथ ही देवता के नग्न लिंग को भी उसने देखा। उसे देखकर मैनाकिनी को हंसी आ गई। विमान में बैठे हुए देवता की दृष्टि नीचे की ओर थी। उसने जब मैनाकिनी को हंसते हुए देखा तो उसका कारण भी तुरंत समझ में आ गया। उस समय देवता ने क्रुद्ध होकर मैनाकिनी को शाप देते हुए कहा– "हे निर्लज्जे! तू त्रियाराज्य में जा पड़। वहां पर तुझे न तो पुरुष का शिश्न देखने को मिलेगा और न किसी पुरुष के साथ तेरा समागम ही होगा।"

देवता द्वारा दिए गए इस शाप का निवारण करने हेतु मैनाकिनी ने त्रियाराज्य में जाकर उग्र तपस्या द्वारा हनुमानजी को प्रसन्न किया। जब हनुमानजी प्रकट हुए तो उसने उनके साथ सहवास करने की इच्छा प्रदर्शित की। उस समय हनुमानजी ने मैनाकिनी को यह आश्वासन दिया कि मेरे कहने पर मत्स्येंद्रनाथ नामक एक योगी यहां आकर तुझे सहवास-सुख प्रदान करेगा। इस संबंध में पहले विस्तारपूर्वक बताया जा चुका है।

त्रियाराज्य की पहली रानी का नाम तिलोत्तमा था। उसकी मृत्यु के उपरांत मैनाकिनी उसकी उत्तराधिकारिणी घोषित की गई थी। रानी बन जाने के बाद मैनाकिनी को पूर्व रानी के नाम की उपाधि के अनुरूप 'तिलोत्तमा' कहकर भी पुकारा जाता था।

मीननाथ का जन्म

प्रारब्ध का संयोग मानकर मत्स्येंद्रनाथ ने रानी मैनाकिनी के समीप त्रियाराज्य में रहना स्वीकार कर लिया। उन्होंने अपना योगी वेष उतार दिया और सुंदर वस्त्रालंकार धारण कर राजा के समान रहने लगे। मैनाकिनी सहित त्रियाराज्य की अन्य स्त्रियों के साथ काम-क्रीड़ाएं करके मत्स्येंद्रनाथ ने उन्हें तृप्ति प्रदान की।

तीन वर्ष बाद रानी मैनाकिनी के गर्भ से एक सुंदर पुत्र ने जन्म लिया। उसका नाम 'मीननाथ' रखा गया। इन्हीं मत्स्येंद्रनाथ के पुत्र 'मीननाथ' ने बड़े होकर 'योगसूत्र' की मार्गदर्शक टीका लिखी थी– ऐसी जनश्रुति है।

इस प्रकार त्रियाराज्य में सुखोपभोग करते हुए मत्स्येंद्रनाथ को बारह वर्ष का समय व्यतीत हो गया।

मत्स्येंद्रनाथ का त्रियाराज्य से निकलना

एक बार मत्स्येंद्रनाथ के गुरुभाई जालंधरनाथ के शिष्य कानीफानाथ अपने गुरु को ढूंढते हुए त्रियाराज्य में जा पहुंचे। वहां जाकर उन्हें पता चला कि यहां पर मत्स्येंद्रनाथ अपना योगी वेष त्यागकर पिछले बारह वर्षों से रह रहे हैं। कानीफानाथ को किसी नाथयोगी द्वारा इस प्रकार का आचरण करना बहुत बुरा लगा, परंतु मत्स्येंद्रनाथ को अपने गुरु का गुरुभाई अर्थात् गुरुतुल्य समझकर प्रकट रूप में उनसे कुछ नहीं कहा।

मत्स्येंद्रनाथ ने कानीफानाथ की बहुत आवभगत की। रानी मैनाकिनी ने भी इस इच्छा से कि कानीफानाथ त्रियाराज्य से बाहर जाकर मत्स्येंद्रनाथ के विषय में किसी को कोई सूचना न दें, कानीफानाथ का खूब स्वागत-सत्कार किया तथा विविध प्रकार के प्रलोभन देकर उन्हें त्रियाराज्य में ही रोके रखना चाहा, परंतु कानीफानाथ के ऊपर मैनाकिनी का कोई जादू नहीं चल सका। कुछ दिनों तक त्रियाराज्य में रहने के उपरांत कानीफानाथ मत्स्येंद्रनाथ से विदा लेकर लौट गए।

कानीफानाथ ने त्रियाराज्य से निकलकर एक स्थान पर गोरखनाथ से भेंट की। वहां बातों-ही-बातों में कानीफानाथ ने गोरखनाथ को बताया कि उनके गुरु मत्स्येंद्रनाथ अपना योगी वेष त्यागकर त्रियाराज्य में रहते हुए सांसारिक सुखों का उपभोग कर रहे हैं।

मत्स्येंद्रनाथ गोरखनाथ को तीर्थयात्रा के लिए अन्यत्र भेजकर स्वयं सेतुबंध रामेश्वर चले गए और वहां से हनुमानजी के साथ त्रियाराज्य में जा पहुंचे। गोरखनाथ को इस संबंध में कुछ पता नहीं था। वे अपने गुरु को बहुत दिनों से ढूंढ रहे थे। अस्तु, जब कानीफानाथ द्वारा उन्हें यह पता चला कि उनके गुरु मत्स्येंद्रनाथ त्रियाराज्य में रह रहे हैं और सांसारिक सुखों के उपभोग में अपने कर्तव्य को भुला बैठे हैं, तब वे एक समय गुप्त रूप से त्रियाराज्य में जा पहुंचे और उन्होंने संकेत में मत्स्येंद्रनाथ को समझाया कि उनके त्रियाराज्य में रहने के कारण पंथ तथा धर्म की बहुत बड़ी हानि हो रही है।

गोरखनाथ मत्स्येंद्रनाथ को त्रियाराज्य से बाहर ले आए। इस कथा का विस्तृत विवरण आगे गोरखनाथ-चरित्र तथा कानीफानाथ-चरित्र में यथास्थान प्रस्तुत किया जाएगा।

गिरिनार-गमन

त्रियाराज्य से निकलकर मत्स्येंद्रनाथ सीधे गिरिनार पर्वत पर गए। गुरु दत्तात्रेय के बहुत दिनों से दर्शन नहीं हुए थे, अतः उनके चरणों का स्पर्श करने की उनके मन में तीव्र लालसा थी।

दत्तात्रेयजी के समीप पहुंचकर जब मत्स्येंद्रनाथ ने उनके चरणों पर अपना सिर रखा तो दत्तात्रेयजी ने अत्यंत प्रसन्नता में भरकर उन्हें अपने छह हाथों से उठाकर हृदय से लगा लिया।

मत्स्येंद्रनाथ ने उन्हें हनुमानजी की आज्ञा तथा अपने त्रियाराज्य में निवास का संपूर्ण विवरण कह सुनाया। उसे सुनकर दत्तात्रेयजी बोले– ''विधाता ने जिसके भाग्य में जो कुछ लिख दिया है, वह उसे अवश्य भोगना पड़ता है। तुमने हनुमानजी के दिए हुए वचन की रक्षा के लिए ऐसा किया, अतः 'परोपकाराय इदम् शरीरम्' वाक्य को ध्यान में रखकर अपने मन में किसी प्रकार का दुःख मत उठाओ। जो होना था, वह तो हो चुका, अब तुम भविष्य को सुधारने का प्रयत्न करो तथा देश-देशांतरों में भ्रमण कर नाथ-पंथ का प्रचार करो, जिससे दीन-दुखी लोगों के कष्ट दूर हो सकें।''

मत्स्येंद्रनाथ ने 'जो आज्ञा' कहकर पुनः प्रणाम किया। तीन दिन तक गिरिनार पर्वत पर रहने के उपरांत वे दत्तात्रेयजी से आज्ञा लेकर तीर्थाटन के लिए चल दिए।

प्रयाग के लिए प्रस्थान

गिरिनार से चलकर मत्स्येंद्रनाथ तथा गोरखनाथ काशीपुरी में आए। वहां गंगा में स्नान करने के उपरांत तीर्थराज प्रयाग में जा पहुंचे।

उन दिनों प्रयाग में त्रिविक्रम नाम का राजा राज्य करता था। राजा अत्यंत दानी, त्यागी तथा धर्मात्मा था। उसके राज्य में कहीं भी पाप अथवा किसी अन्य प्रकार की बुराई का नाम भी नहीं था। संपूर्ण प्रजा हर प्रकार से सुखी तथा संपन्न थी।

राजा की पत्नी का नाम रेवती था। रानी रेवती भी परम दयालु, सद्गुणी एवं पतिपरायण थी। राजा-रानी, दोनों ही अपनी प्रजा को पुत्रवत् स्नेह करते थे। प्रजा भी उन दोनों को अपने माता-पिता के रूप में अनुभव करती थी।

संपूर्ण सुखों के विद्यामान रहते हुए भी राजा-रानी तथा प्रजा को सबसे बड़ा दु:ख यही था कि वृद्धावस्था आ जाने पर भी राजा की कोई संतान नहीं हुई थी। मृत्यु के पश्चात् सिंहासन का उत्तराधिकारी एवं श्राद्धादि कर्म करने वाला कोई पुत्र न होने के कारण राजा और रानी, दोनों ही मन में हर समय चिंतित और दु:खी बने रहते थे।

मत्स्येंद्रनाथ जब प्रयाग में पहुंचे थे, उसी समय गोरखनाथ भी विभिन्न तीर्थों में भ्रमण करते हुए वहीं आ गए थे। एक दिन दोनों गुरु-शिष्य त्रिवेणी संगम में स्नान करने के उपरांत जिस समय संगम-तट पर बैठे हुए जाप कर रहे थे, उसी समय उनके कानों में बहुत से लोगों के एक साथ रोने की आवाज पड़ी।

गुरु-शिष्य ने दृष्टि उठाकर देखा तो पता चला कि प्रयाग के राजा त्रिविक्रम की मृत्यु हो गई है। प्रजाजन उसके शव को दाह-संस्कार करने के लिए त्रिवेणी तट पर ले आए हैं। पति के शव के साथ सती होने के लिए रानी रेवती भी आई हुई है। संपूर्ण प्रजाजन इसी शोक से विह्वल होकर आर्तनाद कर रहे हैं।

इस दृश्य को देखकर गोरखनाथ का हृदय पसीज गया। उन्होंने मत्स्येंद्रनाथजी से कहा– ''हे गुरु! यह राजा संतानविहीन अवस्था में मृत्यु को प्राप्त हुआ है। इसके साथ ही रानी भी सती होने के लिए आई है। इसके राज्य का कोई उत्तराधिकारी नहीं है, ऐसी स्थिति में शत्रु लोग इसके राज्य पर चढ़ाई कर देंगे। उसमें बहुत से लोगों के प्राण चले जाएंगे, धन-धान्य की लूट होगी, स्त्रियों का सतीत्व नष्ट होगा तथा अन्य अनेक प्रकार के उपद्रव खड़े हो जाएंगे। ये सब घटनाएं न घटें, इसलिए आप कृपा करके इस राजा को पुनरुज्जीवित कर दीजिए और इसे ऐसा वरदान दीजिए, जिससे इसे पुत्र की प्राप्ति भी हो। पुत्र के उत्पन्न हो जाने पर यदि इस राजा की मृत्यु भी हो जाएगी, तो उस स्थिति में कोई अनर्थ नहीं घटेगा।''

यह सुनकर मत्स्येंद्रनाथ ने कहा– "हे पुत्र! यदि इस राजा के प्राण मस्तक में अटके हुए होते तो मैं इसे पुनरुज्जीवित कर देता, परंतु यह राजा तो परम धार्मिक तथा ईश्वर–भक्त था, इस कारण इसके प्राण ब्रह्मांड को फोड़कर बाहर निकले हैं और इसकी आत्मा जीवनमुक्त हो गई है, ऐसी स्थिति में इसे पुनरुज्जीवित कर पाना संभव नहीं है।"

गुरुमुख से इन शब्दों को सुनकर गोरखनाथ ने समाधि लगाकर देखा तो ज्ञात हुआ कि मत्स्येंद्रनाथजी का कहना अक्षरशः सत्य था। तब गोरखनाथ ने अपने गुरु से इस प्रकार कहा– "हे गुरुजी! आपका कहना सत्य है। फिर भी इस राजा के मृत शरीर को पुनरुज्जीवित करना एकदम असम्भव नहीं है।"

मत्स्येंद्रनाथ ने पूछा– "वह कैसे?"

गोरखनाथ ने उत्तर दिया– "मैं इस राजा के मृत शरीर में अपने प्राणों का प्रवेश करा देता हूं। उससे यह राजा पुनरुज्जीवित हो जाएगा।"

यह सुनकर मत्स्येंद्रनाथ ने कहा– "तुम्हारा यह कहना तो ठीक है, परंतु ऐसा करने में सबसे बड़ा झंझट यह है कि प्रथम तो जब तक राजा को कोई पुत्र न हो जाए, तब तक इसके शरीर में अपने प्राणों को रखना पड़ेगा। दूसरे, अपने मृत शरीर को भी उस समय तक पूर्ण सुरक्षित रखना होगा, जब तक उसमें अपने प्राणों का पुनर्प्रवेश न करा दिया जाए।"

गोरखनाथ बोले– "यह शरीर तो परोपकार के लिए है। यदि इतना झंझट उठाना पड़े तो भी मैं इसके लिए तैयार हूं। आप मुझे केवल आज्ञा दीजिए, ताकि मैं संजीवनी विद्या द्वारा इस राजा के मृत शरीर में अपने प्राणों का प्रवेश करा दूं।"

त्रिविक्रम का पुनरुज्जीवित होना

यह सुनकर मत्स्येंद्रनाथ ने कहा– "हे पुत्र! यदि तुम्हारी यही इच्छा है कि यह राजा पुनरुज्जीवित अवश्य हो तो मैं स्वयं ही इसके शरीर में अपने प्राणों को प्रविष्ट किए देता हूं। तुम्हें अभी संसार में बहुत से काम

करने हैं। दूसरे, मैं तो त्रियाराज्य में रहकर एक बार विषय-वासना में लिप्त रह चुका हूं, तुम अभी तक ऐसी बातों से एकदम दूर रहे हो। अतः तुम स्वयं इस झंझट में मत पड़ो। तुम्हारी आकांक्षा को पूर्ण करने हेतु मैं इस राजा के मृत शरीर में अपने प्राणों का संचार कर रहा हूं। तुम मेरी मृत देह को सुरक्षित बनाए रखना। बारह वर्ष बाद मैं पुनः इसके शरीर को छोड़कर, अपनी देह में प्रविष्ट कर जाऊंगा।''

गोरखनाथ यह सुनकर अत्यंत प्रसन्न हुए। उन्होंने मत्स्येंद्रनाथजी की मृत देह की रक्षा का भार अपने ऊपर लिया। तत्पश्चात् वे मृत देह को सुरक्षित रखने के लिए किसी उपयुक्त स्थान की खोज में चल दिए।

नगर के बाहर एक पुराना मंदिर था। उसमें एक पुजारिन रहा करती थी। मंदिर के भीतर एक तहखाना भी था। गोरखनाथ को वह स्थान सुरक्षित एवं श्रेष्ठ प्रतीत हुआ। उन्होंने आकर मत्स्येंद्रनाथजी को स्थान के विषय में सूचना दी। मत्स्येंद्रनाथ गोरखनाथ के साथ उस मंदिर के तहखाने के भीतर जा पहुंचे। वहां उन्होंने समाधि लगाकर अपने प्राणों को राजा त्रिविक्रम के मृत शरीर में प्रविष्ट कर दिया। मत्स्येंद्रनाथ का निर्जीव शरीर उसी मंदिर के तहखाने में पड़ा रहा। गोरखनाथ ने पुजारिन को उसके विषय में सब कुछ बताने के उपरांत कहा कि इस मृत देह की यहां उपस्थिति का पता किसी को न चले। पुजारिन ने यह बात स्वीकार कर ली। गोरखनाथ स्वयं भी उसी शिवालय में रहकर अपने गुरु के मृत शरीर की चौकसी करने लगे।

उधार मत्स्येंद्रनाथ के प्राणों के प्रवेश करते ही राजा त्रिविक्रम का मृत शरीर पुनरुज्जीवित हो गया। श्मशान में दाह-संस्कार के लिए लाई गई राजा की मृत देह को हिलते-डुलते देखकर पहले तो सब लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ, परंतु बाद में जब उन्होंने यह देखा कि यथार्थ में ही मृत राजा के प्राण शरीर में वापस लौट आए हैं तो उन्हें अत्यंत प्रसन्नता हुई।

प्रयागवासियों का शोक हर्ष में बदल गया। उन्होंने राजा के शरीर के स्थान पर एक सोने का पुतला बनाकर श्मशान में दाह-संस्कार करने की क्रिया पूरी की। रानी, मंत्री और प्रजाजनों ने प्रसन्नता में भरकर याचकों को मुंहमांगी वस्तुएं भेंट कीं। चारों ओर आनंद का समुद्र उमड़ पड़ा।

त्रिविक्रम के रूप में मत्स्येंद्रनाथ

त्रिविक्रम राजा के रूप में मत्स्येंद्रनाथ राजमहल में गए। राजभवन तथा शासन के नियम आदि से तो वे त्रियाराज्य में रहने के कारण भली-भांति परिचित थे ही, अतः प्रयाग में भी उनके संबंध में किसी को किसी प्रकार का संदेह नहीं हुआ। वे जानकार की भांति सब काम-काज करने लगे।

दूसरे दिन प्रातःकाल राजा (मत्स्येंद्रनाथ) शहर के बाहर वाले शिवालय में शिवजी का दर्शन करने के लिए गए। वहां पर गोरखनाथ को पहले से ही बैठे हुए देखकर उन्हें विश्वास हो गया कि मेरा शिष्य मेरे मृत शरीर की देखभाल भली-भांति कर रहा है। उन्होंने संकेतरूप में गोरखनाथ से बातें कीं और कहा कि वे मृत शरीर की सुरक्षा में कोई ढील न आने दें।

इस प्रकार राजा बीच-बीच में शिवालय में पहुंचने लगे और गोरखनाथ से वार्तालाप करके अपने मृत शरीर के संबंध में संतुष्ट रहने लगे। इस प्रकार तीन महीने का समय बीत गया।

एक दिन गोरखनाथ ने राजारूपी मत्स्येंद्रनाथजी के आने पर उनसे कहा– "हे गुरुजी! आपका शरीर तो यहां पूर्ण रूप से सुरक्षित है। पुजारिन के अतिरिक्त इसके संबंध में और कोई नहीं जानता। अब यदि आप आज्ञा दें तो मैं तीर्थाटन के लिए चला जांऊ। बारह वर्ष की अवधि समाप्त होने से पहले ही मैं यहां लौट आऊंगा।"

मत्स्येंद्रनाथ ने उन्हें आज्ञा दे दी। तब मत्स्येंद्रनाथ के मृत शरीर की रक्षा का भार पुजारिन के ऊपर सौंपकर और उसे भली-भांति समझा-बुझाकर गोरखनाथ तीर्थयात्रा करने चले गए।

दिन-पर-दिन बीतने लगे। रानी रेवती गर्भवती हो गई। नौ मास बीतने पर रानी ने चंद्रमा जैसे सुंदर बालक को जन्म दिया। राजभवन तथा प्रजा में हर्ष की लहर दौड़ गई। स्थान-स्थान पर आनंदोत्सव होने लगे।

बालक का नाम धर्मनाथ रखा गया। यह बालक अत्यंत तेजस्वी तथा रूपवान था। चंद्रमा की कला की भांति वह दिन-प्रतिदिन वृद्धि को प्राप्त होने लगा।

पुजारिन हंस पड़ी

जब बालक पांच वर्ष का हुआ, तब एक दिन राजा-रानी उसे लेकर नगर के बाहर वाले शिवालय में गए। पूजन आदि करने के उपरांत राजा-रानी ने शिवजी की स्तुति की। रानी ने प्रार्थना करते हुए कहा- "हे परम प्रभु! आपकी कृपा से मैंने आज का दिन देखा है। आपने राजाजी को मृत्यु से बचाया तथा संतान देकर हमारे कुल का उद्धार किया है। आप भविष्य में भी हम लोगों पर इसी तरह कृपा बनाए रहें तथा मुझे यह वरदान दें कि मैं सधवा रहती हुई मृत्यु का प्राप्त होऊं।"

रानी जिस समय शंकरजी से यह प्रार्थना कर रही थी, उस समय पुजारिन उसके समीप ही खड़ी हुई थी। पुजारिन चूंकि त्रिविक्रम राजा के पुनरुज्जीवित होने के रहस्य से परिचित थी, इसलिए रानी की प्रार्थना सुनकर उसे थोड़ी-सी हंसी आ गई।

रानी की दृष्टि ने पुजारिन को हंसते हुए देख लिया। उसके मन में तुरंत ही संदेह ने जन्म ले लिया कि पुजारिन की हंसी का रहस्य क्या है। वह हाथ पकड़कर पुजारिन को एक ओर एकांत स्थान में ले गई और उस पर अत्यंत लाल-पीली होते हुए बोली- "या तो तू हंसने का ठीक-ठीक कारण बता दे, अन्यथा मैं तेरी दुर्गति करा दूंगी।"

एक ओर तो योगी के शाप का भय, दूसरी ओर राजदंड। इधर कुआं, उधर खाई। पुजारिन विचित्र स्थिति में पड़ गई। अंत में रानी द्वारा पुनः धमकाए जाने पर उसने मत्स्येंद्रनाथ के मृत शरीर तथा त्रिविक्रम राजा के पुनरुज्जीवित होने के संबंध में सब बातों को ज्यों-का-त्यों बता दिया। इतना ही नहीं, उसने रानी को अपने साथ मंदिर के तहखाने में ले जाकर वह स्थान भी दिखा दिया, जहां पर मत्स्येंद्रनाथ का मृत शरीर समाधिस्थ अवस्था में रखा हुआ था।

रेवती रानी की स्वार्थपरता

मत्स्येंद्रनाथ का मृत शरीर देखकर रेवती रानी ने पुजारिन की सभी बातों पर विश्वास कर लिया। फिर वह उस समय तो वहां से राजा के साथ चुपचाप लौट आई, परंतु राजमहल में जाकर अपने मन में यह विचार करने लगी कि बारह वर्ष की अवधि बीत जाने पर मत्स्येंद्रनाथ अपने शरीर में प्रवेश कर जाएंगे और मैं फिर से विधवा हो जाऊंगी। इसलिए मुझे अब ऐसा उपाय करना चाहिए, जिससे मत्स्येंद्रनाथ के प्राण राजा के शरीर में ही बने रहें और मैं सदैव सुहागिन रहूं।

फिर रानी ने सोचा कि यदि मत्स्येंद्रनाथ का शरीर नष्ट करा दिया जाए तो मेरी इच्छा पूरी हो सकती है। यह निश्चय करके रानी ने अपनी विश्वस्त दासी को बुलाकर उसके सामने सब बातों तथा अपनी इच्छा को स्पष्ट किया। तत्पश्चात् रात्रि के समय रानी अपनी उस विश्वस्त दासी तथा दो अन्य विश्वस्त सेवकों को साथ लेकर शिवालय में जा पहुंची।

वहां पहुंचकर सेवकों ने मत्स्येंद्रनाथ के शरीर के टुकड़े-टुकड़े करके उन्हें शिवालय के बाहर फेंक दिया। फिर सब लोग राजभवन को लौट गए।

रेवती रानी ने समझा कि अब उसका भय दूर हो गया है और वह कभी विधवा नहीं होगी। उसने दास-दासियों को खूब इनाम दिए और निश्चिंत होकर रहने लगी।

मत्स्येंद्रनाथ के शरीर की सुरक्षा

मनुष्य सोचता तो कुछ है, परंतु होता वही है, जैसा ईश्वर चाहता है। रेवती रानी ने मत्स्येंद्रनाथ के शरीर को टुकड़े-टुकड़े करवाकर मंदिर के बाहर फिंकवा दिया है, यह बात पार्वतीजी को मालूम हो गई। उन्होंने तुरंत ही शिवजी से कहा। शिवजी ने उसी समय यक्षिणियों को बुलाकर यह आज्ञा दी कि तुम लोग मत्स्येंद्रनाथ की मृत देह के टुकड़ों को उठाकर कैलास पर ले आओ और उन्हें सुरक्षित रखो।

शिवजी की आज्ञा पाकर यक्षिणियां मत्स्येंद्रनाथ की मृत देह के सभी टुकड़ों को उठाकर कैलास ले आईं। शिवजी ने उनकी सुरक्षा का भार वीरभद्र को सौंप दिया। वीरभद्र ने चौरासी करोड़ बहत्तर लाख शिवगणों को आज्ञा दी कि वे मत्स्येंद्रनाथ की मृत देह के टुकड़ों की सावधानी से रक्षा करते रहें।

चामुंडा, भैरव, यक्षिणी आदि शिवगणों को मत्स्येंद्रनाथ ने विभिन्न अवसरों पर युद्ध में पराजित किया था। अतः वे सब मत्स्येंद्रनाथ की मृत देह के टुकड़ों को देखकर अत्यंत प्रसन्न हुए और वीरभद्र से कहने लगे– ''हे वीरभद्र! मत्स्येंद्रनाथ हमारा शत्रु था। अच्छा हुआ, जो वह इस गति को प्राप्त हो गया। अब हम लोग यह चाहते हैं कि इसकी मृत देह के मुख्य–मुख्य अवयवों को अलोप अथवा नष्ट कर दें, जिससे यह दोबारा जीवित ही न हो सके।''

यह सुनकर वीरभद्र ने उन सबको धिक्कारते हुए कहा– ''तुम लोग कायरों जैसी बातें कर रहे हो। किसी की मृत देह के साथ शत्रुतापूर्ण व्यवहार करना वीरों का काम नहीं है। यदि तुम लोगों में शक्ति हो तो मत्स्येंद्रनाथ जब पुनरुज्जीवित हो जाएं, तब उनसे युद्ध कर लेना। इस समय तो हमें भगवान शंकर की आज्ञा से इन टुकड़ों की सुरक्षा करनी है। अतः तुम सभी को अपने-अपने कर्तव्य का पालन करना चाहिए।''

वीरभद्र द्वारा फटकारे जाने पर यक्षिणी, चामुंडा आदि सब लज्जित हो गए और उनकी आज्ञानुसार मत्स्येंद्रनाथ की मृत देह के टुकड़ों की सुरक्षा करने लगे।

गोरखनाथ का प्रयाग लौटना

मत्स्येंद्रनाथ की मृत देह की सुरक्षा का भार पुजारिन पर सौंपकर गोरखनाथ तीर्थयात्रा के लिए निकल पड़े थे, यह बात पहले ही बताई जा चुकी है।

गोरखनाथ विभिन्न स्थानों पर धर्म–प्रचार करते हुए भ्रमण करते रहे। इस बीच उन्होंने चौरंगीनाथ नामक अपना एक मुख्य शिष्य बनाया, जो हर समय उनके साथ रहने लगा था।

बारह वर्ष पूरा होने की अवधि में जब कुछ ही महीने शेष रह गए, तब गोरखनाथ ने सब कार्यों को छोड़कर प्रयाग लौटने का निश्चय किया। वे अपने शिष्य चौरंगीनाथ को साथ लेकर प्रयाग जा पहुंचे। वहां त्रिवेणी संगम में स्नान करने के उपरांत दोनों गुरु-शिष्य शिवालय में गए। पुजारिन ने जब गोरखनाथजी को वापस आया हुआ देखा तो वह एकदम घबरा गई।

गोरखनाथ को देखकर पुजारिन चुपचाप बनी रही। जब गोरखनाथ ने उससे पूछा कि मेरे गुरुजी की मृत देह सुरक्षित है? तब वह एकदम दहाड़ मारकर रो उठी। गोरखनाथ यह देखकर तुरंत समझ गए कि गुरुजी का मृत शरीर सुरक्षित नहीं है।

गोरखनाथ ने पुजारिन से और कुछ पूछे बिना ध्यान-दृष्टि से विचार किया तो उन्हें संपूर्ण घटना सहज ही ज्ञात हो गई। तब उन्होंने यह जानने के लिए कि इस समय गुरुजी का मृत शरीर कहां है, दूसरी बार समाधि लगाई। समाधि की अवस्था में वे वैकुंठलोक, ब्रह्मलोक, देवलोक आदि में भ्रमण करते हुए जब कैलास पर्वत पर पहुंचे तो वहां वीरभ्रद आदि शिवजी के समस्त गणों को अपने गुरुजी के मृत शरीर की सुरक्षा करते हुए देखकर उन्हें संतोष हुआ।

तत्पश्चात् गोरखनाथ अपने शरीर को वहीं शिवालय में छोड़कर स्वयं प्राणरूप से कैलास पर्वत पर जा पहुंचे। कैलास पर्वत पर किसी अपरिचित प्राण को घूमते हुए देखकर शिवगणों ने वीरभद्र को सूचना दी। वीरभद्र ने पहले तो यह समझा कि मत्स्येंद्रनाथ के प्राण ही यहां आ पहुंचे होंगे, परंतु जब बाद में उन्हें पता चला कि यह तो मत्स्येंद्रनाथ के शिष्य गोरखनाथ के प्राण हैं तो उन्होंने कड़ककर पूछा– ''तुम यहां किसलिए आए हो?''

गोरखनाथ के प्राण ने वीरभद्र को उत्तर दिया– ''मैं यहां पर अपने गुरु की मृत देह के अवयवों को लेने आया हूं। तुम मुझे उन अवयवों को सौंप दो।''

यह सुनकर वीरभद्र ने मत्स्येंद्रनाथ के अवयव देने से अस्वीकार कर दिया। तब गोरखनाथ के प्राण ने मंत्र-विद्या के प्रयोग द्वारा वीरभद्र को कष्ट देना आरंभ किया, जिस कारण वीरभद्र त्राहि-त्राहि करने लगे।

उस समय ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि देवताओं ने वहां प्रकट होकर वीरभद्र की रक्षा की और उनसे कहा– "अब तुम मत्स्येंद्रनाथ के शारीरिक अवयव गोरखनाथ के प्राण को सौंप दो। ये अपने गुरु को पुनरुज्जीवित करने के लिए यहां आए हैं।"

देवताओं की आज्ञा मानकर वीरभद्र ने मत्स्येंद्रनाथ के शरीर से अपने प्राण निकालकर पुनः अपने शरीर में प्रविष्ट कर लिये। मत्स्येंद्रनाथ का शरीर शिवालय में पूर्ववत् अपने स्थान पर रख दिया गया। जितने समय तक गोरखनाथ के प्राण बाहर रहे थे, उतने समय तक चौरंगीनाथ ने गोरखनाथ के शरीर की सावधानी से रक्षा की थी। इस सेवा के लिए गोरखनाथ ने चौरंगीनाथ को अनेक आशीर्वाद दिए।

मत्स्येंद्रनाथ का पुनरुज्जीवन

बारह वर्ष की अवधि पूरी होने का जब केवल एक मास का समय शेष रह गया, तब राजा त्रिविक्रमरूपी मत्स्येंद्रनाथ ने शिवालय में पहुंचकर गोरखनाथ से भेंट की। गोरखनाथ ने उन्हें रेवती रानी द्वारा किए गए दुष्कृत्य का संपूर्ण विवरीण कह सुनाया। फिर वे कैलास पर्वत से उनके मृत शरीर के अवयवों को किस प्रकार लेकर आए थे, वह सब वृत्तांत भी कहा।

सब बातें सुनाने के उपरांत गोरखनाथ ने राजारूपी मत्स्येंद्रनाथ से कहा– "हे गुरुजी! मैंने तो परोपकार की दृष्टि से आपको यह सलाह दी थी कि आप राजा त्रिविक्रम को पुनरुज्जीवित करके रानी रेवती को पुत्र-दान दें, परंतु रेवती रानी इतनी स्वार्थी और निष्ठुर भी होगी– इसकी तो मैंने कल्पना नहीं की थी।"

यह सुनकर मत्स्येंद्रनाथ ने उत्तर दिया– "हे पुत्र! स्त्रियों का स्वभाव ही ऐसा होता है। उस बेचारी ने तो अपना सुहाग बनाए रखने के उद्‌देश्य से ही ऐसा किया था, क्योंकि स्त्रियां सुहागिन बनी रहकर मरने को अपना अहोभाग्य समझती हैं। अतः तुम्हें उसके ऊपर रुष्ट नहीं होना चाहिए। मेरे प्राण-प्रवेश की अवधि में एक मास का समय रह गया है। इस बीच मैं

धर्मनाथ का राज्याभिषेक करके राज्य की व्यवस्था को ठीक किए देता हूं, ताकि बाद में मेरी अनुपस्थिति में किसी प्रकार का उपद्रव खड़ा न हो। तब तक तुम यहीं रहकर भजन-पूजन तथा मेरे शरीर की रक्षा करो।''

यह कहकर राजारूपी मत्स्येंद्रनाथ शिवालय से चलकर राजभवन में जा पहुंचे। दूसरे दिन से ही उन्होंने धर्मनाथ के राज्याभिषेक की तैयारियां तथा शासन का सुप्रबंध करना आरंभ कर दिया।

राजा त्रिविक्रम की मृत्यु

कुछ दिनों बाद जब धर्मनाथ का राज्याभिषेक हो गया तथा राज्य संबंधी संपूर्ण व्यवस्थाएं ठीक हो गईं, तब अवधि पूरी होने के दिन मत्स्येंद्रनाथ ने राजा त्रिविक्रम के शरीर से अपने प्राण निकालकर शिवालय स्थित अपने मृत शरीर में प्रविष्ट करा दिए।

राजा त्रिविक्रम की मृत्यु होते ही संपूर्ण राज्य तथा राजभवन में हाहाकार मच गया। रानी रेवती छाती पीट-पीटकर रोने लगी। उसकी समझ में ही नहीं आ रहा था कि जब उसने मत्स्येंद्रनाथ के शरीर के टुकड़े-टुकड़े करवा दिए थे, तब राजा त्रिविक्रम की दोबारा मृत्यु कैसे हो गई?

राजा के शव को लेकर प्रजाजन पुनः त्रिवेणी-तट पर जा पहुंचे। धर्मनाथ ने उसके शरीर का अंतिम संस्कार किया। उस समय वह फूट-फूटकर रो रहा था। मंत्रीगण उसे जैसे-तैसे समझा-बुझाकर राजभवन में लौटा लाए। वहां जाकर वह फिर रोने लगा। चारों ओर दुःख तथा शोक का ऐसा वातावरण व्याप्त था कि उसे देखकर आकाश की आंखों से भी आंसू टपकने लगे।

धर्मनाथ की मत्स्येंद्रनाथ से भेंट

रेवती रानी ने अपने मन में विचार किया कि मत्स्येंद्रनाथ तो अजर-अमर हैं, उनकी मृत्यु नहीं हो सकती। ऐसी स्थिति में राजा त्रिविक्रम के शरीर से अपने प्राण निकालकर वे स्वयं ही जीवित होंगे। यह सोचकर उसने अपने

कुछ विश्वस्त सेवकों को नगर के बाहर वाले शिवालय में यह देखने के लिए भेजा कि वहां पर कोई साधु-संन्यासी-योगी तो नहीं बैठा है।

सेवकों ने लौटकर सूचना दी कि शिवालय में तीन योगी बैठे हुए हैं। बस, तो रेवती रानी को तुरंत विश्वास हो गया कि उनमें एक योगी अवश्य ही मत्स्येंद्रनाथ होंगे। तब उसने अपने पुत्र धर्मनाथ को संबोधित करते हुए कहा– ''हे बेटा! तुझे रोने की आवश्यकता नहीं है। तुम्हारे पिता मरे नहीं हैं, अपितु वे इस समय योगी वेष में शिवालय के भीतर बैठे हुए हैं। तुम अपने मंत्री तथा सेवकों को साथ लेकर वहां जाओ और अपने पिता से मिल आओ। वे दयालु योगी तुम्हारा कल्याण करेंगे।''

यह सुनकर धर्मनाथ मंत्री आदि को साथ लेकर शिवालय में जा पहुंचा। उसे देखते ही मत्स्येंद्रनाथ उठ बैठे और अपने हृदय से लगाकर आशीर्वाद प्रदान किया। फिर उसे अपनी गोद में बैठाकर गोरखनाथ तथा चौरंगीनाथ की ओर संकेत करते हुए बोले– ''ये दोनों तुम्हारे भाई हैं। ये तुम्हें किसी प्रकार का कष्ट नहीं होने देंगे।''

धर्मनाथ ने आग्रहपूर्वक शपथ खिलाकर उन्हें घर चलने के लिए कहा। उसे रोता हुआ देखकर मत्स्येंद्रनाथ को दया आ गई। तब वे गोरखनाथ तथा चौरंगीनाथ को साथ लेकर धर्मनाथ के साथ पुनः राजभवन में जा पहुंचे। वहां रेवती रानी ने तीनों योगियों के चरण स्पर्श किए। धर्मनाथ के प्रेम और आग्रह के कारण तीनों योगी कुछ दिनों तक उसके पास ही बने रहे।

प्रयाग की प्रजा को जब मत्स्येंद्रनाथ के चमत्कार के विषय में ज्ञात हुआ तो वह उनके दर्शनों के लिए उमड़ पड़ी। नाथ योगियों की महिमा का सर्वत्र बखान होने लगा तथा नाथ-पंथ की ख्याति चारों ओर फैल गई।

कुछ समय प्रयाग में रहकर मत्स्येंद्रनाथ ने धर्मनाथ को ज्ञानोपदेश दिया। फिर जब उन्होंने वहां से विदा होकर तीर्थयात्रा की तैयारी करनी चाही, उस समय धर्मनार्थ ने स्वयं भी उनके साथ चलने की इच्छा प्रकट की।

तब मत्स्येंद्रनाथ ने धर्मनाथ को समझाते हुए कहा– ''हे पुत्र! तुम्हारी इच्छा को मैं अवश्य पूरा करूंगा, परंतु अभी कुछ वर्षों तक तुम यहीं रहकर अपनी माता की सेवा तथा प्रजा का पालन करो। बारह वर्ष बाद हम यहां फिर आएंगे। उस समय यह मेरा शिष्य तथा तुम्हारा भाई गोरखनाथ

तुम्हें धर्म की दीक्षा तथा शास्त्र का ज्ञान देगा। उसके बाद तुम तीर्थाटन के लिए निकल जाना। इससे तुम्हारा कल्याण होगा।''

यह कहकर, रानी तथा धर्मनाथ को समझा-बुझाकर मत्स्येंद्रनाथजी गोरखनाथ तथा चौरंगीनाथ को अपने साथ लेकर तीर्थयात्रा करने के लिए निकल पड़े।

माणिक नामक किसान का उद्धार

मत्स्येंद्रनाथ के मृत शरीर को शिवालय में छोड़कर गोरखनाथ जब तीर्थयात्रा के लिए निकले थे, उस समय गोदावरी नदी के तटवर्ती भामा नगर की सीमा पर माणिक नामक एक किसान के साथ उनकी भेंट हुई थी। गोरखनाथ ने प्रसन्न होकर उसे बारह वर्ष बाद दीक्षा देने का निश्चय किया था। 'गोरखनाथ-चरित्र' शीर्षक के तीसरे अध्याय में इस घटना का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है।

प्रयाग से विदा होकर तीनों योगी जब तीर्थयात्रा को निकले, उस समय तक बारह वर्ष का समय पूरा हो चुका था। गोरखनाथ को यात्राकाल में माणि ाक किसान का स्मरण हो आया। अत: वे मत्स्येंद्रनाथजी को आग्रह करके भामा नगर में ले गए। वहां जाकर उन्होंने माणिक को मंत्रोपदेश दिया तथा मत्स्येंद्रनाथजी ने उसे नाथ-दीक्षा दी और उसका नाम अड़बंगनाथ रखा। आगे 'अड़बंगनाथ-चरित्र' शीर्षक के बारहवें अध्याय में इस घटना का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। दीक्षा देने के उपरांत मत्स्येंद्रनाथ ने अड़बंगनाथ को भी अपने साथ ले लिया।

धर्मनाथ को दीक्षा

मत्स्येंद्रनाथ द्वारा प्राप्त उपदेश के अनुसार धर्मनाथ ने अपनी प्रजा का भली-भांति पालन किया। विवाह के बाद उसकी रानी ने एक सुंदर पुत्र को जन्म दिया। पुत्र जन्मोत्सव के उपलक्ष में राज्यभर में खुशियां मनाई गईं। धीरे-धीरे बारह वर्ष का समय व्यतीत हो गया।

बारह वर्ष की अवधि बीत जाने पर मत्स्येंद्रनाथ की धर्मनाथ को दिए हुए वचन की याद आई। तब वे गोरखनाथ, चौरंगीनाथ तथा अड़बंगनाथ को साथ लेकर पुनः प्रयाग में आ पहुंचे।

धर्मनाथ को जब मत्स्येंद्रनाथ आदि के आने का समाचार ज्ञात हुआ, तब वह बड़ी धूमधाम से उनकी अगवानी करने के लिए जा पहुंचा और सब लोगों को महल में ले जाकर ठहराया। धर्मनाथ के पुत्र को मत्स्येंद्रनाथ ने अपना आशीर्वाद प्रदान किया तथा उसके दादा की स्मृति को कायम रखने के लिए उस बालक का नाम 'त्रिविक्रम' रखा।

धर्मनाथ ने जब योगदीक्षा लेने की इच्छा प्रकट की, तब मत्स्येंद्रनाथ ने उसके पुत्र त्रिविक्रम का राज्याभिषेक कराकर, माघ शुक्ला द्वितीय के दिन धर्मनाथ को योग की दीक्षा दी। वह दीक्षा-समारोह राज्यभर में बड़ी धूमधाम के साथ मनाया गया। मत्स्येंद्रनाथ ने धर्मनाथ की दीक्षा-तिथि को दीक्षा जयंती का रूप देकर उसे राजधर्म का एक अंग बना दिया और यह तिथि 'धर्म द्वितीया' के नाम से प्रसिद्ध हुई। कुछ समय बाद 'धर्म द्वितीया' की महिमा इतनी बढ़ी कि लोग इस तिथि का व्रत करने लगे, फलस्वरूप उन्हें दुःख-दारिद्रय, रोग आदि से छुटकारा मिलकर धन की प्राप्ति होने लगी।

दीक्षा देने के उपरांत मत्स्येंद्रनाथ अपने अन्य शिष्यों के साथ धर्मनाथ को भी बदरिकाश्रम ले गए। वहां उन्होंने धर्मनाथ को शिवजी के दर्शन कराए तथा बारह वर्ष तक तपस्या करने का आदेश दिया। धर्मनाथ ने बारह वर्ष तक घोर तप किया। जब तपस्या पूरी हो गई तो मत्स्येंद्रनाथ ने एक समारोह करके सब देवताओं को आमंत्रित किया और उनसे धर्मनाथ को आशीर्वाद दिलवाया। तत्पश्चात् वे धर्मनाथ तथा अन्य शिष्यों को साथ लेकर वहां से तीर्थाटन करने के लिए चल दिए।

नागनाथ से युद्ध

नागनाथ आविर्होत्रनारायण के अवतार थे। उन्होंने भी दत्तात्रेयजी से दीक्षा ली थी। आगे नवें अध्याय में इनके वृत्तांत का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। नागनाथ ने तपस्या द्वारा सिद्धि प्राप्त की थी और उन्होंने दत्तात्रेयजी से शास्त्र-विद्या को भी सीखा था। वे 'वटसिद्ध नागनाथ' के नाम से प्रसिद्ध थे और उनके चमत्कारों से सब लोग परिचित हो चुके थे।

नागनाथजी बालेघाट अथवा वडवाल नामक स्थान में निवास करते थे। वहां उनके दर्शनों के लिए आने वाले लोगों की भारी भीड़ लगी रहती थी। उस भीड़ के कारण जब नागनाथजी को एकांत में समाधि लगाना भी कठिन हो गया, तब उन्होंने समाधि के समय कोई व्यक्ति उनसे मिलने के लिए आश्रम के भीतर न आने पाए, इस हेतु पहरेदारों की व्यवस्था कर दी। जिस समय नागनाथजी समाधि में स्थित होते, उस समय वे पहरेदार किसी व्यक्ति को उनके पास नहीं जाने देते थे।

मत्स्येंद्रनाथ तीर्थयात्रा करते हुए जब बालेघाट पहुंचे तो वहां उन्होंने लोगों के मुंह से नागनाथजी की महिमा के विषय में सुना। उसे सुनकर मत्स्येंद्रनाथ के हृदय में नागनाथ का दर्शन करने की इच्छा उत्पन्न हुई और वे उसके आश्रम पर जा पहुंचे।

मत्स्येंद्रनाथ जिस समय नागनाथ के आश्रम में पहुंचे, उस समय नागनाथ समाधि में बैठे हुए थे और पहरेदार लोगों को आश्रम के भीतर प्रवेश करने से रोक रहे थे। यह देखकर मत्स्येंद्रनाथ को क्रोध आ गया और वे कहने लगे कि यह कैसा योगी है, जिसने लोगों को अपने पास पहुंचने से रोकने के लिए पहरेदार लगा रखे हैं।

मत्स्येंद्रनाथ ने स्पर्शास्त्र का प्रयोग करके पहरेदारों को पृथ्वी से चिपका दिया। इसी बीच नागनाथ की समाधि टूट गई। उन्होंने जब अपने पहरेदारों की स्थिति को देखा तो उन्हें यह समझते हुए देर न लगी कि किसी सिद्ध पुरुष ने आकर इनकी ऐसी दशा की है।

नागनाथ भी अवतारी पुरुष थे। उन्होंने सर्वप्रथम तो 'गरुड़ बंधन विद्या' द्वारा स्वर्ग में गरुड़ों को बांधा, फिर विभक्तास्त्र का प्रयोग करके पहरेदारों को मुक्त किया, तत्पश्चात् वे मत्स्येंद्रनाथ का सामना करने के लिए आगे बढ़े।

यह देखकर मत्स्येंद्रनाथ ने पर्वतत्रास्त्र का प्रयोग किया। पर्वत को अपने सिर के ऊपर आते हुए देखकर नागनाथ ने वज्रास्त्र द्वारा उसको अंतरिक्ष में ही चूर-चूर करके उड़ा दिया। फिर उन्होंने स्वयं सर्पास्त्र का प्रयोग कर दिया।

नागनाथ द्वारा प्रयुक्त सर्पास्त्र का नाश करने के लिए मत्स्येंद्रनाथ ने गरुड़ास्त्र की योजना की, परंतु गरुड़ों को तो नागनाथ ने पहले से ही बांध

रखा था। अत: मत्स्येंद्रनाथ का प्रयोग असफल सिद्ध हुआ। नागनाथ द्वारा प्रयुक्त सर्पास्त्र के सर्प आकर उन्हें डसने लगे।

यह देखकर मत्स्येंद्रनाथ ने दत्तात्रेय का स्मरण करते हुए कहा– "हे दत्तात्रेय गुरु! अब विलंब किए बिना मेरी सहायता के लिए पधारिए।"

मत्स्येंद्रनाथ के मुंह से 'गुरु दत्तात्रेय' का नाम सुनकर नागनाथ उनके समीप जा पहुंचे और उनका परिचय पूछने लगे। मत्स्येंद्रनाथ ने आदेश कहकर उन्हें अपना परिचय दिया और कहा– "मैं दत्तात्रेय का पहला शिष्य हूं, इस नाते उनका पहला पुत्र हूं।"

यह सुनकर नागनाथ ने स्वयं ही गरुड़ों का बंधन खोल दिया। गरुडों ने आकर सर्पों का भय दूर कर दिया। तत्पश्चात् नागनाथ ने मत्स्येंद्रनाथ के चरण छूने के उपरांत कहा– "गुरु के प्रथम शिष्य होने के नाते आप मेरे बड़े भाई हैं। अनजाने में मुझसे जो भूल हुई, उसके लिए मैं क्षमा चाहता हूं।" यह कहकर नागनाथ मत्स्येंद्रनाथ को अपने साथ ही आश्रम के भीतर ले गए और वहां बैठाकर उनका यथोचित स्वागत-सत्कार किया।

आश्रम के भीतर पहुंचकर मत्स्येंद्रनाथ ने नागनाथ से पूछा– "आपने अपने दरवाजे पर पहरेदार क्यों लगा रखे हैं?"

यह सुनकर नागनाथ ने उत्तर दिया– "हे भाई! यहां आने वाले लोगों की भीड़ मुझे हर समय घेरे रहती है। वह समाधि लगाने के लिए भी समय नहीं देती। इसीलिए मैंने लाचार होकर समाधि के समय पहरेदारों की व्यवस्था कर रखी है, ताकि उस समय कोई व्यक्ति आश्रम के भीतर प्रविष्ट होकर मेरी समाधि को भंग न करे।"

तब मत्स्येंद्रनाथ ने कहा– "भाई नागनाथ! तुम्हारा यह कहना तो ठीक है, परंतु हमारे पंथ में समाधि लगाने के लिए रात्रि का समय ठीक बताया है, क्योंकि उस समय सब लोग नींद में सोए रहते हैं और किसी प्रकार का विघ्न उपस्थित करने के लिए नहीं आ सकते। इसलिए भविष्य में तुम केवल रात्रि में ही समाधि लगाया करो।"

नागनाथ ने मत्स्येंद्रनाथ के इस सुझाव को स्वीकार कर लिया। तत्पश्चात् नागनाथ ने कुछ दिनों तक मत्स्येंद्रनाथ को अपने पास रखा। तीन-चार दिन वहां रहकर मत्येन्द्रनाथ नागनाथ से विदा लेकर आगे चल गए।

इंद्र और चर्पटीनाथ का विवाद

ब्रह्मा के पुत्र देवर्षि नारद को अपने तप के प्रभाव से त्रिलोक के किसी भी स्थान में क्षणभर में ही पहुंच जाने के लिए प्रसिद्धि प्राप्त है।

एक बार नारदजी ब्रह्मलोक में ब्रह्माजी के पास बैठे हुए थे कि उसी समय वहां चर्पटीनाथ नामक एक नाथयोगी आ पहुंचे। चर्पटीनाथ पिप्पलायन नारायण के अवतार थे।

इनके चरित्र का विशेष वर्णन आगे दसवें अध्याय में किया गया है।

नारदजी चर्पटीनाथ को जानते थे। उन्हें ब्रह्मलोक में आया हुआ देखकर नारदजी अत्यंत प्रसन्न हुए, क्योंकि उन्हें चर्पटीनाथ के द्वारा अपना एक काम पूरा कराना था। नारदजी ने ब्रह्माजी को चर्पटीनाथ का परिचय दिया। ब्रह्माजी ने परिचय पाकर चर्पटीनाथ का अत्यंत सम्मान किया और उन्हें आाशीर्वाद भी प्रदान किया। तदुपरांत कुछ समय बीतने पर नारदजी चर्पटीनाथ को अपने साथ लेकर अमरावती जा पहुंचे।

एक समय नारदजी इंद्र से मिलने के लिए अमरावती गए थे। उस समय इंद्र ने उन्हें 'आइए, कलियुग के नारद' कहकर व्यंग किया था। नारदजी इंद्र से उसी व्यंग्य का बदला लेने के इच्छुक थे।

चर्पटीनाथ के साथ नारदजी अमरावती के नंदनवन में पहुंच गए। वहां दोनों ने किसी से पूछे बिना ही वृक्ष से फलों को तोड़ना और खाना आरंभ कर दिया। यह देखकर बाग के माली क्रुद्ध होकर उन्हें पकड़ने के लिए आए।

मालियों को आते हुए देखकर नारदजी स्वयं तो चुपके से पलायन कर गए, परंतु चर्पटीनाथ को वहीं छोड़ गए। चर्पटीनाथ ने जब यह देखा कि मालीगण उन्हें मारने के लिए दौड़े आ रहे हैं तो उन्होंने स्पर्शास्त्र मंत्र का प्रयोग करके उन मालियों को जहां-का-तहां चिपका दिया।

यह खबर जब इंद्र के कानों में पहुंची तो वह देवताओं की सेना लेकर चर्पटीनाथ से लड़ने के लिए जा पहुंचा। उस समय चर्पटीनाथ ने वाताकर्षण मंत्र द्वारा संपूर्ण देवसेना की ऐसी दुर्दशा कर दी कि इंद्र को वहां से भागते ही बना। उस समय इंद्र की प्रार्थना पर शिव, विष्णु आदि

देवताओं ने वहां प्रकट होकर बीच-बचाव कराया और चर्पटीनाथ को शांत करके विदा कर दिया।

उस समय इंद्र को यह पता चला कि नाथ समुदाय के सिद्धों के मंत्रास्त्र बहुत बलवान हैं और उन पर देवता विजय प्राप्त नहीं कर सकते।

तत्पश्चात् इंद्र ने अपने गुरु बृहस्पति के पास जाकर यह प्रार्थना की– "हे गुरु! मैं नाथ संप्रदाय की मंत्रास्त्र विद्या को सीखना चाहता हूं। अतः आप कोई ऐसा उपाय कीजिए जिससे मेरी यह इच्छा पूरी हो।"

यह सुनकर बृहस्पति ने उत्तर दिया– "हे इंद्र! तुम सोमयाग का अनुष्ठान करो और उसमें भाग लेने के लिए नाथ-पंथ के सिद्धों के पास निमंत्रण भेजो। जब वे लोग यहां आ जाएं, तब तुम उन लोगों की सेवा करके उनकी मंत्रास्त्र विद्या को सीख लेना।"

इंद्र का सोमयाग

गुरु बृहस्पति की बात सुनकर इंद्र ने कहा– "हे प्रभो! नाथ-पंथ के सिद्धों को किस प्रकार आमंत्रित किया जाए, यह बताने की कृपा कीजिए।"

बृहस्पतिजी बोले– "इस संबंध में तुम नारदजी से राय लो।"

इंद्र ने नारदजी का आह्वान किया और उनके आने पर कहा– "मैं सोमयाग करना चाहता हूं और उसमें नाथ-पंथ के सिद्धों को आमंत्रित करना चाहता हूं। सो उन सिद्धों को किस प्रकार निमंत्रित किया जाए, यह बताने की कृपा कीजिए।"

नारदजी ने यह सुनकर कहा– "हे इंद्र! मैं तो कलियुग का नारद हूं। तुम मुझसे इस विषय में क्यों पूछ रहे हो?"

नारदजी की बात सुनकर इंद्र को लज्जा आ गई। उसने सर्वप्रथम अपनी भूल के लिए नारदजी से क्षमायाचना की, तत्पश्चात् उचित सलाह देने का आग्रह किया।

तब नारदजी ने कहा– "हे इंद्र! नाथयोगियों में मत्स्येंद्रनाथ दत्तात्रेय के सबसे पहले शिष्य हैं। अन्य सभी नाथयोगी उन्हें अपना बड़ा भाई

अथवा गुरु के समान समझते हैं। वे मत्स्येंद्रनाथ उपरिक्षवसु के आग्रह को स्वीकार कर लेंगे। अतः आप उपरिक्षवसु को उनके पास निमंत्रण देने के लिए भेजो। यदि मत्स्येंद्रनाथ ने उपरिक्षवसु के निमंत्रण पर सोमयाग में सम्मिलित होना स्वीकार कर लिया तो अन्य सब नाथयोगी भी तुम्हारे सोमयाग में सम्मिलित होने के लिए आ जाएंगे। इस प्रकार तुम्हारी मनोकामना पूरी हो जाएगी।''

यह सुनकर इंद्र उपरिक्षवसु के पास गए और उन्हें अपनी मनोकामना कह सुनाई तथा नाथयोगियों को लाने के लिए अपना एक विमान देकर उन्हें विदा किया।

इंद्र की प्रार्थना सुनकर उपरिक्षवसु मत्स्येन्द्र के पास पहुंचे। मत्स्येंद्रनाथ ने उनके आग्रह को मानकर सभी नाथ योगियों के पास यह संदेश भेज दिया कि उन्हें चलकर इंद्र के सोमयाग में सम्मिलित होना चाहिए। तत्पश्चात् उपरिक्षवसु मत्स्येंद्रनाथ, गोरखनाथ, धर्मनाथ, चौरंगीनाथ, कानीफानाथ, गोपीचंदनाथ, जालंधरनाथ, अड़बंगनाथ आदि जो योगी वहां उपस्थित थे, उन सबको विमान में बैठाकर अमरावतीपुरी के लिए चल दिए। मार्ग में हेलापटट्न से गोपीचंदनाथ की माता को, वडवाल गांव से वटसिद्ध नागनाथ को, गोमती तट से भर्तृहरिनाथ को, ताम्रपर्णी से चर्पटीनाथ को, विटगांव से रेवणनाथ को तथा अन्य स्थानों से चौरासी सिद्धों को विमान में बैठाकर उपरिक्षवसु इंद्रपुरी जा पहुंचे।

इंद्र द्वारा विद्या की चोरी

नाथ-पंथ के सभी योगी तथा अन्य देवी-देवता जब इंद्रपुरी में एकत्र हो गए तो सोमयाग किस स्थान पर किया जाए, इस संबंध में विचार किया। अंत में मत्स्येंद्रनाथ तथा देवगुरु बृहस्पति ने सिंहलद्वीप के अटक नामक अरण्य को इस कार्य के लिए उपयुक्त स्थान माना।

सब लोग विमानों में बैठ-बैठकर सिंहलद्वीप में जा पहुंचे। यज्ञ की तैयारियां आरंभ कर दी गईं। वहीं पर मत्स्येंद्रनाथ ने अपने पुत्र मीननाथ को भी विद्या सिखाने हेतु बुलवा लिया था। शुभ मुहूर्त में यज्ञ आरंभ हुआ।

देवगुरु बृहस्पति के सुझाव पर यज्ञ के यजमान का कंकण उपरिक्षवसु के हाथ में बांधा गया तथा इंद्र ने यज्ञ के लिए आवश्यक वस्तुओं की व्यवस्था करने का भार अपने ऊपर लिया। इंद्र की इस आस्था को देखकर सब लोग अत्यंत प्रसन्न हुए।

सोमयाग आरंभ हो गया, परंतु इस यज्ञ को कराने का उद्देश्य नाग-पंथ के योगियों की विद्या को सीख लेना था। अस्तु, इंद्र ने यह उपाय निकाला कि मत्स्येंद्रनाथ जिस वृक्ष के नीचे बैठकर अपने पुत्र मीननाथ को विद्या सिखाया करते थे, इंद्र मोर का वेष धारण कर उसके ऊपर बैठ जाया करता था और उस विद्या को स्वयं भी सीखता जाता था।

वह यज्ञ पूरे एक वर्ष तक चला। इस बीच मत्स्येंद्रनाथ ने मीननाथ को संपूर्ण विद्या सिखा दी और मोर के रूप में इंद्र ने भी उस विद्या को सीख लिया, परंतु गुरु का आशीर्वाद लिये बिना विद्या सफल नहीं होती, इसलिए एक दिन इंद्र ने बृहस्पति के पास जाकर यह सलाह मांगी कि अब मुझे क्या उपाय करना चाहिए, जिससे मत्स्येंद्रनाथ मुझे विद्या के सफल होने का आशीर्वाद प्रदान कर दें।

बृहस्पति ने सलाह देते हुए कहा– "हे इंद्र! मत्स्येंद्रनाथ बड़े दयालु हैं। तुम उनसे सब बातें सत्य-सत्य कह देना। वह तुम्हारी सत्यवादिता पर प्रसन्न होकर विद्या के सफल होने का आशीर्वाद दे देंगे।"

सोमयाग के समाप्त हो जाने पर सबसे प्रथम मत्स्येंद्रनाथ का पूजन किया गया। इंद्र ने ही सर्वप्रथम उनका पूजन किया। मत्स्येंद्रनाथ को रत्नसिंहासन पर बैठाने के उपरांत इंद्र ने उन्हें अनेक प्रकार की भेंट समर्पित की। फिर दोनों हाथ जोड़कर अत्यंत विनम्र होकर कहा– "हे गुरु! मुझसे एक अपराध हो गया है। आपने मीननाथ को जो-जो विद्या सिखाई है, उन सबको मोर का रूप धारण कर मैंने वृक्ष पर बैठे हुए गुप्त रूप से सीख लिया है। अब आप कृपा करके मेरे इस अपराध को क्षमा कर दें तथा मुझे आशीर्वाद दें कि आपके द्वारा सीखी गई विद्या मेरे लिए सफल सिद्ध हो।"

इंद्र के मुख से यह शब्द सुनकर मत्स्येंद्रनाथ क्रोध में भर गए। उन्होंने इंद्र को शाप देते हुए कहा– "तूने कपट रूप में जो विद्या सीखी है, वह निष्फल हो जाएगी।"

यह सुनकर इंद्र के पांवों के नीचे से जैसे धरती ही निकल गई, वह थर-थर कांपने लगा। जिस विद्या को सीखने के लिए उसने इतना बड़ा आयोजन तथा परिश्रम किया था, मत्स्येंद्रनाथ के शाप के कारण वह सब एक क्षण में ही व्यर्थ सिद्ध हो गया।

इंद्र को आशीर्वाद

इंद्र की इस स्थिति को देखकर सुरुगुरु बृहस्पति ने उपरिक्षवसु से प्रार्थना की कि मत्स्येंद्रनाथ ने इंद्र को जो शाप दिया है, उसका वे निवारण करा दें।

तब उपरिक्षवसु ने इंद्र को मत्स्येंद्रनाथ के चरणों पर डालते हुए उससे क्षमा प्रदान करने के लिए कहा और निवेदन किया कि अब आप प्रसन्न होकर इंद्र को ऐसा वर प्रदान कीजिए, जिससे इसकी मनोकामना पूरी हो।

उपरिक्षवसु के आग्रह को स्वीकार करके मत्स्येंद्रनाथजी बोले- "इंद्र यदि अपने किए हुए कृत्य पर पश्चाताप प्रकट करे, बारह वर्ष तक तपस्या करे तथा नाथ-पंथ की कीर्ति को बढ़ाने में सदैव सहायक बना रहे तो मेरा दिया हुआ शाप मिट जाएगा और इसकी सीखी हुई विद्या सफल सिद्ध होगी।"

इंद्र ने इन सभी बातों को स्वीकार कर लिया और अपने कृत्य पर पश्चाताप करने के उपरांत बारह वर्ष तक कठिन तप किया तथा नाथ संप्रदाय की कीर्ति बढ़ाने के लिए हर समय तत्पर बने रहने का संकल्प लिया। इसके फलस्वरूप इंद्र ने गुप्त रूप से जो विद्या सीखी थी, वह उसके लिए सफल सिद्ध हुई और उसके मन का संपूर्ण खेद मिट गया।

सोमयाग समाप्त हो जाने पर सब अतिथि विमान में बैठकर अपने-अपने स्थान को चले गए। इंद्र अपने मनोरथ को प्राप्त करने के लिए सह्यद्रि पर्वत पर जाकर तपस्या करने लगा।

मत्स्येंद्रनाथजी तिलोत्तमा की सहमति प्राप्त करके मीननाथ को अपने साथ यात्रा कराने के लिए ले गए।

मत्स्येंद्रनाथजी ने देश-देशांतरों में भ्रमण करते हुए नाथ-पंथ का अत्यधिक प्रचार किया। सैकड़ों-हजारों व्यक्ति उनके शिष्य तथा भक्त बने। लाखों स्त्री-पुरुषों के दु:ख-दारिद्रय, रोग-शोक, चिंता-मोह आदि को उन्होंने अपने आशीर्वाद से दूर कर दिया। उन्होंने कामरूप तथा नेपाल देश में भी भ्रमण करके नाथ संप्रदाय का प्रचार किया। मत्स्येंद्रनाथजी ने विभिन्न स्थानों पर अनेक प्रकार के चमत्कार प्रदर्शित किए। उनमें से कुछ का वर्णन इसी पुस्तक के विभिन्न अध्यायों में अलग-अलग किया गया है। मत्स्येंद्रनाथजी के अलौकिक चमत्कारों की कहानियां भारतवर्ष के घर-घर में सुनने को मिला करती हैं। तिब्बत देश में मत्स्येंद्रनाथजी ने 'लुईपाद' नाम से आदि सिद्ध के रूप में प्रसिद्धि प्राप्त की।

संवत् अठारह सौ चौरासी में मत्स्येंद्रनाथजी ने मढ़ी नामक स्थान में जीवित समाधि ले ली, परंतु उनके भक्तों का यह विश्वास है कि वे आज भी संसार में सर्वत्र विचरण करते रहते हैं और अपने भक्तों को समय-समय पर दर्शन भी दिया करते हैं।

नवनाथ चरित्र सागर

भाग-3
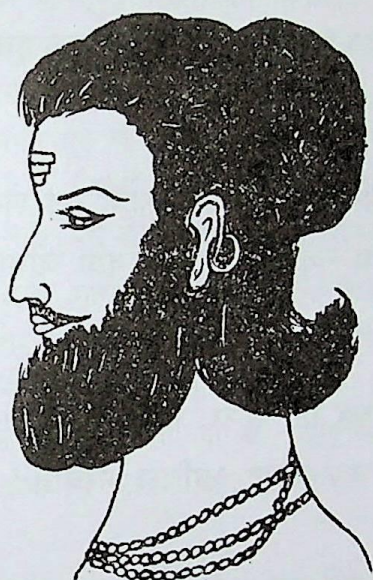
श्री गोरखनाथ-चरित्र

(हरिनारायण के अवतार)

''उत्तराखण्ड जाइवा मुनफिल खाइवा, ब्रह्म अगानि पहिरवा चीरं।
निर्भर झरणों अमृत झरिया, यूं मन हूवा थीरं।।''

☆☆☆

''भणंत गोरखनाथ काया गढ़ लेवा।
काया गढ़ लेवा, जुगि जुगि जीवा।।''

☆☆☆

''यह तन सांच, सांच का घरवा।
रूध्र पलट अमीरस भरवा।।''

☆☆☆

''कंदर्प रूप काया का मंडण अविर्था कांइ उलीचौ।
गोरख कहै सुणौ रे भौंदू, अरंड अभी कत सींचौ।।''

गोरखनाथ का जन्म

नाथयोगियों में गोरखनाथ का यश सर्वाधिक प्रसारित हुआ। आज से लगभग एक सहस्र वर्ष पूर्व (विक्रम संवत्) की दसवीं शताब्दी में इनका जन्म हुआ था। जगद्गुरु शंकराचार्य के बाद के धर्म-प्रचारकों में गोरखनाथ का नाम अग्रगण्य है। इनकी लिखी हुई लगभग चालिस पुस्तकें पाई जाती हैं। मत्स्येंद्रनाथ के शिष्यों में गोरखनाथ का स्थान मुख्य था और यशकीर्ति में तो वे अपने गुरु से भी बहुत आगे बढ़ गए थे। भारतवर्ष की ऐसी कोई भाषा नहीं है, जिसमें किसी-न-किसी रूप में गोरखनाथ का उल्लेख न हुआ हो। नाथ-पंथ के प्रचारकों में वे सबके नेता माने जाते हैं।

गोरखनाथ का जन्म मत्स्येंद्रनाथजी के आशीर्वाद से हुआ था। वे हरिनारायण के अवतार थे। मत्स्येंद्रनाथजी ने चंद्रगिरि गांव की निवासिनी सरस्वती नामक वंध्या स्त्री को संतान-प्राप्ति के उद्देश्य से सूर्य-मंत्र द्वारा अभिमंत्रित भस्म खाने के लिए दी थी, परंतु सरस्वती ने उसे अपनी पड़ोसन स्त्रियों की बातों में आकर गांव के बाहर एक गोबर के गड्ढे में डाल दिया था।

फिर भी अमोघ मंत्र द्वारा अभिमंत्रित भस्म का प्रभाव निष्फल कैसे रह जाता? गोरखनाथ ने अयोनिध रूप में उसी गड्ढे के भीतर जन्म लिया। बारह वर्ष बाद मत्स्येंद्रनाथ ने चंद्रगिरि गांव में दोबारा जाकर बालक को गड्ढे से जीवित अवस्था में बाहर निकाला और उसका नाम गोरखनाथ रखा– इस कथा का पिछले अध्याय में विस्तारपूर्वक वर्णन किया जा चुका है। सूर्य-मंत्र से अभिमंत्रित भस्म द्वारा जन्म लेने के कारण ही गोरखनाथ को सूर्य-पुत्र भी कहा जाता था।

इस अध्याय में उन्हीं गोरखनाथजी के विविध चरित्रों का वर्णन किया जाएगा।

गुरु-भक्ति की परीक्षा

मत्स्येंद्रनाथ चंद्रगिरि गांव से गोरखनाथ को अपने साथ लेकर तीर्थाटन के लिए निकल पड़े।

जगन्नाथजी की यात्रा को जाते समय मार्ग में कनकगिरि नामक एक गांव पड़ा। मत्स्येंद्रनाथ ने एक दिन के लिए वहीं पर ठहरने का निश्चय किया।

दोनों गुरु-शिष्य गांव के बाहर एक स्थान पर ठहर गए। वहां मत्स्येंद्रनाथजी के मन में गोरखनाथ की गुरु-भक्ति की परीक्षा लेने का विचार उत्पन्न हुआ। अस्तु, उन्होंने गोरखनाथ से इस प्रकार कहा– ''बेटा गोरखनाथ! इस समय मुझे बहुत भूख लग रही है, तुम गांव में जाकर मेरे लिए भिक्षा मांग लाओ।''

गुरु की आज्ञा पाकर गोरखनाथ भिक्षा मांगने के लिए गांव में जा पहुंचे। उस दिन गांव के एक ब्राह्मण के घर में श्राद्ध था। उसके उपलक्ष में ब्रह्मभोज को आयोजन किया गया था।

गोरखनाथ ने उसी ब्राह्मण के घर के दरवाजे पर पहुंचकर 'अलख' शब्द का उच्चारण किया। ब्राह्मणी ने जब यह देखा कि कोई अतिथि द्वार पर भिक्षा मांगने के लिए आया हुआ है तो वह अत्यंत प्रसन्न हुई और अनेक प्रकार के व्यंजन लेकर गोरखनाथ को भिक्षा देने के लिए पहुंच गई।

गोरखनाथ भिक्षा लेकर गुरुजी के पास लौट गए। मत्स्येंद्रनाथ ने उस संपूर्ण सामग्री का बड़े प्रेम के साथ भोजन किया। तत्पश्चात् उन्होंने भोजन-सामग्री की प्रशंसा करते हुए गोरखनाथ से कहा– ''हे पुत्र! यह रसोई अत्यंत स्वादिष्ट थी। इसमें जो बड़े थे, वे तो मुझे बहुत ही रुचिकर लगे। बड़ों की ओर से मेरी इच्छा अभी तृप्त नहीं हुई है। यदि तुम एक-दो बड़े और मांगकर ला सको तो मुझे संतोष प्राप्त हो जाएगा।''

गुरुजी की बात सुनकर गोरखनाथ दोबारा उसी ब्राह्मणी के दरवाजे पर भिक्षा मांगने के लिए जा पहुंचे और 'अलख-अलख' शब्द का उच्चारण करने लगे।

जोगी को पुनः आया हुआ देखकर गृह-स्वामिनी को अत्यंत क्रोध आया। उसने गोरखनाथ के पास पहुंचकर अत्यंत तिरस्कार भरे स्वर में

कहा– ''अभी कुछ देर पहले ही तो तुम यहां से भिक्षा लेकर गए थे। मैंने तुम्हें पर्याप्त मात्रा में भोजन-सामग्री भेंट की थी। अब तुम दोबारा मांगने के लिए क्यों आ गए हो?''

यह सुनकर गोरखनाथ ने अत्यंत नम्रतापूर्वक उत्तर दिया– ''हे माता! आपने जो भोजन-सामग्री दी थी, उसे खाकर मेरे गुरु महाराज अत्यंत संतुष्ट हुए हैं। चूंकि उन्हें आपके दिए हुए बड़े बहुत रुचिकर लगे, इसलिए उन्होंने मुझे एक-दो बड़े और लाने के लिए भेजा है। यदि आप मुझे एक-दो बड़े और दे दें तो बड़ी कृपा होगी।''

ब्राह्मणी बोली– ''तुम यह सब क्या कह रहे हो, मेरी तो कुछ समझ में ही नहीं आया। लगता है, तुम सच्चे जोगी न होकर कोई लोभी पुरुष हो, जो ऐसा वेष बनाए हुए घूमते फिरते हो। इस प्रकार मुफ्त का मांगकर खाने में क्या तुम्हें लज्जा नहीं आती?''

गोरखनाथ ने हाथ जोड़कर कहा– ''हे माता! मैं अपने लिए कुछ नहीं मांग रहा, अपने गुरु के लिए मांगता हूं। आप कृपा कर मुझे एक बड़ा और दे दीजिए तथा उसके बदले जो चाहें, वह मुझसे मांग लीजिए। मैं आपकी मांग को अवश्य पूरा करूंगा।''

यह सुनकर तो ब्राह्मणी और भी अधिक भभक उठी और बोली– ''स्वयं तो भीख मांगने निकले हो और दूसरों को दान देने की बात करते हो। अच्छा, मेरे पास एक बड़ा है। वह मैं तुम्हें दे दूंगी, परंतु उसके बदले में मुझे तुम्हारी एक आंख चाहिए।''

ब्राह्मणी के मुख से यह शब्द ज्योंहि निकले, त्योंहि गोरखनाथ ने अपनी उंगलियों को आंख में डालकर एक पुतली बाहर खींच ली और उसे ब्राह्मणी की ओर बढ़ाते हुए बोले– ''लो माता! तुम्हारी मांग मैंने पूरी कर दी। अब तुम बड़ा ले आओ।''

गोरखनाथ की आंख से रक्त की धार बह रही थी, परंतु वे निर्विकार भाव से अपने स्थान पर खड़े हुए थे। इस दृश्य को देखते ही ब्राह्मणी की घिग्घी बंध गई। वह उलटे पांवों दौड़ी हुई घर के भीतर गई और एक बड़ा लाकर गोरखनाथ के हाथ पर रख दिया। फिर तुरंत ही उसने घर के भीतर जाकर दरवाजा बंद करके सांकल लगा ली। गोरखनाथ– ''माई! इस आंख को लेजा।'' कहते हुए ही रह गए।

एक हाथ में बड़ा लेकर और दूसरे हाथ में अपनी आंख का डेला लिये हुए गोरखनाथ गुरु के समीप जा पहुंचे। गुरुजी को आंख की बाबत कुछ पता न चले, इसलिए गोरखनाथ ने डेला निकली हुई आंख के स्थान पर पट्टी बांध ली थी।

गोरखनाथ को आंख पर पट्टी बांधे हुए देखकर मत्स्येंद्रनाथ ने प्रश्न किया– "गोरख! तुम्हारी आंख में क्या हो गया है?"

गोरखनाथ ने बात को टालने के उद्देश्य से उत्तर दिया– "कोई खास बात नहीं है।"

"फिर भी क्या हुआ है?" मत्स्येंद्रनाथ ने पूछा– "साफ-साफ बताते क्यों नहीं हो?"

यह सुनकर गोरखनाथ ने आदि से अंत तक सब घटना कह सुनाई।

मत्स्येंद्रनाथ उसे सुनकर अत्यंत प्रसन्न हुए। उन्हें पूर्ण रूप से विश्वास हो गया कि मेरा यह शिष्य मेरे लिए अपने प्राणों तक का उत्सर्ग कर सकता है।

तत्पश्चात् मत्स्येंद्रनाथ ने मंत्र पढ़कर गोरखनाथ के आंख के डेले को यथास्थान लगा दिया। आंख ज्यों-की-त्यों हो गई और कष्ट भी दूर हो गया।

फिर मत्स्येंद्रनाथ ने गोरखनाथ को अनेक आशीर्वाद देते हुए कहा– "हे पुत्र! संसार में तुम्हारा यश मुझसे भी अधिक प्रकाशित होगा। तुम नाथ-पंथ के सिद्धों के नेता माने जाओगे। तुम्हारे द्वारा भूमंडल पर धर्म का व्यापक प्रचार होगा। मैंने गुरु-भक्ति की परीक्षा लेने के लिए तुम्हें दोबारा बड़ा मांगने के लिए भेजा था। उस परीक्षा में तुम सफलतापूर्वक उत्तीर्ण हुए हो।"

लगभग एक मास तक गुरु-शिष्य उसी स्थान पर रहे। मत्स्येंद्रनाथजी ने गोरखनाथ को सब प्रकार की शास्त्र-विद्या में प्रवीण बना दिया तथा अनेक प्रकार के मंत्र एवं सिद्धियां भी प्रदान कीं।

गहिनीनाथ का जन्म

चंद्रगिरि से चलकर मत्स्येंद्रनाथ तथा गोरखनाथ कनकगिरि नामक गांव में जाकर ठहरे। वहां रहकर मत्स्येंद्रनाथ ने गोरखनाथ को चारों वेद, छहों शास्त्र, मीमांसा, दर्शन, न्याय, धर्मशास्त्र, पुराण आदि का ज्ञान कराया। सभी अस्त्रों को उपयोग करना सिखाया तथा मृतसंजीविनी एवं सांबरी विद्या को पक्का कराया।

मत्स्येंद्रनाथ ने नरसिंह, कालिका, नंदा, महिषमर्दिनी, श्रीराम, हनुमान, वेताल, जटाधारी, गणपति, सूर्य, बावनवीर आदि सभी देवता, ईश्वर के अवतार, भूत-प्रेत, पिशाच, यक्ष, राक्षस, वीरभद्र, शिवगण तथा देवियों के दर्शन कराए एवं उनसे आशीर्वाद दिलाया। इस प्रकार गोरखनाथ सभी विद्याओं में पारंगत हो गए।

एक दिन मत्स्येंद्रनाथजी भिक्षा मांगने के लिए गांव में गए हुए थे और गोरखनाथ संजीवनी विद्या का पाठ कर रहे थे। उसी समय गांव के कुछ लड़के खेलते हुए गोरखनाथ के पास आ पहुंचे। वे अपने हाथ में गीली मिट्टी लिये हुए थे और उससे कोई खिलौना बनाना चाहते थे।

बालकों ने गोरखनाथ के पास पहुंचकर कहा– "साधु बाबा! आप इस मिट्टी से हमारे लिए एक गाड़ी बना दीजिए।" गोरखनाथ ने उत्तर दिया– "मुझे गाड़ी बनाना नहीं आता।" यह सुनकर उन लड़कों ने जैसे-तैसे एक गाड़ी तैयार कर ली, परंतु गाड़ी के लिए गाड़ीवान की भी जरूरत थी, वह बालकों से नहीं बन सका। तब उन्होंने गोरखनाथ से दुबारा कहा– "हे बाबा! गाड़ी तो हम लोगों ने बना ली, परंतु गाड़ीवान हमसे नहीं बनता। इसलिए आप गाड़ीवान बना देने की कृपा कीजिए।"

गोरखनाथ को बच्चों पर दया आ गई। उन्होंने गीली मिट्टी लेकर गाड़ीवान बनाना आरंभ कर दिया। गाड़ीवान को बनाते समय भी गोराखनाथ संजीवनी मंत्रों का जाप करते जा रहे थे, अतः जैसे ही गाड़ीवान बनकर तैयार हुआ तो वह मात्र मिट्टी का खिलौना न होकर सजीव बालक बन गया। उसके शरीर में हड्डी, चमड़ा, मांस तथा प्राण सभी कुछ थे। दैवेच्छा से उस पुतले में करभंजन नारायण का प्रवेश हो गया था।

बालकों ने जब मिट्टी के पुतले को सजीव होते हुए देखा तो वे सब भयभीत होकर 'भूत, भूत' कहते हुए भाग खड़े हुए। गोरखनाथ स्वयं भी इस चमत्कार के विषय में कुछ नहीं समझ सके। उन्होंने उस बालक को अपने पास बैठा लिया।

बच्चे 'भूत-भूत' चिल्लाते हुए गांव में जा पहुंचे। उनके द्वारा गांवभर में यह चर्चा फैल गई कि गांव के बाहर ठहरे हुए योगी ने मिट्टी के द्वारा एक जीवित बालक को उत्पन्न कर दिया है।

गांव में भिक्षा मांगने के लिए गए हुए मत्स्येंद्रनाथ के कानों में भी यह चर्चा पहुंची। उन्होंने ध्यान-दृष्टि से तुरंत जान लिया कि करभंजन नारायण ने अवतार ले लिया है। वे लौटकर गोरखनाथ के पास पहुंचे। वहां गोरखनाथ ने संपूर्ण घटना कही। उसे सुनकर मत्स्येंद्रनाथ ने उत्तर दिया– "हे पुत्र! तुम पुतला बनाते समय संजीवन मंत्रों का पाठ कर रहे थे, इसीलिए तुम्हारे निमित यह करभंजन नारायण का अवतार हुआ है।" इतना कहकर मत्स्येंद्रनाथ ने उस बालक के मस्तक पर हाथ रखकर आशीर्वाद दिया तथा उसका नाम गहिनीनाथ रखा और फिर उसे गाय का दूध पिलाया।

गहिनीनाथ को सौंपना

संपूर्ण गांव में यह चर्चा फैल चुकी थी कि योगी ने मिट्टी के द्वारा जीवित बालक को उत्पन्न किया है। अतः गांव के सभी स्त्री-पुरुष उस आश्चर्यमय बालक को देखने के लिए उस स्थान पर पहुंच गए जहां मत्स्येंद्रनाथ तथा गोरखनाथ ठहरे हुए थे। उस दिव्य-तेजस्वी बालक को देखकर सबको अत्यंत प्रसन्नता हुई। लोगों ने मत्स्येंद्रनाथजी से आग्रह किया कि वे गहिनीनाथ को गांव में ही छोड़ जाएं। गुरु-शिष्य ने लोगों की इस प्रार्थना को स्वीकार कर लिया।

उस गांव में 'मधुनाभा' नामक एक ब्राह्मण रहता था। उसकी पत्नी का नाम 'गंगा' था। दोनों पति-पत्नी धर्मपरायण, दयालु, उदार तथा सद्गुणी थे। उनके कोई संतान भी नहीं थी। अतः बालक उन्हीं को दे दिया गया।

तत्पश्चात् मत्स्येंद्रनाथ तथा गोरखनाथ मधुनाभा ब्राह्मण के घर गए और उससे कहा– "यह कोई बालक नहीं है। यह करभंजन नारायण का अवतार और देवअंश से उत्पन्न है। गहिनीनाथ के रूप में साक्षात् भगवान शंकर तुम्हारे घर में पधारे हैं। ये तुम्हारे घर तथा कुल को पवित्र कर देंगे। यह बालक आगे चलकर प्रख्यात सिद्ध योगी होगा तथा भविष्य में निवृत्तिनाथ इसे अपना शिष्य बनाएंगे। तुम इसका सावधानी तथा प्रेम सहित पालन-पोषण करना।"

यह कहकर मत्स्येंद्रनाथ ने मोहनास्त्र से अभिमंत्रित भस्म गंगाबाई के ऊपर डाली, जिस कारण गंगाबाई के मन में उस बालक के प्रति अत्यधिक मोह उत्पन्न हो गया तथा उसके स्तनों में दूध उतर आया। उसने बालक को अपनी छाती से लगाते हुए कहा– "हे योगिराज! आप निश्चिंत रहें। मैं इस बालक को अपने बच्चे से भी अधिक समझकर लालन-पालन करूंगी।"

मत्स्येंद्रनाथ तथा गोरखनाथ यह सुनकर संतुष्ट हुए। फिर मत्स्येंद्रनाथ ने चलते समय गंगाबाई से कहा कि हम बारह वर्ष बाद फिर यहां आएंगे। उस समय गोरखनाथ इस बालक को विद्या सिखाएगा तथा दीक्षा देगा।"

गोरखनाथ बदरिकाश्रम में

मिट्टी से बने हुए बालक को जीवित देखकर गांव के बच्चे भयभीत हो गए थे और गोरखनाथ भी यह नहीं समझ पाए थे कि ऐसी अघटित घटना कैसे घट गई। अत: गोरखनाथ की विद्या तथा अनुभव को कच्चा समझकर मत्स्येंद्रनाथ ने उन्हें यह सम्मति दी कि तुम बदरिकाश्रम में जाकर शिवजी का ध्यान करके उनका आशीर्वाद प्राप्त करो। तब तुम्हारी विद्या पक्की हो जाएगी।

गुरु की आज्ञा पाकर गोरखनाथ बदरिकाश्रम को चल दिए और मत्स्येंद्रनाथ तीर्थाटन करने के लिए अलग चले गए।

बदरिकाश्रम में जाकर गोरखनाथ ने एक वृक्ष के नीचे लोहे के कांटों पर खड़े होकर बारह वर्ष तक कठिन तपस्या की, जिसके फलस्वरूप

शंकरजी ने प्रसन्न होकर दर्शन दिए और यह आशीर्वाद प्रदान किया कि तुम्हारी सीखी हुई विद्या परिपक्व हो जाएगी।

कानीफानाथ से भेंट

शिवजी से वरदान पाकर गोरखनाथ तीर्थयात्रा करने को चल दिए। गुरु मत्स्येंद्रनाथ इस समय कहां हैं, यह उन्हें ज्ञात नहीं था।

जगन्नाथजी के दर्शन करने के बाद जब गोरखनाथ राजा गोपीचंद की राजधानी हेलापट्टन नगर से होकर लौट रहे थे, तभी मार्ग में एक नाथ-पंथी सिद्ध योगी से उनकी भेंट हुई। उस योगी का नाम कानीफानाथ था।

नाथपंथी योगी जब एक-दूसरे से मिलते हैं तो वे परस्पर 'आदेश' कहकर नमस्कार करते हैं। कानीफानाथ उस समय गलीचे पर बैठे हुए थे। गोरखनाथ 'आदेश' कहते हुए उनके सामने जाकर खड़े हुए तो कानीफानाथ प्रत्युत्तर में 'आदेश' कहकर उठ खड़े हुए। उन्होंने गोरखनाथ को अपने पास बैठाया। कानीफानाथ जालंधरनाथ के शिष्य थे। ये त्रिया. राज्य में मत्स्येंद्रनाथ से भेंट करके आए थे, यह बात पिछले अध्याय में लिखी जा चुकी है।

कानीफानाथ ने गोरखनाथ का नाम सुना था, परंतु उन्होंने गोरखनाथ का कोई चमत्कार नहीं देखा था, इसलिए उन्होंने गोरखनाथ की परीक्षा लेने का विचार किया।

उस समय ग्रीष्म ऋतु थी। आम के वृक्षों पर फल लगे हुए थे। कानीफानाथ ने मेहमाननवाजी करने के उद्देश्य से गोरखनाथ से कहा- "मैं आपके खाने के लिए पके हुए आम वृक्ष से तुड़वाकर मंगाता हूं।"

यह सुनकर गोरखनाथ ने उत्तर दिया- "खटपट करने की आवश्यकता नहीं है। मैं इस समय कुछ नहीं खाना चाहता।"

कानीफानाथ बोले- "इसमें खटपट की क्या बात है? मेरा शिष्य अभी तोड़ लाएगा।"

गोरखनाथ ने कहा- "इतना परिश्रम करने की जरूरत क्यों? इस समय तो आपके शिष्य यहां हैं, परंतु यदि किसी समय कोई शिष्य उपस्थित न

हो तो उस समय आप क्या करेंगे? आप अपनी विद्या के प्रताप से आम के फल मंगवाकर यहीं हाजिर कीजिए। आपके गुरु के प्रभाव से यह कोई असंभव बात न होगी। इस प्रकार आए हुए आमों को मैं खा लूंगा।''

कानीफानाथ को अपनी विद्या प्रदर्शित करने का अवसर मिला। उन्होंने कहा-- ''अच्छी बात है, मैं विद्या के प्रभाव से आमों को यही मंगा देता हूं।'' यह कहकर कानीफानाथ ने विभक्तास्त्र मंत्र तथा आकर्षण मंत्र से भस्म अभिमंत्रित करके आम के वृक्ष की ओर फेंकी। उसके प्रभाव से पके हुए आम अपने आप टूटकर कानीफानाथ के सामने आ उपस्थित हुए। तब दोनों ने हाथ-मुंह धोकर उनका सेवन किया।

इस बार गोरखनाथ ने अपनी विद्या को प्रदर्शित करने का निश्चय किया। वे कानीफानाथ से बोले– ''आपने तो मेरा आतिथ्य कर दिया। अब मैं थोड़े से फल मंगाता हूं, उन्हें आप सेवन कीजिएगा।''

यह कहकर गोरखनाथ ने विभक्तास्त्र तथा आकर्षणास्त्र मंत्र से अभिमंत्रित भस्म को दूर लवंग वन की ओर फेंका। थोड़ी ही देर में भांति-भांति के फल आकर उपस्थित हो गए। दोनों योगियों ने उन्हें प्रेमपूर्वक खाया, परंतु फिर भी बहुत से फल शेष बच गए।

तब गोरखनाथ ने कानीफानाथ से कहा– ''इन बाकी बचे हुए फलों को आप इनके पौधों पर वापस भेजकर जहां-के-तहां लटका दीजिए।''

यह सुनकर कानीफानाथ ने उत्तर दिया– ''टूटे हुए फलों को दोबारा वापस भेजकर उनके पौधों पर लटकाना असंभव है। ऐसा न तो कभी पहले किया जा सका है और न आगे ही किया जा सकता है।''

इस पर गोरखनाथ ने उत्तर दिया– ''जिस व्यक्ति के गुरु परिपूर्ण होते हैं, उसके लिए कुछ भी कर दिखाना असंभव नहीं होता। पूरे गुरु का चेला तो दूसरे ब्रह्मा को भी उत्पन्न कर सकता है। खैर, मैं अपने गुरु की कृपा से जो चाहूं, वह करके दिखा सकता हूं।''

अपने गुरु की निंदा सुनकर कानीफानाथ को क्रोध आ गया। वे बोले– ''तुम्हारे गुरु जैसे हैं, वह मैं अच्छी तरह जानता हूं। मैं त्रियाराज्य से लौटकर आ रहा हूं। वहां मैंने तुम्हारे गुरु मत्स्येंद्रनाथ को स्त्रियों के

मोहजाल में पड़कर विषय-विलास में फंसे हुए देखा है। उन्होंने हम सब नाथयोगियों की प्रतिष्ठा को धूल में मिला दिया है। तुम ऐसे गुरु की कृपा से, जो दूसरा ब्रह्मा तक उत्पन्न कर देने की बात कह रहे हो, उसमें कितनी सच्चाई हो सकती है, यह मैं खूब समझता हूं। खैर, अब तुम ऐसी घमंड की बात छोड़कर यहां से अपना रास्ता पकड़ो।''

कानीफानाथ से विदाई

कानीफानाथ के मुख से अपने गुरु की निंदा सुनकर गोरखनाथ ने भी कुछ क्रुद्ध होते हुए कहा– ''हे कानीफानाथ! तुम्हारे गुरु जालंधरनाथ कितने शक्तिमान हैं, यह बात मैं भी अच्छी तरह जानता हूं। गौड़ बंगाल देश के हेलापट्टन नगर में राजा गोपीचंद ने तुम्हारे गुरु को गड्ढे में डाल रखा है। दस वर्ष से वे उस गड्ढ़े के भीतर पड़े हुए हैं। उस गड्ढे को घोड़ों की लीद से भर दिया गया है और उस लीद के भीतर दबे हुए तुम्हारे गुरुजी बाहर निकल पाने तक में समर्थ नहीं हैं, परंतु मेरे गुरु इस प्रकार के नहीं हैं। मैं अपने गुरु की कृपा से तुम्हें अपना चमत्कार दिखाता हूं और इन टूटे हुए फलों को उनके पौधों पर वापस भेजकर ज्यों-का-त्यों लटकाए देता हूं।''

यह कहकर गोरखनाथ ने संजीवन मंत्र द्वारा अभिमंत्रित भस्म को उन फलों के ऊपर छिड़का। भस्म का स्पर्श होते ही वे सब फल अपने आप उड़कर अपने-अपने पौधों से पूर्ववत् जा लगे।

कानीफानाथ को यह देखकर महान आश्चर्य हुआ। वे समझ गए कि गोरखनाथ विद्या में मुझसे कहीं अधिक बड़े-चढ़े हैं तथा पूरे गुरु के शिष्य हैं। अपनी भूल का ज्ञान होने पर वे गोरखनाथ के आगे झुक गए और उनकी महिमा का बखान करते हुए कहने लगे– ''आपमें अपार शक्ति है, इसका ज्ञान मुझे हो गया। आपके यहां आने से मुझे दूसरा लाभ यह हुआ है कि मुझे अपने गुरु जालंधरनाथ का भी पता लग गया। मैं उन्हें बहुत दिनों से ढूंढ रहा था।''

यह सुनकर गोरखनाथ हंसकर बोले– ''यह भेंट हम दोनों के लिए लाभदायक रही। तुम्हें अपने गुरु का पता चल गया और मुझे तुम्हारे

द्वारा अपने गुरु के संबंध में ज्ञात हो गया। मैं भी अपने गुरु की तलाश कर रहा था।''

इसके बाद दोनों योगी एक-दूसरे से विदा लेकर अपने-अपने गुरु से मिलने के लिए चल दिए।

मैनाकिनी और उपरिक्षवसु की कथा

त्रियाराज्य की रानी मैनाकिनी के संबंध में पिछले अध्याय में बताया जा चुका है कि वह सिंहलद्वीप की निवासिनी पद्मिनी जाति की स्त्री थी। एक बार वह अपने मकान की छत पर खड़ी हुई थी। उसी समय उपरिक्षवसु अपने विमान में बैठे हुए उधर से निकले। अचानक ही हवा के झोंके से वसु के शरीर का वस्त्र अपने स्थान से हट गया, जिस कारण उनका गुप्तांग दिखाई दे गया। मैनाकिनी की दृष्टि उनके उघड़े हुए गुप्तांग पर पड़ी तो उसे हंसी आ गई। उस समय उपरिक्षवसु ने क्रुद्ध होकर उसे शाप देते हुए यह कहा– ''हे निर्लज्जा स्त्री! तू त्रियाराज्य में जा पड़। वहां तुझे किसी पुरुष को देखने का अवसर नहीं मिलेगा।''

इस शाप को सुनकर जब मैनाकिनी ने अपने अपराध की क्षमा मांगी तथा बहुत रोई-गिड़गिड़ाई, तब वसु ने प्रसन्न होकर यह कहा– ''हे पद्मिनी! त्रियाराज्य की वर्तमान रानी तिलोत्तमा के मरने पर तू वहां की रानी बनेगी और मेरा पुत्र मत्स्येंद्रनाथ वहां आकर तुझे पति-सुख प्रदान करेगा। उससे तुझे 'मीननाथ' नामक एक बालक की प्राप्ति होगी। उसके बाद मत्स्येंद्रनाथ तुझे छोड़कर चला जाएगा और अंत में तू स्वर्ग के सुख का उपभोग करेगी।''

यह सुनकर मैनाकिनी ने पूछा– ''हे देव! जब स्त्रीराज्य में सब स्त्रियां ही रहती हैं तो वहां संतति-क्रम किस प्रकार चलता है।''

उपरिक्षवसु ने उत्तर दिया– ''स्त्री-राज्य में वायुपुत्र हनुमान प्रतिदिन जाते हैं। उनकी गर्जना के शब्द मात्र से ही उस राज्य में रहने वाली स्त्रियों की कामवासना शांत हो जाती है और उन्हें गर्भ ठहर जाता है। उनमें जो पुरुष-गर्भ होता है, वह तो नष्ट (स्रावित) हो जाता है और जो स्त्री-गर्भ

होता है, उससे लड़की का जन्म हो जाता है। इस प्रकार वहां का संतति क्रम निरंतर चलता रहता है।''

उपरिक्षवसु द्वारा यह जानकर मैनाकिनी ने पूछा– ''जब उस स्त्रीराज्य में कोई पुरुष जा ही नहीं सकता, तब मत्स्येंद्रनाथ वहां कैसे पहुंचेंगे?''

उपरिक्षवसु ने उत्तर देते हुए कहा– ''इसके लिए तुम्हें तपस्या करनी पड़ेगी। तुम हनुमानजी का तप करना। उससे प्रसन्न होकर जब हनुमानजी वर मांगने के लिए कहें, उस समय तुम उन्हें पहले वचन में बांधकर पीछे यह कहना कि मैं आपके साथ रति-विलास करना चाहती हूं। हनुमानजी ऊर्ध्वरेता ब्रह्मचारी हैं तथा उन्होंने माता के गर्भ से ही स्वर्ग-कौपीन के साथ जन्म लिया है। अस्तु, वे स्वयं तो ऐसा नहीं कर सकेंगे, परंतु तुम्हारी इच्छा पूर्ण करने के लिए मत्स्येंद्रनाथ को भेज देंगे। मत्स्येंद्रनाथ हनुमानजी की आज्ञा मानकर तुम्हारे पास आएंगे और वे तुम्हारी मनोकामना पूरी करेंगे।''

यह कहकर उपरिक्षवसु चले गए। उनके शाप के कारण मैनाकिनी त्रियाराज्य में पहुंच गई। वहां जाकर वह किस प्रकार रानी बनी, किस प्रकार हनुमानजी ने मत्स्येंद्रनाथ को उसके पास भेजा और किस प्रकार मत्स्येंद्रनाथ वहां जाकर रहने लगे तथा कैसे मीननाथ का जन्म हुआ, इस सबका वर्णन पिछले अध्याय में विस्तारपूर्वक किया जा चुका है।

गोरखनाथ की कलिंगा से भेंट

कानीफानाथ से विदा लेकर गोरखनाथ अपने गुरु मत्स्येंद्रनाथ की खोज में त्रियाराज्य की ओर चल दिए। जब वे त्रियाराज्य की सीमा पर पहुंच गए, तब एक स्थान पर बैठकर मन में विचार करने लगे कि मैं अपने गुरु से जाकर किस प्रकार मिलूं और उन्हें किस प्रकार समझा-बुझाकर यहां से वापस ले चलूं।

गोरखनाथजी जिस समय बैठे हुए विचार कर रहे थे, उसी समय कलिंगा नामक एक रूपवती वेश्या अपनी साजिंदा सखियों के साथ वहां आ पहुंची। गोरखनाथ ने उसे देखकर प्रश्न किया– ''हे माता! आप कहां जा रही हैं?''

कलिंगा ने उत्तर दिया– "त्रियाराज्य में।"

गोरखनाथ ने फिर पूछा– "आप वहां किसलिए जा रही हैं?"

कलिंगा बोली– "त्रियाराज्य की रानी मैनाकिनी संगीत-कला की बहुत प्रेमी है। कुछ वर्ष पूर्व उन्होंने पति प्राप्त किया था। उसी की खुशी में इन दिनों वे संगीत की सभा करा रही हैं। मैं उसी सभा में भाग लेने के लिए जा रही हूं। मुझे आशा है कि वे मेरी कला को देखकर प्रसन्न होंगी और मुझे पुरस्कार प्रदान करेंगी।"

गोरखनाथ बोले– "हे माता! आप मुझे भी साजिंदा के रूप में अपने साथ ले चलिए।"

यह सुनकर कलिंगा ने पूछा– "हे साधु महाराज! आप कुछ गाना-बजाना भी जानते हैं? यदि जानते हैं तो पहले मुझे सुनाइए।"

गोरखनाथ इसके लिए तैयार हो गए। वे एक वृक्ष के नीचे बैठ गए। कलिंगा की साजिंदाओं ने साजों के स्वर मिलाए। गोरखनाथ ने गंधर्व प्रयोग मंत्र द्वारा अभिमंत्रित भस्म को अपने कपाल पर लगाकर गाना आरंभ किया। उनके गायन को सुनकर कलिंगा और उसकी सखियां तो अलग, वन के पशु-पक्षी, लता और वृक्षादि भी झूमने लगे। यह देखकर कलिंगा आश्चर्यचकित रह गई।

उसने गोरखनाथजी से कहा– "हे महाराज! आपकी गायन कला अद्वितीय है, यह मैंने देख लिया। यदि आप मेरे साथ मैनाकिनी के दरबार में चलेंगे तो रानी आपका गाना सुनकर मुझे बहुत पुरस्कार देगी– इसमें कोई संदेह नहीं है। आप कृपा करके मुझे अपना नाम बताइए और कहिए कि आप त्रियाराज्य में क्यों जाना चाहते हैं।"

गोरखनाथ ने मन में सोचा कि यदि मैं इसे अपना यथार्थ परिचय दे दूंगा तो संभव है कि यह मुझे अपने साथ न ले जाए। अतः उन्होंने अपने नाम तथा उद्देश्य को गुप्त रखते हुए कहा– "हे माता! मेरा नाम 'पूर्वडाम' है। मैं बाल ब्रह्मचारी हूं, अतः मुझे स्त्री की कामना नहीं है। इसके अतिरिक्त मैं संन्यासी और भिक्षुक हूं, इसलिए मुझे धन-संपति भी नहीं चाहिए। पेट भरने के लिए भोजन मिल जाए, वही मेरे लिए बहुत

है। त्रियाराज्य कैसा है, यह देखने के लिए ही उसके भीतर प्रवेश करना चाहता हूं।''

कलिंगा बोली– ''हे महाराज! मुझे आपको अपने साथ ले चलने में कोई आपत्ति नहीं है, परंतु त्रियाराज्य में प्रतिदिन हनुमानजी आते हैं। उनकी गर्जना सुनकर यदि कोई पुरुष वहां उपस्थित होता है तो वह मर जाता है और स्त्रियां गर्भवती हो जाती हैं, परंतु उन्हें भी पुरुष-गर्भ नहीं ठहरता। इसलिए यदि आप वहां गए भी तो मर जाएंगे।''

गोरखनाथ ने कहा– ''हनुमानजी की गर्जना से मेरा बाल भी बांका नहीं होगा, इस संबंध में आप निश्चिंत रहें। दूसरे, मेरे पास ऐसी योग-शक्ति है कि वहां पर हनुमानजी अथवा अन्य जो कोई भी मुझे देखेगा, उसे मैं स्त्रीरूप में दिखाई दूंगा। पुरुषरूप में किसी को नहीं दिखूंगा।

इस प्रकार गोरखनाथ द्वारा स्पष्टीकरण दिए जाने पर कलिंगा उन्हें अपने साथ ले जाने के लिए तैयार हो गई। कलिंगा अपनी सखियों के साथ रथ में बैठी। गोरखनाथ ने रथ को हांकना आरंभ किया। थोड़ी ही देर में वे लोग त्रियाराज्य के भीतर जा पहुंचे। वहां जाकर वे सब चिन्नापट्टन नामक एक स्थान में ठहर गए। खाना-पीना समाप्त करने के बाद कलिंगा अपनी सखियों के साथ सो गई। उस समय एक पहर रात्रि व्यतीत हो चुकी थी।

हनुमान का त्रियाराज्य में आगमन

त्रियाराज्य में पहुंचकर गोरखनाथ ने वज्रास्त्र, स्पर्शास्त्र, मोहनास्त्र तथा नागास्त्र की ऐसी योजना की कि जिसके कारा कोई अन्य व्यक्ति त्रियाराज्य के भीतर प्रवेश न कर सके।

उस समय हनुमानजी सेतुबंध रामेश्वर से चलकर त्रियाराज्य में प्रवेश करने के लिए आ पहुंचे। त्रियाराज्य की सीमा के बाहर ही गोरखनाथ के अस्त्रों ने उन्हें राज्य की सीमा में प्रवेश करने से रोक दिया।

सर्वप्रथम वज्रास्त्र आकर हनुमानजी की छाती में लगा, उसके कारण वे पृथ्वी पर गिर पड़े। फिर स्पर्शास्त्र ने आगे बढ़कर हनुमानजी को

पृथ्वी से चिपका दिया, जिस कारण उनका हिलना-डुलना बंद हो गया। तत्पश्चात् क्रमशः मोहनास्त्र एवं नागास्त्र ने हनुमानजी को मोहित करके नागपाश में बांध दिया।

अपनी यह हालत देखकर हनुमानजी ने रामचंद्रजी का स्मरण किया। रामचंद्रजी उसी समय वहां आ पहुंचे। हनुमानजी की उस हालत को देखकर रामचंद्रजी ने ध्यान-दृष्टि से संपूर्ण रहस्य को समझ लिया। फिर उन्होंने इंद्रास्त्र द्वारा वज्रास्त्र, विभक्तास्त्र द्वारा स्पर्शास्त्र, ज्ञानास्त्र द्वारा मोहनास्त्र तथा गरुड़ास्त्र द्वारा नागास्त्र का निवारण किया। जब हनुमान संकट-मुक्त हुए तो उन्होंने हाथ जोड़कर रामचंद्रजी से पूछा- "हे प्रभु! ऐसा कौन बलशाली व्यक्ति पृथ्वी पर उत्पन्न हुआ है, जिसने मेरी ऐसी दुर्दशा की?"

रामचंद्रजी बोले- "हे हनुमान! नाथयोगियों के अतिरिक्त पृथ्वी पर ऐसा कोई व्यक्ति नहीं है, जो तुम्हें संकट में डाल सके। हरिनारायण के अवतार तथा मत्स्येंद्रनाथ के शिष्य गोरखनाथ अपने गुरु को वापस ले जाने के लिए त्रियाराज्य में आए हैं। उन्होंने अपना प्रताप प्रदर्शित करने के लिए ही तुम्हारी यह दशा की थी।"

यह सुनकर हनुमान ने कहा- "हे प्रभु! मत्स्येंद्रनाथ तो मेरी आज्ञा मानकर मैनाकिनी के साथ भोग-विलास करने के लिए यहां आए हैं। यदि गोरखनाथ उन्हें यहां से ले गए तो समस्या खड़ी हो जाएगी। अतः आप कृपा करके मेरे साथ गोरखनाथजी के पास चलिए और उन्हें समझा-बुझाकर यहां से विदा कर दीजिए।"

हनुमान-गोरखनाथ भेंट

रामचंद्रजी तथा हनुमानजी ब्राह्मण का वेष बनाकर चिन्नापट्टन स्थान पर पहुंचे। कलिंगा तो अपनी सखियों के साथ सो रही थी, परंतु गोरखनाथ वहां आसन पर ध्यान लगाए हुए बैठे थे। ब्राह्मण वेषधारी राम-हनुमान ने उनके पास पहुंचकर नमस्कार किया। गोरखनाथ ने सम्मानपूर्वक अपने पास बैठाते हुए कहा- "हे ब्राह्मणो! आप इस अर्द्धरात्रि के समय मेरे पास कौन-सी इच्छा लेकर आए हैं? वह मुझे बताने की कृपा करें।"

है। त्रियाराज्य कैसा है, यह देखने के लिए ही उसके भीतर प्रवेश करना चाहता हूं।''

कलिंगा बोली– ''हे महाराज! मुझे आपको अपने साथ ले चलने में कोई आपत्ति नहीं है, परंतु त्रियाराज्य में प्रतिदिन हनुमानजी आते हैं। उनकी गर्जना सुनकर यदि कोई पुरुष वहां उपस्थित होता है तो वह मर जाता है और स्त्रियां गर्भवती हो जाती हैं, परंतु उन्हें भी पुरुष-गर्भ नहीं ठहरता। इसलिए यदि आप वहां गए भी तो मर जाएंगे।''

गोरखनाथ ने कहा– ''हनुमानजी की गर्जना से मेरा बाल भी बांका नहीं होगा, इस संबंध में आप निश्चिंत रहें। दूसरे, मेरे पास ऐसी योग-शक्ति है कि वहां पर हनुमानजी अथवा अन्य जो कोई भी मुझे देखेगा, उसे मैं स्त्रीरूप में दिखाई दूंगा। पुरुषरूप में किसी को नहीं दिखूंगा।

इस प्रकार गोरखनाथ द्वारा स्पष्टीकरण दिए जाने पर कलिंगा उन्हें अपने साथ ले जाने के लिए तैयार हो गई। कलिंगा अपनी सखियों के साथ रथ में बैठी। गोरखनाथ ने रथ को हांकना आरंभ किया। थोड़ी ही देर में वे लोग त्रियाराज्य के भीतर जा पहुंचे। वहां जाकर वे सब चिन्नापट्टन नामक एक स्थान में ठहर गए। खाना-पीना समाप्त करने के बाद कलिंगा अपनी सखियों के साथ सो गई। उस समय एक पहर रात्रि व्यतीत हो चुकी थी।

हनुमान का त्रियाराज्य में आगमन

त्रियाराज्य में पहुंचकर गोरखनाथ ने वज्रास्त्र, स्पर्शास्त्र, मोहनास्त्र तथा नागास्त्र की ऐसी योजना की कि जिसके कारा कोई अन्य व्यक्ति त्रियाराज्य के भीतर प्रवेश न कर सके।

उस समय हनुमानजी सेतुबंध रामेश्वर से चलकर त्रियाराज्य में प्रवेश करने के लिए आ पहुंचे। त्रियाराज्य की सीमा के बाहर ही गोरखनाथ के अस्त्रों ने उन्हें राज्य की सीमा में प्रवेश करने से रोक दिया।

सर्वप्रथम वज्रास्त्र आकर हनुमानजी की छाती में लगा, उसके कारण वे पृथ्वी पर गिर पड़े। फिर स्पर्शास्त्र ने आगे बढ़कर हनुमानजी को

पृथ्वी से चिपका दिया, जिस कारण उनका हिलना-डुलना बंद हो गया। तत्पश्चात् क्रमश: मोहनास्त्र एवं नागास्त्र ने हनुमानजी को मोहित करके नागपाश में बांध दिया।

अपनी यह हालत देखकर हनुमानजी ने रामचंद्रजी का स्मरण किया। रामचंद्रजी उसी समय वहां आ पहुंचे। हनुमानजी की उस हालत को देखकर रामचंद्रजी ने ध्यान-दृष्टि से संपूर्ण रहस्य को समझ लिया। फिर उन्होंने इंद्रास्त्र द्वारा वज्रास्त्र, विभक्तास्त्र द्वारा स्पर्शास्त्र, ज्ञानास्त्र द्वारा मोहनास्त्र तथा गरुड़ास्त्र द्वारा नागास्त्र का निवारण किया। जब हनुमान संकट-मुक्त हुए तो उन्होंने हाथ जोड़कर रामचंद्रजी से पूछा– "हे प्रभु! ऐसा कौन बलशाली व्यक्ति पृथ्वी पर उत्पन्न हुआ है, जिसने मेरी ऐसी दुर्दशा की?"

रामचंद्रजी बोले– "हे हनुमान! नाथयोगियों के अतिरिक्त पृथ्वी पर ऐसा कोई व्यक्ति नहीं है, जो तुम्हें संकट में डाल सके। हरिनारायण के अवतार तथा मत्स्येंद्रनाथ के शिष्य गोरखनाथ अपने गुरु को वापस ले जाने के लिए त्रियाराज्य में आए हैं। उन्होंने अपना प्रताप प्रदर्शित करने के लिए ही तुम्हारी यह दशा की थी।"

यह सुनकर हनुमान ने कहा– "हे प्रभु! मत्स्येंद्रनाथ तो मेरी आज्ञा मानकर मैनाकिनी के साथ भोग-विलास करने के लिए यहां आए हैं। यदि गोरखनाथ उन्हें यहां से ले गए तो समस्या खड़ी हो जाएगी। अत: आप कृपा करके मेरे साथ गोरखनाथजी के पास चलिए और उन्हें समझा-बुझाकर यहां से विदा कर दीजिए।"

हनुमान-गोरखनाथ भेंट

रामचंद्रजी तथा हनुमानजी ब्राह्मण का वेष बनाकर चिन्नापट्टन स्थान पर पहुंचे। कलिंगा तो अपनी सखियों के साथ सो रही थी, परंतु गोरखनाथ वहां आसन पर ध्यान लगाए हुए बैठे थे। ब्राह्मण वेषधारी राम-हनुमान ने उनके पास पहुंचकर नमस्कार किया। गोरखनाथ ने सम्मानपूर्वक अपने पास बैठाते हुए कहा– "हे ब्राह्मणो! आप इस अर्द्धरात्रि के समय मेरे पास कौन-सी इच्छा लेकर आए हैं? वह मुझे बताने की कृपा करें।"

यह सुनकर राम-हनुमान ने उत्तर दिया– "हे प्रभु! यदि आप हमें पहले वचन दें तो हम अपनी इच्छा प्रकट करें।"

पहले वचन देने की बात सुनकर गोरखनाथ का माथा ठनका। उसी समय उन्हें याद आया कि मैंने तो विभिन्न अस्त्रों के प्रयोग द्वारा त्रियाराज्य में किसी भी पुरुष के प्रवेश करने का मार्ग अवरुद्ध कर रखा था, उसके बाद भी ये लोग यहां चले आए और मुझसे वचन देने की मांग कर रहे हैं। इसमें अवश्य ही कोई-न-कोई रहस्य है। ये लोग साधारण ब्राह्मण नहीं हैं, अपितु ब्राह्मण के वेष में कोई देवता हैं, जो अपना कोई विशेष उद्देश्य पूरा करने के लिए इस समय यहां आए हैं।

यह विचारकर गोरखनाथजी बोले-- "पहले आप लोग अपना सच्चा परिचय तथा यथार्थ रहस्य प्रकट कीजिए, तभी मैं कुछ कह सकूंगा।"

श्रीराम तथा अनुमान समझ गए कि अब कपट करने से काम नहीं चलेगा। अतः रामचंद्रजी ने सत्य बात को प्रकट करते हुए कहा– "हे गोरखनाथ! मैं ब्राह्मण के वेष में रामचंद्र हूं और यह मेरा भक्त हनुमान है।"

गोरखनाथ ने यह सुनते ही दोनों के चरण स्पर्श किए। फिर कहा– "अब आप मुझे क्या आज्ञा देना चाहते हैं, वह कहिए।"

इस बार हनुमान बोले– "हे गोरखनाथ! मत्स्येंद्रनाथ यहां पर मेरी आज्ञा से आए हैं और तुम उन्हें ले जाने के लिए आए हो। इसलिए मैं यह चाहता हूं कि तुम उन्हें यहीं रहने दो और स्वयं वापस लौट जाओ।"

यह सुनकर गोरखनाथ ने उत्तर दिया– "हे हनुमानजी! मैं अपने गुरु को अब यहां नहीं छोड़ूंगा। उन्हें इस नरक से मुक्त करके ले जाऊंगा। उनके यहां रहने से संसार में सर्वत्र नाथ-पंथ की निंदा हो रही है। अतः इसके अतिरिक्त आप जो चाहें, वह आज्ञा मुझे दीजिए। आपकी इस इच्छा को मैं पूरा नहीं कर सकूंगा।"

गोरखनाथ के मुख से यह शब्द सुनकर हनुमानजी उनसे युद्ध करने को आतुर हो गए। इस बीच रामचंद्रजी ने भली-भांति अनुभव कर लिया था कि गोरखनाथ मत्स्येंद्रनाथ को यहां से ले जाए बिना नहीं मानेंगे। अतः उन्होंने हनुमान को गोरखनाथ के साथ युद्ध करने से रोकते हुए कहा– "हे हनुमान! क्या तुमने मत्स्येंद्रनाथ को जीवनभर त्रियाराज्य में रहने के लिए कहा था।"

हनुमानजी ने उत्तर दिया– "ऐसी बात तो नहीं थी।"

रामचंद्रजी बोले– "तब तुम्हें झंझट करने की आवश्यकता नहीं है। तुम्हारी आज्ञा मानकर मत्स्येंद्रनाथ यहां आकर बहुत समय रह चुके। अब यदि गोरखनाथ उन्हें ले जाना चाहते हैं तो ले जाएं। इनके साथ लौटना या न लौटना मत्स्येंद्रनाथ के अपने मन की बात होगी। तुम्हें शांत रहना चाहिए। तुम तो अब केवल इतना ही करो कि मैनाकिनी को गोरखनाथ के आने की सूचना दे दो।"

रामचंद्रजी का निर्णय सुनकर हनुमानजी शांत हो गए। तत्पश्चात् रामचंद्रजी अंतर्धान हो गए और हनुमानजी मैनाकिनी के पास चले गए।

मैनाकिनी से हनुमान का वार्तालाप

उस दिन अर्द्धरात्रि के समय रानी मैनाकिनी अपने पलंग पर अकेली सो रही थी। दासी आदि कोई उसके पास नहीं थी। हनुमानजी सूक्ष्म रूप धारण कर उसके पास जा पहुंचे। उन्होंने हाथ पकड़कर मैनाकिनी को जगाया। मैनाकिनी की आंख खुल गई। अपने सामने हनुमानजी को देखकर उसने प्रणाम किया। फिर आसन पर बैठाते हुए पूछा– "हे प्रभु! इस समय आपके आने का क्या कारण है?"

हनुमान जी बोले– "हे मैनाकिनी! मैंने तुम्हें वचन दिया था कि मत्स्येंद्रनाथ यहां आकर तुम्हारी रति-लालसा को पूरा करेंगे, सो मत्स्येंद्रनाथ बारह वर्ष से यहां रह रहे हैं। उन्होंने तुम्हें एक पुत्र भी दिया है, परंतु मत्स्येंद्रनाथ अब यहां से चले जाएंगे, क्योंकि उनका शिष्य गोरखनाथ उन्हें यहां से वापस ले जाने के लिए त्रियाराज्य में आ पहुंचा है। गोरखनाथ बहुत बड़ा योगी है। वह अपना कार्य सिद्ध करने के लिए आकाश-पाताल के कुलाबे मिलाकर एक कर देता है। संसार का कोई प्राणी उसका सामना नहीं कर सकता।

हे मैनाकिनी! गोरखनाथ को समझाने के लिए मैंने तथा रामचंद्रजी ने बहुत प्रयत्न किया, परंतु उसके ऊपर कोई असर नहीं हुआ। इसलिए मैं तुम्हें केवल यह सूचित करने के लिए आया हूं कि यदि तुम किसी प्रकार स्त्री-चरित्र दिखाकर गोरखनाथ को अपने वश में कर सको तो कर लेना, अन्यथा वह मत्स्येंद्रनाथ को यहां से वापस ले जाएगा।"

इतना कहकर हनुमानजी वहां से अंतर्धान हो गए।

गोरखनाथ राजदरबार में

चिन्नापट्टन से चलकर गोरखनाथ कलिंगा के साथ त्रियाराज्य की राजधानी श्रृंगमुरड नगर में जा पहुंचे। कलिंगा ने अपने आने की सूचना राजदरबार में भेज दी। वहां से हुक्म आ गया कि वह दरबार में उपस्थित होकर अपनी कला प्रदर्शित करे।

कलिंगा ने गोरखनाथ से कहा– "महाराज! अब आप अपनी योग-विद्या द्वारा स्त्रीरूप बना लें और मेरे साथ राजदरबार में चलें। गोरखनाथजी ने पलभर में ही मंत्र पढ़कर अपना स्वरूप स्त्री जैसा बना लिया। कलिंगा यह देखकर अत्यंत प्रसन्न हुई। वह गोरखनाथ तथा अपनी अन्य साजिंदाओं के साथ रथ में बैठकर राजदरबार में जा पहुंची।

राजदरबार में रत्नसिंहासन के ऊपर मत्स्येंद्रनाथ रानी मैनाकिनी के साथ विराजमान थे। उनकी वेषभूषा राजसी थी। ऐसा प्रतीत होता था, जैसे साक्षात् लक्ष्मी-नारायण सिंहासन पर बैठे हुए हों। कलिंगा ने अपनी सब सखियों के साथ राजा तथा रानी को नमस्कार किया। गोरखनाथ ने मन-ही-मन अपने गुरु को प्रणाम किया, तदुपरांत संगीत-गोष्ठी प्रारंभ हुई।

कलिंगा ने गाना आरंभ किया। उसका स्वर किन्नरों को भी लज्जित करने वाला था। अन्य साजिंदाओं ने सितार, वीणा, पखावज आदि वाद्यमंत्र बजाने आरंभ किए। स्त्रीरूपी गोरखनाथ मृदंग बजाने लगे।

चेत मछिंदर गोरख आया

संगीत-गोष्ठी का यौवन अपनी बहार पर जा पहुंचा। गोरखनाथ का मृदंग-वादन अनुपम था। वे जिस समय 'सम' पर 'थाप' लगाते थे, उस समय दरबार में सर्वत्र 'वाह-वाह' की आवाज गूंज उठती थी।

कुछ देर बाद गोरखनाथ ने अपने मृदंग की गत बदल दी। उसके साथ चलने वाला कलिंगा का नृत्य इंद्र की अप्सराओं के नृत्य को लज्जित करने लगा। उसके पांवों के घुंघरू ताल पर इस प्रकार थिरकने लगे कि चारों

ओर 'धन्य है, धन्य है' का स्वर गूंज उठा। मैनाकिनी और मत्स्येंद्रनाथ उसे देखकर मुग्ध हो गए।

इसी समय गोरखनाथ ने इस प्रकार मृदंग बजाना आरंभ किया कि उसमें से निकलने वाली ध्वनि में 'चेत मछिंदर गोरख आया', 'चेत मछंदर गोरख आया' शब्द स्पष्ट सुनाई देने लगे। ये शब्द मत्स्येंद्रनाथ के हृदय के भीतर प्रविष्ट हो गए और उन्हें स्पष्ट आभास हो गया कि गोरखनाथ यहां आ पहुंचा है। वे अपने सिंहासन से ऊपर-नीचे उठने-बैठने लगे। फिर उन्होंने मैनाकिनी के कान में धीरे से कहा– "हे मैनाकिनी! मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि यहां पर गोरखनाथ आ पहुंचा है।"

मैनाकिनी ने पूछा– "आपको यह कैसे मालूम हुआ?"

मत्स्येंद्रनाथ बोले– "इस मृदंग में से जो बोल निकल रहे हैं, उन्हें तुम ध्यान से सुनो तो सब कुछ स्पष्ट हो जाएगा।"

मैनाकिनी ने मृदंग की ध्वनि पर ध्यान दिया तो 'चेत मछिंदर गोरख आया' शब्द उसे भी स्पष्ट सुनाई देने लगा। मैनाकिनी ने परीक्षा लेने के लिए गोरखनाथ के स्थान पर अपने दरबार की मृदंग बजाने वाली स्त्री को बैठा दिया। जब उसने मृदंग बजाया तो वह शब्द निकलना बंद हो गया, परंतु जब गोरखनाथ ने दोबारा मृदंग को अपने हाथ में लिया तो वही शब्द फिर से निकलने लगा।

हनुमानजी मैनाकिनी को रात में ही चेतावनी दे गए थे कि गोरखनाथ अपने गुरु को वापस ले जाने के लिए त्रियाराज्य में आ पहुंचा है, अतः मैनाकिनी को यह समझते देर न लगी कि कलिंगा के साथ आई हुई स्त्री, जो मृदंग बजा रही है, वह स्त्री नहीं है, अपितु स्त्री के रूप में स्वयं गोरखनाथ ही हैं।

मैनाकिनी ने मृदंग बजाने वाली स्त्रीरूपी गोरखनाथ को रोककर कलिंगा सहित उसकी अन्य सभी साथियों को पुरस्कार देकर विदा कर दिया। संगीत-गोष्ठी समाप्त हो गई। दरबार भंग कर दिया गया।

गुरु-शिष्य की भेंट

कलिंगा आदि स्त्रियों के चले जाने तथा दरबार भंग जो जाने के बाद मैनाकिनी ने गोरखनाथ से कहा– "अब आप मुझे अपना सच्चा परिचय देने की कृपा करें।"

यह सुनकर गोरखनाथ अपने यथार्थ रूप में प्रकट हो गए और मैनाकिनी से कहने लगे– "हे रानी! मैं मत्स्येंद्रनाथजी का शिष्य गोरखनाथ हूं और यहां से अपने गुरु को वापस ले जाने के लिए आया हूं। त्रियाराज्य में कोई पुरुष प्रवेश नहीं कर सकता, इसलिए मैं यहां कलिंगा के साथ स्त्रीरूप बनाकर आया था।"

यह सुनकर मैनाकिनी उन्हें मत्स्येंद्रनाथ के समीप ले गई। गोरखनाथ ने अपने गुरु के चरणों का स्पर्श किया। गुरु ने अपने शिष्य को आशीर्वाद देते हुए हृदय से लगा लिया, फिर अपने पास ही सिंहासन पर बैठाकर कुशलक्षेम पूछने लगे।

बारह वर्ष बाद गुरु-शिष्य की भेंट हुई थी। इस बीच नाथ-पंथ में नए सिद्ध योगी प्रकट हो चुके थे। गोरखनाथ ने अपने गुरु को बदरिकाश्रम में तप करने, कानीफानाथ से भेंट होने तथा अन्य घटनाओं का विवरण विस्तारपूर्वक कह सुनाया। तत्पश्चात् उन्होंने हाथ जोड़कर कहा– "हे गुरुजी! आप तो सिद्ध योगी हैं। आपके ही प्रताप से मेरा भी यश फैला है, परंतु ऊर्ध्वरेता ब्रह्मचारी होते हुए भी आप त्रियाराज्य में कैसे आ पहुंचे और यहां भोग-विलास में पड़कर आपने अपने पंथ की मर्यादा को कैसे तोड़ दिया। मुझे यह बताने की कृपा करें।"

मत्स्येंद्रनाथ ने उत्तर दिया– "हे शिष्य! तुम्हारा कहना बिल्कुल ठीक है, परंतु मैं जब तीर्थाटन करते हुए सेतुबंध रामेश्वर पहुंचा था, उस समय हनुमानजी ने मुझसे वचन लेकर मुझे आने के लिए विवश कर दिया। इसी कारण मेरी यह दशा हुई है।"

इतना कहकर मत्स्येंद्रनाथ ने प्रारंभ से अंत तक सब विवरण विस्तारपूर्वक कह सुनाया और बोले– "अब तुम किसी प्रकार मैनाकिनी को तैयार कर लो तो मैं यहां से वापस लौट चलने के लिए तैयार हूं।"

गोरखनाथ संपूर्ण वृत्तांत सुनकर कुछ देर के लिए विचारमग्न हो गए।

मैनाकिनी का मोहभंग

त्रियाराज्य की प्रजा को जब यह ज्ञात हुआ कि मत्स्येंद्रनाथ के शिष्य गोरखनाथ आए हुए हैं तो वह जय-जयकार करती हुए राजभवन में आ पहुंची। मत्स्येंद्रनाथ ने उन सबको गोरखनाथ के दर्शन कराए। गोरखनाथ को देखकर सबको अत्यंत प्रसन्नता हुई।

तदुपरांत मैनाकिनी ने गोरखनाथ को मोहजाल में फंसाने के लिए त्रियाराज्य की सर्वश्रेष्ठ सुंदरियों को उनकी सेवा में भेजा। उन स्त्रियों ने गोरखनाथ को आकर्षित करने के लिए अनेक उपाय किए, परंतु उन्हें किसी प्रकार की सफलता प्राप्त नहीं हुई। उन सबने मैनाकिनी के पास जाकर स्पष्ट रूप से बता दिया कि गोरखनाथ किसी भी प्रकार के आकर्षण में फंसने वाले नहीं हैं।

मत्स्येंद्रनाथ स्वयं भी त्रियाराज्य के मोहजाल से बाहर निकलना चाहते थे, परंतु उनकी इच्छा थी कि उन्हें वहां से बाहर निकालने का श्रेय उनके शिष्य गोरखनाथ को ही प्राप्त हो। अतः उन्होंने गोरखनाथ के प्रभाव को प्रदर्शित करने तथा मैनाकिनी का मोह दूर करने के लिए एक लीला रचने का निश्चय किया।

एक दिन मीननाथ और मैनाकिनी दोनों मत्स्येंद्रनाथ तथा गोरखनाथ के पास बैठे हुए थे। उसी समय मत्स्येंद्रनाथजी ने गोरखनाथ को संबोधित करते हुए कहा– ''हे पुत्र! तुम्हारे छोटे भाई मीननाथ को बहुत समय तक दस्त हुए हैं। कई दिनों तक स्नान न करने के कारण इसका शरीर गंदा हो गया है। अतः तुम इसे अपने साथ नदीतट पर ले जाकर इसके शरीर को भली-भांति साफ कर लाओ।''

गुरु की आज्ञा पाकर गोरखनाथ मीननाथ को साथ लेकर नदीतट पर जा पहुंचे। वहां उन्होंने मीननाथ की दोनों टांगें पकड़कर ऊपर उठा लिया। फिर उसे धोबी के कपड़े के पीटने के पत्थर पर पटकते हुए पीटना आरंभ कर दिया। इस प्रकार दो-तीन बार पटकने से मीननाथ के प्राण पखेरू उड़ गए। तब गोरखनाथ ने उसके शरीर के चमड़े को भली-भांति साफ किया और नदीतट से लौटकर उस चमड़े को छत के ऊपर धूप में सूखने के लिए डाल दिया।

भोजन के समय जब मैनाकिनी ने मीननाथ के विषय में पूछा तो गोरखनाथ ने उत्तर दिया कि मैं गुरुजी की आज्ञा से उसके शरीर को नदी पर साफ करने के लिए ले गया था, सो उसे साफ करके ले आया हूं।

यह सुनकर मत्स्येंद्रनाथ ने प्रश्न किया– "मीननाथ इस समय कहां है?"

गोरखनाथ ने उत्तर दिया– "मैंने उसके शरीर को धोकर छत पर सूखने के लिए डाल दिया है। वह वहीं सूख रहा है।"

मत्स्येंद्रनाथ तथा मैनाकिनी छत के ऊपर गए तो जाकर देखा कि मीननाथ के शरीर की खाल धूप में पड़ी सूख रही है। यह देखकर मैनाकिनी तो रोने लगी और मत्स्येंद्रनाथ ने क्रोध में गोरखनाथ से कहा– "अरे मूर्ख! इस बालक ने क्या अपराध किया था, जो तूने निर्दयी बनकर इसे मार डाला।"

गोरखनाथ बाले– "गुरुजी! आपने इसके शरीर को धोकर साफ कर लाने की आज्ञा दी थी। मैंने वहीं किया है। इसमें मेरा क्या दोष है। आप तो साधु-महात्मा हैं और इस बात को भली-भांति जानते हैं कि यह संपूर्ण जगत् नाशवान् है। ऐसी स्थिति में आपका क्रोध अथवा शोक करना उचित प्रतीत नहीं होता। आप ज्ञानी होकर भी इस प्रकार संताप क्यों कर रहे हैं?"

यह सुनकर मत्स्येंद्रनाथ ने कहा– "गोरख! इस समय पंडिताई बघारने की आवश्यकता नहीं है। मीननाथ के जीवित हुए बिना मुझे अन्न-जल अच्छा नहीं लगेगा और मैनाकिनी तो इसके बिना स्वयं भी जीवित नहीं रह सकती, इसलिए तुम हमारे मीननाथ को जीवित करो।"

गुरु की बात सुनकर गोरखनाथ ने संज़ीवनी मंत्र से अभिमंत्रित भस्म को उस चमड़े के ऊपर फेंका तो वहां उसी समय एक जैसे एक सौ आठ मीननाथ प्रकट हो गए। शक्ल-सूरत, आयु, शरीर– सब बातों में वे बिल्कुल एक जैसे थे।

गोरखनाथ ने उन्हें दिखाते हुए मैनाकिनी से कहा– "इनमें से जो तुम्हारा मीननाथ हो, उसे ले लो।"

मैनाकिनी आश्चर्यचकित रह गई। वह अपने मीननाथ को कैसे पहचाने? लाचार, उसने गोरखनाथ से कहा– "हे गोरख! मुझे ऐसा लगता है कि तुम ईश्वर के अवतार हो। अब तुम स्वयं ही मेरे ऊपर कृपा करके अपनी माया को समेट लो और मुझे मेरा मीननाथ सौंप दो।"

यह कहकर मैनाकिनी ने गोरखनाथ को प्रणाम करना चाहा। उस समय गोरखनाथ ने उसे रोकते हुए कहा– "तुम मेरी गुरुमाता हो, अतः तुम्हें प्रणाम करने की आवश्यकता नहीं है। मैं तुम्हारे पुत्र को अभी सौंप देता हूं।"

यह कहकर गोरखनाथ ने एक ऐसा मंत्र पढ़ा कि एक सौ सात मीननाथ अदृश्य हो गए, केवल एक असली मीननाथ रह गया।

इस घटना को देखकर मैनाकिनी अच्छी तरह समझ गई कि गोरखनाथ महान सिद्ध योगी है और वह यहां से मत्स्येंद्रनाथ को वापस ले जाए बिना नहीं मानेगा। यदि मैं मत्स्येंद्रनाथ को रोकने का प्रयत्न करूंगी तो संपूर्ण त्रियाराज्य संकट में पड़ जाएगा।

यह विचार करके मैनाकिनी ने गोरखनाथ से कहा– "हे गोरख! अब मुझे तुम्हारी योग-शक्ति के विषय में किसी प्रकार का संदेह नहीं रहा। मैं यह भी जानती हूं कि तुम मत्स्येंद्रनाथजी को यहां से साथ ले जाए बिना नहीं मानोगे। सो, अब मैं भी तुम्हारी इच्छा में किसी प्रकार का व्यवधान खड़ा नहीं करूंगी, परंतु मैं चाहती हूं कि तुम एक वर्ष तक यहीं रहो।"

गोरखनाथ ने यह सुनकर उत्तर दिया– "हे माता! आपकी आज्ञा का पालन करना मेरा धर्म है, परंतु हम दोनों के यहां रहने से धर्म-प्रचार के कार्य में बहुत बाधा पड़ेगी। मुझे यहां रहते हुए छह महीने तो हो ही चुके हैं। आपके आदेश का पालन करने के लिए मैं छह महीने यहां और रहूंगा।"

मैनाकिनी इस पर सहमत हो गई।

मैनाकिनी के अंतःपुर में चले जाने पर गोरखनाथ ने मत्स्येंद्रनाथ से जिज्ञासा की– "हे गुरुजी! आप तो अपनी महिमा के प्रताप से हजारों मीननाथों को उत्पन्न करने में समर्थ हैं। फिर आपने एक मीननाथ के मर जाने पर इतना शोक और क्रोध क्यों प्रकट किया था?"

मत्स्येंद्रनाथ ने उत्तर देते हुए कहा– "हे पुत्र! तुम्हारा कहना ठीक है, परंतु यह सब लीला तो मेरी ही रची हुई थी। मेरी ही इच्छा से तुमने मीननाथ को मारा था, फिर मेरी ही इच्छा से उसे जीवित भी कर दिया। मैं मैनाकिनी को तुम्हारी शक्ति का अनुभव कराना चाहता था। यदि मैं यह खेल न करता तो मैनाकिनी का मोह इतनी जल्दी भंग नहीं होता और वह

इस प्रकार मुझे यहां से चले जाने देने के लिए भी तैयार नहीं होती। इस घटना से मुझे यह भी विश्वास हो गया कि तुम्हारे भीतर पूर्ण अनासक्त भाव उत्पन्न हो गया है तथा सांसारिक मोह लेशमात्र भी नहीं रहा है।''

त्रियाराज्य से विदाई

छह महीने का समय और व्यतीत हो गया। त्रियाराज्य से विदा होने की तिथि चैत्र शुक्ला प्रतिपदा निश्चित की गई थी। वह दिन जब आया, तब मत्स्येंद्रनाथ और गोरखनाथ ने प्रस्थान की तैयारियां आरंभ की। उस समय मैनाकिनी ने आकर मत्स्येंद्रनाथ से कहा– ''मीननाथ का क्या होगा?''

मत्स्येंद्रनाथ बोले– ''यह तो तुम्हें निश्चय करना है।''

मैनाकिनी ने उत्तर दिया– ''उसे आप अपने साथ ही ले जाइए, क्योंकि प्रथम तो वह आपसे अधिक स्नेह करता है। दूसरी बात यह है कि जब तक आप यहां रहे, तब तक तो वह सुरक्षित था, परंतु आपके चले जाने के बाद जब हनुमानजी यहां आकर गर्जना करेंगे, तब वह पुरुष होने के नाते जीवित नहीं बचेगा। तीसरी बात यह भी है कि आपके पिता उपरिक्षवसु ने मुझे जो शाप दिया था, उसकी अवधि अब पूरी होने वाली है। शाप की अवधि समाप्त होते ही मैं तो यहां से स्वर्गलोक को चली जाऊंगी, परंतु मनुष्य शरीर होने के कारण मीननाथ वहां नहीं जा सकेगा। इस स्थिति में यहां उसकी देखभाल करने वाला कोई नहीं रहेगा। इन सब बातों पर विचार करने के पश्चात् मैं इस निश्चय पर पहुंची हूं कि मीननाथ का आपके साथ जाना ही उचित है।''

मत्स्येंद्रनाथ ने यह सुनकर कहा– ''तुम्हारी ऐसी ही इच्छा है तो हम मीननाथ को अपने साथ ले जाएंगे।''

मत्स्येंद्रनाथ, गोरखनाथ तथा मीननाथ तीनों चलने के लिए तैयार हुए। प्रतिक्षित प्रजाजन उन्हें विदा करने के लिए नगर के बाहर तक गए। चलते समय मैनाकिनी ने गुप्त रूप से एक सोने की ईंट मत्स्येंद्रनाथ की झोली में रख दी। मत्स्येंद्रनाथ को तो इसका आभास उसी समय हो गया, परंतु गोरखनाथ को कुछ पता नहीं चला।

उस दिन त्रियाराज्य में सर्वत्र विषाद छाया रहा। मैनाकिनी की तो बहुत बुरी हालत थी। पति-वियोग तथा पुत्र-वियोग का दुःख उसे एक साथ सहन करना पड़ा था। उसकी आंखों से अश्रुधारा अविरल बहती चली जा रही थी। वह छाती पीट-पीटकर चीखें मारती हुई रो रही थी। उसकी स्थिति को देखकर पशु-पक्षी भी आर्तनाद करने लगे।

मैनाकिनी की करुण दशा उपरिक्षवसु से नहीं देखी गई। वे विमान में बैठकर उसके पास आ पहुंचे और समझाते हुए बोले- "हे मैनाकिनी! तू किसलिए इतनी दुःखी हो रही है। यह संपूर्ण संसार स्वप्नवत् है। तू कहां की रहने वाली कहां आ पहुंची थी। अब तेरे शाप की अवधि समाप्त होने जा रही है। कुछ दिनों बाद तुझे स्वर्ग में चले जाना है। अतः तू रोना-धोना बंद करके भगवान का स्मरण कर, ताकि तेरा कल्याण हो।" इतना कहकर उपरिक्षवसु अंतर्धान हो गए।

मत्स्येंद्रनाथ का माया-मोह

त्रियाराज्य से चलकर तीनों नाथ विभिन्न तीर्थों की यात्रा करते हुए तैलंग प्रदेश में जा पहुंचे। वहां गोदावरी के संगम स्थान में तीनों ने स्नान किया। तदुपरांत आवढया नागनाथ, परली, वैजनाथ आदि तीर्थों का दर्शन करते हुए उन्होंने एक महाअरण्य में प्रवेश किया। उस वन में गर्भगिरि नामक एक पर्वत था, जिसके ऊपर महर्षि वाल्मीकि का स्थान था। उस आश्रम में जाने के लिए तीनों ने पर्वत पर चढ़ना आरंभ किया।

पर्वत पर घना जंगल था। वहां चोर-लुटेरों का भय भी था। मत्स्येंद्रनाथ की झोली में सोने की ईंट रखी थी, अतः मत्स्येंद्रनाथ पर्वत पर चढ़ते समय आगे-पीछे, इधर-उधर देखते हुए चलते थे। उनके मन में यह डर बसा हुआ था कि कोई चोर-लुटेरा आकर उनकी सोने की ईंट को न लूट ले जाए।

मत्स्येंद्रनाथ पर्वत पर चढ़ते जाते थे और बीच-बीच में गोरखनाथ से यह भी पूछते जाते थे कि बेटा गोरखनाथ! इस जंगल में कोई चोर-लुटेरा तो नहीं मिल जाएगा।

गुरु के इन शब्दों को सुनकर गोरखनाथ ने कहा– "हे गुरुजी! भय की यदि कोई बात हो तो उसे कुएं में डाल दीजिए। हम लोग ठहरे साधु-संन्यासी। हमारे पास रखा ही क्या है, जो कोई चोर-लुटेरा आकर हमें परेशान करेगा।"

तब मत्स्येंद्रनाथ बोले– "हे पुत्र! त्रियाराज्य से विदा होते समय मैनाकिनी ने मेरी झोली में एक सोने की ईंट रख दी थी। वह अभी तक मेरे पास है। कोई चोर-लुटेरा आकर उसे लूट न ले, यही भय मुझे लगा हुआ है। मेरी इच्छा है कि इस ईंट के द्वारा साधु-संतों के भोजन की व्यवस्था करूं।"

गोरखनाथ ने यह सुनकर कहा– "हे गुरु! आश्चर्य की बात है कि आप जैसा परम तपस्वी एवं सिद्ध पुरुष भी अभी तक सोने की ईंट के मोह में फंसा हुआ है। आपके पास तो पारसमणि है। आप अपनी इच्छा मात्र से ही चाहे जितना सोना उत्पन्न कर सकते हैं। फिर आपने इस ईंट के भार को अपनी झोली में क्यों लाद रखा है। आप इसे निकालकर बाहर फेंक दीजिए।"

मत्स्येंद्रनाथ बोले– "यदि मैं सोने की ईंट को फेंक दूंगा तो साधु-संतों का भोजन-भंडारा कहां से होगा?"

यह सुनकर गोरखनाथ अपने गुरु का हाथ पकड़े हुए पर्वत-शिखर पर जा पहुंचे। वहां उन्होंने सिद्ध प्रयोग मंत्र का उच्चारण करने के बाद पेशाब की। उसके प्रभाव से आधा पर्वत सोने का हो गया। उसे दिखाते हुए वे मत्स्येंद्रनाथ से कहने लगे– "हे गुरुजी! अब आपको जितने सोने की आवश्यकता हो, वह यहां से ले लीजिए और अपनी इच्छा को पूरा कीजिए। यदि आप आज्ञा दें तो मैं इसी स्थान पर आपकी अभिलाषा पूरी करने का आयोजन करूं और साधु-संतों को यहीं बुलाकर उनका भोजन-भंडारा करा दूं।"

गोरखनाथ के प्रभाव को देखकर मत्स्येंद्रनाथ अत्यंत प्रसन्न हुए। उन्होंने मैनाकिनी द्वारा रखी गई सोने की ईंट को झोली से निकालकर बाहर फेंक दिया। फिर बोले– "हे पुत्र! यहां तो भयानक वन है, इस स्थान पर साधु-संतों के भोजन-भंडारे की व्यवस्था कैसे हो पाएगी?"

गर्भगिरि पर भंडारा

गुरु की बात सुनकर गोरखनाथ ने कहा– "हे गुरुदेव! आप निश्चिंत रहें, मैं इसी स्थान पर भंडारे की सब व्यवस्था किए देता हूं और तीनों लोकों के सभी ऋषि-मुनि, संत-संन्यासी आदि यहीं पर भोजन करने के लिए आ जाएंगे।"

यह कहकर गोरखनाथ ने गंधर्वास्त्र मंत्र का प्रयोग करके भस्म को आकाश की ओर फेंका। थोड़ी देर में वहां चित्रसेन गंधर्व आ उपस्थित हुआ।

गोरखनाथ ने चित्रसेन को आज्ञा दी– "हे चित्रसेन! तुम अपने साथी सभी गंधर्वों को बुलाकर चारों दिशाओं में भेजो और तीनों लोकों में जितने भी ऋषि-मुनि, साधु-संन्यासी, वैरागी, योगी-यती, तपस्वी, जपी, संत, देवता, गंधर्व, दानव, किन्नर आदि हैं, उन सबको यहां बुला लाओ। मैं यहां पर एक बड़ा समारोह करना चाहता हूं। उसमें सब लोगों को भोजन कराऊंगा।"

चित्रसेन गंधर्व 'जो आज्ञा' कहकर वहां से चल दिया। कुछ ही समय में वहां तीनों लोकों के ऋषि-मुनि, साधु-संन्यासी, योगी-यती, तपस्वी, देवता आदि आ पहुंचे। शुक्राचार्य, बृहस्पति, दत्तात्रेय, वसिष्ठ, वापदेव, याज्ञवल्क्य, व्यास, कपिल, वाल्मीकि आदि ऋषियों के साथ सभी नाथ भी गर्भगिरि पर पहुंच गए। मत्स्येंद्रनाथ के आनंद का पारावार न रहा। उन्होंने मन-ही-मन गोरखनाथ को अनेक आशीर्वाद दिए।

एक तरफ तो संत-समागम हो रहा था। दूसरी तरफ गोरखनाथ ने अष्टसिद्धियों को बुलाकर उनसे भोजनादि की संपूर्ण व्यवस्था करने के लिए कहा। अष्टसिद्धियों ने पलभर में ही समस्त सामग्रियां तैयार कर दीं।

स्नान-संध्या आदि से निवृत्त होने के उपरांत सब लोग भोजन करने के लिए बैठे। भोजन-सामग्री इतनी स्वादिष्ट थी कि सब लोगों ने उसकी अत्यंत प्रशंसा की। चारों ओर 'वाह-वाह' की धूम मच गई। सब लोग मत्स्येंद्रनाथजी तथा उनके शिष्य गोरखनाथ की प्रशंसा करने लगे।

भोजन कराने के उपरांत सबको तांबूल तथा यथोचित दक्षिणा भेंट की गई। वह आयोजन ऐसा हुआ, जैसा पहले कभी नहीं हुआ था। सब लोग गोरखनाथ को आशीर्वाद देते हुए अपने-अपने स्थान को विदा हो गए।

इस समारोह में भाग लेने के लिए उपरिक्षवसु भी आए थे। मत्स्येंद्रनाथ ने अपने पुत्र मीननाथ को उनके हवाले कर दिया और कहा– "आप इसे इसकी माता तिलोत्तमा के पास स्वर्गलोक में पहुंचा दें। इंद्र के यज्ञ के समय मैं वहां आकर मिलूंगा।" उपरिक्षवसु मीननाथ को अपने साथ लेकर स्वर्गलोक को चले गए।

गर्भगिरि पर्वत के जितने भाग को गोरखनाथ ने सुवर्णमय बनाया था, अदृश्यास्त्र के प्रयोग द्वारा उन्होंने उसका रंग बदल दिया। तत्पश्चात् मत्स्येंद्रनाथ तो तपस्या करने के लिए वहीं रह गए और गोरखनाथ गुरुजी से आज्ञा लेकर तीर्थयात्रा के लिए निकल पड़े।

गोरखनाथ की भर्तृहरि से भेंट

गर्भाद्रि से चलकर गोरखनाथ अनेक तीर्थों की यात्रा करते हुए गिरिनार पर्वत पर पहुंचे। वहां उन्होंने गुरु दत्तात्रेय से भेंट की तथा उस समय तक के सब समाचार कहे। दत्तात्रेय ने उन्हें आशीर्वाद देने के उपरांत कहा– "हे पुत्र! अवंति नगरी का राजा भर्तृहरि अपनी पत्नी पिंगला की मृत्यु हो जाने के कारण अत्यंत दुःखी होकर बारह वर्षों से श्मशान भूमि में बैठा हुआ है। वह बिना कुछ खाए-पिए हर समय 'पिंगला-पिंगला' चिल्लाता रहता है। मेरा उस पर अनुग्रह है, अतः तुम अवंतिपुरी में जाकर उसे ज्ञानोपदेश देकर माया-मोह से मुक्त करो।"

भगवान दत्तात्रेय की आज्ञा शिरोधार्य कर गोरखनाथ व्यानास्त्र मंत्र से अभिमंत्रित भस्म को अपने ललाट पर लगाकर थोड़ी देर में ही अवंतिकापुरी में जा पहुंचे।

वहां जाकर उन्होंने राजा भर्तृहरि को उसी स्थिति में बैठे हुए देखा, जैसा उन्हें भगवान दत्तात्रेय ने बताया था। गोरखनाथजी ने उसे ज्ञानोपदेश देने के लिए एक युक्ति सोच निकाली। वे कुम्हार के घर जाकर एक मिट्टी का घड़ा ले आए, फिर जिस स्थान पर भर्तृहरि बैठे हुए थे, वहां से थोड़ी दूर आकर उन्होंने उस घड़े को अपने हाथ से पृथ्वी पर पटक दिया। घड़ा फूट गया। तब उस फूटे हुए घड़े के बिखरे हुए टुकड़ों को एकत्र

कर गोरखनाथ वहीं बैठकर 'हाय घड़ा', 'हाय घड़ा' कहकर चिल्लाने लगे। उन्होंने इतने उच्च तथा करुण स्वर में रोना आरंभ किया कि भर्तृहरि अपना दुःख तो भूल गए और गोरखनाथ के पास जाकर पूछने लगे– "हे भाई! तुम इस तरह क्यों विलाप कर रहे हो?"

गोरखनाथ ने उत्तर दिया– "मेरा घड़ा फूट गया है। मैं उसी के लिए रो रहा हूं।"

यह सुनकर भर्तृहरि ने कहा– "तुम योगी होकर एक सामान्य मिट्टी के घड़े का इतना शोक कर रहे हो? इसका मूल्य ही कितना है?"

गोरखनाथ ने उत्तर में कहा– "हे राजा! प्रिय वस्तु के वियोग का दुःख सभी को होता है। जिस प्रकार तुम अपनी मिट्टी की बनी पत्नी के लिए रो रहे हो, उसी प्रकार मैं अपने मिट्टी के घड़े के लिए रो रहा हूं।"

भर्तृहरि ने कहा– "मेरी रानी पिंगला से तुम्हारे मिट्टी के घड़े की तुलना कैसे की जा सकती है? तुम्हारा मिट्टी का घड़ा तो तुम्हें दोबारा भी मिल सकता है, परंतु मेरी पिंगला जैसी पिंगला दुबारा नहीं मिल सकती।"

गोरखनाथ बोले– "राजा! तुम्हारी पिंगला जैसी पिंगला तो मैं क्षणभर में बना सकता हूं, परंतु मेरा मिट्टी का वैसा ही घड़ा दूसरा नहीं मिल सकता।"

यह सुनकर भर्तृहरि ने योगी की परीक्षा लेने के उद्देश्य से कहा– "हे योगी! व्यर्थ के विवाद में पड़ने से क्या लाभ? तुम मेरी पिंगला को उत्पन्न कर दिखाओ, मैं तुम्हारे घड़े को उत्पन्न करवाकर मंगा दूंगा।"

पिंगला-ही-पिंगला

राजा भर्तृहरि की बात सुनकर गोरखनाथ ने कहा– "यदि मैं तुम्हारी पिंगला को उत्पन्न कर दूं तो मुझे क्या दोगे?"

भर्तृहरि ने उत्तर दिया– "मैं आपको अपना आधा राज्य दे दूंगा। यदि मैं अपने वचन को पूरा न करूं तो मेरे सभी पूर्वज नरकवासी हो जाएं तथा मैं स्वयं भी सौ जन्मों तक रौरव नर्क में पड़ा रहूं।"

गोरखनाथ ने यह बात स्वीकार कर ली। फिर उन्होंने अपनी योग-शक्ति द्वारा उसी स्थान पर लाखों पिंगलाओं को उत्पन्न कर दिया। भर्तृहरि उन पिंगलाओं को देखकर आश्चर्यचकित रह गए। वे किससे बात करें और किससे पूछें? तब उन पिंगलाओं ने स्वयं ही मुंह खोलकर राजा भर्तृहरि से वार्तालाप करना आरंभ कर दिया। उन्होंने दांपत्य जीवन की अनेक गुप्त चर्चाएं उनसे कीं। राजा ने उनसे जो भी प्रश्न किए, उन सबका उन्होंने ठीक-ठीक उत्तर दिया।

तत्पश्चात् कुछ पिंगलाओं ने स्वयं ही राजा भर्तृहरि को समझाते हुए कहा– "हे राजन्! आपको हमारे वियोग का जो दुःख हुआ, वह तो ठीक है, परंतु मनुष्य जीवन शाश्वत नहीं है। यह जन्म-मरण के अधीन बना रहता है। अतः अपने किसी भी आत्मीय की मृत्यु के दुःख का भार जीवन भर वहन करते रहना कोई बुद्धिमानी नहीं है।

"हे राजन्! हमें तो किसी-न-किसी दिन मरना ही था। चाहे कुछ दिन पहले या कुछ दिन बाद में, सो हमारी मृत्यु तो हो गई। अब आप माया-मोह को त्यागकर अपने जन्म को संभालने का प्रयत्न कीजिए। ये आपको चौरासी लाख योनियों एवं आवागमन के चक्कर से मुक्त कर देंगे।"

जिस प्रकार घोर अंधकार में अचानक ही सूर्योदय हो जाए, उसी प्रकार उन पिंगलाओं के शब्द सुनकर राजा भर्तृहरि का अज्ञानरूपी अंधेरा दूर हो गया। माया-मोह नष्ट होकर ज्ञानरूपी सूर्य की ज्योति प्रकाशित हो गई। वे आगे बढ़कर गोरखनाथ के चरणों पर जा झुके, परंतु गोरखनाथ ने उन्हें बीच में ही रोकते हुए कहा– "हे राजा! मेरे गुरु मत्स्येंद्रनाथ हैं और उनके गुरु भगवान दत्तात्रेय हैं। तुम्हारे ऊपर दत्तात्रेयजी का अनुग्रह है, इसलिए तुम मेरे बड़े गुरुभाई हो। नियमानुसार मुझे ही तुम्हारे चरणों को स्पर्श करना चाहिए। सो मैं तुम्हें साष्टांग नमस्कार करता हूं।"

इतना कहकर गोरखनाथ फिर बोले– "हे राजा! अब तुम मुझे अपने मन की अभिलाषा बताओ कि तुम पिंगला के साथ रहकर राज्य-सुख का उपभोग करना चाहते हो अथवा वैराग्यवृत्ति लेकर अपना जन्म सफल करने के इच्छुक हो।"

यह सुनकर राजा भर्तृहरि ने उत्तर दिया– "हे गोरखनाथजी! आज बारह वर्ष तक मैं इन स्थान पर बैठा हुआ 'पिंगला, पिंगला' रटता रहा, परंतु मुझे पिंगला दिखाई नहीं दी। इसके विपरीत आपने यहां आते ही अपनी शक्ति द्वारा लाखों पिंगलाओं को पलभर में प्रकट कर दिया। इससे मुझे योग की महिमा का यथार्थ ज्ञान हो गया है। अब मेरे मन में पिंगला अथवा राज्य-सुख को प्राप्त करने की इच्छा नहीं रही है। आप मुझे गुरु दत्तात्रेयजी के दर्शन कराइए। मैं योगमार्ग की दीक्षा लूंगा। अब आप इन पिंगलाओं को अदृश्य कर दीजिए तथा मेरे साथ पहले राजभवन में चलिए।"

भर्तृहरि का राज्य-त्याग

गोरखनाथजी ने पिंगलाओं को अदृश्य कर दिया। तब भर्तृहरि उन्हें साथ लेकर राजभवन में जा पहुंचे।

भर्तृहरि के बड़े भाई विक्रमराज को जब यह पता चला कि उनके छोटे भाई को साथ लेकर योगीश्वर गोरखनाथ पधारे हैं तो वह अपने मंत्रियों और सभासदों को साथ लेकर उनका स्वागत-सम्मान करने के लिए आगे जा पहुंचे।

राजा विक्रम ने गोरखनाथजी को आसन पर बैठाकर शोडषोपचार पूजन किया। तदुपरांत हाथ जोड़कर कहा– "हे प्रभु! आपने भर्तृहरि को किस प्रकार समझाया। यह मुझे बताने की कृपा करें।"

गोरखनाथ ने आदि से अंत तक सब वृत्तांत सुना दिया। तत्पश्चात् कहा– "हे राजन्! अब मैं भर्तृहरि को साथ लेकर भगवान दत्तात्रेय के पास जा रहा हूं। ये तुमसे विदा लेने के लिए आए हैं, सो तुम इन्हें स्नेहपूर्वक जाने की आज्ञा दो।"

विक्रमराज बोले– "हे प्रभु! बारह वर्षों तक अन्न-जल ग्रहण न करने के कारण भर्तृहरि का शरीर बहुत दुर्बल हो गया है, अतः आप कुछ समय तक यहीं निवास करें। जब इसका शरीर हृष्ट-पुष्ट हो जाए, तब साथ लेकर चले जाइए।"

यह सुनकर गोरखनाथ ने उत्तर दिया– "हे राजन्! यह माया बड़ी बलवान है। भर्तृहरि के मन में आज जो विचार हैं, संभव है कि माया के कारण कुछ समय बाद उनमें कोई परिवर्तन आ जाए। इसलिए इन्हें जाने की आज्ञा जल्दी दें। आपके अनुरोध को स्वीकार करके मैं यहां तीन दिन तक ठहर जाता हूं। जहां तक भर्तृहरि की शारीरिक दुर्बलता का प्रश्न है, वह गुरु-कृपा से अभी थोड़ी देर में ठीक हो जाएगी।"

यह कहकर गोरखनाथ ने भर्तृहरि के मस्तक पर अपना हाथ रखा। भर्तृहरि का शरीर उसी समय हृष्ट-पुष्ट एवं कांतिमान हो गया।

तीन दिन रहने के बाद गोरखनाथ ने भर्तृहरि को साथ लेकर चलने की तैयारी की। उस समय अंतःपुर की स्त्रियां रोने लगीं। भर्तृहरि ने उन सबकी कोई चिंता नहीं की। वे राजसी वेष त्यागकर, नाथयोगी का वेष धारण करके गोरखनाथ के साथ चल दिए।

भर्तृहरि के जाते समय प्रजा के लोगों में हाहाकार मच गया, परंतु भर्तृहरि ने उस ओर भी कोई ध्यान नहीं दिया। राजा विक्रम तथा राज्य के अन्य प्रतिष्ठित व्यक्ति गोरखनाथ तथा भर्तृहरि को विदा करने के लिए नगर की सीमा तक गए। वहां जाकर गोरखनाथ ने भर्तृहरि से कहा– "तुम अपने मन में एक बार फिर विचार कर लो। यदि तुम्हें संसार अच्छा लगता हो तो अपने घर को लौट जाओ।" भर्तृहरि ने उत्तर दिया– "हे प्रभु! अब मुझे संसार से घृणा हो गई है। मैं किसी भी स्थिति में घर लौटने के लिए तैयार नहीं हूं।"

तब गोरखनाथ ने भर्तृहरि के दृढ़ निश्चिय की परीक्षा लेने के उद्देश्य से उन्हें राजभवन वापस जाने का आदेश देते हुए कहा– "एक बार तुम अपने अंतःपुर में जाकर रानियों से भिक्षा मांग लाओ।"

गोरखनाथजी की आज्ञा पाकर योगी वेषधारी भर्तृहरि पुनः राजभवन को लौट गए। वहां अंतःपुर में जाकर 'अलख' शब्द का उच्चारण करते हुए उन्होंने अपनी रानियों से भिक्षा मांगी। रानियों ने जब यह देख लिया कि ये किसी प्रकार भी अपने निश्चय से नहीं हटेंगे, तब उन्होंने भी हारकर संतोष कर लिया।

भिक्षा लेकर भर्तृहरि गोरखनाथ के पास लौट आए। तब गोरखनाथ ने यानास्त्र मंत्र द्वारा अभिमंत्रित भस्म को अपने तथा भर्तृहरि के मस्तक पर लगाया। उसके प्रभाव से वे दोनों पलभर में ही गिरिनार पर्वत पर जा पहुंचे।

भगवान दत्तात्रेय ने जब गोरखनाथ के साथ भर्तृहरि को देखा तो वे अत्यंत प्रसन्न हुए। भर्तृहरि तथा गोरखनाथ ने दत्तात्रेयजी को साष्टांग दंडवत् किया। उन्होंने आशीर्वाद देकर दोनों को अपने हृदय से लगा लिया।

तदुपरांत दत्तात्रेयजी ने भर्तृहरि को नाथ-पंथ की दीक्षा दी तथा मस्तक पर हाथ रखकर चिरंजीवी होने का आशीर्वाद दिया। फिर उन्होंने ब्रह्मध्यान, वेद-वेदांत, रसायन विद्या, मंत्र-विद्या, सांबरी विद्या तथा अस्त्र विद्या का पूर्ण अभ्यास कराकर नागअश्वत्थ वृक्ष के समस्त देवताओं को आशीर्वाद प्रदान कराया।

कृष्णागर का उद्धार

एक बार भगवान दत्तात्रेय की आज्ञानुसार गोरखनाथ अपने गुरु के साथ बदरिकाश्रम की ओर जा रहे थे। मार्ग में 'कौंडियपुर' नामक एक नगर पड़ा। वहां के राजा का नाम 'शशांगर' था।

उस नगर में पहुंचकर उन्होंने लोगों के मुंह से यह सुना कि राजा शशांगर ने अपने पुत्र कृष्णागर के हाथ-पांव कटवाकर उसे चौरंगी (चौकी) पर लिटाकर फेंक दिया है। उस बालक को देखने के लिए स्त्री-पुरुष आ-जा रहे थे और राजा-रानी को बुरा-भला कह रहे थे।

गुरु-शिष्य ने जब यह समाचार सुना तो उनके मन में बालक को देखने की इच्छा उत्पन्न हुई। वे बालक के पास जा पहुंचे। वहां बालक को छटपटाते हुए देखकर दोनों को बहुत दया आई।

जब गुरु-शिष्य ने ध्यान-दृष्टि से देखा तो पता चला कि एक बार राजा शशांगर कृष्णा नदी में स्नानोपरांत खड़े होकर सूर्य को अर्घ्य दे रहा था, उसी समय अंतरिक्ष से उड़कर शिवजी के वीर्य का एक अंश उसकी

अंजुलि में आ गिरा और उसने शिशुरूप ग्रहण कर लिया। इस प्रकार कृष्णागर ने अयोनिज जन्म लिया था।

गुरु-शिष्य ने उस अलौकिक बालक को अपने साथ ले जाने का निश्चय किया। वे दोनों राजा शशांगर के पास गए और उनसे कृष्णागर को अपने साथ ले जाने की आज्ञा मांगी।

शशांगर को कोई आपत्ति नहीं थी, फिर भी उसने लोकदिखावे के रूप में कहा– "हे योगियो! वह बालक हाथ-पांव से रहित है। उसे ले जाकर तुम क्या करोगे? वह तम्हारे किस काम आएगा?"

गोरखनाथ ने उत्तर दिया– "हमें उसका जो करना है, वह करेंगे। आप तो हमें केवल उसे ले जाने की आज्ञा दे दीजिए।"

राजा ने आज्ञा दे दी। तब दोनों गुरु-शिष्य बालक के पास जा पहुंचे। गोरखनाथ ने उसे चौरंगी से उठाकर गोद में ले लिया तथा उसका नाम चौरंगीनाथ रख दिया। तदुपरांत गुरु-शिष्य उस बालक को साथ लिये हुए बदरिकाश्रम में जा पहुंचे। वहां उन्होंने पहले तो शिवालय में जाकर शिवजी के दर्शन किए। फिर चौरंगीनाथ को पर्वत की एक गुफा में ले जाकर बैठा दिया और गोरखनाथ ने उनसे कहा– "चौरंगीनाथ! तुम इस गुफा में बैठकर तपस्या करना आरंभ कर दो। तपस्या करते समय तुम अपनी दृष्टि इस गुफा में अपने मस्तक के ऊपर वाली शिला पर जमाए रहना। यदि क्षणभर के लिए भी तुम्हारी दृष्टि हट गई तो यह शिला गिर पड़ेगी और तुम्हारी मृत्यु हो जाएगी। मैं तीर्थयात्रा करने के लिए जा रहा हूं। कुछ दिनों बाद लौटकर आऊंगा, तब तुम्हें अपने साथ ले चलूंगा।"

चौरंगीनाथ की तपस्या

चौरंगीनाथ ने यह बात स्वीकार कर ली, तब गोरखनाथ ने उसे कान में मंत्र दिया। तत्पश्चात् योगबल द्वारा उस गुफा में अंधेरा कर दिया। फिर बाहर आकर उस गुफा के द्वार पर एक बड़ा-सा शिलाखंड रख दिया, ताकि कोई प्राणी गुफा के भीतर आ-जा न सके। इसके बाद उन्होंने चामुंडा को बुलाकर कहा– "हे देवी! इस गुफा के भीतर एक प्राण है,

तुम प्रतिदिन गुप्त रूप से उसके आहार के लिए एक फल गुफा के भीतर पहुंचाती रहना तथा जंगली पशु-पक्षियों से उसे सुरक्षित बनाए रखना।''

चामुंडा ने ऐसा करना स्वीकार कर लिया। तत्पश्चात् मत्स्येंद्रनाथ तथा गोरखनाथ वहां से तीर्थयात्रा करने के लिए अलग-अलग स्थानों को चले गए।

चौरंगीनाथ ने गुफा के भीतर बैठे रहकर मंत्र का जाप करना आरंभ किया। उसने अपनी दृष्टि सिर के ऊपर वाली शिला पर जमाए रखी, क्योंकि दृष्टि के चूक जाने पर शिला के गिर जाने का भय जो लगा हुआ था। उसका परिणाम यह हुआ कि चामुंडा उसके आहार के लिए प्रितिदिन जो एक फल रख जाया करती थी, उसकी ओर चौरंगीनाथ की दृष्टि कभी गई ही नहीं। वह निराहार रहते हुए ही तपस्या करता रहा। गुफा में उसके चारों ओर प्रतिदिन आने वाले फलों का ढेर लगता चला गया।

बारह वर्ष बाद गोरखनाथ के मन में चौरंगीनाथ को देखने की इच्छा हुई। तब वे पुनः बदरिकाश्रम में उसी स्थान पर जा पहुंचे। वहां गुफा के द्वार से शिलाखंड हटाकर उन्होंने अपनी योग-शक्ति से प्रकाश प्रकट करके देखा कि चौरंगीनाथ मस्तक के ऊपर वाली शिला पर टकटकी लगाए हुए मंत्र-जाप करने में मग्न है। उसके चारों ओर फलों का ढेर लगा हुआ है और उसका शरीर अस्थि-पंजर मात्र रह गया है।

इस उग्र तपस्या को देखकर गोरखनाथ अत्यंत प्रसन्न हुए। उन्होंने कृपादृष्टि से चौरंगीनाथ की ओर देखा, जिसके फलस्वरूप उसका संपूर्ण शरीर हृष्ट-पुष्ट हो गया तथा उसके कटे हुए हाथ-पांवों के स्थान पर नए हाथ-पैर उत्पन्न हो गए।

तब गोरखनाथ ने चौरंगीनाथ को संबोधित करते हुए कहा- ''वत्स! मैं आ गया हूं। तुम गुफा के बाहर निकल आओ।''

गोरखनाथ की आवाज सुनकर चौरंगीनाथ बाहर निकल आए। उसी समय चामुंडा ने आकर गोरखनाथ से कहा- ''मैं आपकी आज्ञानुसार प्रतिदिन एक फल गुफा में रख आया करती थी, परंतु इन्होंने तो कुछ खाया ही नहीं।''

गोरखनाथ ने उत्तर दिया– "यह बेचारा तो प्राण चले जाने के भय से अपनी दृष्टि ऊपर वाली शिला पर जमाए बैठा था, फिर तुम्हारे फलों की ओर किस प्रकार देखता?"

चामुंडा गोरखनाथ से आज्ञा लेकर लौट गई। तब गोरखनाथ चौरंगीनाथ को साथ लेकर शिवालय में गए। वहां शिव-पार्वती ने चौरंगीनाथ को आशीर्वाद दिया।

राजा शशांगर का पश्चाताप

छह महीने तक गोरखनाथ उसी जगह रहे। वहां रहकर उन्होंने चौरंगीनाथ को शस्त्रास्त्र विद्या का अभ्यास कराया। जब चौरंगीनाथ का विद्याभ्यास पूरा हो गया, तब उसे साथ लेकर गोरखनाथ कौंडियपुर में गए।

गोरखनाथ की आज्ञा से चौरंगीनाथ ने अपनी शक्ति का प्रदर्शन करने के लिए कौंडियपुर में अनेक प्रकार के उपद्रव आरंभ कर दिए। राजा शशांगर अपनी सेना लेकर उनसे युद्ध करने के लिए पहुंचा। चौरंगीनाथ ने युद्ध में राजा को पराजित कर दिया, तब राजा ने हारकर उनसे शरण देने की याचना की।

उसी समय गोरखनाथ ने दोनों के पास पहुंचकर पिता-पुत्र का परस्पर परिचय कराया तथा चौरंगीनाथ की तपस्या एवं विद्या के विषय में सब वृत्तांत कहा। राजा उसे सुनकर अत्यंत लज्जित हुआ।

चौरंगीनाथ की सौतेली माता ने व्यभिचार का आरोप लगाकर राजा के कान भर दिए थे और चौरंगीनाथ के हाथ-पांव कटवा दिए थे। राजा ने वह सब रहस्य गोरखनाथ के सम्मुख प्रकट कर दिया। तत्पश्चात् राजा ने चौरंगीनाथ को अपने हृदय से लगाकर आशीर्वाद दिया तथा उस दुष्ट रानी को उसी क्षण अपने महल से निकाल बाहर कर दिया।

गोरखनाथ तीन दिन तक कौंडियपुर में रहकर चौरंगीनाथ को अपने साथ ले, पुनः तीर्थयात्रा करने निकल पड़े।

माणिक किसान से भेंट

चलते-चलते गोरखनाथ भामानगर के समीपवर्ती जंगल में जा पहुंचे। उन दिनों ग्रीष्म ऋतु थी तथा धूप बहुत तेज पड़ रही थी। सूर्य-किरणों की प्रखरता से पशु-पक्षी और लता-वृक्षादि तक व्याकुल हो रहे थे। ऐसे समय में एक स्थान पर माणिक नामक एक किसान अपने खेत में हल चला रहा था।

कुछ समय बाद माणिक हल चलाना बंद करके एक वृक्ष के नीचे जा बैठा और घर से आए हुए भोजन को खाने की तैयारी करने लगा। उसी समय गोरखनाथ चौरंगीनाथ को साथ लेकर 'अलख-अलख' कहते हुए उसके सामने जा खड़े हुए।

माणिक उन्हें देखते ही एकदम उठ खड़ा हुआ और हाथ जोड़कर कहने लगा- "हे प्रभु! आप कौन हैं और कहां जा रहे हैं? इस बेढंगे मार्ग से जाने का आपने निश्चय क्यों किया है?"

गोरखनाथ ने उत्तर दिया- "हम लोग जती हैं। यात्रा करने को निकले हैं। इस समय हमें भूख लग रही है, यदि तेरे पास कुछ खाने को हो तो हमें दे दो।"

यह सुनकर माणिक ने कहा- "हे महाराज! भोजन तो तैयार रखा हुआ है। आप इसका भोग लगाइए।"

गोरखनाथ तथा चौरंगीनाथ ने मिलकर उसका संपूर्ण भोजन समाप्त कर दिया। फिर ठंडा पानी पीकर संतुष्ट हुए। तत्पश्चात् गोरखनाथ ने उस किसान से पूछा- "तेरा नाम क्या है?"

किसान ने उत्तर में कहा- "आपका काम तो पूरा हो ही गया। अब आपको मेरा नाम जानने की आवश्यकता क्या है? आप जिस प्रकार आए हैं, उसी प्रकार अब चले भी जाइए।"

यह सुनकर गोरखनाथ बोले- "हे वत्स! तुमने भोजन खिलाकर तथा पानी पिलाकर मुझे संतुष्ट किया है। अब मैं तुम्हें कुछ देना चाहता हूं। तुम्हारी जो इच्छा हो, मुझसे मांग लो।"

माणिक यह सुनकर हंस पड़ा। बोला– ''आप स्वयं तो घर-घर भीख मांगते फिरते हैं और मुझसे जो इच्छा हो, वह मांगने के लिए कह रहे हैं। यह तो बहुत विचित्र बात है। आप भला मुझे क्या दे सकेंगे?''

गोरखनाथ ने कहा– ''तुम कुछ मांगकर तो देखो।''

माणिक बोला– ''मुझे आपसे कुछ नहीं मांगना। आप कृपा करके यहां से चले जाइए।''

गोरखनाथ माणिक का कुछ हित करना और उसे कुछ देना चाहते थे, परंतु उसकी अटपटी बात सुनकर उन्हें आश्चर्य हुआ। उन्होंने सोचा कि यह गांव का आदमी बहुत भोला-भाला है। इसके हृदय की विशालता तथा उदारता तो इसी से स्पष्ट हो गई है कि इसने अपनी चिंता किए बिना अपना संपूर्ण भोजन हम लोगों को प्रसन्नतापूर्वक समर्पित कर दिया। अब भी यह मुझे दरिद्र जानकर ही कुछ नहीं मांग रहा। अस्तु, जो भी हो, मैं इसका कल्याण अवश्य करूंगा।

यह सोचकर गोरखनाथ ने किसान से कहा– ''अरे भाई! तुम कुछ तो कहो।''

इस बार माणिक ने झल्लाते हुए उत्तर दिया– ''मैं आपसे कुछ नहीं मागूंगा। यदि आपको किसी अन्य वस्तु की और आवश्यकता हो तो वह मुझसे और मांग लीजिए।''

यह सुनकर गोरखनाथ ने समझ लिया कि यह आदमी एकदम अड़बंग (बावला जिद्दी) है। अतः इसे दूसरे उपाय से ठीक करना चाहिए।

कुछ निश्चय करने के उपरांत गोरखनाथ बोले– ''अच्छा, मैं जो और मांगू, उसे तुम दे सकोगे?''

''अवश्य दूंगा।'' किसान ने उत्तर दिया।

गोरखनाथ बोले– ''तो मैं तुमसे अब यह मांगता हूं कि आज से तुम्हारे मन में जो इच्छा हुआ करे, तुम उसके ठीक प्रतिकूल काम किया करना।''

माणिक ने ऐसा करना स्वीकार कर लिया। गोरखनाथ वहां से आगे चले गए।

माणिक अड़बंगनाथ बना

गोरखनाथ के चले जाने पर माणिक ने योगी को दिए गए वचन की रक्षा करने का दृढ़ निश्चय कर लिया। जब उसके मन में भूख की इच्छा हो तो वह खाना नहीं खाए, जब प्यास की इच्छा हो तो पानी नहीं पीए। जब सोने की इच्छा हो तो जागता रहे। जब बैठने या लेटने की इच्छा हो, तब खड़ा रहे। तात्पर्य यह है कि वह अपने मन की समस्त इच्छा के प्रतिकूल इस प्रकार चलने लगा कि उसका खाना-पीना, सोना, बैठना आदि सब छूट गया। वह हर समय अपने खेत में ही खड़ा रहता। उसका शरीर सूख-सूखकर अस्थि-पंजर रह गया, परंतु फिर भी उसने अपने दिए हुए वचन को भंग नहीं होने दिया। इसी स्थिति में उसको कई वर्ष व्यतीत हो गए।

बारह वर्ष बाद गोरखनाथ मत्स्येंद्रनाथ तथा चौरंगीनाथ को साथ लेकर बदरिकाश्रम से लौट रहे थे कि उन्हें माणिक किसान का स्मरण हो आया। वे गुरु को साथ लेकर उसे देखने के लिए जा पहुंचे।

जाकर देखा तो पता चला कि अपने दिए हुए वचन का पालन करने के लिए माणिक उसी दिन से अपने खेत में जहां-का-तहां खड़ा हुआ है और उसका शरीर सूखकर अस्थि-पंजर मात्र रह गया है। उसके दृढ़ संकल्प को देखकर गोरखनाथ को अत्यंत प्रसन्नता हुई।

गोरखनाथ जानते थे कि माणिक से अब जो कुछ भी कहा जाएगा, वह उसका ठीक उल्टा करेगा। इसलिए उन्होंने माणिक के पास जाकर इस प्रकार कहा– "अहा! आप जैसा तपस्वी तो मुझे कहीं भी दिखाई नहीं दिया। मैं आपको अपना गुरु बनाना चाहता हूं। कृपा करके आप मुझे गुरुमंत्र दीजिए।"

यह सुनकर माणिक ने तुरंत उत्तर दिया– "अरे योगी! इतना बड़ा हो जाने पर भी तुझमें समझ नहीं आई। तू मुझे अपना गुरु बनाना चाहता है, सो तू स्वयं ही मेरा गुरु क्यों नहीं बना जाता। तू मुझे गुरुमंत्र दे। मैं तेरा शिष्य बनूंगा।"

इस उलटे जवाब द्वारा गोरखनाथ ने माणिक के मुंह से स्वयं शिष्य बनने की बात कहलवाई। अस्तु, उन्होंने तुरंत ही उसके कान में गुरुमंत्र फूंका तथा उसके मस्तक पर हाथ रखकर आशीर्वाद दिया।

गुरुमंत्र मिलते ही माणिक का संपूर्ण अज्ञान दूर हो गया तथा गोरखनाथ के हाथ का स्पर्श पाकर उसका शरीर पूर्ववत् हृष्ट-पुष्ट हो गया। उस स्थिति में उसको संपूर्ण जगत् ब्रह्ममय भासित हाने लगा। वह गोरखनाथ के पांवों पर गिर पड़ा तथा हाथ जोड़कर उनकी विनती करने लगा।

गोरखनाथ उसे लेकर मत्स्येंद्रनाथजी के पास गए। उसने मत्स्येंद्रनाथ को साष्टांग दंडवत् किया। तब मत्स्येंद्रनाथ ने उसे नाथ-दीक्षा देकर अपना आशीर्वाद प्रदान किया तथा उसका नाम 'अड़बंगनाथ' रखा। वहीं पर गोरखनाथ ने उसे समस्त विद्याएं सिखाकर उसमें प्रवीणता प्रदान कर दी।

तत्पश्चात् गोरखनाथ ने अड़बंगनाथ को भी अपने साथ ले लिया। इस प्रकार मत्स्येंद्रनाथ, गोरखनाथ, चौरंगीनाथ तथा अड़बंगनाथ- चारों नाथ एक साथ तीर्थयात्रा करने के लिए चल दिए।

भर्तृहरिनाथ तथा अड़बंगनाथ के चरित्र का विशेष वर्णन आगे छठे तथा बारहवें अध्याय में किया जाएगा।

धर्मनाथ को दीक्षा

रेवती रानी के पुत्र धर्मनाथ, जिसका जन्म मत्स्येंद्रनाथ द्वारा हुआ था, का वर्णन दूसरे भाग में किया जा चुका है। इस समय तक धर्मनाथ वृद्धावस्था को प्राप्त हो चुका था। उसके मन में अपने पुत्र त्रिविक्रम को राजगद्दी सौंपकर योग-दीक्षा लेने की इच्छा थी।

मत्स्येंद्रनाथ जब प्रयाग से विदा हुए थे, उस समय धर्मनाथ को यह आश्वासन देकर आए थे कि कुछ वर्षों बाद वे फिर प्रयाग में लौटकर आएंगे तथा गोरखनाथ धर्मनाथ को दीक्षा देंगे।

उसी बात को स्मरण करके मत्स्येंद्रनाथ विभिन्न तीर्थों की यात्रा करते हुए गोरखनाथ चौरंगीनाथ तथा अड़बंगनाथ को लेकर प्रयाग में जा पहुंचे।

धर्मनाथ ने उनके आगमन का समाचार सुना तो वह अगवानी करने के लिए बाहर आ पहुंचा। बड़ी धूम-धाम के साथ चारों नाथों ने राजभवन में प्रवेश किया। वहां सब लोग कुछ दिन रहे।

इसी बीच धर्मनाथ ने अपने पुत्र त्रिविक्रम का राज्याभिषेक कर दिया तथा माघ शुक्ला द्वितीया के दिन स्वयं गोरखनाथजी से नाथ-दीक्षा ले ली। वह दिन 'धर्म द्वितीया' के नाम से संसार में प्रसिद्ध हुआ और लोग इस दिन का व्रत रखने लगे। इस कथा का विस्तृत वर्णन दूसरे अध्याय में किया जा चुका है। गोरखनाथ ने इस 'धर्म द्वितीया' उत्सव के माहात्म्य का वर्णन अपने 'कामियागिरी' नामक ग्रंथ में किया है। जो लोग इस व्रत को करते हैं, उनके रोग-शोक, दरिद्र आदि सभी दोष दूर हो जाते हैं।

नाथ-दीक्षा लेकर धर्मनाथजी अन्य सब लोगों की तरह मत्स्येंद्रनाथ के साथ तीर्थाटन के लिए निकल पड़े। मत्स्येंद्रनाथ सबको बदरिकाश्रम ले गए। वहां उन्होंने धर्मनाथ को शंकर भगवान के दर्शन कराए तथा उनसे आशीर्वाद दिलाया।

धर्मनाथ ने बारह वर्ष बदरिकाश्रम में रहकर उग्र तपस्या की। इस बीच अन्य सब लोग तीर्थयात्रा करने चले गए।

बारह वर्ष बाद सब लोग पुनः बदरिकाश्रम आए। वहां तपस्या पूर्ण होने के उपलक्ष्य से एक वृहद उत्सव मनाया गया, जिसमें सब देवताओं, यक्ष, गंधर्व, भूत-प्रेत, चामुंडा, वेताल, ऋषि-मुनि तथा नाथयोगियों आदि ने भाग लिया। उन सबने मिलकर धर्मनाथ को आशीर्वाद दिया। मत्स्येंद्रनाथ ने धर्मनाथ को नाथ-पंथ का प्रचार करते रहने की आज्ञा प्रदान की। धर्मनाथ गोरखनाथ के शिष्य के रूप में प्रसिद्ध हुए और उन्होंने अत्यंत ख्याति अर्जित की।

गिरिनार पर्वत पर निवास

इंद्र ने जब सोमयाग किया था, उसमें भाग लेने के उपरांत अन्य सब लोग तो विभिन्न स्थानों को चले गए, परंतु गोरखनाथ गुरु दत्तात्रेय के आश्रम गिरिनार पर जाकर रहने लगे। कहा जाता है कि वे अब भी वहीं पर गुप्त रूप से निवास कर रहे हैं।

गोरखनाथ ने अपने जीवन में नाथ संप्रदाय का सर्वाधिक प्रचार किया। उनके चमत्कारों की कथाएं भारत तथा बाहर के अनेक देशों में घर-घर फैली हुई हैं। इस पुस्तक के अगले अध्याय में भी गोरखनाथजी के अनेक चरित्रों का यथावसर वर्णन किया गया है।

गोरखनाथजी योगी ही नहीं थे, अपितु वे बहुत बड़े विद्वान तथा कवि भी थे। संस्कृत भाषा में उनके बनाए हुए अनेक ग्रंथ मिलते हैं। जिनमें गोरक्ष संहिता, गोरक्ष कल्प, गोरक्ष सहस्रनाज, गोरक्ष शतक, गोरक्ष गीता, गोरक्ष पिष्टिका तथा विवेकमार्तंड आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। हिंदी में उनकी बनाई हुई बहुत-सी कविताएं पाई जाती हैं।

नेपाल के निवासी गोरखनाथजी को पशुपतिनाथ महादेव का अवतार मानते हैं। नेपाल के भोगमती, मृगस्थली, भातगांव, चौघरा, पिडठान, स्वारी कोट आदि कई स्थानों पर उनके योगाश्रम हैं। गोरखनाथजी के शिष्य होने के नाते ही नेपाली स्वयं को 'गोरखा' कहते हैं। नेपाल राज्य की मुद्रा पर एक ओर 'श्री श्री श्रीगोरखनाथ' लिखा रहता है।

उत्तर प्रदेश का गोरखपुर नगर जिस स्थान पर बसा हुआ है, कहते हैं किसी समय गोरखनाथजी ने वहां पर तपस्या की थी। गोरखपुर में गोरखनाथ जी का बड़ा मंदिर है, जिसके दर्शन करने के लिए दूर-दूर से श्रद्धालु लोग आते रहते हैं। विशेषकर नेपाली लोग वहां पहुंचते हैं। उत्तर प्रदेश के गोंडा जिले के पाटेश्वरी स्थान में गोरखनाथ का योगाश्रम है। इसी प्रकार महाराष्ट्र में भी ओढ्या नागनाथ के पास गोरखनाथ की तपस्थली है।

होशियारपुर (पंजाब) में गोरख डिब्बी नामक एक मंदिर है तथा पंजाब के ही जिला झेलम में रेलवे स्टेशन से तीन-चार मील दूर पहाड़ के ऊपर गोरखटीला नामक स्थान है। ये सभी स्थान गोरखनाथजी के यश के पुनीत स्मारक हैं।

❖❖

नवनाथ चरित्र सागर

भाग-4
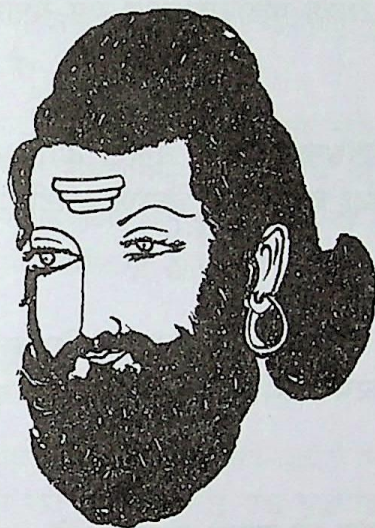
श्री जालंधरनाथ-चरित्र

(अंतरिक्ष नारायण के अवतार)

''अवधू अहार तोड़ौ निद्रा मोड़ौ कबहुं न होइबो रोगी।
छटे छमाहे काया पलटिबा नाग बंग बनासपती जोगी।''

☆☆☆

''अवधू सहस्रनाड़ी पवन चलैगा कोटि झमका नादं।
बहत्तर चंदा बाईसांख्या किरण प्रगटी जब आंद॥''

☆☆☆

''अबधू रहिबा हाटे बाटे रूख बिरख की छाया।
तजिबा काम क्रोध तिस्ना और संसार की माया॥''

☆☆☆

''थोड़ी खाइ तो कलपै झलपै घणों खाई लै रोगी।
दुहूं पखां की संधि विचारै ते को बिरला जोगी॥''

पूर्व वृत्तांत

नौ नाथयोगियों में जिस प्रकार मत्स्येंद्रनाथ का नाम अग्रगण्य है, उसी प्रकार जालंधरनाथ भी अत्यंत प्रसिद्ध थे। मत्स्येंद्रनाथ के शिष्यों में जिस प्रकार गोरखनाथ एवं अड़बंगनाथ आदि ने ख्याति प्राप्त की, उसी प्रकार जालंधरनाथ के शिष्यों में कानीफानाथ, राजा गोपीचंद, रानी मैनावती आदि का नाम बहुत प्रसिद्ध है।

जालंधरनाथ को अंतरिक्ष नारायण का अवतार तथा अग्निदेव का पुत्र माना जाता है। अन्य सिद्ध नाथयोगियों की भांति ये भी अयोनिज थे। इस अध्याय में प्रचलित लोक-कथाओं, अनुश्रुतियों आदि के आधार पर योगिराज जालंधरनाथ के चरित्र एवं चमत्कारों आदि का वर्णन किया जाएगा।

शिव-पार्वती की कथा

एक बार कैलास पर्वत पर बैठे हुए शिव-पार्वती चौसर खेल रहे थे। बाजी बहुत देर से चल रही थी और कोई पक्ष मात खाने के लिए तैयार नहीं था। तभी किसी कारणवश शिव-पार्वती एक-दूसरे से नाराज हो गए। क्रोध की उसी अवस्था में वे दोनों तपस्या करने के लिए बैठ गए। उनका यह तप अत्यंत उग्र था। उस तप के तेज से कुछ समय बाद ही प्रलयाग्नि उत्पन्न हुई। उसके कारण पृथ्वी, आकाश तथा पाताल– तीनों लोक भयभीत हो गए। ऐसा प्रतीत होने लगा कि संपूर्ण सृष्टि जलकर भस्म होने ही वाली है।

यह स्थिति देखकर देवता घबरा गए। वे दौड़ते हुए शिवजी के पास गए और उनकी स्तुति करने लगे। शिवजी ने उनसे पूछा– "तुम लोग यहां किसलिए आए हो?"

देवताओं ने कहा– "हे प्रभो! आप पार्वतीजी को मना लीजिए, अन्यथा तीनों लोक भस्म हो जाएंगे।"

शिवजी बोले– "मैं पार्वती को जाकर मनाऊं, ऐसा कभी नहीं हो सकता। तुम स्वयं ही जाकर उन्हें मना लो।" यह कहकर शंकर ने पुनः समाधि लगा ली।

तब सब देवता मिलकर पार्वती के समीप पहुंचे। उन्होंने पार्वतीजी को प्रसन्न करने के लिए अनेक प्रकार से प्रार्थनाएं कीं, परंतु पार्वती जी ठहरी स्त्री। हठ में स्त्रियों की समानता कौन कर सकता है? उन्होंने देवताओं की विनय सुनकर अपनी आंखें तक नहीं खोलीं।

देवता घबराए हुए अपने राजा इंद्र के पास जा पहुंचे। इंद्र ने शिव–पार्वती के बीच में पड़ना अस्वीकार कर दिया।

फिर इंद्र सभी देवताओं को साथ लेकर गंगाजी के पास पहुंचा। गंगा भी शिव की अर्द्धांगिनी हैं और वह उनके मस्तक पर निवास करती हैं। देवताओं ने उनसे त्रिलोक को भस्म होने से बचाने के लिए कहा।

गंगाजी देवताओं की प्रार्थना सुनकर अपनी बड़ी बहन पार्वती के पास गई। गंगा को आया हुआ देखकर पार्वतीजी ने उन्हें सम्मान सहित अपने पास बैठाया। गंगा ने पार्वतीजी की प्रलयाग्नि की भयंकरता का बोध कराते हुए कहा– "बहन! अब तुम जैसे भी हो सके शिवजी को प्रसन्न करो।"

पार्वतीजी ने अपनी छोटी बहन गंगा की प्रार्थना स्वीकार कर भिलनी के वेष में शिवजी के पास जाने का निश्चय किया।

कामदेव का स्वरूप

उधर देवताओं को जब यह ज्ञात हुआ कि पार्वतीजी का ध्यान भंग हो गया है, तब वे अत्यंत प्रसन्न हुए। अब केवल शिवजी की समाधि भंग करने का कार्य शेष रह गया था। इंद्र ने उसके लिए एक युक्ति ढूंढ निकाली।

इंद्र कामदेव के पास गया और उनसे बोला– "हे कामदेव! शिवजी की समाधि को भंग करने के लिए अब हमें तुम्हारी सहायता की आवश्यकता है। तुम किसी भी उपाय को अपनाकर शिवजी का ध्यान भंग कर दो, अन्यथा प्रलयाग्नि के कारण संपूर्ण सृष्टि भस्म हो जाएगी।"

कामदेव प्राणियों के शरीर में काम-वासना उत्पन्न करने वाला देवता है। उसका जन्म ब्रह्मा के हृदय से हुआ था। उसके पास पुष्प निर्मित एक दिव्य धनुष और फूलों से बने हुए पांच बाण थे। वे बाण क्रमशः चंपा, आम के बौर, नागकेशर, केवड़ा और तिल के फूल के बने हुए हैं। कामदेव का वाहन उल्लू है। उसका प्राणप्रिय मित्र वसंत है। कामदेव रात्रि के समय अपने वाहन पर बैठकर चांदनी में घूमने के लिए निकलता है तथा स्त्री-पुरुषों में कामेच्छा उत्पन्न करता है।

कामदेव के साथ अनेक सुंदरी एवं नवयौवना अप्सराएं रहती हैं। उनमें मुख्य अप्सरा का नाम मोहिनी है। वह अपने हाथ में कामदेव की ध्वजा को धारण किये रहती है। उस ध्वजा का रंग लाल है तथा उस पर मछली का चित्र बना हुआ है। कामदेव की पत्नी का नाम 'रति' है।

कामदेव को उसके आयुध, ध्वजा, रूप, पत्नी, आदि से संबद्ध करके अनेक नामों से पुकारा जाता है। वह प्राणियों के मन का मंथन करता है, इसलिए उसे 'मंथन' कहा जाता है। इसके अतिरिक्त मदन, कंदर्प, स्मर, अनंग, पंचशर, रतिपति, मनसिज, मीनकेतु, मकरध्वज, कुसुमायुध, आदि अनेक नाम कामदेव के हैं।

काम-दहन

परोपकार करने की दृष्टि से कामदेव ने इंद्र की प्रार्थना को स्वीकार कर लिया। वह अपनी विश्व-विजयी सेना को सजाकर शिवजी के समीप चल दिया।

उधर पार्वतीजी भिलनी का वेष बनाकर शिवजी के पास जा पहुंची। वह अपने नृत्य द्वारा शिवजी की समाधि को भंग करने का प्रयत्न कर रही थी। उसी समय कामदेव भी वहां जा पहुंचा। उसने अदृश्य रहते हुए शिवजी के ऊपर अपने पुष्पबाण का प्रहार किया।

कामदेव का बाण लगते ही शिवजी की समाधि उतरने लगी। उनके हृदय में कामदेव का प्रवेश हो चुका था। सहसा शिवजी ने अपनी आंखें खोल दीं। शिवजी की समाधि भंग होते ही प्रलयाग्नि स्वयमेव शांत हो गई।

शिवजी ने समाधि के खुलने पर जब अपने सामने नृत्य करती हुई भिलनी वेषधारिणी पार्वतीजी को देखा तो वे उनके मोहक रूप पर मुग्ध हो गए। उसी समय शिवजी की दृष्टि एक स्थान पर छिपकर खड़े हुए कामदेव पर पड़ी। शिवजी संपूर्ण रहस्य को तुरंत समझ गए। उन्हें ज्ञात हो गया कि उनकी समाधि को भंग करने के लिए कामदेव ने ही यह सब मायाजाल रचा है।

शिवजी ने उसी क्षण अपना तीसरा नेत्र खोलकर कामदेव को भस्म कर दिया, परंतु उस समय तक शिवजी कामासक्त हो चुके थे। काम-दहन के साथ ही शिवजी का वीर्य भी स्खलित हो गया। उस वीर्य को अग्नि ने ग्रहण कर लिया। आगे चलकर उसी वीर्य में अंतरिक्ष नारायण ने प्रवेश किया और उसके द्वारा जिस अयोनिज बालक की उत्पत्ति हुई उसका नाम 'जालंधरनाथ' पड़ा।

कामदेव के भस्म हो जाने पर उसकी पत्नी 'रति' ने शिवजी की बहुत प्रार्थना की। तब शिवजी ने प्रसन्न होकर उसे यह वर दिया कि तेरा पति द्वापरयुग में कृष्ण-रुक्मिणी के पुत्र 'प्रद्युम्न' के नाम से जन्म लेगा। कुछ समय तक वह शंबरासुर के पास रहेगा, फिर वह तुझे पतिरूप में प्राप्त हो जाएगा।

भगवान शिव से यह वरदान पाकर रति अपने घर को चली गई और शिवजी के कथनानुसार समय आने पर उसने अपने पति को पुनः प्राप्त कर लिया।

अग्निदेव का वृत्तांत

जिस प्रकार भगवान सर्वव्यापक हैं, उसी प्रकार अग्नि का निवास भी सर्वत्र पाया जाता है। अग्निदेव के दो मुख हैं। एक आगे और दूसरा पीछे। उनके तीन पांव तथा सात हाथ हैं। अग्निदेव का वाहन मेढ़ा है। उनकी ध्वजा पर भी मेढ़े का ही चिह्न है। ये 'वह्नि' के अधिष्ठाता देवता हैं।

एक बार इंद्र के कहने पर अग्निदेव ब्राह्मण का वेष धारण कर शिवजी के समीप जा पहुंचे और 'भिक्षाम् देहि' कहते हुए खड़े रहे।

उस समय शिवजी पार्वतीजी के साथ विहार कर रहे थे। अतिथि को द्वार पर आया हुआ देखकर शिवजी का वीर्य बाहर ही स्खलित हो गया। उस वीर्य को किसी के द्वारा धारण करना आवश्यक था, इसलिए अग्निदेव उसे स्वयं ही पी गए, परंतु अग्निदेव उस वीर्य को सहन नहीं कर सके, अत: उन्होंने उसे गंगा में फेंक दिया। उस वीर्य के द्वारा स्वामी कार्तिकेय का जन्म हुआ। स्वामी कार्तिकेय देवताओं के प्रधान सेनापति बने। उन्होंने युद्ध-क्षेत्र में राक्षसों का संहार करके देवताओं की रक्षा की।

एक बार अग्निदेव ब्राह्मण का वेष बनाकर यमुना नदी के तट पर जा पहुंचे। उस समय वहां भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन के साथ भ्रमण कर रहे थे। ब्राह्मणरूपी अग्निदेव ने श्रीकृष्ण तथा अर्जुन के पास पहुंचकर कहा– "हे प्रभो! मैं अग्नि हूं। राजा श्वेतकेतु ने चौबीस वर्ष तक निरंतर यज्ञ किया था, जिसके कारण मुझे अजीर्ण रोग हो गया है। यदि आप मुझे खांडव वन की वनस्पतियों का भक्षण कराएं तो मेरा रोग ठीक हो सकता है। यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं खांडव वन को जलाऊं।"

खांडव वन देवताओं के स्वामी इंद्र का था। उसमें इंद्र का मित्र तक्षक नाग अपने परिवार सहित निवास करता था। उसके भय के कारण अग्नि उस वन में प्रवेश नहीं कर सकती थी। इसीलिए अग्नि ने श्रीकृष्ण और अर्जुन से अपनी रक्षा का आश्वासन प्राप्त करने के लिए यह मांग की थी।

अर्जुन ने अग्नि को खांडव वन जलाने की आज्ञा दे दी। अग्नि ने जब खांडव वन को जलाना आरंभ किया तो इंद्र ने बचाव में आकर अर्जुन के साथ युद्ध छेड़ दिया। युद्ध में इंद्र की पराजय हुई। अग्नि का अजीर्ण रोग दूर हो गया।

खांडव वन को भस्म करने के उपरांत अग्नि ने प्रसन्न होकर अर्जुन को 'गांडीव' नामक धनुष, अक्षय 'तूणीर' तथा 'विजय रथ'– ये तीन वस्तुएं भेंट में दीं। अग्निदेव के ऐसे अनेक चरित्रों का वर्णन विभिन्न पुराणों में किया गया है। अग्नि, नीलध्वज राजा के जामाता (दामाद) हैं। अग्नि को ईश्वररूप और शिवरूप माना जाता है।

वृहद्रवा का सोमयाग

कुरुवंश में जन्मेजय नामक राजा अत्यंत प्रसिद्ध हुए हैं। उनकी सातवीं पीढ़ी में राजा वृहद्रवा का जन्म हुआ। उनके राज्य की राजधानी हस्तिनापुर में थी।

एक बार राजा वृहद्रवा ने सोमयाग करने का विचार किया। उन्होंने अपने राजगुरु के समीप जाकर मन की इच्छा प्रकट की। राजगुरु ने राजा के विचार से सहमति प्रकट करते हुए यज्ञ आरंभ करने के लिए एक शुभ मुहूर्त निश्चित कर दिया। साथ ही यज्ञ के काम में आने वाली सामग्री की एक सूची भी तैयार करके दे दी।

गुरु का आशीर्वाद पाकर राजा ने प्रधानमंत्री को बुलाकर यज्ञ की तैयारियां करने का आदेश दिया। अत्यंत धूमधाम के साथ सब कार्य आरंभ हो गए। राज्यभर में यह घोषणा प्रचारित कर दी गई कि राजा वृहद्रवा सोमयाग करने जा रहे हैं। इस समाचार को पाकर प्रजा में प्रसन्नता की लहर दौड़ गई।

यज्ञ के अनुरूप विशाल मंडप तथा वेदी का निर्माण किया गया। ऋत्विज, ब्रह्मचारी, ब्राह्मण, साधु-संत, ऋषि-मुनि, राजा-महाराजा तथा अन्य वर्गों के स्त्री-पुरुष यज्ञ में भाग लेने के लिए यथा समय आ उपस्थित हुए। शुभ मुहूर्त में यज्ञ आरंभ हुआ। चारों ओर वेद-मंत्रों की ध्वनियां गूंजने लगीं।

यज्ञकुंड में अग्निनारायण प्रकट हुए। काम-दहन के समय शिवजी के स्खलित वीर्य का अग्निदेव ने पान किया था, लेकिन उसे उन्होंने कुछ समय बाद गंगा में फेंक दिया था और उसके द्वारा स्वामी कार्तिकेय का जन्म हुआ था। यह बात पहले ही बताई जा चुकी है। उसी शिव-वीर्य का कुछ अंश अग्निदेव के उदर में बाकी था। राजा वृहद्रवा के सोमयाग के समय अग्निदेव के उदर-स्थित उस वीर्यांश में अंतरिक्ष नारायाण ने प्रवेश किया। अग्निदेव ने उस गर्भ को यज्ञकुंड में फेंक दिया। यज्ञकुंड में पड़ा हुआ वह गर्भ परिपक्व होता रहा।

जालंधरनाथ का प्राकट्य

पूर्णाहुति दिए जाने के उपरांत यज्ञकुंड की भस्म एकत्र करने वाले ब्राह्मणों ने जब कुंड में हाथ डाला तो उस कुंड की भस्म के भीतर दबा हुआ बालक उनके हाथ का स्पर्श पाते ही रोने लगा।

ब्राह्मणों ने उस बालक को बाहर निकाला। उस परम तेजस्वी, दिव्य स्वरूप वाले बालक को देखकर सब लोग आश्चर्य करने लगे कि अग्नि कुंड की प्रज्वलित अग्नि के भीतर यह बालक जीवित किस तरह रहा!

यज्ञकुंड के भीतर से अयोनिज जीवित बालक के निकलने का समाचार पलभर में ही चारों ओर फैल गया। दूर-दूर से स्त्री-पुरुष उस दिव्य बालक के दर्शन करने के लिए यज्ञ-मंडप में पहुंचने लगे।

ब्राह्मणों ने उस बालक को अग्निदेव द्वारा समर्पित यज्ञ के प्रसाद के रूप में अनुभव किया और उसे राजा वृहद्रवा को सौंप दिया। राजा वृहद्रवा उस बालक को पाकर अत्यंत प्रसन्न हुए। वे उसे अंतःपुर में ले गए। वहां उन्होंने अपनी रानी सुलोचना की गोद में बालक को देते हुए कहा– ''भगवान अग्निदेव ने यह बालक हमें सोमयाग के प्रसाद के रूप में दिया है।''

सुलोचना उस बालक को देखकर अत्यंत प्रसन्न हुई और उसे अपने हृदय से लगा लिया। हृदय से लगाते ही रानी के स्तनों से दूध की धार बहने लगी। रानी ने बालक को स्तनपान कराया। जब बालक का पेटभर गया, तब उसे पालने में सुला दिया।

थोड़ी देर बाद राजा वृहद्रवा का पुत्र मीनकेतु वहां आ पहुंचा। उसने अपने पालने में किसी अन्य बालक को लेटे हुए देखकर रानी से पूछा– ''हे माता! मेरे पालने में यह कौन लेटा हुआ है?''

रानी ने उत्तर में कहा– ''हे पुत्र! यह तेरा छोटा भाई है। भगवान अग्निनारायण ने इसे हमें देकर तुम्हारी जोड़ी बना दी है।''

यह सुनकर मीनकेतु अत्यंत प्रसन्न हुआ। बोला– ''अच्छा, इस समय तो यह सो रहा है। जब जाग जाएगा, तब मैं इसे खिलाने के लिए आऊंगा।''

पुत्र के घर आने के दसवें दिन राजा-रानी ने अपने कुलगुरु को बुलाकर धार्मिक कृत्य संपन्न कराए। बालक अग्निदेव की कृपा से प्राप्त हुआ था। अत: उसका नाम 'जालंधर' रखा गया। राजा ने उस समय प्रसन्न होकर याचकों तथा ब्राह्मणों को खूब दान दिया।

जालंधर की वैराग्य वृत्ति

बालक जालंधर चंद्रमा की कला की भांति प्रतिदिन वृद्धि को प्राप्त होने लगा। राजा-रानी दोनों ही उस परम तेजस्वी सुंदर बालक को देख देखकर प्रसन्नता से भरे रहते थे और अपने भाग्य की सराहना किया करते थे।

मीनकेतु भी अपने छोटे भाई जालंधर को अत्यंत प्रेम करता था। बड़े होकर दोनों भाई साथ-साथ विद्याभ्यास करने लगे। वे दोनों प्रतिदिन स्नानादि से निवृत्त होकर शिवालय जाते और वहां गणपति, शिव-पार्वती तथा नंदी का पूजन किया करते थे।

शिव-पूजन करते समय मीनकेतु तो 'ॐ नमः शिवाय' मंत्र का उच्चारण करता था, परंतु जालंधर के मुख से 'शिवोऽहम्, शिवोऽहम्' की ध्वनि निकला करती थी।

एक दिन मीनकेतु ने यह बात घर आकर अपने पिता से कही। राजा वृहद्रवा तो जानते ही थे कि बालक जालंधर ईश्वर के अंश से उत्पन्न हुआ है। अत: उन्होंने मीनकेतु को भी यह रहस्य समझा दिया और कहा कि तुम्हारा छोटा भाई जालंधर भगवान शिव के प्रतिरूप अग्निदेव के अंश से उत्पन्न होने के कारण शिवजी का ही प्रतिरूप है। ऐसी स्थिति में उसका 'शिवोऽहम्, शिवोऽहम्' शब्द का उच्चारण करना अनुचित नहीं है। यह बात जब मीनकेतु को पता चली तो अपने छोटे भाई पर उसका स्नेह और अधिक बढ़ गया।

दोनों राजकुमार जब कभी टहलने निकलते तो मीनकेतु तो घोड़े पर सवारी करता, परंतु जालंधर पैदल ही चला करता। उसे किसी भी पशु अथवा अन्य प्राणियों को कष्ट देना अच्छा नहीं लगता था।

जालंधर की वैराग्य-वृत्ति दिन-प्रतिदिन बढ़ने लगी। उसके आचार-विचारों में बहुत अंतर था। राजसी सुख-वैभव को वह पसंद नहीं करता था। राजा-रानी जालंधर के विषय में भली-भांति परिचित थे। अतः वे किसी प्रकार की रोक-टोक नहीं करते थे।

दोनों राजकुमार युवा हुए। राजा-रानी ने उन दोनों का विवाह करने का निश्चय किया। प्रधानमंत्री तथा राजगुरु को यह काम सौंपा गया कि वे दोनों राजकुमारों के लिए योग्य कन्याओं की तलाश करें। राजा की आज्ञा पाकर वे दोनों राजकुमारों के लिए कन्याओं की तलाश करने राजधानी से बाहर चले गए।

जालंधर धर्म-चर्चा करने के लिए राजगुरु के घर प्रतिदिन जाते थे। जब राजगुरु प्रधानमंत्री के साथ कन्याओं की तलाश करने के लिए राजधानी से बाहर चले गए और बहुत दिनों तक नहीं लौटे तो एक दिन जालंधर ने अपनी माता रानी सुलोचना से पूछा– "हे माता! आजकल राजगुरु और प्रधानमंत्री दिखाई क्यों नहीं देते?"

रानी ने उत्तर दिया– "हे पुत्र! वे तुम्हारे और तुम्हारे बड़े भाई के लिए कन्याएं ढूंढने के लिए गए हैं, ताकि तुम दोनों का विवाह कर दिया जाए।"

जालंधर ने पूछा– "हे माता! कन्या किसे कहते हैं?

"जिस लड़की का विवाह न हुआ हो, उसे कन्या कहा जाता है।"

"और विवाह किसे कहते हैं?"

"वर-वधू के धर्मानुसार एकसूत्र में बंधने की क्रिया को विवाह कहते हैं।"

"वधू कैसी होती है?"

जालंधर की बात सुनकर रानी आश्चर्यचकित रह गई। उन्हें यह अनुमान भी नहीं था कि इतना बड़ा हो जाने पर भी जालंधर को इन सब बातों का तनिक भी ज्ञान न होगा। अस्तु, उन्हें और कोई उत्तर नहीं सूझा। बोली– "वधू मेरे जैसी होती है।"

"आप जैसी?"

"हां!" कहकर रानी चुप हो गई।

जालंधर ने कहा– ''हे माताजी! जब आप घर में हैं ही, तब और किसी वधू को लाने की क्या आवश्यकता? मेरे लिए तो एक ही माता बहुत है? मुझे दूसरी माता नहीं चाहिए।''

रानी स्तब्ध बनी रहीं। जालंधर वहां से हटकर राजोद्यान में जा पहुंचे।

जालंधर का गृह-त्याग

राजा वृहद्रवा के बाग का नाम 'गुरु उद्यान' था। वह बाग बहुत बड़ा था और उसमें भांति-भांति के वृक्ष तथा पौधे लगे हुए थे। मनोहारिणी लताओं, सुंदर पुष्प, कोकिल, मयूर, भ्रमर आदि के कारण वह बाग अत्यंत शोभा को प्राप्त था। जालंधर अपना अधिकांश समय उसी बाग में बिताया करते थे। वहां प्रकृति के सुरम्य रूप को देखकर उनके हृदय में एक अद्‌भुत आनंद का संचार होता था। वे वहां किसी वृक्ष आदि के नीचे बैठकर घंटों तक भगवान का स्मरण तथा आत्म-चिंतन किया करते थे।

उस दिन राजभवन से निकलकर जलांधर बाग के एक वृक्ष के नीचे विचारमग्न बैठे हुए थे। तभी उनके कुछ बाल-मित्र बाग में खेलने के लिए आ पहुंचे। उन्होंने जालंधर से आग्रह किया कि वे भी उनके खेल में सम्मिलित हों, परंतु जालंधर ने उस आग्रह को अस्वीकार कर दिया। जालंधर के मना करने पर सब साथी तो लौट गए और वहां से कुछ दूर जाकर खेल में मग्न हो गए, परंतु एक साथी, जो आयु में उन सबसे बड़ा था, वहीं खड़ा रहा। उसने जालंधर से पूछा– ''राजकुमार! इस समय आप क्या चिंतन कर रहे हैं?''

जालंधर ने उत्तर दिया– ''हे भाई! आज माता ने मेरे विवाह की बात कही थी, उसी पर सोच-विचार कर रहा हूं।''

मित्र बोला– ''यह तो बहुत अच्छी बात है। आपका विवाह होगा। चारों ओर धूमधाम होगी। शहनाइयां बजेंगी और उत्सव मनाया जाएगा।''

''परंतु उससे मेरा क्या लाभ होगा?''

''आपको एक सुंदर-सी दुल्हन मिल जाएगी?''

"दुल्हन का मैं क्या करूंगा?"

"उससे संतानें होंगी। आप उनके पिता बनेंगे। इस प्रकार संतान की वृद्धि होगी।"

यह सुनकर जालंधर ने कहा– "जिसके कारण इतने झंझटों में फंसना पड़े, उस विवाह को मैं नहीं करूंगा।"

मित्र ने मन में सोचा– "यह तो सांसारिकता से बिल्कुल अपरिचित है!"

इन सब बातों को सुन सुनकर जालंधर के मन में वैराग्यवृत्ति और अधिक जोर पकड़ने लगी। उसी समय उनकी दृष्टि सामने के एक पौधे पर जा टिकी। उस पौधे पर एक मकड़ी ने जाला बना रखा था। जो भी कीड़ा-मकोड़ा इधर-उधर से उड़कर आता, वह उस जाले में फंस जाता था और मकड़ी उसे खा जाती थी।

जालंधर मन में विचार करने लगे– 'यह संसार भी एक मकड़ी के जाले की तरह है। बाहर से यह बहुत आकर्षक दिखाई देता है, परंतु जो व्यक्ति इसमें एक बार फंस जाता है, वह फिर जीवित नहीं रह पाता। अतः मुझे इसके मोह से छूटकर आत्म-कल्याण का मार्ग ढूंढना चाहिए।'

इस तरह के विचार मन में आते ही जालंधर के ज्ञानचक्षु जैसे एकदम खुल गए। उन्होंने गृह-त्याग का निश्चय कर लिया। वे बाग से उठे और राजभवन को न जाकर, वन की ओर चल पड़े।

रात्रि होने तक जब जालंधर लौटकर घर नहीं पहुंचे तो राजा-रानी को चिंता हुई। सब ओर तलाश की गई, परंतु कुछ भी पता नहीं चला। दूर-दूर तक ढूंढने के लिए गए हुए सेवकों ने लौटकर यही सूचना दी– "राजकुमार जालंधर नहीं मिले, पता नहीं वे कहां चले गए हैं।"

राजा-रानी यह तो जानते ही थे कि जालंधर ईश्वर के अंशावतार हैं। अस्तु, उन्हें एक ओर जहां पुत्र-वियोग का दुःख हुआ, दूसरी ओर अधिक आश्चर्य भी नहीं हुआ। उन्हें पहले से ही यह आशा थी कि जालंधर किसी दिन घर छोड़कर चले जाएंगे। इसीलिए उन्होंने उन्हें गृहस्थी के बंधन में बांधने का विचार किया था, परंतु उनके मन की इच्छा मन में ही रह गई। अंततः दोनों को संतोष करना ही पड़ा।

पिता-पुत्र की भेंट

राजोद्यान से निकलकर जालंधर चलते-चलते एक गहन वन में जा पहुंचे। उस समय रात्रि हो चुकी थी। अतः वे उसी जंगल में एक वृक्ष के नीचे लेटकर सो गए।

उसी रात वह जंगल दावानल में बदल गया। वह अग्नि वन के वृक्षों को जलाती हुई उस स्थान पर जा पहुंची, जहां जालंधर सो रहे थे। अग्निदेव ने जब अपने पुत्र जालंधर को वहां सोते हुए देखा तो उन्होंने अपने अग्निरूप को तुरंत समेट लिया। फिर वे देवरूप धारण कर जालंधर के समीप खड़े होकर कहने लगे– ''हे पुत्र! जालंधर उठो!''

आवाज सुनकर जालंधर की आंखें खुल गईं। उन्होंने अपने सामने खड़े हुए अग्निदेव को देखकर आश्चर्यचकित होते हुए पूछा– ''आप कौन हैं?''

अग्निदेव ने कहा– ''मैं अग्निदेवता हूं।''

''आप यहां किसलिए पधारे।''

''तुम्हें बचाने के लिए।''

''क्यों, मुझे क्या भय था?''

''मैं इस वन को अग्निरूप में भस्म कर रहा था। जब मैंने देखा कि तुम यहां सो रहे हो तो मैंने अपने अग्निस्वरूप को अदृश्य कर दिया। अब इस रूप में तुमसे मिलने के लिए आया हूं।''

''आपने मुझे जलने से क्यों बचाया? मैं तो इस संसार से बिल्कुल ऊब चुका हूं। अच्छा होता कि मैं अग्नि में जलकर मर जाता।''

यह सुनकर अग्निदेव ने कहा– ''हे पुत्र! मैं तुम्हारा पिता हूं। भला मैं तुम्हें जलाकर भस्म कैसे कर सकता हूं?''

जालंधर बोले– ''मैं तो राजा वृहद्रवा का पुत्र हूं। मेरी माता का नाम सुलोचना है। आप मेरे पिता किस प्रकार हुए!''

तब अग्निदेव ने जालंधर को उनके जन्म के विषय में संपूर्ण विवरण से अवगत कराया। उसे सुनकर जालंधर ने अग्निदेव को साष्टांग प्रणाम किया।

अग्निदेव ने जालंधर से पूछा– "तुम यहां जंगल में क्यों चले आए? क्या तुम्हें राजा-रानी ने कोई कष्ट दिया था?"

जालंधर ने उत्तर में कहा– "मुझे किसी ने कोई कष्ट नहीं दिया। राजा-रानी तो मुझे अत्यधिक स्नेह करते थे, परंतु वे मेरा विवाह करा देना चाहते थे और मैं सांसारिक बंधनों से छुटकारा पाना चाहता था, इसीलिए मैं किसी से बिना कुछ कहे-सुने यहां चला आया।"

अग्निदेव ने पूछा– "अब तुम क्या चाहते हो?"

जालंधर ने उत्तर दिया– "मैं अपने जीवन को सार्थक करना चाहता हूं। मैं चिरंजीवी होना चाहता हूं। मेरे मन में नर से नारायण बन जाने की इच्छा है। आप मेरे पिता हैं। कृपया आप मेरी सहायता कीजिए।"

पुत्र की बात सुनकर पिता को अत्यधिक हर्ष हुआ।

उन्होंने कहा– "हे पुत्र! अब तुम मेरे साथ चलो। मैं तुम्हारी इच्छा पूरी करूंगा।"

दत्तात्रेयजी से भेंट

अग्निदेव अपने पुत्र जालंधर को गिरिनार पर्वत पर भगवान दत्तात्रेय के पास ले गए। दत्तात्रेय को पहले ही आभास हो चुका था कि कोई महापुरुष मुझसे मिलने के लिए आ रहा है। अत: वे उनके आने की प्रतीक्षा कर रहे थे। तभी पिता-पुत्र ने पहुंचकर उनके चरणों में साष्टांग दंडवत् किया।

दत्तात्रेयजी ने दोनों को आशीर्वाद देकर अपने पास बैठाया। फिर अग्निदेव से पूछा– "हे अग्निदेव! आपके साथ आया हुआ यह बालक कौन है?"

अग्निदेव ने जालंधर की उत्पत्ति का संपूर्ण वृत्तांत सुनाते हुए दत्तात्रेयजी से प्रार्थना की– "अब आप मेरे इस पुत्र को अपना शिष्य बनाइए तथा दीक्षा देकर कृतार्थ कीजिए।"

दत्तात्रेयजी ने अग्निदेव की प्रार्थना स्वीकार कर ली। तब अग्निदेव जालंधर को उन्हीं के पास छोड़कर स्वयं विदा हो गए।

दत्तात्रेयजी ने जालंधर को नाथ-दीक्षा देकर उनका नाम 'जालंधरनाथ' रखा। फिर उन्होंने जालंधरनाथ को चारों वेदों, छह शास्त्रों, अठारह पुराणों के साथ-साथ चौदह विद्याओं का अभ्यास कराया।

तदुपरांत दत्तात्रेयजी, जालंधरनाथ को अपने साथ लेकर तीर्थाटन के लिए निकल पड़े। उन्होंने काशी, प्रयाग, हरिद्वार, अयोध्या, द्वारिका, गया, जगन्नाथ, सेतुबंध रामेश्वर, आदि सभी स्थानों की यात्रा की। गंगा-यमुना, नर्मदा, गोदावरी, कृष्णा, सरयू आदि सभी पवित्र नदियों में उन्होंने स्नान किया। तीर्थाटन काल में ही दत्तात्रेयजी जालंधरनाथ को मंत्र-विद्या, साबरी-विद्या तथा शास्त्रास्त्र-विद्या का भी अभ्यास कराते रहे।

इस प्रकार बारह वर्ष तक दोनों गुरु-शिष्य साथ रहकर तीर्थयात्रा करते रहे और जालंधरनाथ ने सब विद्याओं में दक्षता भी प्राप्त कर ली।

जालंधरनाथ को आशीर्वाद

तीर्थयात्रा पूरी हो जाने पर दत्तात्रेय जालंधरनाथ को बदरिकाश्रम ले गए। वहां उन्होंने जालंधरनाथ को बारह वर्ष तक तपस्या करने का आदेश दिया। जालंधरनाथ ने दत्तात्रेयजी की आज्ञानुसार तप करना आरंभ किया। जब तपस्या पूरी हो गई, तब दत्तात्रेयजी जालंधरनाथ को शिवजी के पास ले गए। जालंधरनाथ ने शिवजी को साष्टांग दंडवत् किया तथा शिवजी ने उनके मस्तक पर हाथ रखकर अपना आशीर्वाद प्रदान किया। इसके बाद दत्तात्रेयजी उन्हें ब्रह्मा, विष्णु आदि अन्य देवताओं के पास ले गए। उन सबने भी आशीर्वाद देते हुए जालंधरनाथ के महान योगी होने की घोषणा की।

नागअश्वत्थ वृक्ष के देवताओं द्वारा आशीर्वाद पाने के उपरांत जालंधरनाथ पूर्णरूप से सिद्ध योगी बन गए।

इसके बाद भगवान शंकर ने जालंधरनाथ को तीन दिन तक अपने पास रहने के लिए कहा। अतः दत्तात्रेयजी अपने आश्रम को चले गए और जालंधरनाथ भगवान शिव के पास ठहर गए। फिर शिवजी ने अग्निदेव को भी तीन दिन के लिए अपने पास बुला लिया। पिता-पुत्र, दोनों ही शिवजी का आदेश मानकर कैलास पर्वत पर रहने लगे।

कानीफानाथ का प्राकट्य

एक बार ब्रह्माजी अपनी अनुपम सुंदर पुत्री सरस्वती के सौंदर्य पर आसक्त होकर कामोत्तेजित हो गए थे। जब सरस्वती अपना शील बचाकर भागी, उस समय दौड़ते हुए ब्रह्मा का वीर्य स्खलित हो गया। वायु ने उस वीर्य को उड़ाकर जंगल में स्थित एक हाथी के कान-मार्ग द्वारा उसके पेट में पहुंचा दिया।

हाथी के उदर में जब ब्रह्मा का वीर्य पहुंचा तो उसने गर्भरूप धारण कर लिया और उसमें प्रबुद्धनारायण ने प्रवेश किया। धीरे-धीरे सोलह वर्ष व्यतीत हो गए।

भगवान शंकर ने यह वृतांत जालंधरनाथ को सुनाया और कहा– "हे जालंधरनाथ! वह हाथी हिमालय के वन में एक स्थान पर रहता है। तुम उस हाथी के पास जाओ और उसके उदर-स्थित प्रबुद्धनारायण को बाहर प्रकट करो।"

यह सुनकर अग्निदेव ने कहा– "हे प्रभो! जालंधरनाथ को उस हाथी के रहने के स्थान का पता किस प्रकार चलेगा?"

शिवजी बोले– "मैं तुम्हें तथा जालंधरनाथ को उस स्थान पर अपने साथ लिये चलता हूं।"

यह कहकर शिवजी जालंधरनाथ तथा अग्निदेव को साथ लेकर हिमालय के वन में उस स्थान पर जा पहुंचे, जहां वह हाथी रहता था।

शिवजी ने दूर से हाथी की ओर इंगित करते हुए कहा– "जालंधरनाथ! उधर देखो काले पर्वत के समान वह मतवाला हाथी बैठा हुआ है। अब तुम अपनी विद्या से हाथी को वश में करके उसके उदर स्थित प्रबुद्धनारायण को बाहर निकालकर यहां ले आओ। मैं और तुम्हारे पिता अग्निदेव तब तक यहां पर बैठे रहेंगे।"

यह कहकर शिवजी अग्निदेव के साथ वहीं एक स्थान पर बैठ गए। तब जालंधरनाथ उस मतवाले हाथी के पास गए। उन्हें देखते ही हाथी क्रुद्ध होकर उन्हें मारने के लिए झपटा, परंतु तभी जालंधरनाथ ने स्पर्शास्त्र मंत्र द्वारा अभिमंत्रित भस्म का प्रयोग करके हाथी को जहां-का-तहां खड़ा

चिपका दिया। फिर मोहनास्त्र का प्रयोग करके उसके स्वभाव को बदल दिया। फलतः हाथी अत्यंत सरल स्वभाव से वहीं पर खड़ा रहा।

तब जालंधरनाथ उस हाथी के बिल्कुल निकट जा पहुंचे। हाथी ने अपनी सूंड उठाकर उनका अभिवादन किया और अपने कान को उनकी ओर कर दिया।

जालंधरनाथ ने हाथी के कान के पास मुंह करके उसके उदर स्थित बालक को संबोधित करते हुए कहा– "हे प्रबुद्धनारायण! अब आपके प्रकट होने का समय आ पहुंचा है, अतः आप कृपा करके बाहर आ जाइए। आप हाथी के कान-मार्ग से बाहर होंगे, इसलिए मैं आपका नाम 'कानीफा' रखता हूं।"

यह सुनकर हाथी के उदर-स्थित प्रबुद्धनारायण ने उत्तर दिया– "मैं इस हाथी के उदर से उठकर कान में पहुंच रहा हूं। आप वहां से मुझे बाहर निकाल लें।"

क्षणभर बाद ही प्रबुद्धनारायण हाथी के उदर से उठकर उसके कान में जा बैठे। उस समय उनकी आयु सोलह वर्ष थी। जालंधरनाथ ने उन्हें देखते ही हाथी के कान से बाहर निकाल लिया। फिर उन्हें साथ लेकर उस स्थान पर जा पहुंचे, जहां भगवान शंकर तथा उनके पिता अग्निदेव बैठे हुए थे।

जालंधरनाथ ने उन दोनों का परिचय कराया तो कानीफा ने उन्हें साष्टांग दंडवत् किया। शिवजी तथा अग्निदेव ने कानीफा को आशीर्वाद दिया। तत्पश्चात् शिवजी ने जालंधरनाथ से कहा– "हे पुत्र! अब तुम इस बालक को मंत्र-दीक्षा दो, जिससे इसका अज्ञान दूर हो जाए।" शिवजी की आज्ञानुसार जालंधरनाथ ने कानीफा के कान में मंत्रोपदेश किया। मंत्र प्राप्त होते ही कानीफा का समस्त अज्ञान दूर हो गया और उसे संपूर्ण जगत् ब्रह्ममय प्रतिभासित होने लगा।

फिर सब लोग बदरिकाश्रम में गए। वहां अग्निदेव ने जालंधरनाथ से कहा– "हे पुत्र! तुमने अपने गुरु दत्तात्रेयजी से जो-जो विद्याएं प्राप्त की हैं, वे सभी अपने इस शिष्य कानीफा को सिखाओ। तदुपरांत इसे संपूर्ण देवताओं का आशीर्वाद दिलवा देना।" इतना कहकर अग्निदेव शंकरजी से आज्ञा लेकर अपने लोक को चले गए।

अग्निदेव के आदेशानुसार जालंधर ने कानीफा को विद्याएं सिखाना आरंभ कर दिया। संजीवन तथा वाताकर्षण विद्या के अतिक्ति अन्य सभी विद्याएं उन्होंने कानीफा को सिखा दीं। कानीफा कुछ ही दिनों में उन सब विद्याओं में निष्णात हो गए।

तब शिवजी के निर्देशानुसार जालंधर ने सब देवताओं को बुलाकर उनसे कानीफा को आशीर्वाद दिलाने का निश्चय किया।

देवताओं की दुर्दशा

सब देवताओं को निमंत्रण भेजा गया। वे बदरिकाश्रम में आए। जालंधरनाथ ने सबसे कानीफा को आशीर्वाद देने की प्रार्थना की, ताकि उसकी सीखी हुई विद्या सफल हो सके।

उस समय देवताओं ने जालंधरनाथ से कहा-- "हे जालंधरनाथ! तुम्हारे गुरु दत्तात्रेय एवं तुम्हारे पिता अग्निदेव के कहने पर हम सबने तुम्हें अपना आशीर्वाद प्रदान किया था, परंतु अब केवल तुम्हारे कहने से ही हम कानीफा को अपना आशीर्वाद दे दें और इसी तरह अन्य लोगों को भी आशीर्वाद देते रहें तो हमारा अपना महत्त्व ही क्या रह जाएगा? इसलिए हम तुम्हारे कहने मात्र से कानीफा को आशीर्वाद नहीं देंगे।"

यह सुनकर जालंधरनाथ अत्यंत क्रुद्ध हुए। उन्होंने देवताओं को फटकारते हुए कहा- "मैं तो आपसे विनती कर रहा हूं और आप लोग अहंकार में भरकर इस प्रकार की बातें कर रहे हैं, यह उचित नहीं है। अब मैं आपका यह घमंड चूर-चूर करके रख दूंगा।"

यह कहकर जालंधरनाथ ने वातास्त्र मंत्र से अभिमंत्रित भस्म देवताओं के ऊपर फेंकी। उसके प्रभाव से वायु इतने वेग से बहने लगी कि आकाश में उड़ने वाले देवताओं के विमान, जो अपने-अपने घर की ओर जा रहे थे, वे डगमनाने लगे और आकाश में ही अटक कर रह गए।

यह देखकर देवताओं ने जालंधरनाथ के ऊपर अपने-अपने अस्त्र-शस्त्रों से प्रहार करना आरंभ कर दिया। उन्होंने अपने विमान पृथ्वी पर उतार लिये। फिर वे सब मिलकर जालंधरनाथ के ऊपर टूट पड़े।

जालंधरनाथ ने स्तंभनास्त्र का प्रयोग कर देवताओं के अस्त्र-शस्त्रों को स्तंभित कर दिया। फिर उन्होंने कामिनी अस्त्र छोड़कर हजारों अत्यंत रूपवती नवयौवना स्त्रियों को वहां प्रकट कर दिया। फिर मोहनास्त्र का प्रयोग करके देवताओं को उनके ऊपर मोहित कर दिया।

एक-एक देवता के पास तीन-तीन सुंदरियां जाकर खड़ी हो गईं। देवता उन्हें पकड़ने के लिए आगे बढ़े तो वे वहां से उन्हें अपने पीछे-पीछे भागती हुई ले चलीं। घोर जंगल में पहुंचकर वे मायाविनी स्त्रियां वृक्षों के ऊपर जा चढ़ीं। देवता भी उन्हें पकड़ने के लिए वृक्षों पर चढ़ गए। तभी जालंधरनाथ ने स्पर्शास्त्र का प्रयोग करके देवताओं के पांव वृक्षों की डालियों से चिपका दिए। उन स्त्रियों ने ऐसी स्थिति में वस्त्र उतारकर देवताओं को नंगा कर दिया। इसके बाद वे सभी स्त्रियां अदृश्य हो गईं।

नंगे देवता वृक्ष की शाखाओं से उलटे लटक गए। उनके पांव डालियों से चिपके हुए थे। लज्जित होकर वे जालंधरनाथ की प्रार्थना करने लगे। कानीफानाथ को यह दृश्य देखकर दया आ गई। उन्होंने पास जाकर देवताओं को वंस्त्र पहनाना आरंभ कर दिया। वे प्रत्येक देवता को वस्त्र पहनाते और उसके कान में कहते जाते थे कि आप मेरे गुरु जालंधरनाथ से यह मत कहना कि मैंने आपको वस्त्र पहनाए हैं। कानीफानाथ के व्यवहार को देखकर देवतागण प्रसन्न हो गए। उन्होंने कानीफानाथ से कहा कि तुम अपने गुरु जालंधरनाथ से कहो कि वे हमारे अपराध को क्षमा कर दें, हम सब तुम्हें आशीर्वाद देने के लिए तैयार हैं।

कानीफानाथ ने यह बात जाकर जालंधरनाथ से कही, तब जालंधरनाथ ने विभक्तास्त्र का प्रयोग करके देवताओं को स्पर्श-मुक्त कर दिया। देवताओं ने जालंधरनाथ के पास आकर क्षमायाचना की। फिर उन सबने कानीफानाथ को अपना-अपना आशीर्वाद दिया।

इस प्रकार 'चमत्कार को नमस्कार' वाली घटना घटित हुई। देवताओं द्वारा प्रार्थना किए जाने पर जालंधरनाथ ने कहा– "तुम लोग भविष्य में कभी भी मेरे सामने अपने अहंकार का प्रदर्शन मत करना। इसके अतिरिक्त एक काम तुम्हें और भी करना है। वह यह कि कुछ समय बाद मैं साबरी-मंत्रों की रचना करूंगा। तुम्हें उनके लिए भी अपना आशीर्वाद देना होगा, जिससे मेरे रचे हुए मंत्र सफल हो सकें तथा मेरी कविता का प्रचार हो।"

देवताओं ने यह बात भी स्वीकार कर ली। तत्पश्चात् जालंधरनाथ से अनुमति लेकर सब देवता अपने-अपने लोक को चले गए। केवल शिवजी और विष्णुजी जालंधरनाथ के पास तीन दिन तक बने रहे। उन्होंने जालंधरनाथ की अत्यंत प्रशंसा की तथा आशीर्वाद दिया कि तुम देवताओं पर इसी प्रकार सैदव विजय प्राप्त करते रहोगे।

फिर शिवजी की आज्ञानुसार जालंधरनाथ ने कानीफानाथ को नाग अश्वत्थ वृक्ष के नीचे ले जाकर बावन वीर, भूत-प्रेत, वेताल, चामुंडा, वीरभद्र, आदि सभी देवताओं से आशीर्वाद दिलवाया।

साबरी मंत्रों की रचना

पूर्वकाल में साबरी नामक एक ऋषि ने साबरी मंत्रों की रचना आरंभ की थी, परंतु उनकी संख्या अधिक नहीं थी। शिवजी चाहते थे कि कम-से-कम एक करोड़ साबरी मंत्रों की रचना की जाए। यह कार्य उन्होंने नाथयोगियों द्वारा पूर्ण कराना चाहा था, इसीलिए उन्होंने प्रत्येक नाथयोगी को साबरी मंत्रों की रचना करने का आदेश दिया था। मत्स्येंद्रनाथ, गोरखनाथ, आदि सभी नाथ-पंथी योगी करोड़ों साबरी मंत्रों की रचना कर चुके थे। वही आज्ञा शिवजी ने जालंधरनाथ को भी दी और कहा- "हे पुत्र! कलियुग में वेद-मंत्रों को सिद्ध करवाना मनुष्यों के लिए अत्यंत कठिन रहेगा और उनकी महत्ता भी अधिक स्थायी न होगी। इसलिए तुम और कानीफानाथ मिलकर साबरी मंत्रों की रचना करो जिससे लोगों को मंत्र विद्या का सहज लाभ प्राप्त हो सके।"

शिवजी के आदेशानुसार जालंधरनाथ और कानीफानाथ ने बारह वर्ष तक बदरिकाश्रम में रहकर चालीस करोड़ बीस लाख साबरी मंत्रों की रचना की। शंकरजी यह देखकर अत्यंत प्रसन्न हुए। उन्होंने नाग अश्वत्थ वृक्ष के देवताओं द्वारा जालंधरनाथ और कानीफानाथ को आशीर्वाद दिलवाया, जिस कारण वह मंत्र रचना सफल हुई। तत्पश्चात् शंकरजी ने जालंधरनाथ और कानीफानाथ से तपस्या करने के लिए कहा और स्वयं वहां से चले गए।

जालंधरनाथ और कानीफानाथ अलग-अलग स्थानों पर बैठकर तपस्या करने लगे। उस समय गोरखनाथ भी वहीं एक स्थान पर बैठे हुए तपस्या

कर रहे थे, परंतु पर्वत की ऐसी ओट थी कि कोई एक-दूसरे को तप करते हुए देख नहीं सकता था। कानीफ़ानाथ तो बारह वर्ष की घोर तपस्या में मग्न हुए, परंतु जालंधरनाथ कुछ समय तक तपस्या करने के उपरांत वहां से तीर्थयात्रा के लिए अकेले ही निकल पड़े।

जालंधरनाथ हेलापट्ट में

जालंधरनाथ ने विभिन्न तीर्थस्थानों का भ्रमण किया। वे जहां भी जाते, वहीं सुमधुर स्वरों में साबरी मंत्रों का गायन करते थे। उनकी मधुर आवाज को सुनकर लोगों की भीड़ इकट्ठी हो जाया करती थी। फिर जब लोग उनका उपदेश सुनते, तब अत्यधिक प्रभावित होकर नाथ-पंथ के भक्त बन जाते थे।

इस प्रकार स्थान-स्थान पर भ्रमण करके जालंधरनाथजी ने नाथ-पंथ तथा योग का बहुत प्रचार किया और अपने हजारों शिष्य तथा भक्त बनाए। उनके साबरी मंत्रों का भी खूब प्रचार हुआ।

कुछ समय बाद वे गौड़-बंगाल देश के हेलापट्टन (कांचनपुरी) नामक नगर में जा पहुंचे और नगर के बाहर एक स्थान पर जाकर ठहर गए। उन दिनों वहां गोपीचंद नामक एक युवा राजा राज्य करता था।

गोपीचंद के पिता का नाम त्रिलोचन था। जिस समय उनका स्वर्गवास हुआ, उस समय गोपीचंद की अवस्था बहुत कम थी। गोपीचंद की साध्वी माता मैनावती अपने पति के मृत शरीर के साथ सती होना चाहती थी, परंतु मंत्रियों ने राजकुमार की आयु बहुत छोटी होने के कारण उसका यथोचित पालन-पोषण होने की दृष्टि से विविध प्रकार से अनुनय-विनय करके मैनावती को सती होने से रोक लिया था। तब से मैनावती अपना समय भजन-पूजन आदि धार्मिक कृत्य करते हुए बिताती रहती थी।

राजा गोपीचंद जब समझदार हुए, तब उन्होंने शासन-सूत्र अपने हाथ में ले लिया। गोपीचंद की अनेक रानियां थीं। वे सब एक-से-एक सुंदर थीं। उसकी पटरानी का नाम लोमावती था। गोपीचंद उन सबके साथ भोग-विलास करके सुख प्राप्त किया करता था और साथ ही वह प्रजा-पालन में भी अत्यंत कुशल था। अतः घर और बाहर सर्वत्र राजा गोपीचंद की प्रशंसा होती थी।

जालंधरनाथ की प्रशंसा

हेलापट्टन में पहुंचकर जालंधरनाथ ने यह क्रम बनाया कि वे प्रतिदिन घास का गट्ठर अपने सिर पर लादकर नगर में पहुंचते और जहां-जहां गायें खड़ी हुई दिखाई देतीं, वहां उन्हें घास खिलाया करते थे। मार्ग में चलते समय घास का गट्ठर उनके सिर से ऊपर अधर में उठा रहता था। ऐसे पूर्णयोगी को देखकर नगर के सब लोग उनकी प्रशंसा करने लगे। वे आपस में कहा करते कि योगी तो इस नगर में पहले भी बहुत से आए हैं, परंतु ऐसा कोई नहीं आया, जिसके सिर पर रखा हुआ घास का गट्ठर ऊपर आकाश में उठा रहता हो। निश्चय ही यह योगी कोई पहुंचा हुआ सिद्ध पुरुष है।

जालंधरनाथ की प्रशंसा फैलते-फैलते राजभवन में भी जा पहुंची। एक दिन राजमाता मैनावती से एक दासी ने नगर में आए हुए नए योगी की चर्चा की और कहा कि आपको ऐसे योगी के दर्शन अवश्य करने चाहिए।

एक बार जालंधरनाथ राजमहल के सामने होकर जा रहे थे। घास का गट्ठर पूर्वोक्त रूप में उनके सिर के ऊपर साथ-साथ चला जा रहा था। राजमाता ने राजमहल की खिड़की से उस योगी को देखा तो उनके हृदय में योगी के प्रति असीम श्रद्धा जाग्रत हुई। उन्होंने अपनी एक विश्वस्त दासी को आज्ञा दी कि वह गुप्त रूप से पीछे रहकर योगी के निवास स्थान का पता लगाकर लौटे। दासी ने राजमाता की आज्ञा का पालन किया और जालंधरनाथ नगर से बाहर जिस स्थान पर ठहरे हुए थे, उसके विषय में मैनावती को आकर बता दिया।

मैनावती की जालंधरनाथ से भेंट

दूसरे दिन रात्रि के सामय रानी मैनावती अपनी विश्वस्त दासी को साथ लेकर जालंधरनाथ के निवासस्थान पर जा पहुंची। उस समय जालंधरनाथ समाधिस्थ बैठे थे। रानी उनके सामने चुपचाप हाथ जोड़े बैठी रहीं। बहुत देर बाद जब जालंधरनाथ की समाधि भंग हुई, तब उन्होंने अपने सामने दो स्त्रियों को बैठे हुए देखकर पूछा- "तुम लोग कौन हो और इतनी रात के समय यहां किसलिए आई हो?"

कर रहे थे, परंतु पर्वत की ऐसी ओट थी कि कोई एक-दूसरे को तप करते हुए देख नहीं सकता था। कानीफानाथ तो बारह वर्ष की घोर तपस्या में मग्न हुए, परंतु जालंधरनाथ कुछ समय तक तपस्या करने के उपरांत वहां से तीर्थयात्रा के लिए अकेले ही निकल पड़े।

जालंधरनाथ हेलापट्ट में

जालंधरनाथ ने विभिन्न तीर्थस्थानों का भ्रमण किया। वे जहां भी जाते, वहीं सुमधुर स्वरों में साबरी मंत्रों का गायन करते थे। उनकी मधुर आवाज को सुनकर लोगों की भीड़ इकट्ठी हो जाया करती थी। फिर जब लोग उनका उपदेश सुनते, तब अत्यधिक प्रभावित होकर नाथ-पंथ के भक्त बन जाते थे।

इस प्रकार स्थान-स्थान पर भ्रमण करके जालंधरनाथजी ने नाथ-पंथ तथा योग का बहुत प्रचार किया और अपने हजारों शिष्य तथा भक्त बनाए। उनके साबरी मंत्रों का भी खूब प्रचार हुआ।

कुछ समय बाद वे गौड़-बंगाल देश के हेलापट्टन (कांचनपुरी) नामक नगर में जा पहुंचे और नगर के बाहर एक स्थान पर जाकर ठहर गए। उन दिनों वहां गोपीचंद नामक एक युवा राजा राज्य करता था।

गोपीचंद के पिता का नाम त्रिलोचन था। जिस समय उनका स्वर्गवास हुआ, उस समय गोपीचंद की अवस्था बहुत कम थी। गोपीचंद की साध्वी माता मैनावती अपने पति के मृत शरीर के साथ सती होना चाहती थी, परंतु मंत्रियों ने राजकुमार की आयु बहुत छोटी होने के कारण उसका यथोचित पालन-पोषण होने की दृष्टि से विविध प्रकार से अनुनय-विनय करके मैनावती को सती होने से रोक लिया था। तब से मैनावती अपना समय भजन-पूजन आदि धार्मिक कृत्य करते हुए बिताती रहती थी।

राजा गोपीचंद जब समझदार हुए, तब उन्होंने शासन-सूत्र अपने हाथ में ले लिया। गोपीचंद की अनेक रानियां थीं। वे सब एक-से-एक सुंदर थीं। उसकी पटरानी का नाम लोमावती था। गोपीचंद उन सबके साथ भोग-विलास करके सुख प्राप्त किया करता था और साथ ही वह प्रजा-पालन में भी अत्यंत कुशल था। अतः घर और बाहर सर्वत्र राजा गोपीचंद की प्रशंसा होती थी।

जालंधरनाथ की प्रशंसा

हेलापट्टन में पहुंचकर जालंधरनाथ ने यह क्रम बनाया कि वे प्रतिदिन घास का गट्ठर अपने सिर पर लादकर नगर में पहुंचते और जहां-जहां गायें खड़ी हुई दिखाई देतीं, वहां उन्हें घास खिलाया करते थे। मार्ग में चलते समय घास का गट्ठर उनके सिर से ऊपर अधर में उठा रहता था। ऐसे पूर्णयोगी को देखकर नगर के सब लोग उनकी प्रशंसा करने लगे। वे आपस में कहा करते कि योगी तो इस नगर में पहले भी बहुत से आए हैं, परंतु ऐसा कोई नहीं आया, जिसके सिर पर रखा हुआ घास का गट्ठर ऊपर आकाश में उठा रहता हो। निश्चय ही यह योगी कोई पहुंचा हुआ सिद्ध पुरुष है।

जालंधरनाथ की प्रशंसा फैलते-फैलते राजभवन में भी जा पहुंची। एक दिन राजमाता मैनावती से एक दासी ने नगर में आए हुए नए योगी की चर्चा की और कहा कि आपको ऐसे योगी के दर्शन अवश्य करने चाहिए।

एक बार जालंधरनाथ राजमहल के सामने होकर जा रहे थे। घास का गट्ठर पूर्वोक्त रूप में उनके सिर के ऊपर साथ-साथ चला जा रहा था। राजमाता ने राजमहल की खिड़की से उस योगी को देखा तो उनके हृदय में योगी के प्रति असीम श्रद्धा जाग्रत हुई। उन्होंने अपनी एक विश्वस्त दासी को आज्ञा दी कि वह गुप्त रूप से पीछे रहकर योगी के निवास स्थान का पता लगाकर लौटे। दासी ने राजमाता की आज्ञा का पालन किया और जालंधरनाथ नगर से बाहर जिस स्थान पर ठहरे हुए थे, उसके विषय में मैनावती को आकर बता दिया।

मैनावती की जालंधरनाथ से भेंट

दूसरे दिन रात्रि के सामय रानी मैनावती अपनी विश्वस्त दासी को साथ लेकर जालंधरनाथ के निवासस्थान पर जा पहुंची। उस समय जालंधरनाथ समाधिस्थ बैठे थे। रानी उनके सामने चुपचाप हाथ जोड़े बैठी रहीं। बहुत देर बाद जब जालंधरनाथ की समाधि भंग हुई, तब उन्होंने अपने सामने दो स्त्रियों को बैठे हुए देखकर पूछा– ''तुम लोग कौन हो और इतनी रात के समय यहां किसलिए आई हो?''

मैनावती ने नम्र भाव से कहा– "हे महाराज! मैं यहां की राजमाता मैनावती हूं। यह मेरी सेविका है। यहां मैं आपके दर्शन करने के लिए आई हूं। विधवा होने के कारण मैं सब लोगों के सामने नहीं निकल सकती, इसीलिए मुझे इतनी रात में यहां आना पड़ा है।"

यह सुनकर जालंधरनाथ बोले– "हे राजमाता! किसी भी स्त्री को एकांत स्थान पर-पुरुष के साथ इस प्रकार भेंट करना उचित नहीं है। अतः तुम यहां से चली जाओ। यह संसार बड़ा स्वार्थी तथा कपटी है। यह तुम्हारे ऊपर मिथ्या आरोप लगाएगा तथा मुझे भी बदनाम करेगा, इसलिए इस पापी संसार से डरना आवश्यक है।"

मैनावती बोली– "महाराज! आप तो ब्रह्मज्ञानी हैं। आपकी दृष्टि में स्त्री-पुरुष का कैसा भेद और इस संसार से आपको भय क्यों लगने लगा? मुझे इस संसार का भय नहीं है। अतः मैं यहां से इस प्रकार नहीं जाऊंगी।"

जालंधरनाथ ने रानी की परीक्षा लेने की दृष्टि से कहा– "यदि तुम नहीं जाओगी तो मैं पत्थर मारकर तुम्हारा सिर फोड़ दूंगा अथवा शाप देकर भस्म कर दूंगा। इसलिए यदि तुम अपना जीवन चाहती हो तो यहां से तुरंत चली जाओ।"

रानी बोली– "यदि आप ऐसा कर सकें, तब तो यह मेरे लिए और भी अधिक सौभाग्य की बात होगी। आपके द्वारा मारे जाने पर मेरी उत्तम गति होगी। साधु-संतों के हाथों मृत्यु तो किसी भाग्यवान को ही मिल पाती है।"

जालंधरनाथ ने जब यह देखा कि रानी अपनी धुन की पक्की है और इसका मन यथार्थ में वैराग्य की ओर है तो उससे पूछा– "तुम क्या चाहती हो?"

रानी ने उत्तर दिया– "मेरे हृदय में ज्ञानामृत की प्यास है। मैं उसी को पाना चाहती हूं। आप कृपा कर मेरे अज्ञान को दूर कीजिए और मुझे अपना आशीर्वाद प्रदान कीजिए।"

जालंधरनाथ बोले– "अच्छा, तुम्हारे मन की इच्छा पूरी होगी, परंतु आज उसका समय नहीं है। उचित समय आने पर मैं तुम्हें ज्ञान की दीक्षा दूंगा। इस समय तो तुम अपने घर लौट जाओ।"

रानी जालंधरनाथ के वचनों पर विश्वास करके 'जो आज्ञा' कहती हुई उठ खड़ी हुई और उन्हें प्रणाम करने के उपरांत अपने घर चली आई।

मैनावती को मंत्रोपदेश

मैनावती प्रतिदिन रात्रि के समय जालंधरनाथ की कुटिया में पहुंचने लगी। अंधकार अथवा पशु-पक्षियों का भय उसे नहीं लगता था। जालंधरनाथ के पास वह बहुत देर तक बैठी रहतीं, धर्म-चर्चा करती और घर लौट जाती थी।

एक दिन जालंधरनाथ समाधिमग्न बैठे थे। रानी उनके सामने हाथ जोड़कर बैठी थी। उसी समय महाभयंकर काला विषधर नाग वहां आ पहुंचा। वह धीरे-धीरे रानी की ओर बढ़ने लगा, परंतु रानी उससे तनिक भी भयभीत नहीं हुई। सर्प उसके शरीर के ऊपर चढ़ गया। फिर भी वह ज्यों-की-त्यों स्थिर भाव से बैठी रही। सर्प उसे किसी प्रकार की हानि पहुंचाए बिना चुपचाप नीचे उतर गया और एक ओर जाकर अदृश्य हो गया।

एक बार ऐसी ही स्थिति में रानी बैठी हुई थी कि उचानक ही उसके ऊपर बहुत से भंवरों ने आक्रमण कर दिया। उन्होंने रानी के शरीर पर कई स्थानों पर डंक मारे। रानी को इस कारण असह्य वेदना हुई, फिर भी वह अपने स्थान से तनिक भी नहीं डिगी। इसी तरह एक बार रानी जब बैठी थी तो कहीं से ततैयों के एक झुंड ने आकर उन्हें डंक मारना आरंभ कर दिया। पांव में एक स्थान पर कई ततैयों ने मिलकर एक साथ इतने डंक मारे कि वहां से रक्त निकलने लगा। फिर भी रानी अविचलित बनी रही।

इस प्रकार छह महीने की अवधि में जालंधरनाथ ने रानी की अनेक प्रकार से परीक्षा ली, परंतु वह सबमें उत्तीर्ण होती चली गई। अंततः जालंधरनाथ ने उन्हें उचित पात्र जानकर दीक्षा देने का निर्णय किया।

एक दिन शुभ मुहूर्त में जालंधरनाथ ने मंत्रोपदेश करके रानी को अपनी शिष्या बनाया तथा मस्तक पर हाथ रखकर संजीवनमंत्र का उच्चारण करते हुए उन्हें अमर होने का आशीर्वाद प्रदान किया। गुरु की कृपा प्राप्त होते ही रानी को संपूर्ण जगत् ब्रह्ममय लगने लगा। उसका संपूर्ण अज्ञान दूर हो गया। उसने अपने जन्म को सार्थक मानकर गुरु के चरणों में साष्टांग दंडवत् किया। उस समय रानी के हृदय में जो प्रसन्नता भरी हुई थी, उसका वर्णन किसी भी प्रकार नहीं किया जा सकता।

उस दिन रानी अत्यंत प्रसन्न होकर अपने घर लौटी।

रानी की आंख से आंसू गिरा

माघ का महीना था। एक दिन राजा गोपीचंद धूप में बैठकर स्नान की तैयार कर रहे थे। पटरानी लोमावती तथा अन्य रानियां उन्हें स्नान कराने के लिए तैयार खड़ी थीं। स्वर्ण-पात्रों में सुगंधित जल भरा हुआ था। अगरु, चंदन, केसर, तेल, दूध आदि स्नानोपयोगी सभी सामग्री यथा स्थान रखी हुई थी।

महल की जिस छत के ऊपर राजा गोपीचंद स्नान करने के लिए बैठे थे, उसी के ऊपर की अटारी में राजमाता मैनावती बैठी थी। रानियों तथा दासियों की हलचल के कारण उनकी दृष्टि नीचे वाली छत की ओर झुक गई।

राजा गोपीचंद अपने शरीर से वस्त्र उतारकर बैठे हुए थे। उनके दीप्तिमान सुंदर तथा बलिष्ठ शरीर को देखकर राजमाता की आंखों के समक्ष वह दृश्य साकार हो उठा, जब एक दिन इसी तरह गोपीचंद के पिता और उसके पति राजा त्रिलोचन स्नान करने के लिए बैठे थे। उस समय उनकी भी ऐसी ही युवावस्था थी और उनका शरीर भी ऐसा ही सुंदर तथा स्वस्थ था।

रानी सोचने लगी– 'जिस प्रकार उनके पति का ऐसा सुंदर तथा स्वस्थ शरीर एक दिन अग्नि की भेंट हो गया, उसी तरह गोपीचंद की यह पुष्ट तथा मनोहर देह भी किसी दिन अग्नि की भेंट हो जाएगा। अच्छा हो कि गोपीचंद का यह शरीर ऐसा ही बना रहे और वह हमेशा के लिए जीवित रहे।'

उक्त विचार करते समय रानी की आंखों से आंसू निकल पड़े। उनमें दो-एक आंसू टपककर नीचे वाली छत पर स्नान करने के लिए बैठे हुए राजा गोपीचंद के नग्न शरीर पर जा पड़े। उस बूंद का स्पर्श होते ही गोपीचंद ने अपना सिर ऊपर की ओर उठाया तो वे तुरंत समझ गए कि उनकी माता रो रही हैं और यह आंसू की बूंद उन्हीं की आंखों से गिरी है।

गोपीचंद से मैनावती का वार्तालाप

गोपीचंद स्नान करना छोड़कर अपनी माता के पास चल दिए। उनके साथ-साथ पटरानी लोमावती भी गई।

गोपीचंद ने जाकर देखा कि रोने के कारण माता की आंखें लाल हो गई हैं। गोपीचंद ने उन्हें प्रणाम करने के उपरांत कहा– ''हे माता! आपको कौन-सा दुःख है, जो आज आप इस प्रकार रो रही हैं? क्या आपसे किसी ने कुछ कह दिया है अथवा आपको कोई रोग हुआ है?''

राजमाता ने उत्तर में कहा– ''हे पुत्र! न तो किसी ने मुझसे कुछ कहा है और न ही मेरे शरीर में किसी प्रकार का कष्ट है। मुझे कुछ पुरानी बातों का ध्यान आ गया था, इसीलिए मेरी आंखों से आंसू निकल पड़े थे।''

गोपीचंद ने पूछा– ''क्या पिताजी का स्मरण हो आया था?''

राजमाता ने उत्तर दिया– ''हां, उन्हीं को याद करके मैं दुःखी हो गई थी, परंतु मैं चाहती हूं कि तुम ऐसा उपाय कर लो, जिससे तुम्हारी कभी मृत्यु न हो।''

गोपीचंद ने कहा– ''यह कैसे हो सकता है?''

राजमाता बोलीं– ''ऐसा होना असंभव नहीं है। अमरत्व प्रदान करने वाले महात्मा अपने नगर में आए हुए हैं। तुम उनसे आशीर्वाद एवं दीक्षा लेकर अमरत्व प्राप्त कर सकते हो?''

गोपीचंद ने पूछा– ''उनका नाम क्या है?''

''श्री जालंधरनाथ।'' राजमाता ने उत्तर दिया।

''वह जो घास का गट्ठर अपने सिर पर लिये हुए नगर में घूमते रहते हैं?''

''हां वे ही।''

''वे चमत्कारी पुरुष तो अवश्य मालूम होते हैं, परंतु मैं अभी उनसे दीक्षा लेने नहीं जाऊंगा, क्योंकि अभी मेरी आयु कम है और मैंने राज्य सुख का भली-भांति उपयोग भी नहीं किया है। बारह वर्ष बाद मैं दीक्षा लेकर अमर बन जाऊंगा।''

यह सुनकर राजमाता ने पूछा– ''हे पुत्र! बारह वर्ष तक जीवित बने रहने का भी क्या भरोसा है? क्या तुम्हें विश्वास है कि तुम्हारा यह शरीर बारह वर्ष तक अवश्य जीवित बना रहेगा?''

गोपीचंद ने कहा– ''काल कब आ जाएगा, इसका पता तो किसी को भी नहीं होता। तब मैं ही यह विश्वास कैसे कर सकता हूं?''

राजमाता बोलीं– ''जब यही बात है तो तुम बारह वर्ष बाद दीक्षा लेने की बात क्यों करते हो?''

गोपीचंद यह सुनकर कुछ क्षण मौन रहे। फिर बोले– ''अच्छा, मैं जालंधरनाथजी से मिलूंगा। आपकी आज्ञा का पालन करना मेरा धर्म है। यदि जालंधरनाथजी मुझे अमर होने का विश्वास दिला देंगे तो मैं तुरंत दीक्षा ले लूंगा।''

यह कहकर गोपीचंद स्नान करने के लिए लौट पड़े।

लोमावती का प्रपंच

राजमाता मैनावती तथा राजा गोपीचंद की सब बातों को रानी लोमावती ने खड़े होकर सुना था। उसने अपने मन में विचार किया कि यदि राजा ने अमरत्व-प्राप्ति के लोभ में दीक्षा ले ली तो उस स्थिति में हम लोगों के तो भाग्य ही फूट जाएंगे। अस्तु, मुझे अभी से कोई ऐसा उपाय करना चाहिए, जिससे राजा योग की दीक्षा न ले सकें।

राजमाता के पास से लौटकर गोपीचंद ने स्नान किया, परंतु उस समय उनके चेहरे पर पहले जैसी प्रसन्नता नहीं थी। वे गंभीर विचार-सागर में डूबे हुए थे। अन्य रानियां यह देखकर समझ गईं कि अवश्य ही कुछ दाल में काला है, जिस कारण राजमाता के पास से लौटने के बाद राजा इतने गंभीर बन गए हैं।

जब राजा गोपीचंद स्नान करके चले गए, तब अन्य सब रानियां लोमावती को घेरकर खड़ी हो गईं और उससे पूछने लगीं कि राजमाता तथा राजा के बीच में ऐसी क्या बात हुई है, जिसके कारण राजा इतने गंभीर हो गए हैं।

लोमावती ने उन्हें संपूर्ण विवरण कह सुनाया।

उसे सुनकर अन्य रानियों ने भयभीत होते हुए कहा– "राजमाता की आज्ञा मानकर यदि महाराज ने योग-दीक्षा ले ली तो हम लोगों का क्या होगा?"

लोमावती बोली– "यही तो मैं भी सोच रही हूं।"

उनमें से एक रानी बोली– "हमें स्त्री-चरित्र दिखाना चाहिए तथा ऐसा उपाय करना चाहिए, जिससे हमारा यह खटका सदा के लिए मिट जाए।"

इसके बाद उन सबने मिलकर सलाह की तथा बहुत देर बाद एक उपाय ढूंढ निकाला। लोमावती ने कहा– "इस उपाय को मैं क्रियान्वित कर दूंगी।"

त्रिया-चरित्र

दूसरे दिन राजा गोपीचंद जब पटरानी लोमावती के अन्तःपुर में गए तो रानी उन्हें आता हुआ देखकर रोने तथा नकली आंसू बहाने लगी।

यह देखकर गोपीचंद ने उससे रोने का कारण पूछा। बहुत देर तक इधर-उधर की बातें करने के उपरांत रानी ने कहा– "मेरे दुर्भाग्य का समय आने वाला है। इसीलिए मैं रो रही हूं।"

गोपीचंद ने कहा– "दुर्भाग्य कैसा? जो भी बात हो, मुझसे साफ-साफ कहो।"

रानी ने त्रिया-चरित्र दिखाते हुए कहा– "यदि आप मुझे प्राणदान दें तो मैं सत्य बात को प्रकट करूं।"

गोपीचंद ने और भी आश्चर्यचकित होते हुए कहा– "तुम्हें प्राणदान मांगने की आवश्यकता क्यों आ पड़ी। तुम मेरी पटरानी हो। जो भी कहना चाहती हो, वह निस्संकोच कहो।"

लोमावती बोली– "बात ऐसी है, जिसे उसे सुनकर आप विश्वास नहीं करेंगे। उलटे मेरे ही ऊपर क्रुद्ध हो जाएंगे।"

गोपीचंद ने उत्तर दिया– "मैं तुम्हारी प्रत्येक बात पर विश्वास करूंगा और तनिक भी नाराज नहीं होऊंगा। तुम्हें जो कुछ कहना है, वह जल्दी कह दो।"

तब लोमावती ने इस प्रकार कहा– "हे महाराज! पिछले कई महीने तक पता चलाते रहने के बाद मैं इस निष्कर्ष पर पहुंची हूं कि हमारे नगर में जालंधरनाथ नामक जो योगी आया हुआ है, उसके साथ राजमाता का अनुचित संबंध है। राजमाता सबसे छिपकर प्रतिदिन रात्रि के समय उस योगी से मिलने के लिए नगर से बाहर उसकी एकांत कुटी में जाती हैं। अब राजमाता और उस योगी ने मिलकर यह षड्यंत्र रचा है कि वे आपको तो योग-दीक्षा देकर राजपाट छोड़ देने के लिए मजबूर कर दें और स्वयं दोनों मिलकर राजगद्दी का उपभोग करें। जो सत्य बात थी, वह मैंने आपसे कह दी। अब आप जैसा उचित समझें, वैसा करें।"

लोमावती ने बात इस तरह से कही कि राजा गोपीचंद ने उस पर विश्वास कर लिया। उन्होंने मन में सोचा कि अवश्य ही राजमाता का योगी से कोई विशेष लगाव है, तभी तो वे मुझे दीक्षा लेने के लिए विशेष रूप से प्रेरित कर रही थीं। अमरत्व की प्राप्ति तो एक बहाना मात्र है। इन सबके पीछे रहस्य वही है, जिसे आज लोमावती ने प्रकट किया है।

यह सोचकर राजा गोपीचंद ने लोमावती से कहा– "रानी! तुम किसी तरह की चिंता मत करो। मैं आज ही उस जोगी को उचित दंड दिलाए देता हूं।" इतना कहकर राजा गोपीचंद अंतःपुर से बाहर निकल गए।

जालंधरनाथ गड्ढे में

गोपीचंद अत्यंत क्रुद्ध होकर अंतःपुर से निकले। एकांत मंत्रणाकक्ष में जाकर उन्होंने प्रधानमंत्री को बुलवाया। प्रधानमंत्री जब आ गए तो राजा ने उनसे कहा– "हे मंत्री! हमारे नगर में जो योगी अपने सिर के ऊपर घास का गट्ठर उठाए घूमता रहता है, वह ढोंगी तथा धूर्त है। अस्तु, मैंने उसे दंड देने का निश्चय किया है। तुम अभी जाकर एक गड्ढा खुदवाओ और उसमें उस जोगी को जीवित गाड़ दो। यह सारा काम इतने गुप्त रूप से होना चहिए कि किसी को कुछ पता न चल सके।"

'जो आज्ञा' कहकर प्रधानमंत्री उसी समय चल दिया। अपने विश्वस्त सेवकों को जालंधरनाथ की कुटिया के समीप ले जाकर उसने एक बहुत बड़ा तथा गहरा गड्ढा खुदवाया। जालंधरनाथ उस समय समाधिस्थ बैठे हुए थे। राजकर्मचारियों ने उन्हें उसी अवस्था में उठाकर गड्ढे

के भीतर रख दिया, तत्पश्चात् उस गड्ढे में घोड़े की लीद तथा अन्य कूड़ा-करकट भर दिया, परंतु जालंधरनाथ समाधि में बैठने के पूर्व वज्रास्त्र तथा आकाशास्त्र मंत्र की योजना करके बैठे थे, इसलिए उन्हें गड्ढे में बैठाने के बाद ऊपर से जब घोड़े की लीद डाली गई तो वह उनके सिर से कुछ ऊपर अधर में ही रह गई। इस प्रकार जालंधरनाथ गड्ढे के भीतर भी निश्चिंत बैठे रहे।

दूसरे दिन जालंधरनाथ जब घास का गट्ठर लादे हुए नगर के बाजारों में नहीं निकले तो लोगों ने यह समझा कि इतने दिनों के बाद योगी यहां से हटकर किसी अन्य स्थान को चला गया होगा।

गुरु की खोज में

कानीफानाथ की तपस्या बारह वर्ष बाद पूरी हो गई। तब उन्होंने अपने गुरु जालंधरनाथ को ढूंढने के लिए तीर्थयात्रा करने का विचार किया। विभिन्न स्थानों की यात्रा करते हुए वे त्रियाराज्य की ओर चले गए।

इधर गोरखनाथ भी, जो कि बदरिकाश्रम में ही एक अन्य स्थान पर बैठे हुए तपस्या कर रहे थे, तप पूरा हो जाने के उपरांत अपने गुरु मत्स्येंद्रनाथ की खोज में तीर्थयात्रा करने के लिए निकल पड़े। वे विभिन्न स्थानों में भ्रमण करते हुए गौड़-बंगाल देश के हेलापट्टन नगर में जा पहुंचे।

उन दिनों मत्स्येंद्रनाथयोगी भेष छोड़कर त्रियाराज्य की रानी मैनाकिनी के साथ रह रहे थे तथा जालंधरनाथ राजा गोपीचंद द्वारा गड्ढे के भीतर बंद करा दिए गए थे।

गोरखनाथ अपने गुरु मत्स्येंद्रनाथ को ढूंढते हुए जिस समय हेलापट्टन नगर की ओर गए, उस समय वे संयोगवश उस स्थान के पास होकर निकले, जहां पर राजा गोपीचंद ने गड्ढा खुदवाकर जालंधरनाथ को गड़वा दिया था।

गोरखनाथ मार्ग में चलते समय 'अलख-अलख' शब्द का उच्चारण करते जा रहे थे। उनका यह शब्द गड्ढे के भीतर बंद जालंधरनाथ के कानों में पड़ा। तब उन्होंने गड्ढे के भीतर बैठे हुए ही 'आदेश' शब्द का उच्चारण किया। उस समय तक जालंधरनाथ की समाधि भंग हो चुकी थी।

'आदेश' शब्द कान में पड़ते ही गोरखनाथ ठिठककर खड़े हो गए। उन्होंने समझा कि कहीं मेरे गुरु मत्स्येंद्रनाथ की ही यह आवाज न हो। अस्तु, उन्होंने एक स्थान पर खड़े होकर जब पुनः 'अलख' शब्द का उच्चारण किया और उसके उत्तर रूप में उन्हें फिर 'आदेश' शब्द सुनाई दिया तो वे उस स्थान पर जा पहुंचे, जहां से वह शब्द आया था।

नाथ-पंथी योगी जब परस्पर अभिवादन करते हैं, तब वे 'नमस्कार' आदि के स्थान पर 'आदेश' शब्द का ही उच्चारण करते हैं। सो 'आदेश' शब्द को सुनकर गोरखनाथ को यह तो विश्वास हो गया कि पृथ्वी के भीतर कोई नाथ-पंथी योगी विद्यमान है, परंतु वह कौन है, इसे वे नहीं जान सके।

अस्तु, गोरखनाथ ने वहां खड़े होकर पूछा– "तुम कौन हो? तुम्हारा नाम क्या है?"

पृथ्वी के भीतर से आवाज आई– "मैं जालंधरनाथ हूं।"

गोरखनाथ ने फिर कहा– "अपनी ओलख बताओ।"

आवाज आई– "मैं अग्निदेव का पुत्र हूं। मेरे गुरु दत्तात्रेयजी हैं।"

यह सुनकर गोरखनाथ बोले– "मेरा नाम गोरखनाथ है। मेरे गुरु का नाम मत्स्येंद्रनाथ है। मुझे भी भगवान दत्तात्रेयजी ने दीक्षा दी है। अब तुम मुझे यह बताओ कि तुम्हें पृथ्वी के भीतर बंद किसने किया है?"

जालंधरनाथ ने उत्तर दिया– "इसी नगर के राजा गोपीचंद ने।"

यह सुनते ही गोरखनाथ को क्रोध चढ़ आया। उन्होंने कहा– "राजा गोपीचंद की दुर्गति मैं अभी किए देता हूं और तुम्हें पृथ्वी से बाहर भी अभी निकाल देता हूं।"

जालंधरनाथ ने कहा– "तुम्हें यह सब खटपट करने की आवश्यकता नहीं है। समय आने पर मुझे जो कुछ करना है, उसे स्वयं करूंगा। तुम तो केवल यही करो कि मेरा शिष्य कानीफानाथ यदि तुम्हें कहीं मिल जाए, तो तुम उसे मेरे यहां होने की सूचना दे देना।"

"अवश्य दे दूंगा।" कहकर गोरखनाथ वहां से चलकर हेलापट्टन नगर में जा पहुंचे। वहां उनके वेष को देखकर प्रजा ने उन्हें जालंधरनाथ समझा और वह उनके दर्शनों के लिए उमड़ पड़ी। इससे गोरखनाथ को यह पता चल गया कि इस नगर की प्रजा जालंधरनाथ को बहुत चाहती

रही है तथा प्रजा से छिपकर ही राजा गोपीचंद ने जालंधरनाथ को जमीन में दबा देने का दुष्कृत्य किया है। फिर भी उन्होंने अपने मुंह से किसी से कुछ नहीं कहा और वे उस पापी राजा के नगर में भिक्षा मांगना अधर्म समझकर वहां से शीघ्र ही लौट आए। तत्पश्चात् वे किसी अन्य स्थान के लिए चले गए।

गोरख-कानीफा भेंट

उधर कानीफानाथ जब त्रियाराज्य में पहुंचे तो उन्होंने वहां पर मत्स्येंद्रनाथ को योगी-वेष त्यागकर रानी मैनाकिनी के साथ राज्य-सुखों का उपभोग करते हुए देखा।

नाथ-पंथी योगी के इस अध:पतन को देखकर कानीफानाथ को घोर निराशा हुई, परंतु उन्होंने अपने मुंह से कुछ नहीं कहा, क्योंकि मत्स्येंद्रनाथ भगवान दत्तात्रेय के प्रथम नाथ-पंथी शिष्य होने के कारण कानीफानाथ के गुरु जालंधरनाथ के भी बड़े भाई जैसे थे। इस नाते वे कानीफानाथ के लिए गुरु-तुल्य थे।

त्रियाराज्य में मत्स्येंद्रनाथ ने कानीफानाथ का बहुत स्वागत-सत्कार किया तथा कुछ दिनों तक उन्हें अपने पास भी रखा। रानी मैनाकिनी ने इस भय से कि कहीं कानीफानाथ गोरखनाथ को जाकर मत्स्येंद्रनाथ के त्रियाराज्य में रहने की बात न बता दें और गोरखनाथ उसे सुनकर त्रियाराज्य में आकर मत्स्येंद्रनाथ को अपने साथ वापस न लौटा ले जाएं, कानीफानाथ को त्रियाराज्य में ही बनाए रखने के लिए अनेक प्रकार के प्रलोभन दिए, परंतु कानीफानाथ उनमें से एक के भी चक्कर में नहीं आए। कुछ दिनों तक वहां रहने के बाद वे मत्स्येंद्रनाथ से विदा लेकर त्रियाराज्य से बाहर निकल गए और विभिन्न स्थानों में भ्रमण करते हुए अपने गुरु जालंधरनाथ को ढूंढने लगे।

कुछ वर्षों बाद तीर्थाटन करते हुए एक स्थान पर गोरखनाथ और कानीफानाथ की भेंट हुई। वहां बातों-ही-बातों में एक-दूसरे के द्वारा दोनों को अपने-अपने गुरुओं की स्थिति एवं स्थान के विषय में पता चला। दोनों ने एक-दूसरे का आभार माना तथा दोनों ही एक-दूसरे से विदा लेकर अपने-अपने गुरुओं से मिलने के लिए चल दिए।

गोरखनाथ ने त्रियाराज्य में पहुंचकर गुरु मत्स्येंद्रनाथ से भेंट की और कुछ दिनों बाद उन्हें वहां से वापस ले आए–इस कथा का पिछले अध्याय में विस्तारपूर्वक वर्णन किया जा चुका है।

इधर कानीफानाथ गौड़-बंगाल देश में पहुंचकर वहां की राजधानी हेलापट्टन नगर में गए। उस समय उनके साथ बहुत से शिष्य थे तथा हाथी, घोड़े, रथ, पालकी आदि का बड़ा राजसी आडंबर भी था।

गोपीचंद का पश्चाताप

जालंधरनाथ के चले जाने का समाचार सुनकर राजमाता मैनावती के हृदय पर बहुत गहरा आघात पहुंचा। वे उनकी कृपा द्वारा अपने पुत्र गोपीचंद को अमर बनाने की बहुत इच्छुक थीं। धीरे-धीरे यह दुःख इतना बढ़ा कि वे बीमार हो गईं।

जब उनकी बीमारी अधिक बढ़ गई तो गोपीचंद अत्यधिक चिंतित हुए। एक दिन उन्होंने अपनी माता से पूछा– "हे माता! आपके इस रोग का कारण क्या है, यह स्पष्ट बताने की कृपा कीजिए।"

मैनावती बोली– "हे पुत्र! मैं तुमको चिरंजीवी बनाना चाहती थी, परंतु तुम घर आए हुए संत का आशीर्वाद भी प्राप्त नहीं कर सके, मुझे इसी बात का सबसे अधिक दुःख है।"

यह सुनकर गोपीचंद ने कहा– "हे माता! जो व्यक्ति स्वयं इधर-उधर मारा-मारा फिरता है और भिक्षा मांगकर खाता है, वह किसी दूसरे को कैसे अमरत्व प्रदान कर सकता है? मुझे तो ऐसा लगता है कि वह योगी आपकी बुद्धि को मोहित कर गया है। इसीलिए आप इस प्रकार की बातें कर रही हैं।"

मैनावती बोली– "पुत्र! ऐसी बात नहीं है। वे तो बहुत ही पहुंचे हुए सिद्ध पुरुष थे। उन्हें साक्षात् नारायण का अवतार समझना चाहिए। वे मुझे अमरत्व प्रदान कर गए हैं और यदि तुम उनसे दीक्षा ले लेते तो तुम्हें भी अमरत्व दे जाते।"

"आपको अमरत्व प्रदान कर गए हैं?" गोपीचंद ने आश्चर्य से कहा।

"हां, यह सत्य है! मुझे यह असार-संसार ब्रह्ममय प्रतिभासित हो उठा है। मुझे हर समय ऐसा प्रतीत होता रहता है, जैसे मेरे मस्तक के ऊपर मेरे प्रभु का हाथ रखा हुआ हो। उनकी कृपा से मैं सब प्रकार के दुःखों से मुक्त हो गई हूं। मेरे शरीर को कोई रोग़ नहीं है। मुझे केवल यही शोक है कि तुम उनका आशीर्वाद लेकर अमरत्व प्राप्त नहीं कर सके।" यह कहकर मैनावती चुप हो गई।

यह सुनकर गोपीचंद बहुत पछताने लगे। उन्होंने अपनी माता से कहा- "माता! मुझसे बड़ी भूल हो गई, जो मैंने अपनी ही मूर्खता से हाथ में आए हुए रत्न को फेंक दिया।"

मैनावती बोली- "अब पछताने से क्या होगा? अब तो तुम भविष्य के लिए सतर्क रहो। यदि कोई नाथ-पंथी योगी यहां फिर आ जाए तो तुम उसका आदर-सत्कार करना और उसे प्रसन्न करके दीक्षा ले लेना। उससे मेरी मनोकामना पूरी हो जाएगी और तुम भी अमर बन जाओगे।"

गोपीचंद के मन में पश्चाताप हो रहा था। वे सोच रहे थे- 'मैंने जालंधरनाथ की हत्या करा के बहुत बड़ा अधर्म कर डाला है। अब किसी अन्य संत की शरण लेकर मुझे उस पाप का प्रायश्चित्त करना चाहिए।'

कुछ देर तक विचार करने के उपरांत गोपीचंद ने मैनावती से कहा- "हे माता! आज मैं तुम्हारे सामने शपथ खाकर प्रतिज्ञा करता हूं कि यदि अबकी बार मेरे राज्य में कोई नाथ-पंथी साधु आया तो मैं उससे दीक्षा अवश्य ले लूंगा और इस प्रकार तुम्हारी इच्छा को पूरा करूंगा।"

गोपीचंद के इस निश्चय को सुनकर मैनावती अत्यंत प्रसन्न हुई। उसके मन की आधी चिंता उसी समय से दूर हो गई। फलस्वरूप उसका शरीर स्वस्थ होने लगा।

कानीफानाथ का हेलापट्टन में आगमन

गोरखनाथ द्वारा अपने गुरु का पता पाकर कानीफानाथ हेलापट्टन में आ पहुंचे। कानीफानाथ राजसी ठाट-बाट से रहा करते थे। राजाओं के समान ही उनके पास हाथी, घोड़े, रथ, पालकी, नौकर-चाकर आदि का विशाल झुंड था। सैकड़ों शिष्य तथा भक्त उनके साथ रहा करते थे। वे

स्वयं हाथी पर बैठकर चला करते थे। उनकी ख्याति वायुवेग के समान देश-देशांतरों में फैलती चली जा रही थी।

'योगी कानीफानाथ हेलापट्टन में आ रहे हैं।' यह समाचार जब वहां की प्रजा ने सुना तो वह अत्यंत प्रसन्न हुई। हजारों की संख्या में स्त्री-पुरुष उनका स्वागत करने के लिए नगर की बाहरी सीमा पर जा पहुंचे। राजा गोपीचंद भी अपने मंत्रियों तथा सभासदों को साथ लेकर कानीफानाथ की अगवानी करने के लिए गए। सब लोगों ने जब कानीफानाथ के दर्शन प्राप्त किए तो जय-जयकार के नारों से आकाश गूंज उठा। राजा गोपीचंद ने उनके चरणों पर गिरकर साष्टांग दंडवत् किया। तत्पश्चात् वे कानीफानाथ को अपने साथ राजभवन में ले गए। वहां राजा ने उन्हें रत्नसिंहासन पर बैठाकर यथाविधि पूजन-अर्चन आदि किया।

राजा गोपीचंद ने अपने प्रधानमंत्री को बुलवाकर कानीफानाथ के सात सौ शिष्यों के ठहरने के लिए शिविरों की व्यवस्था करने की आज्ञा दी। फिर उन सबके स्नान, भोजन, भजन तथा हाथी, घोड़ा आदि पशुओं के खाने-पीने आदि की समुचित व्यवस्था करने के लिए कहा। मंत्री ने राजा के आदेशानुसार सबका यथोचित प्रबंध कर दिया।

जब सब लोग अच्छी तरह ठहर गए और संपूर्ण व्यवस्थाएं पूरी हो चुकीं, तब राजमाता मैनावती ने कानीफानाथ के समीप पहुंचकर उनसे भेंट की। यथाविधि पाद्यअर्घ्य आदि प्रदान करने के उपरांत मैनावती ने अपने दोनों हाथ जोड़कर इस प्रकार प्रार्थना की– "हे योगिराज! आज से लगभग बारह वर्ष पूर्व इस नगर में जालंधरनाथ नामक नाथयोगी पधारे थे। वे प्रतिदिन नगर की गायों को घास खिलाया करते थे। घास का गट्ठर उनके मस्तक के ऊपर रखा रहता था। उनके इस चमत्कार की प्रशंसा सर्वत्र फैल गई। जब मैंने यह बात सुनी तो दर्शन करने के लिए उनकी कुटिया में जा पहुंची और उनसे गुरुमंत्र देने के लिए कहा। छह महीने तक जालंधरनाथजी ने मेरी अनेक प्रकार से परीक्षाएं लीं। तत्पश्चात् उन्होंने कृपापूर्वक मुझे गुरुमंत्र दिया और अपनी शिष्या बनाया। इतना ही नहीं, उन्होंने मेरे मस्तक पर हाथ रखा और मुझे चिरंजीवी होने का आशीर्वाद भी प्रदान किया।"

यह सुनकर कानीफानाथ ने कहा– "आपने अपने ऐसे गुरु को देखभाल क्यों नहीं की?"

मैनावती बोली– "वे तो मुझे बिना कुछ बताए ही जाने कहां चले गए। मेरी बड़ी इच्छा थी कि वे मेरे पुत्र को भी अपना शिष्य बनाते और अमरत्व प्रदान करते, परंतु उनके अचानक ही चले जाने के कारण मेरी वह अभिलाषा मन–की–मन में रह गई।"

अपराध की स्वीकृति

राजमाता की बात सुनकर कानीफानाथ ने कहा– "हे मैनावती! मेरे और तुम्हारे गुरु जालंधरनाथजी अन्यत्र कहीं नहीं गए हैं, वे इसी नगर की सीमा में है।"

मैनावती यह सुनकर आश्चर्यचकित रह गईं कहने लगी– "ऐसा नहीं हो सकता। वे यहां पर नहीं हैं।"

गोपीचंद उस समय वहीं उपस्थित थे। कानीफानाथ की बात सुनकर उनका चेहरा सफेद पड़ गया था।

कानीफानाथ ने कहा– "हे राजमाता! इस देश के राजा ने ही उन्हें छिपा दिया है। यदि तुम्हें मेरी बात पर विश्वास न हो तो तुम अपने पुत्र से पूछ लो। मैं उनके यहां होने के संबंध में निश्चित जानकारी पाकर ही हेलापट्टन में आया हूं।" फिर उन्होंने राजा गोपीचंद की ओर दृष्टि घुमाते हुए कहा– "क्यों राजन्! मेरे गुरुदेव को तुमने कहां छिपा रखा है? बता क्यों नहीं देते?"

राजा गोपीचंद को ऐसा लगा, जैसे उनकी चोरी पकड़ी गई हो, परंतु वे मौन बने रहे।

तब राजमाता ने उनसे कहा– "बेटा! मेरे गुरुदेव कहां हैं? यदि तुमने उन्हें कहीं छिपा दिया है तो बता क्यों नहीं देते।"

राजा गोपीचंद पूर्णरूप से हतप्रभ हो गए। उन्होंने अपने पाप की स्वीकृति में मस्तक नीचे झुका लिया। यह देखकर राजमाता को घोर कष्ट हुआ। वे समझ गईं कि उनके पुत्र ने ही उनके साथ धोखा किया है और जालंधरनाथजी का कोई अनिष्ट कर डाला है। अस्तु, उन्होंने घबराए हुए स्वर में फिर कहा– "गोपीचंद! मेरे गुरु कहां हैं, शीघ्र बता दो।"

मजबूर होकर गोपीचंद ने सब वृत्तांत कह सुनाया और अत्यंत दीन बनकर कानीफानाथ के चरणों में अपना मस्तक रखते हुए यह प्रार्थना की– "मुझसे जो यह बड़ा भारी पाप हो गया है, उससे आप मुझे मुक्त तथा क्षमा प्रदान करने की कृपा करें।"

गोपीचंद के मुख से सब वृत्तांत सुनकर राजमाता मैनावती भी सन्नाटे में आ गई। उन्होंने अपना सिर पीटते हुए रोना आरंभ कर दिया। उस समय कानीफानाथ ने उन्हें सांत्वना देते हुए कहा– "हे राजमाता! घबराने की कोई बात नहीं है। मेरे जिन गुरुजी ने तुम्हें अमरत्व प्रदान किया है, उनका तनिक भी अनिष्ट करने की सामर्थ्य किसी में नहीं है। वे जहां भी हैं, वहां पूर्णरूप से सकुशल तथा जीवित हैं। मैं थोड़ी ही देर में उन्हें सबके सामने प्रकट कर दूंगा।"

राजमाता ने पूछा– "अब मेरे इस पापी पुत्र का क्या होगा?"

कानीफानाथ ने उत्तर दिया– "मैं यदि स्वयं भी चाहूं तो तुम्हारे पुत्र को संपूर्ण राजपाट सहित भस्म कर सकता हूं, परंतु मैं ऐसा नहीं करूंगा। गुरुजी इसे क्या दंड देंगे, इस संबंध में मुझे कुछ भी ज्ञात नहीं है।"

यह बात सुनकर राजमाता रो पड़ीं। उन्होंने कानीफानाथ से बारंबार प्रार्थना की कि जैसे भी हो सके, वे जालंधरनाथजी के क्रोध से गोपीचंद की प्राणरक्षा का प्रयत्न करें।"

रानी के बहुत अनुनय-विनय करने पर कानीफानाथ ने उन्हें यह कहकर आश्वस्त किया कि वे गोपीचंद की प्राणरक्षा के लिए अवश्य पूरा-पूरा प्रयत्न करेंगे।

जालंधरनाथ का गड्ढे से बाहर निकलना

कानीफानाथ ने सोना, चांदी, तांबा, पीतल और लोहा– इन पांच धातुओं द्वारा राजा गोपीचंनद की आकृति के पांच मानवाकार पुतलों का निर्माण कराया। उन पुतलों को उस स्थान पर पहुंचा दिया गया, जहां पर जालंधरनाथ को पृथ्वी में गड्ढ़ा खोदकर गाड़ दिया गया था।

शुभ मुहूर्त देखकर कानीफानाथ राजा गोपीचंद को अपने साथ लेकर उस स्थान पर जा पहुंचे। सर्वप्रथम उन्होंने सोने के पुतले को उस गड्ढे

के ऊपर रखवाया, जिसके नीचे जालंधरनाथ दबे हुए थे। तदुपरांत उन्होंने चिरंजीवी मंत्र से अभिमंत्रित भस्म को राजा गोपीचंद के ललाट पर लगाया और कहा– ''तुम स्वयं अपने हाथ में कुदाल लेकर इस गड्ढे को खोदना आरंभ करो। जब गड्ढे के भीतर से 'कौन है' की आवाज आए, उस समय तुम 'मैं राजा गोपीचंद हूं' कहकर उत्तर देना तथा यह कहने के बाद तुरंत ही इस स्थान से हटकर दूर खड़े हो जाना।''

कानीफानाथ ने जैसा कहा था, गोपीचंनद ने वैसा ही किया। कानीफानाथ स्वयं गड्ढे से कुछ दूर हटकर बैठ गए।

राजा गोपीचंद ने कुदाल से जैसे ही गड्ढे को खोदना शुरू किया, वैसे ही गड्ढे के भीतर से 'कौन है' की आवाज आई। राजा गोपीचंद कानीफानाथ के बताए अनुसार 'मैं राजा गोपीचंद हूं' कहकर गड्ढे वाले स्थान से दूर हट गए।

उसी समय गड्ढे के भीतर से दूसरी आवाज आई– ''राजा गोपीचंद हो तो जलकर भस्म हो जाए।''

इस दूसरी आवाज के आते ही गड्ढे के ऊपर रखा हुआ राजा गोपीचंद का सोने का पुतला जलकर भस्म हो गया।

दूसरी बार उस स्थान पर चांदी का पुतला रखा गया। गोपीचंद ने फिर कुदाल लेकर खोदना आरंभ किया। गड्ढे के भीतर से फिर आवाज आ. ई– 'कौन है?' गोपीचंद फिर 'मैं राजा गोपीचंद हूं' कहकर वहां से हट गए। गड्ढे से फिर दूसरी आवाज आई– ''गोपीचंद राजा हो तो जलकर भस्म हो जाए।'' और दूसरी बार चांदी का पुतला जलकर भस्म हो गया।

इसी तरह क्रमशः तांबा, पीतल और लोहे के पुतले भी जलकर भस्म हो गए।

छठी बार जब गड्ढा बिल्कुल खाली हो गया, तब जालंधरनाथ ने विचार किया कि मेरे पांच बार शाप देने पर भी राजा गोपीचंद बार-बार बच गया, इसमें कोई-न-कोई रहस्य अवश्य है। अस्तु, छठी बार जब उन्होंने यह कहा कि 'राजा गोपीचंद अब तक किस प्रकार जीवित है?' तब कानीफानाथ ने आगे बढ़कर उत्तर दिया– ''हे गुरुजी! मैं आपका शिष्य कानीफानाथ यहां आ पहुंचा हूं। मैंने चिरंजीव मंत्र द्वारा अभिमंत्रित भस्म को राजा गोपीचंद के मस्तक पर लगाया है, इसीलिए वह अभी

तक आपकी क्रोधाग्नि से बचा हुआ है और उसके स्थान पर धातु-निर्मित पुतले भस्म होते रहे हैं। अब आप कृपया गड्ढे से बाहर निकल आइए।''

कानीफानाथ आ पहुंचे हैं, यह जानकर जालंधरनाथ प्रसन्न हो गए। तब उन्होंने कानीफानाथ को संबोधित करते हुए कहा– ''बेटा कानीफानाथ! तुम यहां आ गए तो बहुत अच्छा है। अब मैं इस गड्ढे के बाहर आता हूं।''

यह कहकर जालंधरनाथ गड्ढे के बारह निकल आए। उनका शरीर ज्यों-का-त्यों था। इतने वर्षों तक गड्ढे में रहने का कोई भी चिह्न कहीं दिखाई नहीं देता था।

सर्वप्रथम कानीफानाथ ने आगे बढ़कर अपने गुरु के चरण स्पर्श किए। तत्पश्चात् राजमाता मैनावती ने उन्हें साष्टांग दंडवत् किया। फिर राजा गोपीचंद तथा अन्य लोगों ने उन्हें प्रणाम किया। जालंधर ने सब लोगों को आशीर्वाद प्रदान किया। उस समय 'जालंधरनाथ की जय' के नारों से संपूर्ण आकाश गूंजने लगा। सब लोग योगिराज जालंधरनाथ तथा कानीफानाथ की प्रशंसा करने लगे।

राजा गोपीचंद जालंधरनाथ तथा कानीफानाथ को अलग-अलग पालकियों में बैठाकर गाजे-बाजे तथा बड़ी धूमधाम के साथ नगर में प्रविष्ट हुए। प्रजाजनों में हर्ष की लहर दौड़ गई। नाथ-पंथी योगियों के चमत्कार की घर-घर में चर्चा होने लगी। लोमावती आदि रानियां हत्प्रभ रह गईं। उन्हें ऐसा प्रतीत होने लगा कि राजा अब उन्हें जीवित नहीं छोड़ेंगे।

राजा गोपीचंद को दीक्षा

राजभवन में पहुंचकर राजा गोपीचंद ने जालंधरनाथजी के चरणों में गिरकर अपने अपराधों की क्षमा मांगी। उदारमना योगिराज ने उन्हें क्षमा कर दिया। तब राजमाता मैनावती ने जालंधरनाथ से प्रार्थना की– ''हे प्रभो! अब आप मेरे पुत्र को नाथ-पंथ की दीक्षा देने की कृपा कीजिए। इसे अपना आशीर्वाद देकर अमरत्व प्रदान कीजिए तथा इसके अज्ञान को दूर कीजिए।''

राजमाता मैनावती की प्रार्थना को जालंधरनाथ ने स्वीकार कर लिया। शुभ मुहूर्त में उन्होंने राजा गोपीचंद को नाथ-पंथ की दीक्षा दी। मंत्रोपदेश करने के बाद उसे अमरत्व प्राप्त होने का आशीर्वाद भी दिया।

राजा गोपीचंद ने राजसी वस्त्राभूषणों को उतारकर योगी वेष धारण कर लिया। रनिवास में जब यह समाचार पहुंचा तो सब रानियां विलाप करने लगीं। हेलापट्टन की प्रजा को जब यह ज्ञात हुआ कि राजा ने नाथ-पंथ की दीक्षा ले ली है और वे योगी बन गए हैं तो उनमें भी हाहाकार मच गया।

सभी प्रजाजन जालंधरनाथ से अत्यधिक प्रभावित थे। उनके द्वारा राजा गोपीचंद को नाथ-पंथ में दीक्षित करना वैसे तो सबको अच्छा लगा, परंतु अपने प्राणप्रिय, प्रजावत्सल राजा के संभावित वियोग से दुःखी होने के कारण सबकी आंखों से आंसू बह निकले।

जालंधरनाथजी ने गोपीचंद को रनिवास में जाकर, अपनी रानियों को 'माता' शब्द से संबोधित करते हुए, उनसे भिक्षा मांग लाने की आज्ञा दी।

गुरु की आज्ञानुसार योगी वेषधारी राजा गोपीचंद हाथ में खप्पर लिये अपनी रानियों से भिक्षा मांगने के लिए अंतःपुर में जा पहुंचे। उन्होंने रनिवास में जाकर कहा– ''माताओ! आप मुझे भिक्षा प्रदान करने की कृपा करें।''

(नाथयोगी के वेष में राजा गोपीचंद)

रानियों ने जब राजा गोपीचंद को इस वेश में देखा तो वे हाहाकार करने लगीं। रोत-रोते उनकी दशा खराब हो गई, परंतु अब तो कोई परिवर्तन होना संभव ही न था। लाचार होकर सब रानियों ने उन्हें भिक्षा दी। गोपीचंदनाथ भिक्षा लेकर अपने गुरु जालंधरनाथ के पास लौट आए।

गोपीचंद का गृह-त्याग

राजा गोपीचंद की पटरानी लोमावती के गर्भ से मुक्तचंद नामक एक पुत्र ने जन्म लिया था। गोपीचंद ने उसे अपना उत्तराधिकारी बनाया तथा जालंधरनाथ ने उसे सिंहासन पर बैठाकर राजतिलक किया तथा अपना आशीर्वाद प्रदान किया। फिर उन्होंने सब रानियों को बुलाकर ज्ञानोपदेश किया और आशीर्वाद देते हुए यह आज्ञा दी कि वे अपना जीवन भगवद् भजन तथा धर्माचरण करते हुए व्यतीत करें।

जालंधरनाथ की आज्ञा को सबने शिरोधार्य किया। तदुपरांत सब लोगों ने वहां से चलने की तैयारी की।

विदाई का दृश्य अत्यंत मार्मिक था। संपूर्ण प्रजाजन उन्हें विदा करने के लिए नगर की सीमा तक गए। उस समय सब लोगों की आंखों से आंसू बह रहे थे। अंततः जालंधरनाथजी ने सबको समझा-बुझाकर तथा आशीर्वाद देकर विदा कर दिया।

हेलापट्टन से बाहर निकलकर जालंधरनाथजी ने गोपीचंदनाथ को बदरिकाश्रम में जाकर बारह वर्ष तक लोहे के कांटों पर खड़े रहकर तपस्या करने का आदेश दिया। गोपीचंद गुरुजी से विदा लेकर बदरिकाश्रम को चल दिए। जालंधरनाथ तो तीर्थयात्रा करने के लिए चले गए, परंतु कानीफानाथ अपने सात सौ शिष्यों के साथ हेलापट्टन में ही ठहरे रहे।

गोपीचंद को एक और आघात

जालंधरनाथ से विदा लेकर गोपीचंदनाथ जब बदरिकाश्रम को चले तो मार्ग में कौल-बंगाल का राज्य पड़ा। उस राज्य की राजधानी का नाम 'पौलपट्टन' था। वहां का राजा तिलकचंद बड़ा अहंकारी था। गोपीचंद की बहन चंपावती उस राजा की पुत्रवधू थी।

राजा गोपीचंद के नाथयोगी होने की चर्चा हवा की तरह चारों ओर फैल चुकी थी। अत: वे जहां भी होकर जाते, वहां के सभी स्त्री-पुरुष झुंड बनाकर मार्ग में उनके दर्शनों के लिए पहुंचते और उनका जय-जयकार करते थे, परंतु पौलपट्टन के राजा तिलकचंद को गोपीचंद का योगी होना अच्छा नहीं लगा, उसने गोपीचंद की निंदा करना आरंभ कर दिया।

गोपीचंद जब उसके राज्य में पहुंचे तो वह न तो स्वयं ही गोपीचंद से मिलने के लिए आया और न उसने गोपीचंद को अपने घर बुलवाया।

गोपीचंद की बहन चंपावती को जब यह पता चला कि उसके भाई गोपीचंद पौलपट्टन नगर में आए हुए हैं, तब उसने अपने भाई से मिल आने के लिए सास की आज्ञा मांगी, परंतु तिलकचंद की रानी भी तिलकचंद जैसे ही स्वभाव की थी। उसने चंपावती को डांटते हुए कहा– ''तेरे भाई ने क्षत्रियों के धर्म को कलंकित किया है। उसने राजपाट को लात मारकर जोगी धर्म को अपनाया– उसने यह कोई अच्छी बात नहीं की है। इससे अच्छा तो डूबकर मर जाना था। मैं तुझे उससे मिलने के लिए नहीं जाने दूंगी।''

चंपावती यह सुनकर रोने लगी। तभी उसकी जिठानी ने इस प्रकार कहना आरंभ किया– ''जो पुरुष युवावस्था में जीते-जी अपनी अनेक स्त्रियों को रांड बना दे, उसे कोई भी अच्छा नहीं कह सकता। तुम अपने ऐसे भाई के लिए क्यों रही हो?''

इसी समय एक दासी ने आकर सूचना दी कि गोपीचंद अपनी बहन के पास भिक्षा मांगने के लिए आ रहे हैं।

यह सुनकर चंपावती वहां से उठकर जाने लगी।

उसकी सास ने पूछा– ''कहां जा रही हो?''

चंपावती बोली– ''अपने भाई को भिक्षा देने के लिए।''

सास ने कहा– ''हमारे घर से उसे कोई भिक्षा नहीं दी जाएगी। तुम उसे भिक्षा देने के लिए नहीं जा सकती।''

चंपावती बोली– ''अच्छा भिक्षा नहीं दूंगी, परंतु उससे मिल तो आऊं?''

जिठानी ने कहा– ''ऐसे कलमुंहे भाई से मिलने की भी आवश्यकता नहीं है।''

यह सुनकर चंपावती को बहुत दुःख हुआ। वह वहां से उठकर सीधी अपने महल में चली गई और अपने पेट में कटार भोंककर मर गई।

चंपावती का पुनर्जीवन

चंपावती की मृत्यु हो जाने पर उसे श्मशान ले जाने की तैयारी की गई। गोपीचंद को भी यह समाचार मिल गया कि सास और जिठानी ने चंपावती से मना किया था कि वह अपने भाई गोपीचंद से न मिले, इसलिए वह अपने पेट में कटार भोंककर मर गई है। गोपीचंद श्मशान भूमि में जा पहुंचे। उस समय चंपावती का दाह-संस्कार करने की तैयारी की जा रही थी। गोपीचंद ने वहां पहुंचकर राजा तिलकचंद से प्रार्थना की– ''आप मेरी बहन की मृत देह का दाह-संस्कार अभी कुछ समय तक मत कीजिए। मैं अपने गुरु जालंधरनाथ को ढूंढकर लाता हूं। वे इसे पुनरुज्जीवित कर देंगे।''

राजा तिलकचंद गोपीचंद की इस बात को सुनकर जोरों से हंसने लगा। बोला– ''कहीं मरे हुए मुर्दे भी जीवित होते हैं?''

वहीं उपस्थित एक दूसरे व्यक्ति ने गोपीचंद का मजाक बनाते हुए कहा– ''इनका तो दिमाग खराब हो गया है, इसीलिए इस तरह की उल्टी बातें कर रहे हैं।''

तीसरा बोला– ''यदि इनका दिमाग खराब न हुआ होता तो ये राजपाट को लात मारकर जोगी बने हुए इधर-उधर क्यों भटकते?''

चौथे ने सम्मति दी– ''इनकी बात मानकर चंपावती की मृत देह को खराब मत करो। ये तो इसी प्रकार ऊट-पंटाग बकते रहेंगे।''

इस पर पांचवें ने कुछ दयाभाव प्रदर्शित करते हुए कहा– ''इनकी इच्छा पूरी करने के लिए चंपावती का एक हाथ काटकर इन्हें दे दो। शेष शरीर का अग्नि-संस्कार कर दो। यदि इनके गुरु में कोई शक्ति होगी तो वे उस कटे हुए हाथ के आधार पर ही चंपावती को जीवित कर देंगे।''

इस बात को सबने स्वीकार कर लिया। राजा तिलकचंद ने चंपावती का एक हाथ कटवाकर गोपीचंद को दे दिया। शेष शरीर का दाह-संस्कार

कर दिया गया। राजा गोपीचंद बहन के हाथ को लेकर गुरु की खोज में चलने के लिए प्रस्तुत हुए।

उधर जालंधरनाथजी ने योग-दृष्टि द्वारा इस संपूर्ण घटना के विवरण को जान लिया था। अतः वे अपने शिष्य की मनोकामना को पूर्ण करने के लिए पलभर में ही गोपीचंद के समक्ष उसी श्मशान भूमि में जा प्रकट हुए।

गोपीचंद के गुरु आ गए हैं, यह बात क्षणभर में ही चारों ओर फैल गई। हजारों स्त्री-पुरुष उन्हें देखने के लिए आ पहुंचे। उस समय जालंधरनाथजी ने अपनी विद्या के प्रभाव से सबके देखते-ही-देखते ही चंपावती को पुनरुज्जीवित कर दिया। चारों ओर 'धन्य', 'धन्य' की ध्वनि गूंजने लगी। तब सब लोगों ने अत्यंत लज्जित होते हुए विनम्रभाव से जालंधारनाथ तथा गोपीचंदनाथ के चरणों में प्रणाम अर्पित किया।

राजा तिलकचंद, उसकी पत्नी, चंपावती की जिठानी आदि सभी अत्यंत लज्जित हुए। उन्होंने अपनी भूल तथा अपराधों के लिए जालंधरनाथ एवं गोपीचंदनाथ से बार-बार क्षमायाचना की। उदार गुरु-शिष्य ने उन सबको क्षमा कर दिया।

चंपावती को दीक्षा

चंपावती महलों में चली गई। वहां जाकर उसने अपने भाई को भिक्षा दी और इस प्रकार अपनी मनोकामना को पूरा किया। रनिवास की अन्य स्त्रियों ने भी गोपीचंदनाथ को भिक्षा भेंट की।

इस घटना के कारण चंपावती का हृदय संसार से पूर्णरूपेण विरक्त हो चुका था। उसे गृहस्थ में रहने की कोई इच्छा नहीं रह गई थी। जालंधरनाथजी की कृपा से उसके ज्ञान-नेत्र खुल चुके थे। अतः उसने जालंधरनाथजी से दीक्षामंत्र देने की प्रार्थना की। जालंधरनाथजी ने उसे भी सत्पात्र जानकर अपनी शिष्या बना लिया तथा गुरुमंत्र देकर आशीर्वाद प्रदान किया।

चंपावती विरक्तभाव से राजभवन में रहने लगी।

इस प्रकार गोपीचंद की माता मैनावती, उनकी बहन चंपावती तथा गोपीचंद—तीनों ही जालंधरनाथजी के शिष्य बन गए।

गोपीचंद को देवताओं का आशीर्वाद

पौलपट्टन से विदा होकर गोपीचंदनाथ बदरिकाश्रम में चले गए और वहां जालंधरनाथजी के आदेशानुसार लोहे के कांटों पर खड़े होकर तपस्या करने लगे।

इधर जालंधरनाथजी पौलपट्टन के राजा तिलकचंद को अपने साथ लेकर हेलापट्टन में गए। गोपीचंद का पुत्र मुक्तचंद, जिसे गोपीचंद के बाद राज-सिंहासन पर बैठाया गया, उस समय तक बच्चा ही था। जालंधरनाथ ने हेलापट्टन में जाकर उसके राज्य की सुव्यवस्था की तथा पौलपट्टन के राजा तिलकचंद पर यह भार डाला कि मुक्तचंद जब तक समर्थ न हो जाए, तब तक वे अपने राज्य की तरह हेलापट्टन राज्य की भी देख-रेख एवं सुरक्षा करते रहें।

तिलकचंद ने जालंधरनाथ की आज्ञा को शिरोधार्य कर लिया।

वहां से कानीफानाथ और उनके शिष्यों को साथ लेकर जालंधरनाथजी तीर्थयात्रा के लिए निकल पड़े। बारह वर्ष तक उन्होंने अनेक स्थानों का भ्रमण किया। फिर सब लोग बदरिकाश्रम में जा पहुंचे।

राजा गोपीचंद की तपस्या की अवधि पूरी होने के कुछ पहले ही जालंधरनाथजी कानीफानाथ तथा उनके शिष्यों को लेकर बदरिकाश्रम जा पहुंचे थे। जब गोपीचंदनाथ की तपस्या पूरी हुई तो जालंधरनाथजी ने वहां पर सब देवताओं को आमंत्रित करके बहुत बड़ा उत्सव मनाया। जालंधरनाथ ने गोपीचंदनाथ को सब विद्याओं की शिक्षा देकर निष्णात बना दिया तथा सब देवताओं ने भी आशीर्वाद देकर उनकी विद्या को सफल बनाने का आश्वासन दिया।

इंद्र ने जब सोमयाग किया था, उसमें भाग लेकर लौटने के बाद जालंधरनाथ गर्भगिरि पर जाकर रहने लगे और वहीं समाधिस्थ हुए। बाद में कुछ लोग उनकी 'जानपीर' के रूप में भी पूजा करने लगे।

नवनाथ चरित्र सागर

भाग-5
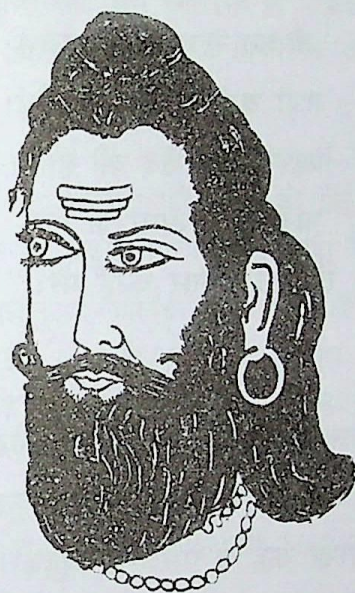
श्री कानीफानाथ-चरित्र

(प्रबुद्ध नारायण के अवतार)

''सोनै रूप सीझै काज।
तौकत राजा छोड़ै राज।।
जड़ी बूटी भूलौ मत कोई।
पहली रांड बैद की होई।।
जड़ी बूटी अमर जे करै।
तौ बैद धनंतर काहे मरै।।''

☆☆☆

''ज्ञान का छोटा, काछ का लोहड़ा।
इंद्री का लड़बड़ा, जिह्वा को फूहड़ा।
गोरख कहै ते पारतिख चूहड़ा।।''

जन्म-गाथा

एक बार ब्रह्माजी अपनी सुंदर एवं युवा पुत्री सरस्वती पर ही मोहित हो गए। सरस्वती अपने शील की रक्षा करने के लिए भागी तो उनके पीछे दौड़ते हुए ब्रह्माजी का वीर्य स्खलित हो गया। वायु ने उस वीर्य को हिमालय के वन में रहने एक मतवाले हाथी के कान-मार्ग द्वारा उदर में पहुंचा दिया।

कालांतर में उस वीर्य में प्रबुद्ध नारायण ने प्रवेश किया। कलियुग आने पर शिवजी ने जालंधरनाथ को आज्ञा दी कि वे वन में जाकर उस हाथी के गर्भ में पल रहे प्रबुद्ध नारायणरूपी शिशु को बाहर निकाल लाए।

शिवजी की आज्ञानुसार जालंधरनाथ उस हाथी के पास गए। उन्होंने अपने मंत्र-बल से उस मतवाले हाथी के स्वभाव को एकदम सरल बना दिया। तत्पश्चात् उन्होंने उसके उदर में स्थित बालकरूपी प्रबुद्ध नारायण को बाहर आने की आज्ञा दी। उदर-स्थित बालक जालंधरनाथ का आदेश सुनकर हाथी के कान में आ बैठा। जालंधरनाथ ने उसे कान से बाहर निकाल लिया। उस समय उस बालक की आयु सोलह वर्ष की थी।

हाथी के कान से उत्पन्न होने के कारण उस बालक का नाम 'कानीफ' रखा गया। कुछ लोग कानीफानाथ को 'कनफड़नाथ' कहकर भी पुकारते हैं।

शिवजी की आज्ञानुसार जालंधरनाथ ने कानीफा को नाथ-पंथ की दीक्षा देकर 'कानीफानाथ' बनाया तथा अस्त्र-शस्त्र, मंत्र, साबरी तथा अन्य विद्याओं में निष्णात कर दिया। तदुपरांत जालंधरनाथ ने सब देवताओं को बुलाकर उनसे कानीफानाथ को आशीर्वाद दिलवाया, ताकि उसकी विद्या सफल हो सके। इसके बाद उसे बारह वर्ष तक बदरिकाश्रम में रहते हुए तप करने की आज्ञा देकर जालंधरनाथ तीर्थयात्रा करने के लिए चले गए। यह सब कथा पिछले अध्याय में विस्तारपूर्वक कही जा चुकी है।

कानीफानाथ त्रियाराज्य में

बारह वर्ष की तपस्या जब पूरी हो गई, तब कानीफानाथ अपने गुरु जालंधरनाथ को ढूंढने के लिए बदरिकाश्रम को चल दिए।

कानीफानाथ राजसी ठाठ-बाट से रहते थे। उनके सात सौ शिष्य थे। उनके लश्कर में घोड़ा, हाथी, ऊंट, पालकी, रथ आदि सभी रहते थे। जब वे यात्रा करते थे तो ऐसा प्रतीत होता था, जैसे कोई राजा-महाराजा यात्रा करने के लिए निकला हो।

अनेक स्थानों पर भ्रमण करते हुए कानीफानाथ त्रियाराज्य की सीमा पर जा पहुंचे।

त्रियाराज्य में किसी पुरुष का प्रवेश नहीं हो सकता था। यदि कोई पुरुष वहां जाता था तो वह हनुमानजी की गर्जना सुनकर मर जाता था। हनुमानजी त्रियाराज्य में प्रतिदिन जाया करते थे। 'मत्स्येंद्रनाथ-चरित्र' में इस कथा का विस्तारपूर्वक वर्णन किया जा चुका है।

कानीफानाथ ने जिस समय त्रियाराज्य में प्रवेश करने की इच्छा प्रकट की, उस समय उनके सात सौ शिष्यों में से अधिकांश अपने मृत्यु के भय से भयभीत होकर परस्पर कानाफूंसी करने लगे।

यह देखकर कानीफानाथ ने अपने शिष्यों से कहा– "मैं तो अपने गुरु पर विश्वास करके त्रियाराज्य में प्रवेश अवश्य करूंगा, परंतु यदि तुम लोगों को अपने गुरु (मुझ) पर विश्वास न हो और तुम्हें अपनी मृत्यु का भय लगता हो तो तुममें से जो भी चाहे, वह मेरा साथ छोड़कर जा सकता है।"

कानीफानाथ की बात सुनकर उनके सात सौ शिष्यों में से केवल सात को छोड़कर शेष सबने अपने गुरु कानीफानाथ का साथ छोड़कर अन्यत्र चले जाने का निश्चय किया।

उन्होंने कानीफानाथ से कहा– "हमें अपनी जान प्यारी है, इसलिए हम लोग त्रियाराज्य में प्रवेश नहीं करेंगे। हम आपका साथ छोड़कर जा रहे हैं।"

यह कहकर वे सभी शिष्य चल दिए। केवल सात शिष्य अपने गुरु पर विश्वास करके कानीफानाथ के पास बने रहे।

शिष्यों की दुर्दशा

कानीफानाथ ने अपने अविश्वासी शिष्यों को शिक्षा देने का निश्चय किया। वे शिष्य थोड़ी दूर ही गए होंगे कि कानीफानाथ ने स्पर्शास्त्र मंत्र से अभिमंत्रित भस्म उनकी ओर फेंकी। उसके प्रभाव से उन सबके पांव धरती से चिपक गए। अनेक प्रयत्न करने पर भी वे एक कदम आगे नहीं बढ़ सके। जब उन्होंने पृथ्वी से चिपके हुए अपने पांवों को छुड़ाने के लिए हाथों का प्रयोग किया और उन्होंने अपने हाथ नीचे की ओर झुकाए तो उन सबके हाथ भी पृथ्वी से चिपक गए। इस प्रकार हाथ-पांवों के चिपक जाने पर वे सब पशु जैसे प्रतीत होने लगे।

उनकी स्थिति को देखकर कानीफानाथ ने अपने शेष सातों शिष्यों से कहा– "अब तुम लोग जाकर इन सबकी पीठ पर एक-एक भारी पत्थर रख आओ।"

शिष्यों ने गुरु की आज्ञा का पालन किया। उन्होंने उन पशु बने हुए छह सौ तिरानवे शिष्यों की पीठ पर एक-एक भारी पत्थर रख दिया। कानीफानाथ की विद्या के चमत्कार से वे पत्थर भी उन सबकी पीठ से चिपक गए, जिस कारण वे सब 'हाय-हाय' करने और रोने लगे। उन्होंने सातों शिष्यों से अनुनय-विनय करते हुए कहा कि तुम लोग जाकर हमारी ओर से गुरु से यह प्रार्थना करो कि वे हमारे अपराध को क्षमा कर दें। हमें अब उनकी शक्ति-सामर्थ्य पर पूरा भरोसा हो गया है तथा हम सब उनके साथ त्रियाराज्य में जाने के लिए तैयार हैं। अब वे हमें इस संकट से मुक्ति प्रदान करने की कृपा करें।

सातों शिष्यों ने गुरु कानीफानाथ के पास जाकर उन सब शिष्यों की बात कही तथा अपनी ओर से भी यह प्रार्थना की कि अब उन्हें पर्याप्त दंड मिल चुका है, इसलिए उन्हें क्षमा कर दिया जाना चाहिए।

कानीफानाथ को दया आ गई। तब उन्होंने विभक्तास्त्र मंत्र से अभिमंत्रित भस्म को उन पशु बने हुए शिष्यों की ओर फेंका। उसके प्रभाव से उन सबके हाथ-पांव पृथ्वी से अलग हो गए तथा उनकी पीठ पर चिपके हुए पत्थर भी अलग जा पड़े।

तब उन सब शिष्यों ने कानीफानाथ के चरणों में गिरकर अपने अपराध एवं अज्ञान के लिए क्षमा मांगी तथा दोनों हाथ जोड़कर अनेक प्रकार से प्रार्थना करते हुए गुरु को प्रसन्न किया।

हनुमानजी के साथ युद्ध

अपने सात सौ शिष्यों को साथ लेकर कानीफानाथ ने त्रियाराज्य में प्रवेश किया। उन सबने त्रियाराज्य की राजधानी 'श्रंगलमुरूडी' नामक नगरी के बाहर जाकर अपना डेरा जमा दिया।

रात्रि के समय जब गुरु-शिष्य सभी ध्यान में बैठे हुए थे, उसी समय आकाश से महाभयंकर गर्जना का शब्द सुनाई दिया। वह गर्जना हनुमानज़ी की थी। हनुमानजी उस समय त्रियाराज्य में आए थे।

कानीफानाथ ने ध्यानस्थ होने से पूर्व ही स्पर्शास्त्र की योजना कर रखी थी, परंतु हनुमानजी अनेक विद्याओं के ज्ञाता थे, अतः वे स्पर्शास्त्र की योजना से भयभीत नहीं हुए। फिर भी उस अटकाव की योजना को देखकर अपने मन में यह विचार अवश्य करने लगे कि ऐसा कौन-सा शक्तिशाली पुरुष त्रियाराज्य में आया है, जिसने यहां पर मेरा प्रवेश रोकने के लिए स्पर्शास्त्र की योजना की है।

हनुमानजी ने सोचा– "हो-न-हो, मत्स्येंद्रनाथ का शिष्य गोरखनाथ यहां आ पहुंचा है। वह अपने गुरु को त्रियाराज्य से वापस ले जाने के लिए आया होगा और उसी ने यहां पर मेरा प्रवेश रोकने के लिए स्पर्शास्त्र की योजना कर रखी होगी।'

हनुमानजी ने फिर विचार किया– 'यदि गोरखनाथ यहां से मत्स्येंद्रनाथ को वापस ले गया तो मैनाकिनी को बहुत दुःख होगा, अतः यदि मैं गोरखनाथ को यहां से भगा दूं अथवा मार डालूं तो यह अच्छा रहेगा।'

यह निश्चय करके हनुमानजी एक बहुत बड़ा पर्वत लेकर महाभयंकर गर्जना करते हुए कानीफानाथ और उनके शिष्यों की ओर दौड़े।

विकरालरूप हनुमानजी को इस प्रकार आते हुए देखकर भी कानीफानाथ का कोई शिष्य भयभीत नहीं हुआ। उन सबको अपने गुरु पर पूरा विश्वास हो चुका था। यह देखकर हनुमानजी और अधिक क्रोध में भर गए।

तभी कानीफानाथ ने हनुमानजी के ऊपर वज्रास्त्रसिद्ध भस्म को फेंका। हनुमानजी कानीफानाथ तथा उनके शिष्यों के ऊपर बड़े-बड़े पत्थर फेंकने लगे, परंतु वज्रास्त्र के प्रभाव से वे ऊपर-ही-ऊपर चूर्ण हो गए। तब हनुमान ने वज्रास्त्र को अपनी वज्रमुष्टिक में पकड़ लिया। हनुमानजी की मुट्ठी में पहुंचते ही वज्रास्त्र छिन्न-भिन्न हो गया।

यह देखकर कानीफानाथ ने अग्नि-अस्त्र, वासव-अस्त्र, कालिकास्त्र तथा वायु-अस्त्र– इन चारों का एक साथ प्रयोग किया।

वायु-अस्त्र का बल पाकर अग्नि-अस्त्र और अधिक प्रतापी हो गया। इन दोनों अस्त्रों के प्रभाव से हनुमानजी के चारों ओर तीव्र अग्नि धधकने लगी। वायु उस अग्नि को और अधिक फैलाने लगी। यह देखकर वायुपुत्र हनुमान ने अपने पिता वायुदेव से कहा– "हे वायुदेव! आप तो मेरे पिता हैं। फिर आप मेरे विरुद्ध कार्य कैसे कर रहे हैं?"

यह सुनकर वायुदेव ने उत्तर दिया– "हे पुत्र! देवता तो मंत्र के अधीन रहते हैं। इस समय मैं कानीफानाथ के मंत्र के अधीन होकर यह सब कर रहा हूं। यहां पर मेरा और तुम्हारा पिता-पुत्र का कोई संबंध नहीं है।" यह कहकर वायुदेव ने अपना रूप और अधिक विकराल बना लिया।

तभी कानीफानाथ ने मोहिनी अस्त्र का प्रयोग कर दिया। उसके कारण हनुमानजी और अधिक भ्रमित हो गए।

हनुमानजी ने अग्नि-अस्त्र को पकड़कर समुद्र में फेंक दिया। उस अस्त्र के कारण समुद्र का पानी खौलने लगा। तब समुद्रदेव अत्यंत व्याकुल होकर वायुदेव को साथ लिए हुए हनुमानजी के पास गए और कहने लगे– "हे हनुमानजी! नाथ-पंथियों से युद्ध करके विजय पाना कठिन है। इससे आप पहले एक बार मत्स्येंद्रनाथ से युद्ध करके देख चुके हैं। यह नाथ-पंथी योगी कानीफानाथ जालंधरनाथजी का शिष्य है। यह यहां पर मत्स्येंद्रनाथजी को वापस ले जाने के लिए नहीं आया है। यह तो अपने गुरु की खोज में निकला है और जालंधरनाथ को ढूंढता हुआ यहां आ पहुंचा है। इस स्थान के तीर्थों का भ्रमण करके यह वापस लौट जाएगा। अतः आपको अथवा मैनाकिनी को इससे कोई खतरा नहीं है। अब आप इसके साथ युद्ध करना बंद कर दीजिए तथा परस्पर मित्रता स्थापित कर लीजिए। इसी में दोनों का कल्याण है, अन्यथा आप दोनों के युद्ध से संपूर्ण सृष्टि नष्ट हो जाएगी।"

समुद्र तथा वायुदेव की इस प्रार्थना को हनुमानजी ने मान लिया। तब तीनों देवता कानीफानाथ के पास गए।

कानीफानाथ ने उन तीनों को नमस्कार किया। पाररस्परिक परिचय के उपरांत हनुमानजी ने कानीफानाथ से कहा– "हे कानीफानाथ! भ्रम के कारण ही हम दोनों के बीच इतनी देर तक युद्ध हुआ था। अब मुझे तुम्हारे त्रियाराज्य में प्रवेश करने पर कोई आपत्ति नहीं है। तुम जब तक चाहो, यहां ठहरो और भ्रमण करो।"

कानीफानाथ ने कहा– ''आपको नाथ-पंथियों से युद्ध करना शोभा नहीं देता, क्योंकि आप और हम नाथ-पंथी लोग दोनों ही भगवान शंकर के भक्त और उनके सेवक हैं। इसलिए अब आप भविष्य के लिए मुझे यह वचन दीजिए कि जिस नाथपंथी के ललाट पर त्रिपुंड का चिह्न लगा दिखाई दे, उसके साथ आप युद्ध नहीं करेंगे।''

हनुमानजी ने वचन दे दिया। तब तीनों देवता वहां से अदृश्य हो गए। कानीफानाथ ने अपने सात सौ शिष्यों के साथ त्रियाराज्य के तीर्थों का भ्रमण करना आरंभ कर दिया। जब वहां की यात्रा पूरी हो गई, तब उन्होंने मत्स्येंद्रनाथजी से भेंट करने का निश्चय किया।

कानीफानाथ की मत्स्येंद्रनाथ से भेंट

कानीफानाथ अपने शिष्यों सहित जब राजभवन के मुख्य द्वार पर पहुंचे तो द्वारपाल ने मत्स्येंद्रनाथ के पास जाकर उन्हें किसी नाथ-पंथी योगी के आने की सूचना दी। मत्स्येंद्रनाथ ने समझा कि मेरा शिष्य गोरखनाथ आया होगा। अतः उन्होंने द्वारपाल से कहा कि उन्हें तथा उनके शिष्यों को आदर-सम्मानपूर्वक अतिथिशाला में ठहराओ। मैं थोड़ी देर में उनसे मिलने के लिए पहुंचूंगा।

द्वारपाल ने कानीफानााथ तथा उनके शिष्यों को अतिथिशाला में ले जाकर सम्मानपूर्वक ठहरा दिया तथा उनके स्वागत-सत्कार की यथोचित व्यवस्था कर दी।

कुछ देर बाद मत्स्येंद्रनाथ पालकी में बैठकर नए योगी से मिलने के लिए गए। मत्स्येंद्रनाथ को आया हुआ देखकर कानीफानाथ ने खड़े होकर नमस्कार किया। कानीफानपाथ को देखकर मत्स्येंद्रनाथ समझ गए कि यह योगी गोरखनाथ नहीं है। मत्स्येंद्रनाथ ने विचार किया कि मैं तो अनेक वर्षों से त्रियाराज्य में रह रहा हूं। इस बीच अनेक नए नाथयोगी उत्पन्न हो गए होंगे। उन्हीं में से एक यह योगी भी है।

मत्स्येंद्रनाथ तथा कानीफानाथ आमने-सामने बैठे। पहले कानीफानाथ ने अपना परिचय देते हुए कहा– ''मेरा जन्म हाथी के कान से हुआ है, इसलिए मैं अयोनिज हूं। मेरे गुरु जालंधरनाथ हैं। उन्होंने मेरा नाम कानीफानाथ रखा है। मैं अपने गुरु की खोज में निकला हुआ हूं। यात्रा करता हुआ जब मैं इधर से जा रहा था, तब मुझे पता चला कि कोई नाथयोगी त्रियाराज्य में रह

रहा है। तब मेरे मन में आपसे मिलने की इच्छा हुई और मैं यहां आ पहुंचा। बस यही मेरा परिचय है।''

मत्स्येंद्रनाथ बोले– ''हे कानीफानाथ! मेरा नाम मत्स्येंद्रनाथ है। मेरा जन्म मछली के पेट से हुआ था। मेरे गुरु साक्षात् भगवान शंकर हैं। उन्होंने मुझे सब विद्याएं सिखाई हैं। नाथ-पंथ की दीक्षा मुझे आदिगुरु दत्तात्रेयजी ने दी है। गोरखनाथ मेरा श्रेष्ठ तथा अत्यंत प्रिय शिष्य है।''

इस प्रकार परस्पर परिचय हो जाने पर दोनों प्रसन्न हुए। फिर मत्स्येंद्रनाथ ने कानीफानाथ को हाथी पर बैठाकर बाजे-गाज के साथ नगर में निकाला और उन्हें एक महीने तक राजभवन में बड़े आदर-सम्मान के साथ रखा।

कानीफानाथ को प्रलोभन

कानीफानाथ के त्रियाराज्य में आ जाने से मत्स्येंद्रनाथ के मन में यह शंका उत्पन्न हुई कि अभी तक तो किसी को मेरे यहां रहने के बारे में पता नहीं था, परंतु अब कानीफानाथ के कारण अन्य लोगों को भी ज्ञात हो जाएगा कि मैं यहां रह रहा हूं। इससे बाहर मेरा बहुत अपयश होगा। यदि गोरखनाथ को पता चल गया तो यहां आकर मुझे ले जाएगा, इसलिए मुझे ऐसा उपाय करना चाहिए, जिससे कानीफानाथ सदैव के लिए यहीं बस जाए और बाहर वाले को मेरे संबंध में कुछ पता न चले।

मत्स्येंद्रनाथ ने यह विचार मैनाकिनी से कहा। मैनाकिनी ने पहले तो कानीफानाथ तथा उसके शिष्यों के पास स्वर्ण, रत्न, आभूषण आदि सामग्री भिजवाई, परंतु उनमें से किसी ने उन्हें स्पर्श तक नहीं किया। तत्पश्चात् मैनाकिनी ने त्रियाराज्य की सर्वश्रेष्ठ सुंदरियों को उनके पास भेजा। उन स्त्रियों ने कानीफानाथ तथा उनके शिष्यों को अपने मोहजाल में फंसाने के सैकड़ों प्रयत्न किए, परंतु उन्हें अपने काम में तनिक भी सफलता नहीं मिल सकी। हारकर सब लोग चुप बैठ गए।

त्रियाराज्य से विदाई

लगभग तीन मास तक त्रियाराज्य में रहने के बाद कानीफानाथ ने वहां से चलने की तैयारी की। विदाई के समय मत्स्येंद्रनाथजी ने उन्हें रेशम

तथा जरी के वस्त्र, गलीचा, कालीन, तम्बू, रावटी, पलंग, पालकी, घोड़ा, हाथी, ऊंट, रत्न, आभूषण आदि बहुत-सी वस्तुएं भेंट कीं। कानीफानाथ ने उन सब भेंटों को स्वीकार किया। तदुपरांत मत्स्येंद्रनाथजी से विदा लेकर वे अपने शिष्यों तँथा लाव-लश्कर के साथ त्रियाराज्य से विदा हुए।

वहां से अनेक स्थानों की यात्रा करते हुए कानीफानाथ जब गौड़-बंगाल देश की ओर जा रहे थे और मार्ग में एक स्थान पर ठहरे हुए थे, तभी उनीक भेंट मत्स्येंद्रनाथजी के शिष्य गोरखनाथ से हुई। वहां एक-दूसरे के द्वारा उन्हें अपने-अपने गुरु का पता चला।

कानीफानाथ त्रियाराज्य से लौटकर आए ही थे। उन्होंने गोरखनाथ को मत्स्येंद्रनाथ के विषय में पूरा पता दिया। उसे सुनकर गोरखनाथ त्रियाराज्य में गए और वहां जाकर अपने गुरु मत्स्येंद्रनाथ को वापस ले आए। यह कथा विस्तारपूर्वक दूसरे अध्याय में कही जा चुकी है।

गोरखनाथ राजा गोपीचंद की राजधानी हेलापट्टन से लौटकर आए थे, सो उन्होंने जालंधरनाथ के विषय में सब बातें कानीफानाथ को बताईं। कानीफानाथ वहां से चलकर हेलापट्टन में गए। वहां जाकर उन्होंने अपने गुरु जालंधरनाथ को किस प्रकार गड्ढे से बाहर निकाला तथा राजा गोपीचंद को किस प्रकार शिष्य बनाया– इसका विस्तृत वर्णन पिछले अध्याय में किया जा चुका है। कानीफानाथ ने अपने गुरु जालंधरनाथ के साथ रहकर जो अनेक प्रकार के चरित्र किए तथा चमत्कार प्रदर्शित किए, उन सबका वर्णन इस ग्रंथ में स्थान-स्थान पर किया गया है।

कानीफानाथ की समाधि

इंद्र ने जब सोमयाग किया था, उसमें अन्य नाथ-पंथी योगियों के साथ कानीफानाथ ने भी भाग लिया था। उस यज्ञ की समाप्ति पर कानीफानाथ ने समाधिस्थ होने का विचार किया। अतः वे यज्ञ से लौटकर गर्भगिरि पर्वत पर गए। वहां पर शंकरजी का निवास था, जिसे कुछ लोग 'म्हतार' (फरडादेव) के नाम से भी पुकारते हैं। उसी के समीप एक जगह कानीफानाथ ने कभी अपना निवासस्थान बनाया और उस गांव का नाम 'मढ़ी' रखा। मढ़ी गांव में ही कानीफानाथ समाधिस्थ हुए। कुछ भक्तजन कानीफानाथ को 'कान्होवा' के नाम से भी स्मरण करते हैं।

श्री नवनाथ चरित्र सागर

भाग-6
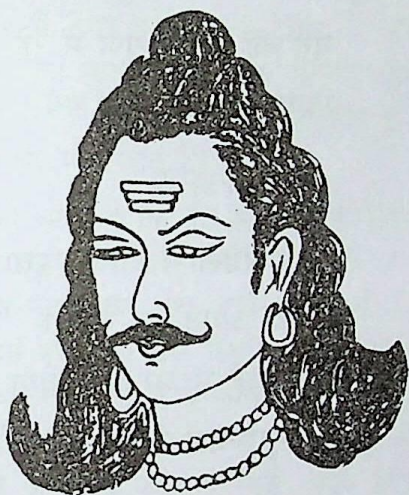
श्री भर्तृहरिनाथ-चरित्र

(द्रुमिल नारायण के अवतार)

''साच का सबद सोना की रेख
निगुरां कौ चाणक सगुरां को उपदेस।
गुरु का मूंड्या गुण में रहे
निगुरा भ्रमैं औगुणा गहै।''

☆☆☆

''गगन मंडल में औंधा कूंवा,
तहां अमृत का वासा।
सुगरा होई सु भर-भर पीया,
निगुरा जाई पियासा॥''

☆☆☆

''भगि मुखि बिन्दु, अगिनि मुख पारा।
जो राखै सो, गुरु हमारा॥''

सुरोचन गंधर्व की कथा

देवराज इंद्र के दरबार में उर्वशी, रंभा, मेनका, तिलोत्तमा, घृताची आदि अनेक परम रूपवती अप्सराएं हैं। वे सब नृत्य-गायन की कला में अत्यंत प्रवीण हैं तथा उनका यौवन सदैव अक्षुण्ण बना रहता है। इनका जन्म समुंद्र-मंथन के समय समुद्र के गर्भ से हुआ था।

इंद्र के दरबार में जिस प्रकार नृत्य-गायन के लिए अप्सराएं हैं, उसी प्रकार वाद्य-वादन का कार्य गंधर्व तथा किन्नर करते हैं। वे हर प्रकार के वाद्य-वादन (बाजे) बजाने में अत्यंत कुशल हैं। वे संगीत-विद्या के अधिष्ठाता देवता भी माने जाते हैं।

एक समय की घटना है कि इंद्र की सभा में संगीत-गोष्ठी हो रही थी। अप्सरांए नृत्य कर रही थीं तथा गंधर्व बाजे बजा रहे थे। उस समय मेनका नामक अप्सरा के नृत्य, रूप तथा हाव-भावों को देखकर सुरोचन नामक गंधर्व काम-मोहित हो गया। उस स्थिति में वह देवराज इंद्र अथवा सभा में उपस्थित अन्य लोगों की कोई लज्जा अथवा चिंता किए बिना समस्त शिष्टाचारों को तिलांजलि देकर सहसा उठ खड़ा हुआ और उसने नृत्य करती हुई मेनका का हाथ पकड़कर उसे अपने हृदय से लिपटा लिया।

इस अनाचार एवं निर्लज्जता को देखकर सभी दरबारी दंग रह गए। देवराज इंद्र अत्यंत क्रुद्ध हुए। उन्होंने सुरोचन गंधर्व को शाप देते हुए कहा– "हे पापी! तूने देवसभा के शिष्टाचार को तिलांजलि देकर मूर्ख पशु के समान आचरण किया है। अतः मैं तुझे शाप देता हूं कि तू मर्त्यलोक में गधा बनकर जन्म ले।"

इंद्र के शाप को सुनकर सुरोचन की आत्मा ठिकाने पर आ गई। वह भयभीत तथा दीन होकर इंद्र के चरणों पर गिर पड़ा और रोते हुए कहने लगा– "हे देवराज! यह अपराध मुझसे अचानक बन पड़ा है। मुझे अपने कृत्य पर अत्यंत पश्चाताप है। आप कृपा कर मेरा अपराध क्षमा कर दीजिए तथा इस शाप का निवारण कीजिए।"

उसके दीन वचन को सुनकर इंद्र को दया आ गई। वे बोले– "मेरा दिया हुआ शाप मिथ्या नहीं हो सकता। तुझे बारह वर्ष तक गधा बनकर मर्त्यलोक में अवश्य रहना पड़ेगा। अब मैं अपने शाप के निवारण के रूप में तुझे यह वर देता हूं कि जिस समय मिथिला के राजा की पुत्री के साथ तेरा विवाह होगा, उस समय तू शापमुक्त होकर पुनः स्वर्गलोक में लौट आएगा।"

यह सुनकर सुरोचन ने पूछा– "हे महाराज! जब मैं गधा होऊंगा, तो मिथिला का राजा मेरे साथ अपनी पुत्री का विवाह क्यों करेगा?"

इंद्र बोले– "तू पशुरूप में रहते हुए भी मनुष्य जैसी बोली बोलने में समर्थ होगा। इसलिए तू जहां भी रहे, वहां प्रतिदिन रात्रि के समय यह कहते रहना कि मेरे साथ मिथिला के राजा की लड़की का विवाह करा दो। इस प्रकार नित्य कहते रहने से एक दिन उसके साथ तेरा विवाह भी हो जाएगा। गंधर्व होने के कारण तुझे पशु-योनि में भी अलौकिक शक्तियां प्राप्त होंगी। उनके प्रभाव को देखकर मिथिला का राजा तेरे साथ अपनी पुत्री का विवाह कर देगा।"

"हे गंधर्व! जिस दिन तेरा विवाह हो जाएगा, उस दिन से तू दिन में तो गधा बना रहेगा, परंतु रात को मनुष्य बन जाया करेगा। ऐसी स्थिति में तू राजकन्या के साथ भोग-विलास करने में समर्थ होगा। अंत में जब उस राजकन्या के गर्भ से पुत्र का जन्म होगा, तब तू पशु-योनि से मुक्ति पाकर फिर स्वर्गलोक में आ जाएगा।"

सुरोचन यह सुनकर चुप हो गया। कुछ समय बाद ही वह स्वर्गलोक से गिरकर मर्त्यलोक में आ पहुंचा और गधे के रूप में मिथिला नगरी के जंगल में घूमने लगा।

सुरोचन कुम्हार के घर में

मिथिला नगरी में 'कमठ' नामक एक कुम्हार रहता था। वह बहुत अच्छा कारीगर था। उसकी कारीगरी की प्रशंसा राज्यभर में फैली हुई थी।

कमठ के पास कई गधे थे। वे सब जंगल में चरने के लिए जाया करते थे। शापित गधा उनसे मिला तो वे सब आपस में हिल-मिल गए।

संध्या होने पर कमठ अपने गधों को लौटाने के लिए जब जंगल में गया तो उसे वहां एक नया गधा दिखाई दिया। उसके मालिक का कोई पता न चलने पर कमठ अपने गधों के साथ उसे भी हांककर घर ले आया।

शापित गधा कुम्हार के घर में आकर उसका सब काम करने लगा। अन्य गधों की अपेक्षा उसका शरीर भी हृष्ट-पुष्ट था और काम करने की शक्ति भी अधिक थी। अतः कुम्हार उसे सब गधों से अधिक प्यार करने लगा।

कुछ दिनों बाद कुम्हार के ऊपर दरिद्रता का प्रकोप हुआ। वह ऐसी स्थिति में पहुंच गया कि उसे अपने परिवार का पालन करने के लिए अपने गधों को बेचने की आवश्यकता पड़ गई।

एक-एक करके कुम्हार के सभी गधे बिक गए। केवल एक शापित गधे को उसने नहीं बेचा, क्योंकि वह बहुत अधिक मेहनत करता था।

गधा बोलने लगा

जब कुम्हार के घर में अकेला वही एक शापित गधा रह गया, तब उसने रात को बोलना आरंभ किया। एक दिन जैसे ही रात्रि हुई, उसने मनुष्य के स्वर में कहना आरंभ किया– ''मिथिला के राजा सत्यवर्मा की पुत्री के साथ मेरा विवाह करा दो।''

गधे के मुंह से मनुष्य जैसी आवाज सुनकर कमठ एकदम डर गया, परंतु बाद में उसने जैसे-तैसे धैर्य धारण किया।

अब प्रतिदिन रात्रि में यही क्रम चालू हो गया। शापित गधा नित्य कहता– ''हे कमठ! तुम मिथिला के राजा के पास जाकर कह दो कि वह अपनी पुत्री का विवाह मेरे साथ कर दे।''

एक दिन कुम्हार को पता चल गया कि प्रतिदिन रात्रि में जो यह आवाज आया करती है, वह और किसी की नहीं, बल्कि उसी गधे की है, जिसे मैं जंगल से पकड़कर लाया था। अतः एक दिन रात्रि में जब गधा अपनी बात को पुनः दोहरा रहा था, तब कुम्हार उसके पास जा पहुंचा और उससे इस प्रकार कहने लगा– ''हे गर्दभ! तुम जो रोज यह कहते

रहते हो कि मेरा विवाह मिथिला के राजा की कन्या के साथ करा दो, सो ऐसा कैसे संभव हो सकता है? तुम गधे हो और वह राजपुत्री है। राजा कहीं इस बात को सुन लेंगे तो वे तुम्हें और मुझे जान से मार डालेंगे।''

यह सुनकर गधे ने उत्तर दिया– ''हे कमठ! तुम राजा के पास जाकर मेरी बात कहो तो सही। वे अपनी पुत्री का विवाह मेरे साथ अवश्य कर देंगे।''

कुम्हार ने मन में सोचा– ''यह तो गधा है ही। यदि मैं इसकी बात को राजा के पास जाकर कहूं तो राजा मेरे सिर को धड़ से अलग करवा देगा। यह गधा प्रतिदिन रात्रि को इसी प्रकार चिल्लाता रहता है। यदि कोई दूसरा आदमी इसकी बात सुन लेगा और उसे राजा से कह देगा तो राजा निश्चित रूप से मुझे मार डालेगा। इससे अच्छा यही है कि मैं इस राज्य को छोड़कर कहीं दूसरी जगह चला जाऊं। दूसरे राज्य में चले जाने पर संभवत: गधा भी इस बात को कहना बंद कर देगा।''

यह विचारकर कमठ ने मिथिला राज्य को छोड़ देने का निश्चय किया।

मिथिला तांबे की बनी

''कमठ कुम्हार मिथिलापुरी छोड़कर किसी अन्य राज्य में जा रहा है।'' यह चर्चा सर्वत्र फैल गई। राज्यभर में वह कुम्हार अपने काम का सबसे बड़ा कारीगर था, अत: उसके जाने की बात सुनकर सबको बहुत दु:ख हुआ।

यह खबर जब राजा के कानों में पहुंची तो उन्होंने कमठ कुम्हार को अपने पास बुलाकर पूछा– ''हे कमठ! तुम मेरे राज्य को छोड़कर क्यों जा रहे हो? क्या तुम्हें यहां किसी प्रकार का कष्ट है?''

कमठ ने राजा की बात सुनकर दोनों हाथ जोड़ते हुए कहा– ''हे महाराज! मुझे आपके राज्य में कभी कोई कष्ट नहीं हुआ, परंतु मेरे जाने का कारण ऐसा है कि उसे मैं आपके सामने कह नहीं सकता।''

राजा बोले– ''कोई भी कारण क्यों न हो, तुम मुझसे नि:संकोच कहो। मैं नाराज नहीं होऊंगा।''

राजा द्वारा यह आश्वासन दिए जाने पर कमठ ने कहा– ''हे महाराज! कुछ समय पूर्व मैं जंगल से एक गधा पकड़कर लाया था। वह रात में

मनुष्य जैसी बोली बोलता है और यह कहता है कि मेरा विवाह मिथिला के राजा की कन्या के साथ करा दिया जाए। यह बात कहीं आपके कानों में न पड़ जाए और आप मुझे दंड न दे बैंठे, इसी भय से मैं आपके राज्य को छोड़कर चला जाना चाहता हूं।''

कुम्हार की बात सुनकर राजा को अत्यंत आश्चर्य हुआ। उन्होंने इस संबंध में अपने मंत्रियों से चर्चा की। मंत्रियों ने कहा– '' हे महाराज! यदि गधा मनुष्य की बोली बोलता है तो वह अवश्य ही कोई तप भ्रष्ट योगी अथवा देवता होगा। ऐसी स्थिति में आप उससे कुछ चमत्कार दिखाने के लिए कहिए। यदि वह चमत्कार दिखा दे, तब तो ठीक है, अन्यथा फिर वह कुम्हार को रोज-रोज परेशान नहीं करेगा।''

मंत्रियों की सलाह राजा को पसंद आ गई। उन्होंने कुम्हार से कहा– ''हे कमठ! आज रात को तुम अपने गधे से यह कहना कि वह इस मिथिला नगरी को एक रात में तांबे की बना दे। यदि वह ऐसा कर देगा तो मैं उसके साथ अपनी पुत्री का विवाह कर दूंगा।''

राजा की यह बात सुनकर कुम्हार अपने घर लौट गया।

रात के समय शापित गधे ने फिर वही बात दुहराई– ''मिथिला के राजा की कन्या के साथ मेरा विवाह करा दो।''

तब कुम्हार ने गधे के पास जाकर कहा– ''हे गर्दभ! यदि तुम एक रात में मिथिला नगरी को तांबे की बना सको तो मिथिला के राजा अपनी कन्या के साथ तुम्हारा विवाह कर देंगे।''

कुम्हार की बात सुनकर उसने उत्तर दिया– ''मैं ऐसा कर दूंगा।''

कुम्हार उसके पास से चला आया। तब शापित गधे ने विश्वकर्मा को अपने पास बुलाकर कहा कि वे रातभर में मिथिला नगरी को तांबे की बना दें। विश्वकर्मा ने उसकी बात मानकर उसी रात मिथिला नगरी के सभी मकानों तथा अन्य स्थानों को तांबे का बना दिया। दूसरे दिन सुबह राजा, मंत्री तथा प्रजाजन सब सोकर उठे तो उन्हें यह देखकर अत्यंत आश्चर्य हुआ कि संपूर्ण मिथिला नगरी तांबे की बन गई है।

राजा और मंत्री उस समय यह सोचने लगे कि हमसे बड़ी भूल हुई, जो हमने इस नगर को सोने का बना देने के लिए नहीं कहा।

तत्पश्चात् उन्होंने आपस में विचार करके यह निश्चय किया कि वह गधा कोई सामान्य पशु नहीं है। अब यदि हम उसके साथ राजकन्या का विवाह नहीं करेंगे तो वह हमारे राज्य के लिए अनिष्टकारक भी सिद्ध हो सकता है। अतः हमें अपने वचन का पालन करके राजकन्या का विवाह उसके साथ कर देना चाहिए।

गधे का विवाह

राजा सत्यवर्मा ने अपनी पुत्री को बुलाकर सब वृत्तांत कह सुनाया। सत्यवती ने उन्हें उत्तर दिया– ''हे पिता! आप जो उचित समझें, वह कीजिए। मुझे उस पशु के साथ विवाह करने में कोई आपत्ति नहीं है।''

तब राजा रात के समय अपनी पुत्री को साथ लेकर कमठ कुम्हार के घर गए। वहां जाकर उन्होंने गधे से कहा– ''हे महाराज! आप कोई भी क्यों न हो, मैं अपने वचन के अनुसार अपनी पुत्री सत्यवती को साथ लेकर यहां आया हूं। यह पुत्री मैं आपको समर्पित करता हूं। अब आप इसका पालन कीजिएगा।''

यह सुनकर गधे ने उत्तर दिया– '' हे महाराज! आप भाग्यशाली हैं। मैं सुरोचन नामक गंधर्व हूं। इंद्र के शाप के कारण मैं इस पशु–योनि में आया हूं। अब कुछ दिनों बाद मैं शाप–मुक्त हो जाऊंगा। तब आपको संसार में अत्यधिक यश प्राप्त होगा। आप निश्चिंत होकर गंधर्व–विवाह की रीति से अपनी कन्या का विवाह मेरे साथ कर दीजिए। मैं इसका भली–भांति पालन करूंगा।'' तब राजा ने गंर्धव-विवाह की रीति से अपनी पुत्री का विवाह उस गधे के साथ कर दिया।

विवाह होने के उपरांत राजा ने कमठ कुम्हार से कहा-- ''हे कमठ! अब तुम इस गधे तथा मेरी पुत्री को लेकर मिथिला राज्य से बाहर चले जाओ, ताकि यहां पर लोकापवाद न फैले।''

यह कहकर राजा ने कमठ को धन, रत्न, वाहन आदि बहुत समान दिया। कमठ राज्यकन्या तथा गधे को साथ लेकर उसी रात मिथिलापुरी को छोड़कर अवंतिकापुरी (उज्जैन) को चल दिया।

विक्रम का जन्म

कमठ कुम्हार उज्जयिनी में जा पहुंचा। मिथिलापति राजा सत्यवर्मा का दिया हुआ धन तो उसके पास था ही। अतः उससे उसने वहां मकान आदि बना लिया तथा व्यवसाय आदि आरंभ कर दिया। उसके दिन सुखपूर्वक व्यतीत होने लगे।

शापित गधा दिन में तो पशु रहता और रात्रि के समय मनुष्य स्वरूप को प्राप्त कर लेता था। इस प्रकार वह अपनी पत्नी सत्यवती को सुख देने तथा उसके साथ भोग-विलास करने लगा। कुछ दिनों बाद सत्यवती गर्भवती हो गई।

नौ मास का समय व्यतीत होने पर सत्यवती ने एक सुंदर पुत्र को जन्म दिया। सुरोचन ने उसका नाम विक्रम रखा। विक्रम का जन्म होते ही सुरोचन शाप-मुक्त हो गया। उसी समय वहां इंद्रलोक से एक विमान आ पहुंचा। सुरोचन ने गधे का रूप त्यागकर अपना गंधर्व स्वरूप ग्रहण कर लिया। फिर उसने विमान पर बैठते हुए अपनी पत्नी सत्यवती तथा कमठ कुम्हार को संबोधित करते हुए कहा– "तुम लोगों को दुःखी होने की आवश्यकता नहीं है। मैं अब शाप-मुक्त होकर अपने लोक को जा रहा हूं, परंतु थोड़े-थोड़े दिनों बाद यहां आता रहूंगा और अपने पुत्र तथा पत्नी की देख-रेख करता रहूंगा।"

इतना कहकर सुरोचन गंधर्व इंद्रलोक को चला गया। उसके बाद से वह थोड़े-थोड़े दिनों बाद अवंतिकापुरी में आता और अपनी पत्नी तथा पुत्र से भेंट किया करता था। उनके पालन-पोषण तथा जीवन-निर्वाह के लिए जिन वस्तुओं की आवश्यकता होती, उन्हें वह विमान में भरकर ले आया करता था।

विक्रम द्वितीया के चंद्रमा की भांति दिन-प्रतिदिन बड़ा होने लगा। पढ़ने-लिखने के अतिरिक्त उसने शास्त्रास्त्र-विद्या, मल्ल-विद्या तथा युद्ध विद्या में भी पूर्ण योग्यता प्राप्त कर ली।

अवंतिकापुरी में सर्वत्र विक्रम की विद्या, बुद्धि, शक्ति, ज्ञान तथा योग्यता की चर्चा फैल गई।

विक्रम कोतवाल बना

उन दिनों अवंतिकापुरी में शुभविक्रम नामक राजा राज्य करता था। उसने जब विक्रम की योग्यता एवं बल-पौरुष की प्रशंसा सुनी तो उसे एक दिन अपने दरबार में बुलाया। विक्रम को देखकर उससे वार्तालाप करके राजा शुभविक्रम अत्यंत प्रसन्न हुआ और उसे अपने नगर के कोतवाल पद पर नियुक्त कर दिया।

विक्रम अत्यंत योग्यता एवं कुशलतापूर्वक अपने उत्तरदायित्व का निर्वाह करने लगा। उसके कोतवाल बनते ही अवंतिकापुरी पूर्ण रूप से सुरक्षित हो गई।

चित्रमा गंधर्व की कथा

एक बार चित्रमा नामक गंधर्व शिव-पार्वती के दर्शन करने की इच्छा से कैलास पर्वत पर जा पहुंचा। उस समय शिवजी पार्वती के साथ चौसर खेल रहे थे। चित्रमा गंधर्व उन दोनों को प्रणाम करके समीप ही एक स्थान पर शांत भाव से बैठ गया और उन दोनों के खेल को देखने लगा।

खेल-ही-खेल में किसी बाजी को लेकर शिव-पार्वती के बीच विवाद छिड़ गया। उस विवाद में पार्वतीजी का पक्ष प्रबल था और शिवजी का पक्ष दुर्बल था।

जब दोनों में विवाद अधिक बढ़ गया, तब पार्वतीजी ने चित्रमा गंधर्व से कहा– ''हे गंधर्व! तुम हम दोनों के खेल के प्रत्यक्ष साक्षी हो। अतः अब तुम्हीं अपना निर्णय दो कि हम दोनों में किसका पक्ष उचित है।''

यह सुनकर चित्रमा गंधर्व ने पक्षपात से काम लिया और बोला– ''हे पार्वतीजी! शिवजी का पक्ष ही न्यायसंगत है।''

पार्वतीजी चित्रमा का अनुचित निर्णय सुनकर अत्यंत क्रुद्ध हुईं। उन्होंने चित्रमा को शाप देते हुए कहा– ''हे गंधर्व! तूने झूठी साक्षी देकर राक्षस के समान आचरण किया है, अतः मैं तूझे शाप देती हूं कि तू राक्षस बनकर मर्त्यलोक में जा गिरे।''

यह सुनकर चित्रमा गंधर्व अत्यंत पछताने तथा रोने लगा। उसने शिवजी से शाप-मुक्त कर देने की प्रार्थना की। तब शिवजी ने उसे कहा– "हे गंधर्व! पार्वतीजी का दिया हुआ शाप मिथ्या नहीं हो सकता, अतः तुझे राक्षस बनकर मर्त्यलोक में तो जाना ही पड़ेगा, परंतु तेरी करुण दशा देखकर मुझे दया आ गई है, इसलिए मैं इस शाप के निवारणार्थ तुझे यह वरदान देता हूं कि शाप का फल भोगने के उपरांत तू पुनः गंधर्व-लोक में आ जाएगा।"

चित्रमा ने पूछा– "मेरी मुक्ति किस प्रकार होगी?"

शिवजी बोले– "सुरोचन गंधर्व का पुत्र 'विक्रम' इन दिनों मर्त्यलोक में रह रहा है। उसके हाथों तेरी मृत्यु होगी। तत्पश्चात् तू शाप-मुक्त होकर अपने लोक को प्राप्त कर लेगा।"

इसके बाद चित्रमा राक्षस बनकर मर्त्यलोक में गिर पड़ा और वह पृथ्वी पर निवास करने वाले प्राणियों को कष्ट देता हुआ अपने शाप की अवधि समाप्त होने की प्रतीक्षा करने लगा।

भर्तृहरि के जन्म का वृत्तांत

एक बार सायंकाल के समय सूर्यनारायण विश्राम करने के लिए अस्ताचल पर जाने की तैयारी कर रहे थे। उसी समय उर्वशी नामक सुंदर अप्सरा आकाश-मार्ग से होकर कहीं जा रही थी।

सूर्यनारायण उस सुंदर अप्सरा को देखकर काम-मोहित हो गए। उन्होंने अपनी किरणों के हाथ बढ़ाकर अप्सरा को आलिंगन में भर लेना चाहा, परंतु अप्सरा किसी प्रकार उनकी पकड़ में नहीं आई और भाग गई। उस समय सूर्यनारायण का वीर्य अंतरिक्ष में स्खलित हो गया।

उस वीर्य के वायु ने दो टुकड़े कर दिए। एक भाग तो लोमश ऋषि के आश्रम में रखे हुए घड़े में गिरा, उससे अगस्त ऋषि ने जन्म लिया। दूसरा भाग कौलिक ऋषि के आश्रम के दरवाजे पर रखे हुए भिक्षापात्र (भर्तृरि) में जा गिरा। कौलिक ऋषि ने जब भिक्षापात्र में किसी के वीर्य को पड़ा हुआ देखा तो उन्होंने ध्यान-दृष्टि से संपूर्ण रहस्य को समझ लिया। वे यह जान गए कि यह वीर्य सूर्यनारायण का है और आज से तीन हजार एक सौ तीन वर्ष बाद इस पात्र में द्रुमिल नारायण का प्रवेश होगा और वे बालरूप लेकर अवतार ग्रहण करेंगे।

उन दिनों कलियुग आरंभ ही हुआ था। कौलिक ऋषि ने उस भिक्षापात्र (भर्तृरि) को मंदराचल पर्वत की एक गुफा में ले जाकर रख दिया और उसके द्वार को इस प्रकार बंद कर दिया कि वह पात्र सुरक्षित बना रहे।

उचित समय आ जाने पर उस वीर्य के भीतर द्रुमिल नारायण ने प्रवेश किया। फलतः वह वीर्य एक बालक के रूप में बदल गया। कुछ दिनों बाद जब वह बालक उस पात्र (भर्तृरि) में नहीं समाया तो पात्र टूट गया और बालक नीचे गिरकर रोने लगा।

हिरनी द्वारा भर्तृहरि का पालन

जिस समय भिक्षापात्र में जन्म लेने वाला बालक गुफा के भीतर पड़ा हुआ रो रहा था, उसी समय एक गर्भिणी हिरनी ने उस गुफा में प्रवेश करके दो बच्चों को जन्म दिया। उस समय हिरनी के दोनों बालक तथा भिक्षापात्र में जन्म लेने वाला बालक– तीनों एक साथ मिलकर रोने लगे। तीन बालकों का रुदन सुनकर हिरनी ने यह समझा कि उसने तीन संतानों को जन्म दिया है। अतः वह अपने बालकों के समान ही उस भिक्षापात्र से जन्म लेने वाले बालक को दूध पिलाने लगी।

यह क्रम इसी प्रकार निरंतर चलने लगा। वह बालक हिरनी के साथ रहकर उसी तरह दौड़ना सीख गया तथा हिरनी भी उसे अपना ही बालक समझकर पालन-पोषण करती रही। धीरे-धीरे वह बालक बड़ा हो गया। बड़े होने पर भी वह बालक हिरनी की ही भांति अपने चारों हाथ-पांवों को पृथ्वी के ऊपर टिकाकर चलता था तथा उसी प्रकार 'बें-बें' शब्द का उच्चारण करता था।

एक दिन हिरनी वन में चली जा रही थी। उसके साथ तीनों बालक भी थे। उसी समय जयसिंह नामक एक भाट अपनी रेणुका नामक पत्नी को साथ लिए उस वन-मार्ग से कहीं जा रहा था। उसने हिरनी के साथ एक मनुष्य के बालक को पशुवत् आचरण करते हुए देखा तो उसे बहुत आश्चर्य हुआ, साथ ही दया भी आई।

तब उसने आगे बढ़कर उस बालक को पकड़कर अपनी गोद में उठा लिया। बालक उसकी गोद में जाकर 'बें-बें' करने लगा। हिरनी भी दूर खड़ी होकर अपने उस बालक की ओर देखकर दुःखी होने लगी, परंतु

उन स्त्री-पुरुषों के पास जाने की हिम्मत नहीं हुई। भाट-भाटिनी उस बालक को लेकर अपने घर की ओर चल दिए। विवश होकर हिरनी भी जंगल में चली गई।

बालक का नाम भर्तृहरि पड़ा

जयसिंह के घर आकर वह बालक बहुत दिनों तक तो अपनी माता हिरनी की याद कर-कर रोता रहा, परंतु बाद में धीरे-धीरे उसका शोक कम हो गया और वह भाट-भाटिनी के साथ हिल-मिल गया।

एक बार जयसिंह भाट अपनी स्त्री तथा उस बालक को साथ लेकर तीर्थयात्रा करने के लिए काशी जा पहुंचा। वहां उसने बालक को गंगा में स्नान कराकर महादेव विश्वनाथजी के दर्शन कराए। उस बालक को देखते ही शिवजी ने आओ 'भर्तृहरि' कहकर उस बालक का स्वागत किया। यह देखकर भाट-भाटिनी आश्चर्यचकित रहे। तभी शिवजी की मूर्ति के मुख से यह शब्द और निकले- "हे भर्तृहरि! आप द्रुमिल नारायण के अवतार हैं, इस बात को मैं अच्छी तरह जानता हूं। आपको यहां देखकर मुझे अत्यंत प्रसन्नता हुई है।"

विश्वनाथजी की मूर्ति से ये शब्द सुनकर भाट-भाटिनी के आनंद का पारावार न रहा। वे तुरंत समझ गए कि यह दैवी बालक कोई अवतारी महापुरुष है।

भाट-भाटिनी के साथ रहकर वह बालक मनुष्यों जैसी बोली बोलना सीख चुका था। अतः भाट-भाटिनी के साथ ही उसने भी वहां पर 'ॐ नमः शिवाय' मंत्र का उच्चारण करते हुए शिवजी का पूजन किया। शिवजी ने उसे अपना आशीर्वाद दिया।

सूर्यनारायण से भेंट

जयसिंह कई वर्ष तक काशी में रहा। विश्वनाथजी ने उस बालक को 'भर्तृहरि' कहकर संबोधित किया था, अतः उसने बालक का नाम 'भर्तृहरि' रख दिया। भर्तृहरि वहां रहकर बड़ा होने लगा।

बड़ा होकर भर्तृहरि अपने समवयस्क बालकों के साथ खेलने लगा। एक दिन सब बच्चे मिलकर घोड़ों की दौड़ का खेल खेल रहे थे। एक बार वे सब तेज दौड़ते हुए नगर के बाहर जंगल के भीतर चले गए। वहां पहुंचकर एक स्थान पर भर्तृहरि को बड़े जोर की ठोकर लगी। वह इस तरह गिरा कि उसके हाथ-पांवों से खून बहने लगा। थोड़ी देर में वह बेहोश हो गया।

साथ के लड़कों ने भर्तृहरि को बेहोश देखकर यह समझा कि वह मर गया है। अतः वे भयभीत होकर उसे वहीं अकेला छोड़कर अपने-अपने घरों को लौट गए। किसी ने भर्तृहरि के घर जाकर कोई खबर तक नहीं दी।

बालक भर्तृहरि जंगल में अकेला बेहोश पड़ा है– यह देखकर सूर्यनारायण को उस पर अत्यंत दया आई। अंततः वह उन्हीं का तो पुत्र था। वे तुरंत ही एक वृद्ध ब्राह्मण का वेष बनाकर भर्तृहरि के पास जा पहुंचे। उन्होंने भर्तृहरि को अपनी गोद में उठा लिया और उसके शरीर पर हाथ फेरने लगे। कुछ देर बाद जब भर्तृहरि को होश आया, तब वे उसे गोद में लिये हुए उसके घर जा पहुंचे।

उधर घर में भर्तृहरि के देर तक न आने के कारण भाट-भाटिनी अत्यंत चिंतित हो रहे थे। ब्राह्मण वेषधारी सूर्यनारायण जब बालक को गोद में लिये हुए घर पहुंचे तो उन दोनों को अत्यंत प्रसन्नता हुई। उन्होंने ब्राह्मण का बहुत उपकार माना और उनका परिचय पूछा।

उस समय ब्राह्मण वेषधारी सूर्यनारायण ने कहा– ''मैं ब्राह्मण नहीं हूं, अपितु इस वेष को धारण किए हुए सूर्यनारायण हूं। मैं भर्तृहरि का पिता हूं। मैंने इसे जंगल में बेहोश पड़ा हुआ देखा था, सो वहां से उठाकर यहां ले आया हूं। अब तुम इसका भली-भांति पालन-पोषण करो। आगे चलकर यह बालक बहुत भाग्यशाली होगा तथा इसकी कीर्ति संपूर्ण संसार में फैलेगी।''

यह कहकर सूर्यनारायण अंतर्धान हो गए। बालक के संबंध में इस वृत्तांत को सुनकर भाट-भाटिनी को अत्यंत प्रसन्नता हुई। वे और भी अधिक मनोयोग से भर्तृहरि का पालन-पोषण करने लगे।

भाट-भाटिनी की मृत्यु

जब भर्तृहरि की आयु सोलह वर्ष की हुई, तब भाट-भाटिनी काशीपुरी छोड़कर अपने देश को चल दिए। मार्ग में स्थान-स्थान पर ठहरते हुए वे यह देखते जाते थे कि यदि कोई योग्य कन्या मिले तो उसके साथ भर्तृहरि का विवाह कर दिया जाए।

एक दिन चलते-चलते वे एक ऐसे जंगल में पहुंचे, जहां किसी मनुष्य का नामोनिशान तक नहीं था। वह रास्ता ही उस जंगल में होकर जाता था। उस जंगल में लुटेरों के एक दल ने जयसिंह के ऊपर आक्रमण कर दिया। उनसे लड़ने-झगड़ने में जयसिंह की मृत्यु हो गई। पति की मृत्यु का रेणुका के हृदय पर ऐसा आघात पहुंचा कि उसकी भी हृदय-गति बंद हो गई। इस प्रकार भाट-भाटिनी, दोनों ही उस स्थान पर मृत्यु को प्राप्त हो गए। माता-पिता का अग्नि-संस्कार करने के बाद भर्तृहरि उन्हीं की चिता के पास बैठकर रोने लगा।

भर्तृहरि व्यापारियों के साथ

उस समय व्यापारियों का एक काफिला उसी मार्ग पर चलता हुआ वहां आ पहुंचा। भर्तृहरि को रोते हुए देखकर व्यापारियों को अत्यंत दया आई। उन्होंने भर्तृहरि को धीरज बंधाकर अपने साथ ले लिया। भर्तृहरि उन लोगों के साथ चल दिया। कुछ दिनों में वह अपने माता-पिता की मृत्यु का दुःख भी भूल गया।

व्यापारियों का वह काफिला अवंतिकापुरी की सीमा में जा पहुंचा। उस समय सूर्यनारायण अस्ताचलगामी हो चुके थे। काफिला एक तालाब के किनारे जाकर ठहर गया।

भोजनादि से निवृत्त होने के बाद जिस समय सब लोग बैठे हुए परस्पर वार्तालाप कर रहे थे, उसी समय उन्हें दूर से आने वाला सियारों का 'हुआ', 'हुआ' शब्द सुनाई दिया। उस शब्द के अर्थ को भर्तृहरि ने समझ लिया। चूंकि वह जन्म लेने के बाद पांच वर्ष तक जंगल में रहा था, इसलिए वह विभिन्न पशुओं के शब्द का आशय समझ लेता था।

भर्तृहरि ने काफिले के सरदार से कहा कि ये सियार चेतावनी दे रहे हैं कि लुटेरों का झुंड आप लोगों पर आक्रमण करने के लिए आ रहा है, अतः आप लोग सावधान हो जाइए।

भर्तृहरि की बात सुनकर व्यापारियों के सरदार ने पूछा– "तुमने सिया. रों की बोली का अर्थ किस प्रकार समझ लिया?"

भर्तृहरि ने उत्तर दिया– "जन्म लेने के बाद पांच वर्ष तक मैं जंगल के पशुओं के बीच रहा हूं। इसीलिए इनकी बोली के अर्थ को समझ लेता हूं।"

यह सुनकर व्यापारियों के सरदार ने अपने काफिले को सावधान कर दिया। सब लोग लुटेरों का सामना करने के लिए तैयार हो गए।

थोड़ी ही देर बाद जलती हुई मशलें लिये हुए लुटेरों का दल वहां आ पहुंचा। काफिले के लोग तो पहले से ही तैयार बैठे थे। लुटेरों के आते ही वे सब उनके ऊपर टूट पड़े। अपने ऊपर अचानक आक्रमण हो जाने के कारण सभी लुटेरे घबराकर भाग गए। इस प्रकार भर्तृहरि की चेतावनी के फलस्वरूप व्यापारियों का काफिला लुटने से बच गया।

काफिले के सभी व्यापारियों ने भर्तृहरि की बहुत प्रसंशा की और उपकार माना।

"व्यापारियों के काफिले में भर्तृहरि नामक एक मनुष्य जानवरों की बोली का अर्थ समझ लेता है और उसने व्यापारियों के काफिले को लुटने से बचा लिया।" यह चर्चा थोड़ी ही देर में चारों ओर फैल गई।

उन दिनों उस अवंतिकापुरी नामक नगर का कोतवाल विक्रम था। उसने जब यह चर्चा सुनी तो वह व्यापारियों के काफिले में गया। वहां जाकर उसने भर्तृहरि से भेंट की। भर्तृहरि को देखकर तथा उससे वार्तालाप करके विक्रम को अत्यंत प्रसन्नता हुई। उसने अपने मन में सोचा कि ऐसा गुणी व्यक्ति यदि मेरे पास रहे तो नगर की सुरक्षा में बहुत बड़ा सहायक हो सकता है। अतः ऐसे व्यक्ति को इन व्यापारियों से लेकर मुझे अपने साथ रख लेना चाहिए।

विक्रम अपने मन में यह विचार कर ही रहा था कि उसी समय सियारों ने 'हुआ', 'हुआ' करके चिल्लाना आरंभ कर दिया। भर्तृहरि उनके

शब्द का अर्थ फिर समझ गया। उस समय विक्रम ने भर्तृहरि से पूछा– "इस बार ये सियार क्या कह रहे हैं?"

भर्तृहरि ने उत्तर दिया– "इस बार ये बड़ी भयंकर बात कह रहे हैं। इनका कहना है कि उत्तर दिशा की ओर से एक अत्यंत क्रूर राक्षस दक्षिण की ओर चला जा रहा है। उसकी मुट्ठी के भीतर चार रत्न हैं। जो व्यक्ति उस राक्षस को मारकर, उसके रक्त को नगर के प्रवेशद्वार पर चढ़ाएगा तथा उससे अपने ललाट पर तिलक करेगा, वह इस अवंतिकापुरी का राजा बन जाएगा।"

यह सुनते ही विक्रम अपनी तलवार को म्यान से बाहर निकालकर, उस राक्षस को मारने के लिए चल दिया। कुछ दूर आगे जाने पर उसे वह राक्षस दिखाई दे गया। विक्रम ने अपनी तलवार के तीक्ष्ण प्रहार से एक ही झटके में उस राक्षस का काम-तमाम कर दिया। फिर जब उसके हाथ की मुट्ठी को खोलकर देखा तो भर्तृहरि के बताए अनुसार उसमें से चार रत्न भी निकले। तत्पश्चात् विक्रम ने उस राक्षस के रक्त से अपने मस्तक पर टीका किया तथा हाथ की अंजुलि में उसका रक्त भरकर नगर के प्रवेशद्वार पर जा चढ़ाया।

यह राक्षस और कोई नहीं, पार्वतीजी के शाप से शापित चित्रमा नामक गंधर्व था। विक्रम के हाथ से मृत्यु पाकर वह इंद्रलोक से आए हुए विमान में बैठकर अपने गंधर्वलोक को चला गया।

विक्रम का भर्तृहरि को अपने साथ रखना

अवंतिकापुरी में जो भी व्यापारी अपना माल लेकर आते थे, उन्हें राज्य का कर देना पड़ता था। उक्त काफिले को भी राज्य का कर अदा करना था। विक्रम ने काफिले के सरदार के पास जाकर कहा कि तुम अपने माल के कर के बदले भर्तृहरि को मुझे दे दो।

व्यवसायी तो व्यवसासी होता है। काफिले के सरदार ने विक्रम की बात स्वीकार करके कर के बदले भर्तृहरि को सौंप दिया। विक्रम उसे साथ लेकर अपने घर चला अया। कर की जितनी धनराशि होती थी, उसने अपने पास से राज्य के खजाने में जमा कर दी।

व्यवसायियों का काफिला कुछ दिनों तक अवंतिकापुरी में व्यापार करने के बाद दूसरे स्थान को चला गया।

विक्रम ने भर्तृहरि को अपनी मां के पास ले जाकर उसकी सब विशेषताएं कह सुनाई। विक्रम की माता सत्यवती उन्हें सुनकर प्रसन्न हुई। उन्होंने भर्तृहरि को भी विक्रम के समान ही अपना स्नेह प्रदान किया। इस प्रकार भर्तृहरि सगे छोटे भाई की तरह विक्रम के घर में रहने लगे। सत्यवती दोनों को ही अपना पुत्र समझने लगी।

विक्रम का राजा बनना

अवंतिकापुरी के राजा शुभ विक्रम अत्यंत वृद्ध हो चले थे। उनका कोई पुत्र नहीं था। केवल मात्र एक कन्या थी, जिसका नाम सुमेधावती था।

कन्या के युवा हो जाने पर राजा को उसके विवाह की चिंता हुई। उन्होंने अपने प्रधानमंत्री को बुलाकर सुमेधावती के योग्य कोई वर तलाश करने के लिए कहा।

राजा की बात सुनकर मंत्री ने कहा– "हे महाराज! यदि आप आज्ञा दें तो मैं निवदन करूं?"

राजा बोले– "कहो।"

मंत्री बोला– "आप पहले किसी श्रेष्ठ राजकुमार को अपनी गद्दी का उत्तराधिकारी घोषित कर दीजिए। तत्पश्चात् उसी के साथ राजकुमारी का विवाह कर दीजिए। इस प्रकार राजकुमारी आपके पास ही बनी रहेगी और राजगद्दी के उत्तराधिकारी का प्रश्न भी हल हो जाएगा।"

मंत्री की यह सलाह राजा को पसंद आ गई। इसमें केवल इतना संशोधन किया गया कि एक हाथी की सूंड में माला देकर उसे खुला छोड़ दिया जाए। वह हाथी जिस व्यक्ति के गले में माला डाल दे, उसी को राजगद्दी का उत्तराधिकारी बना दिया जाए तथा उसी के साथ राजकुमारी का विवाह भी कर दिया जाए।

इस निश्चय के फलस्वरूप एक दिन शुभ मुहूर्त में मंडप सजाया गया और राज्य के तथा बाहर के प्रतिष्ठित लोगों, राजा-महाराजाओं आदि को

आमंत्रित किया गया। जब सब लोग आकर अपने-अपने स्थान पर बैठ गए, तब हाथी की सूंड में पुष्पमाला दे दी गई। हाथी उस माला को सूंड में उठाए हुए चारों ओर भ्रमण करने लगा। सभामंडप में उपस्थित किसी भी व्यक्ति के गले में हाथी ने पुष्पमाला नहीं पहनाई।

तत्पश्चात् हाथी सभामंडप से निकलकर राजभवन के द्वार पर जा पहुंचा। वहां पर बहुत से राजकर्मचारी खड़े हुए थे। उन्हीं में विक्रम भी मौजूद था। हाथी ने जाकर विक्रम के गले में पुष्पमाला पहना दी।

हाथी ने विक्रम के गले में माला पहनाई है, यह जानकर सभी को अत्यधिक आनंद हुआ। राजा ने विक्रम को हाथी पर बैठाकर अपने पास सभामंडप में बुलाया। जब विक्रम वहां पहुंच गए, तब राजकुमारी के साथ उनके विवाह की तैयारियां की जाने लगीं।

उस समय किसी ने यह आपत्ति खड़ी कर दी कि विक्रम तो जाति का कुम्हार है, इसके साथ क्षत्रिय-पुत्री का विवाह किस प्रकार हो सकता है।

यह सुनकर राजा विचार में पड़ गए। अब क्या किया जाए? उन्होंने प्रधानमंत्री को कमठ कुम्हार के घर विक्रम के जन्म एवं जाति की वास्तविकता का पता लगाने के लिए भेजा।

प्रधानमंत्री ने कमठ कुम्हार के घर जाकर उसे पूछा– "हे कमठ! विक्रम के माता-पिता कौन हैं, यह बताओ।"

कमठ बोला– "विक्रम की माता का नाम सत्यवती है। वे उधर बैठी हुई हैं। सत्यवती मिथिला के राजा सत्यवर्मा की पुत्री हैं।"

"और पिता कौन है?"

"विक्रम के पिता सुरोचन गंधर्व हैं।" यह कहकर कमठ ने प्रधानमंत्री को विक्रम के जन्म का संपूर्ण वृत्तांत बता दिया।

कमठ कुम्हार से पूछताछ करने के बाद प्रधानमंत्री राजा शुभ विक्रम के पास लौटा आया। उसने उनसे सारी बातें कह दीं। राजा शुभ विक्रम उसी समय प्रधानमंत्री को साथ लेकर मिथिलापुरी को चल दिए।

मिथिलापुरी में जाकर राजा शुभ विक्रम ने सत्यवर्मा से भेंट की। मिथिला नरेश ने उनका अत्यंत स्वागत-सत्कार किया। तदुपरांत उज्जयिनी

नरेश ने उन सब बातों का पूरा समर्थन किया, जो कमठ कुम्हार ने प्रधानमंत्री को बताई थीं।

वहां से राजा शुभ विक्रम मिथिला नरेश सत्यवर्मा को अपने साथ लेकर अवंतिकापुरी लौटे। सत्यवर्मा ने जाकर विक्रम की माता तथा अपनी पुत्री सत्यवती से भेंट की और विक्रम को हृदय से लगाकर आशीर्वाद दिया।

फिर एक दिन शुभ मुहूर्त में राजा शुभ विक्रम ने विक्रम को अपने राजसिंहासन का उत्तराधिकारी घोषित कर अपनी पुत्री सुमेधावती का विवाह उसके साथ कर दिया। सब ओर हर्ष की लहर दौड़ गई। प्रजा ने कई दिनों तक खूब आनंदोत्सव मनाया। याचकों को स्वर्ण, आभूषण, भोजन, वस्त्र, आदि वस्तुएं दान की गईं। अवंतिकापुरी तथा मिथिलापुरी, दोनों ही राज्यों के प्रजाजन अत्यंत आनंदित हुए।

इस प्रकार विक्रम अवंतिकापुरी का राजा बन गया और राज्य की देखभाल करने लगा, परंतु यह राज्य उसे भर्तृहरि के कारण प्राप्त हुआ है—इस बात को वह खूब अच्छी तरह जानता था। भर्तृहरि के बताए अनुसार यदि उसने राक्षस का वध न किया होता तो उसे राज्य की प्राप्ति कैसे हो सकती थी।

विक्रम ने राजा बनते ही भर्तृहरि को अपने छोटे भाई के रूप में उपप्रधान पद पर बैठाया। दोनों भाई अत्यंत प्रेमपूर्वक रहने तथा राज्य का संचालन करने लगे।

भर्तृहरि का विवाह

अवंतिकापुरी राज्य के प्रधानमंत्री का नाम सुमंतक था। उसकी पिंगला नामक एक अत्यंत सुंदर पुत्री थी। जब वह विवाह के योग्य हुई तो उसका ध्यान भर्तृहरि की ओर गया। प्रधानमंत्री ने राजा विक्रम से प्रार्थना की कि वे भर्तृहरि के साथ पिंगला का विवाह करना स्वीकार कर लें। राजा विक्रम ने प्रधानमंत्री की प्रार्थना को स्वीकार कर लिया।

रूढ़ि के अनुसार प्रधानमंत्री ने भर्तृहरि के माता-पिता का पता लगाने का निश्चय किया। पहले उसने कमठ कुम्हार के पास जाकर इस संबंध

में पूछताछ की। कमठ ने उत्तर दिया कि उसे भर्तृहरि के माता-पिता के संबंध में कोई ज्ञान नहीं है।

तब प्रधानमंत्री ने राजा विक्रम से ही भर्तृहरि के माता-पिता के विषय में पूछा। विक्रम ने भी कमठ कुम्हार जैसा ही उत्तर दिया। जब मंत्री ने विक्रम की माता सत्यवती ने कहा– "भर्तृहरि ने मेरे पेट से जन्म नहीं लिया है। मेरे पास तो विक्रम ही भर्तृहरि को लेकर आया था। इस प्रकार हम तीनों में से किसी को भी भर्तृहरि के माता-पिता के विषय में कुछ ज्ञात नहीं है। आप स्वयं भर्तृहरि से ही इस विषय में जानकारी प्राप्त कर लें।"

यह सुनकर प्रधानमंत्री ने जब भर्तृहरि के पास जाकर उनके माता-पिता के संबंध में प्रश्न किया तो भर्तृहरि ने उत्तर देते हुए बताया– "मेरे जन्मदाता साक्षात् भगवान सूर्यनारायण हैं। इससे अधिक मैं और कुछ नहीं जानता।"

प्रधानमंत्री को भर्तृहरि की इस बात पर विश्वास नहीं हुआ। तब भर्तृहरि ने सूर्य भगवान के सामने हाथ जोड़कर इस प्रकार प्रार्थना की– "हे पिता! मैं आपका पुत्र हूं। इस बात पर प्रधानमंत्री को विश्वास नहीं हो रहा है। अत: स्वयं ही प्रत्यक्ष प्रकट होकर इनके संदेह को दूर कर दीजिए।"

भर्तृहरि द्वारा इस प्रकार प्रार्थना किए जाने पर सूर्यनारायण प्रत्यक्ष रूप में प्रकट हो गए और उन्होंने प्रधानमंत्री को भर्तृहरि की उत्पत्ति के विषय में सब बातें विस्तारपूर्वक बताकर उनके संदेह को दूर कर दिया।

सूर्यनारायण द्वारा प्रत्यक्ष प्रकट होकर भर्तृहरि के जन्म के विषय में सब कुछ बता देने के उपरांत प्रधानमंत्री को किसी प्रकार का संदेह नहीं हुआ। उसने अत्यंत प्रसन्न होकर अपनी पुत्री पिंगला का विवाह भर्तृहरि के साथ कर दिया। उस समय संपूर्ण राज्य में अत्यंत आनंद मनाया गया।

इस विवाह के समय विक्रम के पिता सुरोचन गंधर्व मनुष्यरूप धारण कर अवंतिकापुरी में आए। उन्होंने प्रधानमंत्री को संबोधित करते हुए कहा– "हे मंत्री! तुम अत्यंत भाग्यशाली हो, जो तुमने साक्षात् सूर्यनारायण को अपने समधी के रूप में प्राप्त किया है और उनके पुत्र को अपना जामाता बनाया है।" सुरोचन की बात सुनकर विवाह-मंडप में उपस्थित सभी नर-नारियों सहित प्रधानमंत्री को अत्यंत प्रसन्नता हुई।

भर्तृहरि की दत्तात्रेय से भेंट

पिंगला के साथ भर्तृहरि का विवाह हो गया। भर्तृहरि पिंगला पर ऐसे आसक्त हुए कि वे दिन-रात भोग-विलास में डूबे रहने लगे। इतना ही नहीं, उन्होंने अपने और भी बहुत से विवाह कर लिये। दिनभर शिकार खेलना और रातभर रानियों के साथ विहार करना– यही उनकी दिनचर्या बन गई।

अपने पुत्र को इस स्थिति में देखकर सूर्यनारायण बहुत दुःखी हुए। एक दिन वे दत्तात्रेयजी के पास गए और उनसे यह प्रार्थना की कि वे उनके पुत्र भर्तृहरि को सुमार्ग पर लाने की कृपा करें। दत्तात्रेयजी ने उनकी प्रार्थना को स्वीकार करते हुए कहा– "आप चिंतित न हों। भर्तृहरि का भविष्य बहुत उज्ज्वल है। मैं उसे सुमार्ग पर ले आऊंगा, फिर एक दिन उसका यश संपूर्ण संसार में फैल जाएगा।"

सूर्यनारायण यह सुनकर संतुष्ट हुए तथा दत्तात्रेयजी से विदा लेकर अपने लोक को चले गए।

सूर्यनारायण के चले जाने पर दत्तात्रेयजी ने भर्तृहरि की ओर विशेष ध्यान देना आरंभ किया।

एक दिन भर्तृहरि शिकार खेलने के लिए वन में गए हुए थे। वहां एक हिरन के पीछे घोड़ा दौड़ाते हुए वे बहुत दूर निकल गए। उनके सभी साथी पीछे छूट गए। किसी को किसी का पता नहीं रहा।

हिरन आंखों से ओझल हो गया। उसी समय भर्तृहरि को इतने जोर की प्यास लगी कि उनका गला सूखने लगा और ऐसा प्रतीत होने लगा कि यदि शीघ्र ही पानी नहीं मिला तो प्राण शरीर को छोड़कर बाहर निकल जाएंगे।

उसी समय भगवान दत्तात्रेय ने अपना एक चमत्कार प्रकट किया। जिस मार्ग से थके-प्यासे भर्तृहरि लौट रहे थे, उसी के बीच अपनी माया द्वारा उन्होंने एक आश्रम की रचना कर दी और स्वयं वहां पर ऋषि का वेष बनाकर जा बैठे।

भर्तृहरि चलते-चलते जब उस आश्रम के समीप पहुंचे तो यहां पर पानी मिल जाएगा, यह अनुमान कर उन्हें थोड़ी-सी प्रसन्नता हुई।

वे तेजी से कदम बढ़ाते हुए ऋषिरूपी दत्तात्रेयजी के पास जा पहुंचे और उन्हें प्रणाम करने के उपरांत कहने लगे– "हे प्रभो! प्यास के मारे मेरे प्राण निकले जा रहे हैं। आप कृपा करके मुझे पानी प्रदान कीजिए।"

यह सुनकर दत्तात्रेय ने कहा– "पहले तुम अपना परिचय दो। तब पानी दूंगा।"

भर्तृहरि ने उत्तर दिया-- "मैं उज्जयिनी के राजा विक्रम का छोटा भाई भर्तृहरि हूं।"

दत्तात्रेय ने पूछा– "तेरे गुरु का नाम क्या है?"

भर्तृहरि ने उत्तर दिया– "अभी तक मैंने किसी को अपना गुरु नहीं बनाया है।"

दत्तात्रेय बोले– "जिसका कोई गुरु न हो, ऐसे व्यक्ति को मैं पानी नहीं पिला सकता। तुम यहां से चले जाओ।"

भर्तृहरि ने कहा– "पानी के बिना मेरे प्राण निकले जा रहे हैं। ऐसी स्थिति में मैं आपको ही अपना गुरु बनाने के लिए तैयार हूं। आप मुझे अपना शिष्य बना लीजिए और पीने के लिए पानी दे दीजिए।"

दत्तात्रेय बोले– "तुम मेरे शिष्य होने के योग्य नहीं हो।"

भर्तृहरि ने पूछा– "क्यों?"

दत्तात्रेय ने कहा– "मैं उसी व्यक्ति को अपना शिष्य बनाता हूं, जिसने बारह वर्ष तक तपस्या की हो। क्या तुमने तपस्या की है?"

भर्तृहरि ने कहा– "मैंने कभी तपस्या नहीं की, परंतु आपकी आज्ञा का पालन करने के लिए मैं बाद में तपस्या कर लूंगा।"

दत्तात्रेय ने पूछा– "क्या तुम बाद में तपस्या करने का संकल्प लेने के लिए प्रस्तुत हो?"

भर्तृहरि ने कहा– "प्रस्तुत हूं।"

यह सुनकर दत्तात्रेय ने भर्तृहरि के कान में मंत्र फूंककर उसे अपना शिष्य बनाया। जब भर्तृहरि शिष्य बन चुके, तब दत्तात्रेय ने उन्हें पीने के लिए पानी दिया।

पानी पीकर भर्तृहरि का चित्त ठिकाने पर आ गया। तब दत्तात्रेयजी ने उनसे कहा– "हे भर्तृहरि! अब तुम अपने दिए वचन के अनुसार बदरिकाश्रम जाकर बारह वर्ष तक तपस्या करो तथा राज्य, स्त्री आदि का मोह बिल्कुल त्याग दो।"

यह सुनकर भर्तृहरि ने अपने दोनों हाथ जोड़ते हुए कहा– "हे गुरु! आप मुझे बारह वर्ष का समय दीजिए। इस अवधि में मैं गार्हस्थ्य जीवन के सुखों का उपभोग कर लूंगा तथा मेरे कोई संतान भी उत्पन्न हो जाएगी। उसके बाद मैं आपकी आज्ञानुसार बदरिकाश्रम में जाकर तपस्या करूंगा और स्त्री, पुत्र, राज्य आदि के मोह को सर्वथा त्याग दूंगा।"

भर्तृहरि की इस प्रार्थना को दत्तात्रेयजी ने स्वीकार कर लिया। तब भर्तृहरि ने दत्तात्रेयजी से पूछा– "हे गुरु! आपका नाम क्या है?" दत्तात्रेय ने उन्हें अपना नाम बता दिया। तत्पश्चात् भर्तृहरि दत्तात्रेयजी से विदा लेकर अवंतिकापुरी में लौट आए। उधर दत्तात्रेय भी अपने मायाजाल को समेटकर अपने लोक को चले गए।

प्रेम की परीक्षा

भर्तृहरि अपनी रानी पिंगला को अत्यधिक स्नेह करते थे। इसी प्रकार पिंगला भी पति को अपने प्राणों से भी अधिक प्यार करती थी।

एक दिन भर्तृहरि अपने अंतःपुर में पिंगला के पास बैठे हुए थे। अनेक प्रकार की बातें चल रही थी। सहसा भर्तृहरि ने पूछा– "पिंगला यदि मैं मर जाऊं तो तुम क्या करोगी?"

पिंगला ने भर्तृहरि के मुंह पर अपना हाथ रखते हुए कहा– "प्राणनाथ! ऐसी बुरी बात आप अपने मुंह से क्यों निकाल रहे हैं? भगवान आपको अजर-अमर बनाए रहें।"

भर्तृहरि ने फिर कहा– "नहीं पिंगला! तुम मुझे यह बता ही दो कि मेरे मरने के बाद तुम क्या करोगी?"

पिंगला ने अत्यंत दुःखी होते हुए उत्तर दिया– "आपके मरने के बाद मैं सती हो जाऊंगी।"

उसके बाद भर्तृहरि ने इस संबंध में फिर और कोई चर्चा नहीं की। वे इधर–उधर की बातें करके अपना मन बहलाते रहे।

एक बार विक्रम, उनकी माता सत्यवती तथा प्रधानमंत्री सुमंतक मिथिला नरेश से भेंट करने के लिए गए हुए थे। अवंतिकापुरी में भर्तृहरि उन दिनों अकेले ही रहते थे। वे शिकार खेलने के लिए वन में गए। सहसा उनके मन में यह विचार उठा कि आज पिंगला के प्रेम की परीक्षा लेनी चाहिए।

प्रेम की परीक्षा लेने का एक उपाय उन्होंने स्थिर कर लिया, फिर वे अपने एक विश्वस्त सेवक को अपना फेंटा–कटार देते हुए बोले– "तुम इन वस्तुओं को लेकर राजभवन में मेरी पटरानी पिंगला के पास चले जाओ। वहां जाकर उनसे यह कह देना कि जंगल में शिकार के समय सिंह द्वारा खा लिये जाने के कारण मेरी (भर्तृहरि की) मृत्यु हो गई है।"

सेवक भर्तृहरि की बात के मर्म को नहीं समझ सका। वह स्वामी की आज्ञा का पालन करने के लिए वहां से चलकर सीधा रनिवास में जा पहुंचा। वहां पिंगला के हाथों में भर्तृहरि की फेंटा–कटार सौंपकर चुपचाप खड़ा हो गया।

रानी पिंगला इस समाचार को सुनकर स्तब्ध रह गई। संपूर्ण रनिवास में कोहराम मच गया। सब लोग रोने–पीटने लगे। पिंगला कुछ देर तो अचेत पड़ी रही। फिर होश में आने पर उसने कहा– "मैं अपने पति की फेंटा–कटार को हाथ में लेकर सती होऊंगी।

नगर के लोगों ने पिंगला के पास पहुंचकर समझाने–बुझाने का बहुत प्रयत्न किया, परंतु पिंगला ने अपने निश्चय को किसी प्रकार भी नहीं बदला। अंततः चिता प्रज्वलित की गई और पिंगला भर्तृहरि की फेंटा–कटार को अपने हृदय से लगाए हुए उसमें जा बैठी। थोड़ी ही देर में उसका जीवित जाग्रत सुंदर शरीर जलकर भस्म हो गया।

भर्तृहरि का श्मशानवास

भर्तृहरि को जंगल में सिंह ने मार डाला तथा रानी पिंगला सती हो गई– यह समाचार मिथिलापुरी भेज दिया गया। उसे सुनते ही विक्रम, सत्यवती और सुमंतक शोक-सागर में डूब गए तथा उसी क्षण अवंतिकापुरी को लौट पड़े।

उधर शिकार खेलने के बाद भर्तृहरि भी अवंतिकापुरी को लौट आए। वहां आकर जब उन्हें यह पता चला कि उनके द्वारा किए गए मजाक को सत्य मानकर पिंगला ने प्राण खो दिए हैं तो वे अत्यंत दु:खी हुए।

'पिंगला का प्रेम सच्चा था। हाय, मैंने उसके साथ यह क्या किया।' यह विचार करके भर्तृहरि खूब जोर-जोर से रो पड़े। तत्पश्चात् वे 'हाय पिंगला, हाय पिंगला' कहते हुए श्मशान भूमि में जा पहुंचे और जिस स्थान पर पिंगला की चिता पड़ी हुई थी, वहां बैठकर उच्च स्वर में 'हाय पिंगला, हाय पिंगला' चिल्लाने लगे।

राजमाता सत्यवती, राज विक्रम तथा प्रधानमंत्री सुमंतक सहित सहस्रों व्यक्ति भर्तृहरि को समझाने के लिए श्मशान भूमि में पहुंचे, सबने उनसे राजभवन लौट चलने के लिए कहा, परंतु भर्तृहरि ने किसी की बात नहीं मानी। अंततः निराश होकर सब लोग भर्तृहरि को श्मशान भूमि में ही छोड़कर अपने-अपने घरों को लौट गए।

गोरखनाथ द्वारा भर्तृहरि को दीक्षा

बारह वर्ष तक भर्तृहरि उसी श्मशान भूमि में बैठे हुए 'हाय पिंगला, हाय पिंगला' शब्द का उच्चारण करते रहे। उन्होंने अन्न-जल आदि सब कुछ त्याग दिया। केवल वायु का आहार कररते थे। उनका शरीर सूखकर ढांचा मात्र रह गया।

अपने शिष्य की यह दशा देखकर दत्तात्रेयजी को बहुत दया आई। तब उन्होंने गोरखनाथ को बुलाकर यह आज्ञा दी कि तुम अवंतिकापुरी जाकर भर्तृहरि को ज्ञानोपदेश कर उसका मोह दूर कर दो तथा उसे नाथ-पंथ की दीक्षा देकर अपना शिष्य बनाओ।

दत्तात्रेयजी की आज्ञा पाकर गोरखनाथ अवंतिकापुरी में जा पहुंचे। वहां उन्होंने भर्तृहरि का मोह दूर करने के लिए यह उपाय किया कि वे भर्तृहरि से थोड़ी दूर एक स्थान पर बैठकर, मिट्टी के घड़े को फोड़कर 'हाय घड़ा, हाय घड़ा' कहकर खूब जोर-जोर से रोने लगे।

उनके रोने की आवाज सुनकर भर्तृहरि अपना दुःख तो भूल गए और उनके पास जाकर पूछने लगे– "हे महाराज! आप यहां बैठे हुए क्यों रो रहे हैं?"

गोरखनाथ ने उत्तर दिया– "मेरा घड़ा फूट गया है, मैं उसी के लिए रो रहा हूं।"

भर्तृहरि यह सुनकर हंस पड़े। बोले– "घड़े के लिए इतना शोक करने की क्या आवश्यकता है, वह तो दूसरा भी मिल जाएगा।"

गोरखनाथ ने कहा– "हे राजन्! अपनी प्रिय वस्तु का वियोग सबको अखरता है। जिस प्रकार तुम अपनी रानी पिंगला के लिए रो रहे हो, उसी प्रकार मैं अपने इस घड़े के लिए रो रहा हूं। यदि तुम यह कहो कि घड़ा दूसरा भी मिल सकता है तो मैं तुमसे यह कहूंगा कि पिंगला भी हजारों मिल सकती हैं। ऐसी स्थिति में तुम पिंगला के लिए पिछले बारह वर्ष से शोक क्यों कर रहे हो?"

भर्तृहरि बोले– "घड़ा तो बाजार से खरीदा जा सकता है, परंतु मेरी पिंगला कहां मिल सकती है?"

यह सुनकर गोरखनाथ ने अपनी विद्या के प्रभाव से उसी स्थान पर हजारों पिंगलाओं को प्रकट कर दिया। भर्तृहरि उस आश्चर्य को देखकर गोरखनाथ के चरणों में गिर पड़े। उस समय गोरखनाथ ने भर्तृहरि से यह कहा– "हे राजन्! यदि तू एक पिंगला को ही चाहता हो, तब तो इनमें से एक पिंगला को लेकर तू अपने घर को लौट जा और वहां जाकर सांसारिक सुखों का उपभोग कर, परंतु यदि तू ऐसी हजारों पिंगलाएं स्वयं उत्पन्न कर देने की शक्ति को प्राप्त करना चाहता है तो सांसारिक माया-मोह को त्यागकर भगवान का भजन कर। उससे तू जन्म-मरण के चक्कर से छूट जाएगा और तेरी मुक्ति हो जाएगी।"

गोरखनाथ द्वारा उत्पन्न की गई हजारों पिंगलाओं को देखकर तथा उनके उपदेश को सुनकर भर्तृहरि के ज्ञान-नेत्र खुल गए। उन्होंने गोरखनाथ

के चरणों पर अपना मस्तक रखते हुए कहा– "हे प्रभु! अब मैं सांसारिक माया-मोह से छूटकर अपने जीवन को सफल बनाना चाहता हूं आप कृपा करके ज्ञान का मार्ग दिखाइए।"

यह सुनकर गोरखनाथ ने भर्तृहरि को नाथ-दीक्षा देकर अपना शिष्य बनाया और उनका नाम 'भर्तृहरिनाथ' रखा। जिस समय गोरखनाथ ने भर्तृहरिनाथ को मंत्रोपदेश किया, उस समय उन्हें संपूर्ण जगत् ब्रह्ममय भासित होने लगा और संपूर्ण अज्ञान सदा के लिए नष्ट हो गया।

वहां से गोरखनाथ भर्तृहरि को साथ लेकर अवंतिकापुरी गए तथा राजा विक्रम, राजमाता सत्यवती एवं प्रधानमंत्री सुमंतक से भर्तृहरि को विदा दिलवाकर गिरिनार पर्वत पर चले गए। इस कथा का पिछले एक अध्याय में विस्तारपूर्वक वर्णन किया जा चुका है।

भर्तृहरि की तपस्या

गिरिनार पर्वत पर पहुंचकर गोरखनाथ ने भर्तृहरि को भगवान दत्तात्रेय के दर्शन कराए। भर्तृहरि ने अपने गुरु दत्तात्रेयजी ने चरणों में गिरकर साष्टांग दंडवत् किया। दत्तात्रेयजी ने उनके मस्तक पर हाथ रखकर आशीर्वाद दिया।

तत्पश्चात् दत्तात्रेयजी ने भर्तृहरिनाथ को अपने पहले किए गए संकल्प का स्मरण दिलाए हुए बारह वर्ष तक तप करने का आदेश दिया। दत्तात्रेयजी की आज्ञानुसार भर्तृहरि ने बदरिकाश्रम में जाकर घोर तपस्या की। उस अवधि में गोरखनाथ जी विभिन्न तीर्थों की यात्रा करते रहे।

तपस्या की अवधि पूर्ण हो जाने पर भर्तृहरि पुनः दत्तात्रेयजी के पास लौट आए। तब दत्तात्रेयजी ने उन्हें आशीर्वाद देकर सब प्रकार की शास्त्र-विद्या, अस्त्र-विद्या, शस्त्र-विद्या एवं साबरी विद्या का पूर्ण अभ्यास कराया। फिर उनकी विद्या को सफल बनाने हेतु उन्हें नागअश्वत्थ वृक्ष के देवताओं तथा अन्य देवताओं से आशीर्वाद दिलवाया।

इसके बाद दत्तात्रेयजी भर्तृहरि को भगवान शंकर के पास ले गए। शिवजी ने उन्हें आशीर्वाद देते हुए तीर्थयात्रा करने का आदेश दिया। शिवजी की आज्ञा को शिरोधार्य कर भर्तृहरि वहां से तीर्थाटन के लिए चल दिए।

शूली पर समाधि

एक बार भर्तृहरि गंगातट पर एक निर्जन स्थान में समाधि लगाए हुए बैठे थे। उसी समय वहां के राजा के यहां से रत्नाभूषण चुराकर भागने वाला एक चोर वहां आ पहुंचा। उसके पीछे-पीछे राजा के सिपाही चले आ रहे थे।

चोर ने पकड़े जाने के भय से रत्नहार को समाधिस्थ भर्तृहरि के गले में डाल दिया और स्वयं वहां से भाग गया।

कुछ देर बाद जब राजकर्मचारी उस स्थान पर पहुंचे तो भर्तृहरि के गले में पड़े हुए रत्नहार को देखकर उन्होंने समझा कि इसी व्यक्ति ने हार को चुराया है और यहां आकर पकड़े जाने के भय से बचने के लिए झूठ-मूठ को समाधि लगाकर बैठ गया है।

अस्तु वे लोग भर्तृहरिनाथ को पकड़कर राजा के पास ले गए।

भर्तृहरिनाथ ने राजा से कहा– "हे राजन्! मैंने आपका हार नहीं चुराया है। मैं तो समाधि लगाए बैठा था कि उसी समय मेरे गले में कोई आदमी यह हार डाल गया। इससे अधिक मैं और कुछ नहीं जानता हूं।"

भर्तृहरिनाथ की बात पर राजा ने विश्वास नहीं किया। उसने भर्तृहरिनाथ को शूली पर चढ़ाने की आज्ञा दे दी।

राजाज्ञा के अनुसार नगर के बीच चौराहे पर शूली गाड़कर उसके ऊपर भर्तृहरिनाथ को बैठा दिया गया। भर्तृहरिनाथ ठहरे सिद्ध योगी। उन्हें शूली आदि की क्या चिंता थी। वे पालथी मारकर शूली की नोक पर बैठ गए। वहीं पर उन्होंने समाधि लगा ली।

योग के बल से भर्तृहरिनाथ शूली की नोंक के ऊपर समाधिस्थ बैठे रहे। इस प्रकार बैठे हुए जब उन्हें तीन दिन व्यतीत हो गए, तब राजकर्मचारियों ने जाकर राजा को संपूर्ण विवरण सुनाया।

उसे सुनकर राजा को अनुभव हुआ कि जिस व्यक्ति को मैंने शूली पर चढ़ाने का दंड दिया था वह तो यथार्थ में सच्चा योगी है। ऐसे महात्मा

पुरुष को दंड देकर मैंने बहुत बड़ा पाप कर डाला है। जाने अब मेरी क्या दशा होगी।

इस प्रकार विचार करके राजा अपने मन में अत्यंत पछताने लगा तथा रोता-कलपता हुआ उस स्थान पर गया, जहां शूली की नोक के ऊपर भर्तृहरिनाथ आसन जमाए हुए बैठे थे।

राजा ने उन्हें शूली से उतरवाकर अपने अपराध की क्षमा मांगी तथा उनके चरणों में अपना मस्तक रखकर आशीर्वाद देने की प्रार्थना की।

उदारमना भर्तृहरिनाथ ने राजा को क्षमा कर दिया। वहां से वे अन्य स्थानों की यात्रा करने के लिए चले गए।

भर्तृहरिनाथ पाताल में

इंद्र ने जब सोमयज्ञ किया था, उस समय भर्तृहरिनाथ गोमती तीर्थ में भ्रमण कर रहे थे। वहीं से वे विमान में बैठकर अमरावती गए। यज्ञ की समाप्ति पर वहां से लौटकर वे सीधे दत्तात्रेयजी के पास गए। उनसे आशीर्वाद लेकर भगवान शिव के दर्शन करने बदरिकाश्रम चले गए।

शिवजी से आशीर्वाद लेने के उपरांत भर्तृहरिनाथ ने पाताल में जाकर निवास किया। भगवान दत्तात्रेयजी की कृपा से उन्होंने अमर पद प्राप्त किया था, अतः वे अभी तक अमर बने हुए हैं।

सिद्ध साहित्य में भर्तृहरिनाथ को 'विचारनाथ' के नाम से स्मरण किया गया है तथा राजा गोपीचंद की माता मैनावती को भर्तृहरिनाथ की बहन बताया गया है।

गिरिनार पर्वत पर जहां भर्तृहरिनाथ ने तप किया था, एक गुफा भर्तृहरि गुफा के नाम से प्रसिद्ध है। आबू पर्वत पर अचलेश्वर के उन्नत शिखर के ऊपर भी भर्तृहरिनाथ की गुफा बनी हुई है।

नवनाथ चरित्र सागर

भाग-7
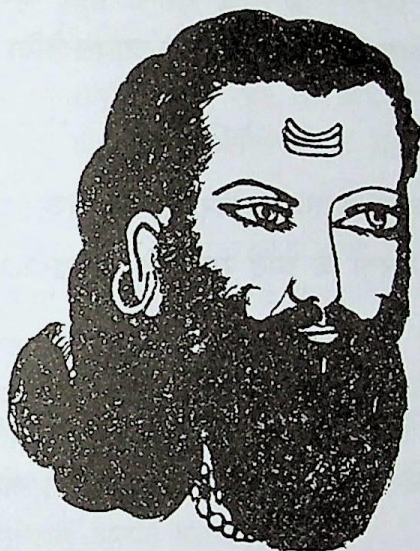
श्री गहिनीनाथ-चरित्र

(करभाजन नारायण के अवतार)

"सुणि गुणवंता सुणि बुधिवंता अनंत सिधांकी बांणीं।
सीस नवावत सुतगुरु मिलिया जागत रेणि बिहांणीं॥"

☆☆☆

"बजरिकरंता अमरीराखे, अमरिकरंता बाई।
भोग करंता जे ब्यंद राखे, ते गोरख का भाई॥"

☆☆☆

"सास उसास वायु कौं मछिबा, रोकि लेउ नव द्वारं।
छठे छमासे काया पलटिबा, तब उनमनि जोग अपारं॥"

☆☆☆

"गोरख बोलै, सुणहु रे अवधू, पंचौंपसर निवारी।
अपनी आतमा आप विचारो, सोवौ पांव पसारी॥"

पूर्व-कथा

मत्स्येंद्रनाथ तथा गोरखनाथ वैसे तो गुरु-शिष्य थे, परंतु उनमें परस्पर पिता-पुत्र की भांति प्रेम था। ये दोनों कभी तो अलग-अलग तीर्थाटन करने के लिए निकल पड़ते थे और कभी साथ रहकर यात्रा किया करते थे। मत्स्येंद्रनाथ ने गोरखनाथ को जो-जो विद्याएं तथा मंत्रादि सिखाए थे, उनकी गोरखनाथ से पुनरावृत्ति कराते रहते थे। यदि गोरखनाथ को कभी कोई कठिनाई उपस्थित होती तो मत्स्येंद्रनाथ उन्हें सहायता देकर दूर कर दिया करते थे।

एक बार दोनों गुरु-शिष्य साथ रहकर यात्रा कर रहे थे। विभिन्न स्थानों का भ्रमण करते हुए एक समय वे कनकगिरि नामक गांव में जा पहुंचे। मत्स्येंद्रनाथजी ने गोरखनाथ को मृतसंजीवनी विद्या सिखाई थी। उन दिनों गोरखनाथजी संजीवनी विद्या का अभ्यास, चिंतन एवं मनन कर रहे थे। वे हर समय संजीवनी मंत्रों की पुनरावृत्ति करते रहते और उसी के ध्यान में डूबे रहते थे। गोरखनाथ जैसे अत्यंत योग्य तथा बुद्धिमान शिष्य को पाकर मत्स्येंद्रनाथजी अत्यंत प्रसन्न थे।

गहिनीनाथ का जन्म

एक दिन मत्स्येंद्रनाथजी भिक्षा मांगने के लिए गांव में गए हुए थे और गोरखनाथ गांव के बाहर अपने आश्रम में बैठे हुए संजीवनी विद्या का अभ्यास कर रहे थे। उसी समय गांव के कुछ लड़के खेलते हुए उनके पास आ पहुंचे। वे अपने हाथ में गीली मिट्टी लिए हुए थे और उससे खिलौने बनाना चाह रहे थे।

वे बच्चे गोरखनाथजी के पास गए और उनसे कहने लगे– "बाबा, इस मिट्टी से हमारे लिए बैलगाड़ी बना दीजिए।"

गोरखनाथ के चिंतन में विघ्न पड़ा। उन्होंने बच्चों से कहा– "मुझे गाड़ी बनाना नहीं आता।"

बच्चे यह सुनकर उदास हो गए। फिर वे कुछ दूर बैठकर गीली मिट्टी से गाड़ी बनाने की कोशिश करने लगे। कुछ देर बाद गाड़ी तो जैसे-तैसे बनकर तैयार हो गई, परंतु अब उन्हें गाड़ीवान की आवश्यकता अनुभव हुई। गाड़ीवान उनके बनाए न बना। तब वे फिर गोरखनाथ के पास गए और बड़ी विनम्रता से बोले– "बाबा, गाड़ी तो हमने बना ली है, परंतु गाड़ीवान बनाना हमें नहीं आता, सो अब आप हम लोगों पर दया करके गाड़ीवान बना दीजिए।"

बच्चों की बात सुनकर गोरखनाथ को दया आ गई। उन्होंने गिली मिट्टी अपने हाथ में लेकर गाड़ीवान बना शुरू कर दिया। जिस समय गोरखनाथ मिट्टी का पुतला बना रहे थे, उस समय वे मन–ही–मन संजीवन मंत्रों का भी उच्चारण करते जा रहे थे। उसका परिणाम यह हुआ कि जब वह पुतला बनकर तैयार हो गया तो उसमें प्राण भी प्रविष्ट हो गए। फलतः मिट्टी का वह पुतला जीवित–जाग्रत शिशु बन गया।

यह देखकर अन्य बालक अत्यंत भयभीत हुए। उन्होंने समझा कि मिट्टी के पुतले में कोई भूत घुस गया है। इसलिए वे 'भूत–भूत' कहते हुए वहां से भाग खड़े हुए। उन्होंने गांव में पहुंचकर सब लोगों से चर्चा की कि गांव के बाहर जो एक बाबा ठहरा हुआ है, उसने गीली मिट्टी से भूत बना दिया है।

सारे गांव में यह खबर फैल गई। मत्स्येंद्रनाथजी, जो कि उस समय गांव में ही भिक्षा मांग रहे थे, ने भी उस समाचार को सुना। तब वे भिक्षा मांगना छोड़कर आश्रम की ओर लौट पड़े। वहां जाकर उन्होंने देखा कि एक मानव-शिशु पड़ा-पड़ा रो रहा है।

मत्स्येंद्रनाथजी को लौटा हुआ देखकर गोरखनाथ ने कहा– "हे गुरुजी! गांव के बालकों के कहने पर मैं मिट्टी का पुतला बना रहा था, परंतु जैसे ही पुतला बनकर तैयार हुआ, वैसे ही उसने जीवित मानव–शिशु का आकार ग्रहण कर लिया। इसका क्या कारण है, उसे मैं नहीं समझ पाया हूं।"

तब मत्स्येंद्रनाथजी ने पूछा– "क्या तुम इस पुतले को बनाते समय संजीवन मंत्रों का चिंतन-मनन अथवा उच्चारण कर रहे थे?"

गोरखनाथ ने उत्तर दिया– "हां, उस समय मैं मन-ही-मन संजीवन मंत्रों का पाठ कर रहा था।"

मत्स्येंद्रनाथजी बोले– "अब मंत्रों के प्रभाव से ही इस पुतले के शरीर में करभाजन नारायण ने प्रवेश किया है और इसने बालक का स्वरूप ग्रहण कर लिया है। संजीवन-मंत्रों का पाठ करते समय जिस किसी वस्तु को बनाया जाता है, उसमें स्वयमेव प्राण-प्रतिष्ठा हो जाती है।"

यह सुनकर गोरखनाथ की शंका दूर हो गई।

उधर गांव में पहुंचकर लड़कों ने 'भूत, भूत' का जो शोर मचाया था, उसे सुनकर गांव के बहुत से लोग नाथयोगियों के आश्रम में उस मिट्टी द्वारा निमित्त विचित्र बालक को देखने के लिए आ पहुंचे।

उस सुंदर बालक को देखकर सभी को आश्चर्य और प्रसन्नता हुई। उन्होंने मत्स्येंद्रनाथजी से निवेदन किया कि वे उस बालक को गांव में ही छोड़ जाएं।

कनकगिरि गांव में मधुनामा नामक एक धर्मात्मा ब्राह्मण रहता था। वह विद्वान तथा सद्‌गुणी था। उसकी गंगा नामक पत्नी भी पतिपरायण, धर्मव्रता एवं गुणवती थी। पति-पत्नी के सदाचरण की प्रशंसा दूर-दूर तक फैली हुई थी। उनकी कोई संतान भी नहीं थी। गांव के लोगों ने वह दिव्य बालक उसी ब्राह्मण को देने के लिए निवेदन किया।

मत्स्येंद्रनाथजी ने गांववालों की प्रार्थना स्वीकार कर वह बालक मधुनामा ब्राह्मण को सौंप दिया और कहा– "हे ब्राह्मण! यह बालक दिव्य शक्तिसंपन्न अवतारी पुरुष है। तुम इसका नाम 'गहिनी' रखना। भगवान शंकर स्वयं निवृत्तिनाथ के रूप में अवतार लेकर इस बालक को दीक्षा देकर अपना शिष्य बनाएंगे। उससे सब लोगों का कल्याण होगा। इसकी कीर्ति संपूर्ण संसार में फैलेगी। तुम बड़े भाग्यशाली हो, जो तुम्हें इस बालक की प्राप्ति हुई। तुम इसका पालन-पोषण खूब अच्छी तरह करना।"

मधुनामा ने मत्स्येंद्रनाथजी की बात को स्वीकार कर लिया। तत्पश्चात् मधुनामा की पत्नी गंगा ने जैसे ही उस बालक को अपनी गोद में उठाया, वैसे ही मत्स्येंद्रनाथ ने मोहनास्त्र अभिमंत्रित भस्म गंगा के मस्तक पर डाली। उस भस्म के प्रभाव से गंगा के हृदय में उस बालक के प्रति मातृभाव का उदय हो गया तथा उसी समय उसके स्तनों से दूध की धार भी बह निकली। यह देखकर सब लोगों को और भी अधिक आश्चर्य हुआ।

मधुनामा तथा उसकी पत्नी गंगा उस दिव्य बालक को लेकर, मत्स्येंद्रनाथ तथा गोरखनाथजी से आज्ञा प्राप्त कर गांव को लौट गए। गांव के अन्य व्यक्ति भी उनके साथ चले गए।

सब लोगों के चले जाने पर मत्स्येंद्रनाथजी भी गोरखनाथ को साथ लेकर वहां से चल दिए तथा बदरिकाश्रम पर जा पहुंचे।

गर्भाद्रि पर गहिनीनाथ

त्रियाराज्य से लौटने के बाद मत्स्येंद्रनाथजी जब गर्भाद्रि पर गए थे, उस समय उनकी झोली में त्रियाराज्य की रानी मैनाकिनी द्वारा रखी हुई सोने की एक ईंट विद्यमान थी। उसकी माया में पड़कर मत्स्येंद्रनाथजी लुटेरों के भय से भयभीत हो रहे थे। तब गोरखनाथजी ने उस ईंट के रहस्य को जानकर उसे कुएं में फेंक दिया। जब मत्स्येंद्रनाथजी ने यह कहा कि मैं इस सोने की ईंट द्वारा प्राप्त धन से साधु-संतों का भंडारा करना चाहता था, उस समय गोरखनाथजी के सिद्धि योग द्वारा गर्भाद्रि पर्वत पर लघुशंका करके आधे पर्वत को सोने का बना दिया और मत्स्येंद्रनाथ से कहा कि अब आप इस स्वर्णराशि द्वारा चाहे जितना बड़ा भंडारा कीजिए। इस कथा का विस्तृत वर्णन पिछले अध्याय में किया जा चुका है।

गर्भगिरि पर मत्स्येंद्रनाथजी ने बड़ी धूमधाम से समारोह किया। गोरखनाथजी ने चित्रसेन गंधर्व को बुलाकर उसे यह आज्ञा दी कि तुम सब गंधर्वों को विभिन्न दिशाओं में भेजकर तीनों लोकों में जितने भी ऋषि, मुनि, देवता, साधु-संन्यासी, योगी-यति आदि हैं, उन सबको इस समारोह का निमंत्रण पहुंचवा दो तथा यहां पर बुलवा लाओ।

गोरखनाथजी की आज्ञानुसार चित्रसेन ने सब लोगों के पास निमंत्रण भिजवा दिए और वे सब लोग मत्स्येंद्रनाथजी के उत्सव में सम्मिलित होने के लिए गर्भाद्रि पर पहुंच गए।

मत्स्येंद्रनाथजी ने कनकगिरि गांव से मधुनामा ब्राह्मण को भी उत्सव में सम्मिलिन होने के लिए निमंत्रण भिजवाया था। वह भी गहिनी को साथ लेकर आ पहुंचा। उस समय गहिनी की आयु सात वर्ष थी।

मत्स्येंद्रनाथजी ने गहिनी को अपनी गोद में बैठाया। शंकर आदि सब देवताओं के आ जाने पर मत्स्येंद्रनाथजी ने उन्हें गहिनी का परिचय देते हुए कहा– "यह बालक करभाजन नारायण का अवतार है। इसका प्राकट्य गोरखनाथ के द्वारा हुआ है। आप सब लोग इसे अपना आशीर्वाद प्रदान करने की कृपा कीजिए।"

यह सुनकर सब देवताओं ने गहिनी को आशीर्वाद दिया। उस समय शिवजी ने मत्स्येंद्रनाथजी को संबोधित करते हुए यह कहा– "हे मत्स्येंद्रनाथ! कुछ समय बाद मैं निवृत्तिनाथ के रूप में अवतार लूंगा, उस समय गहिनीनाथ को अपना शिष्य बनाऊंगा और इस पर अनुग्रह करूंगा।"

शिवजी की बात सुनकर सब लोगों को अत्यंत प्रसन्नता हुई।

मत्स्येंद्रनाथजी का यह समारोह पूरे एक मास तक चला। उस बीच सब लोगों का एक–दूसरे से परिचय भी हो गया। फिर गोरखनाथ ने कुबेर को आज्ञा देकर समारोह में सम्मिलित होने वाले सब लोगों को यथोचित दक्षिणा भेंट कराई। वस्त्र, आभूषण, धन आदि ढेरों वस्तुओं की भेंट पाकर समारोह में सम्मिलित होने वाले सभी लोग अत्यंत संतुष्ट हुए।

समारोह समाप्त हो जाने पर मत्स्येंद्रनाथ ने गहिनी तथा मधुनामा ब्राह्मण को वहीं रोक लिया। एक वर्ष तक मत्स्येंद्रनाथजी ने गहिनी को संपूर्ण विद्याओं का अभ्यास कराया, तदुपरांत उसे नाथ–पंथ की दीक्षा देकर गहिनीनाथ बनाया।

जब गहिनीनाथ सब विद्याओं में पारगंत हो गए तथा नाथ बन गए, तब मत्स्येंद्रनाथ ने उन्हें मधुनामा ब्राह्मण के साथ कनकगिरि गांव में वापस भेज दिया।

गहिनीनाथ मधुनामा ब्राह्मण के घर में कई वर्ष तक रहे। तत्पश्चात् उन्होंने त्रयंबक नामक स्थान के समीप ब्रह्मगिरि पर जाकर घोर तपस्या की। भगवान शंकर ने जब निवृत्तिनाथ के रूप में अवतार लिया, तब उन्होंने गहिनीनाथ को मंत्रोपदेश किया था, जिस कारण उनका संपूर्ण मोह तथा अज्ञान नष्ट हो गया था। इस कथा का विस्तृत वर्णन निवृत्तिनाथ-चरित्र नामक अगले अध्याय में किया जाएगा।

इंद्र ने जब सोमयाग किया था, उस समय अन्य नाथयोगियों के साथ गहिनीनाथजी भी उस यज्ञ में भाग लेने के लिए पहुंचे थे।

शक संवत् एक हजार में गहिनीनाथ ने समाधि ली। उसके बाद लोग उन्हें 'गौरीपीर' के रूप में पूजने लगे। गहिनीनाथ 'गैनीनाथ' तथा 'गैवीनाथ' के नाम से भी प्रसिद्ध हैं।

नवनाथ चरित्र सागर

भाग-8
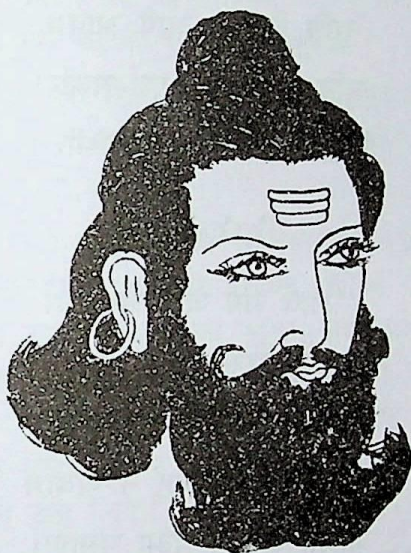
श्री रेवणानाथ-चरित्र

(चमस नारायण के अवतार)

सुनि ज माई सुनि ज बाप।
सुनि निरंजन आपै आप॥
सुनि के पहचै भया सथीर।
निहचल जोगी गहर गंभीर॥

☆☆☆

"आवै संगै जाइ अकेला।
ताथैं गोरख राम रमेला॥
काया हंस संगि ह्वै आवा।
जाता जोगी किनहुं न पावा॥
जीवत जग मैं मुआ मसाण।
प्राण पुरिसकत किया पयाण॥
जामण मरण बहुरि वियोगी।
ताथैं गोरख भैला योगी।"

रेवणनाथ की उत्पत्ति

सरस्वती के रूप पर मोहित हो जाने पर जब ब्रह्माजी का वीर्य स्खलित हुआ था, उस समय अंतरिक्ष में जाकर उसके हजारों भाग हो गए थे। वे भाग जहां-जहां गिरे, वहीं हजारों ऋषि उत्पन्न हो गए। उसी का एक भाग रेवा नदी में भी जा गिरा था, उसमें चमस नारायण ने प्रवेश किया और उससे एक बालक की उत्पत्ति हुई।

वह बालक रेवा नदी के तट पर पड़ा हुआ रुदन कर रहा था। नदी से थोड़ी दूर पर 'बुंधुल' नामक एक गांव था। उसमें 'सहनसारुज्य' नामक एक किसान रहा करता था।

नित्य की भांति एक दिन जब सहनसारुज्य नदीतट पर पानी भरने के लिए पहुंचा तो उसने वहां पर पूर्वोक्त बालक के रोने की आवाज सुनी। सहनसारुज्य उस स्थान पर जा पहुंचा, जहां बालक पड़ा हुआ रुदन कर रहा था। उस बालक को ऐसी निरीह स्थिति में पड़े हुए देखकर सहनसारुज्य को दया आ गई। उसने चारों ओर दृष्टि दौड़ाकर देखा, परंतु जब कोई भी स्त्री-पुरुष दूर-दूर तक दिखाई नहीं दिया, तब उसने बालक को अपनी गोद में उठा लिया।

सहनसारुज्य की गोद में पहुंचते ही बालक ने रोना बंद कर दिया। तब वह उसे लेकर अपने घर लौट आया और बालक को अपनी पत्नी की गोद में सौंप दिया। सहनसारुज्य के घर में एक बालक पहले से ही था। उस बालक के साथ खेलने के लिए यह एक दूसरा बालक भगवान ने और भेज दिया-यह सोचकर सहनसारुज्य की पत्नी अत्यंत प्रसन्न हुई। वह उस बालक को भी अपना बालक मानकर, दोनों का पालन-पोषण करने लगी। चूंकि वह बालक रेवा नदी के तट पर प्राप्त हुआ था, इसलिए पति-पत्नी ने उसका नाम 'रेवण' रख दिया।

रेवण जब बारह वर्ष का हुआ तो वह अपने पालक पिता के साथ खेत पर काम करने के लिए जाने लगा। वह प्रतिदिन सूर्योदय से पूर्व ही

उठ बैठता, घर का काम-काज करता और उसके बाद खेत पर जाकर वहां के सब कामों में हाथ बटाता था।

रेवण सहनसारुज्य की पत्नी के गर्भ से उत्पन्न नहीं हुआ है और सहनसारुज्य उसे रेवा नदी के तट से उठाकर अपने घर ले आया था, यह बात गांव के सब लोगों को मालूम थी।

रेवण की कार्य-कुशलता, परिश्रम, स्वरूप, शिष्टाचार तथा बुद्धिमता को देखकर गांव के सब लोग उसकी प्रशंसा किया करते थे तथा आपस में चर्चा करते थे कि सहनसारुज्य के बड़े भाग्य हैं, जो उसे ऐसे दैवी बालक की प्राप्ति हुई है।

उधर जब रेवण बड़ा हुआ और गांव वालों के मुंह से उसने यह बात सुनी कि सहनसारुज्य उसे रेवा नदी के तट से अनाथ बालक के रूप में उठाकर घर ले आया था, तब उसके मन में यह विचार उठने लगे कि मैं कौन हूं तथा मेरे मात-पिता कौन हैं– इस बात को मालूम करना चाहिए, परंतु वह बेचारा किससे पूछता और कौन उसे इस बात का उत्तर दे सकता था?

दत्तात्रेय से भेंट

एक बार अर्द्धरात्रि के समय आकाश में चंद्रमा छिटका हुआ था। रेवण कुछ देर तक उसकी ओर टकटकी लगाए देखता रहा, फिर उससे कहने लगा– ''हे चंद्रमा! तुम संसार के साक्षी हो। सबके विषय में सब कुछ जानते हो। मुझे यह बताने की कृपा करो कि मैं कौन हूं और मेरे माता-पिता कहां हैं?''

जिस समय रेवण चंद्रमा से इस प्रकार बातें कह रहा था, उसी समय संयोगवश दत्तात्रेयजी आकाश-मार्ग में होकर कहीं जा रहे थे। उनके कानों में रेवण के शब्द पड़े तो वे रेवण के पास जा पहुंचे।

रेवण ने देखा– कटि में व्याघ्रचर्म लपेटे, हाथ में त्रिशूल लिये, तीन मस्तकों वाला कोई दिव्य पुरुष उसके सामने खड़ा है। रेवण ने उन्हें साष्टागं नमस्कार किया। तब दत्तात्रेय ने आशीर्वाद देते हुए कहा– ''हे

पुत्र! तुम ब्रह्मा के पुत्र हो। मैं तुम्हारे मन में ज्ञान तथा भक्ति का संचार करूंगा, जिससे तुम्हें वैराग्य उत्पन्न हो।''

यह कहकर दत्तात्रेयजी ने रेवण को एक सिद्ध-मंत्र दिया।

सिद्धियां आठ प्रकार की होती हैं–

(1)अणिमा, (2) महिमा, (3) लघिमा, (4) गरिमा, (5) प्राप्ति, (6) प्राकाम्य, (7) ईशित्व और(8) वशित्व। इनमें से दत्तात्रेयजी ने रेवण को 'महिमा' सिद्धि का मंत्र प्रदान किया।

मंत्रोपदेश करने के बाद दत्तात्रेयजी ने कहा– ''इस मंत्र का पाठ करने के उपरांत तुम जिस वस्तु की कामना करोगे, वह तुम्हारे समक्ष अपने आप उपस्थित हो जाया करेगी।'' इतना कहकर दत्तात्रेयजी वहां से चले गए।

महिमासिद्धि का प्रताप

दत्तात्रेयजी से मंत्र तथा अपनी उत्पत्ति के विषय में जानकारी प्राप्त करके रेवण बहुत प्रसन्न हुआ। उसने उसी समय मंत्र का जाप किया। मंत्र का जाप करते ही वहां महिमासिद्धि आ उपस्थित हुई।

रेवण ने सिद्धि को अपने सामने उपस्थित देखकर पूछा– ''तुम कौन हो?''

''मैं महिमासिद्धि हूं।'' सिद्धि ने उत्तर दिया।

''तुम यहां किसलिए आई हो?''

''आपने मंत्र पढ़कर मेरा स्मरण किया था, इसीलिए।''

''तुम क्या कर सकती हो?''

''आप मुझे जिस वस्तु को लाने की आज्ञा देंगे, मैं उसे तुरंत ही आपके सामने लाकर उपस्थित कर दूंगी।''

यह सुनकर रेवण ने कहा– ''मेरे घर में जितना अनाज भरा हुआ है, उसे सोने के ढेर के रूप में बदल दो।''

''जो आज्ञा!'' कहकर महिमासिद्धि अदृश्य हो गई। रेवण के घर में जितना अनाज भरा हुआ था, वह उसी समय सोने के ढेर के रूप में

बदल गया। यह देखकर रेवण को पूर्ण विश्वास हो गया कि उसे सच्ची सिद्धि प्राप्त हो गई है।

दूसरे दिन रेवण घर में ही पड़ा रहा। खेत पर काम करने के लिए नहीं गया। जब रेवण दोपहर तक भी शय्या छोड़कर नहीं उठा, तब सहनासारुज्य ने उसके पास पहुंचकर कहा– ''आज तू दोपहर हो जाने पर भी खाट पर पड़ा हुआ है। क्या खेत पर काम करने के लिए नहीं चलेगा? यदि काम नहीं किया जाएगा तो फिर खाने के लिए कहां से आएगा।''

यह सुनकर रेवण ने उत्तर दिया– ''हे पिता! अब काम करने की कोई आवश्यकता नहीं है। हमारे घर में ढेर सारा सोना रखा है। भविष्य में भी जब जिस वस्तु की आवश्यकता पड़ेगी, वह आ जाया करेगी।''

सहनासारुज्य ने पूछा– ''सोना कहां है?''

रेवण ने उत्तर दिया– ''जिस जगह अनाज रखा जाता है, वहां जाकर देखिए।''

रेवण के कहे अनुसार सहनसारुज्य ने जाकर देखा तो उसने अनाज के स्थान पर सोने का ढेर पाया। वह आश्चर्यचकित रह गया था।

सहनसारुज्य समझ गया कि रेवा नदी के तट पर मिला हुआ यह बालक कोई सामान्य मनुष्य नहीं है, बल्कि सिद्ध पुरुष है और अब इसने यथार्थ शक्तियों को प्रकट करना आरंभ कर दिया है।

उस दिन से सहनसारुज्य सब काम रेवण के कहे अनुसार करने लगा।

सहनसारुज्य जिस गांव में रहता था, वह बहुत बड़ा था। उस गांव में सब दिशाओं के व्यापारी व्यापर करने के लिए पहुंचा करते थे।

रेवण ने उस गांव में बाहर से आने वाले लोगों को अपने नगर में ठहराया तथा खिलाना-पिलाना आरंभ कर दिया। वह दीन-दरिद्र तथा याचकों की भी वह मुंहमांगी सहायता करने लगा। महिमासिद्धि के प्रभाव से उसे किसी प्रकार की कमी तो थी ही नहीं। जिस वस्तु की इच्छा करता, वह पलभर में उसके सामने आ उपस्थित होती।

रेवण की परोपकारवृत्ति की प्रशंसा चारों ओर फैल गई। प्रतिदिन सैकड़ों दीन-दरिद्र व्यक्ति उसके पास पहुंचने लगे और वह सबको इच्छित वस्तुएं

देकर कृतार्थ करने लगा। उसकी महिमा देखकर लोग उसे 'रेवणसिद्ध' कहकर पुकारने लगे।

मत्स्येंद्रनाथ से भेंट

एक बार यात्रा करते हुए मत्स्येंद्रनाथजी बुंधुल गांव में जा पहुंचे। वहां लोगों ने उनसे कहा कि इस गांव में एक चमत्कारी पुरुष रहता है। वह बड़ा परोपकारी है। वह तुम्हारी प्रत्येक इच्छा को पूरा कर सकता है, अतः तुम उसके पास जाओ।

यह सुनकर मत्स्येंद्रनाथजी ने ध्यान-दृष्टि से विचार किया तो उन्हें तुरंत मालूम हो गया कि रेवणसिद्ध को दत्तात्रेयजी ने महिमा नामक सिद्धि दी है। उसी सिद्धि के प्रताप से वह चमत्कार दिखाया करता है।

फिर मत्स्येंद्रनाथजी ने अपने मन में विचार किया कि मेरे गुरु दत्तात्रेय हैं तथा रेवण को भी उन्होंने मंत्रोपदेश किया है, इस नाते वह मेरा गुरुबंधु हुआ। अब मुझे यह चाहिए कि मैं उसे सिद्धि के चक्कर में से निकालकर सच्चे ज्ञानमार्ग पर ले जाऊं, क्योंकि सिद्धि का चक्कर तो मनुष्य को सांसारिकता में फंसाने वाला है। इससे यथार्थ कल्याण की प्राप्ति नहीं हो पाती।

यह सोचकर मत्स्येंद्रनाथजी ने रेवण को सही मार्ग पर लाने के लिए अपना चमत्कार दिखाने का निश्चय किया।

मत्स्येंद्रनाथजी ने यह चमत्कार प्रदर्शित किया कि वे जिस स्थान पर बैठे हुए थे, वहीं पर सिंह, हिरन, बाज, कबूतर आदि हिंसक तथा अहिंसक पशु-पक्षी एकत्र हो गए। वे सब मत्स्येंद्रनाथजी के चारों ओर एक-दूसरे के आस-पास बैठ गए। आश्चर्य इस बात का था कि बाघ हिरन के तलवे चाट रहा था और बाज कबूतर के साथ हिलामिला था। सबने अपने स्वाभाविक हिंसा तथा शत्रुता के भाव को त्याग दिया था।

मत्स्येंद्रनाथजी के इस चमत्कार की चर्चा पलभर में ही संपूर्ण गांव में फैल गई। रेवणसिद्ध ने भी इस चमत्कार को सुना तो वह देखने के लिए मत्स्येंद्रनाथजी के पास जा पहुंचा। दूर से ही उसने वह दृश्य देखा और चुपचाप अपने घर को लौट आया। घर आकर उसने महिमासिद्धि को बुलाया और कहा– "हे सिद्धि! गांव में ठहरे हुए नाथयोगी के पास जैसा

चमत्कार है, वैसा ही चमत्कार मैं भी प्रदर्शित करना चाहता हूं। इस काम में तुम मेरी सहायता करो और हिंसक तथा अहिंसक पशु-पक्षियों को मेरे पास एक साथ लाकर बैठा दो।''

महिमासिद्धि ने उत्तर दिया- ''वैसा चमत्कार तो ब्रह्मवेत्ता लोग ही कर सकते हैं। मुझमें इतनी सामर्थ्य नहीं है, जो मैं वैसा चमत्कार प्रदर्शित कर सकूं।''

रेवण ने कहा- ''तो तुम मुझे ब्रह्मवेत्ता बना दो।''

महिमासिद्धि बोली- ''किसी को ब्रह्मवेत्ता बनाने की शक्ति मुझमें नहीं है। गुरु दत्तात्रेय ही ऐसा कर सकते हैं। अतः आप उनकी शरण में जाइए और उन्हें प्रसन्न करके ब्रह्मज्ञान प्राप्त कीजिए।''

इतना कहकर महिमासिद्धि चली गई।

गुरुबंधु पर दया

महिमासिद्धि की बात सुनकर रेवणसिद्ध उस स्थान पर जा बैठा, जहां उसे भगवान दत्तात्रेय के दर्शन हुए थे। वहां बैठकर वह दत्तात्रेय के ध्यान में मग्न हो गया। उसने 'गुरु दत्तात्रेय, गुरु दत्तात्रेय' का जप आरंभ किया, परंतु दत्तात्रेयजी प्रकट नहीं हुए।

बहुत देर हो जाने पर भी जब दत्तात्रेय प्रकट नहीं हुए, तब रेवणसिद्ध ने अपने मन में यह संकल्प किया कि या तो मैं दत्तात्रेयजी के दर्शन प्राप्त करूंगा, अन्यथा अपने प्राण त्याग दूंगा।

यह निश्चय करके वह दत्तात्रेयजी के ध्यान में मग्न हो गया। उसके मुंह में 'दत्तगुरु, दत्तगुरु' शब्द निकलने लगा। दत्तात्रेयजी के स्मरण तथा भजन में वह ऐसा लीन हो गया कि उसे अपनी देह की सुध-बुध भी न रही।

रेवणसिद्ध के घर के दरवाजों पर प्रतिदिन सैकड़ों स्त्री-पुरुष अपनी-अपनी कामना लेकर आया करते थे और वह उनकी पूर्ति करता रहता था। दूसरे दिन सवेरा होने पर नित्य की भांति अनेक स्त्री-पुरुष अपनी-अपनी कामनाएं लेकर रेवणसिद्ध के घर आए, परंतु वहां तो स्थिति बदली हुई थी। रेवणसिद्ध को

अपने ध्यान में किसी के आने-जाने की सुधि नहीं थी। लोग निराश हो-होकर लौट गए।

इसी प्रकार तीन दिन व्यतीत हो गए।

रेवणसिद्ध किसी के ध्यान में मग्न होकर बैठा है और उसे अपने शरीर का भी होश नहीं है, यह चर्चा चारों ओर फैल गई। मत्स्येंद्रनाथ के कानों में भी यह समाचार पहुंचा। तब उन्हें अपने गुरुबंधु पर दया आई। वे उसी समय गुरु दत्तात्रेय के पास जा पहुंचे।

दत्तात्रेयजी ने उन्हें अचानक आया हुआ देखकर पूछा- "कहो, मत्स्येंद्रनाथ! आज अचानक कैसे चले आए?"

मत्स्येंद्रनाथ ने उन्हें प्रणाम करते हुए कहा- "हे प्रभो! आपने बुंधुल गांव के एक व्यक्ति को महिमासिद्धि दी थी। इस समय वह आपके दर्शन प्राप्त करने के लिए ध्यानमग्न बैठा है और अपने शरीर का होश भी भूल गया है। अत: मैं आपसे यह प्रार्थना करने के लिए आया हूं कि आप उसकी मनोकामना को पूर्ण करने की कृपा करें।"

यह सुनकर दत्तात्रेयजी मत्स्येंद्रनाथ के साथ यानास्त्र मंत्र जपकर उसी समय रेवणसिद्ध के समीप जा पहुंचे। रेवणसिद्ध उस समय बैठा हुआ था। दत्तात्रेयजी ने उसके मस्तक पर हाथ रखकर आशीर्वाद दिया। जब रेवण सिद्ध ने आंखें खोलकर यह देखा कि भगवान दत्तात्रेयजी उसके सामने खड़े हुए हैं तो वह उनके चरणों में गिर पड़ा और 'हे गुरु! आप मुझ पर कृपा कीजिए' कहता हुआ आंखों से आंसू बहाने लगा।

तब दत्तात्रेयजी ने उससे इस प्रकार कहा- "हे रेवण! तुम्हारी स्थिति को देखकर मत्स्येंद्रनाथ तुम्हारे संबंध में सूचना देने के लिए गए थे। इनके कहने पर ही मैं यहां आया हूं।"

रेवणसिद्ध को जब यह पता चला कि वे चमत्कारी योगी मत्स्येंद्रनाथ हैं, तब उसने मत्स्येंद्रनाथ के चरणों में गिरकर भी साष्टांग दंडवत् किया और यह कहा- "हे प्रभो! आपके चमत्कार को देखकर ही मेरे मन में यह इच्छा उत्पन्न हुई थी कि मैं भी ऐसा चमत्कार करके दिखा सकूं। इसीलिए मैंने गुरु दत्तात्रेयजी का स्मरण किया था। आपने मुझ पर बड़ी कृपा की, जो आप इन्हें यहां ले आए।"

तत्पश्चात् गुरु दत्तात्रेयजी ने रेवणसिद्ध के कान में मंत्र फूंका। उस मंत्रोपदेश के प्राप्त होते ही रेवणसिद्ध को संपूर्ण जगत् ब्रह्ममय भासित होने लगा। उसके हृदय का अज्ञानरूपी समस्त अंधकार दूर हो गया और द्वैतभाव छूटकर अद्वैतभाव की प्राप्ति हुई। तत्पश्चात् दत्तात्रेयजी ने उसके मस्तक पर हाथ रखकर आशीर्वाद दिया और कहा कि अब तुम यहां से हमारे साथ चलो। रेवणसिद्ध घर छोड़कर दत्तात्रेयजी के साथ चल दिया।

रेवणसिद्ध की दीक्षा

मत्स्येंद्रनाथ तथा रेवणसिद्ध को अपने साथ लेकर दत्तात्रेयजी गिरिनार पर्वत पर चले गए। वहां पर उन्होंने रेवणसिद्ध को नाथ-दीक्षा देकर 'रेवणनाथ' बनाया। तदुपरांत उन्होंने उसे संपूर्ण विद्याओं का अभ्यास कराया। कुछ ही समय में रेवणनाथ भी ब्रह्मवेत्ता हो गए। तब हिंसक तथा अहिंसक पशु-पक्षी उनके पास आकर भी उसी तरह समभाव से बैठने लगे।

तत्पश्चात् दत्तात्रेयजी की आज्ञा से मत्स्येंद्रनाथ ने रेवणनाथ को शास्त्रास्त्र विद्या का अभ्यास कराया। फिर मत्स्येंद्रनाथजी रेवणनाथ को मार्तंड पर्वत पर ले गए। वहां नागेश्वर नामक स्थान पर उन्हें देवताओं के दर्शन कराए तथा उन्हें प्रसन्न करके आशीर्वाद दिलाया, ताकि रेवणनाथ की विद्या सफल हो।

जब सब काम पूरे हो गए, तब मत्स्येंद्रनाथ रेवणनाथ को साथ लेकर पुनः गिरिनार पर्वत पर लौट आए और दत्तात्रेयजी को सब समाचार कह सुनाया। उस समय दत्तात्रेयजी बहुत संतुष्ट तथा प्रसन्न हुए। तदुपरांत गुरु दत्तात्रेयजी की आज्ञा से रेवणनाथ तीर्थयात्रा करने के लिए चल दिए।

वीटे गांव का वृत्तांत

तीर्थयात्रा करते हुए रेवणनाथ मान देश के वीटे नामक गांव में जा पहुंचे। उस दिन वहां सरस्वती नामक एक ब्राह्मण के घर में ब्रह्मभोज का आयोजन था।

सरस्वती ब्राह्मण की पत्नी का नाम जाह्नविका था। उसने छह पुत्रों को जन्म दिया था, परंतु वे सब जन्म लेने के कुछ ही दिनों बाद मर गए थे। सातवां पुत्र ही एक ऐसा बालक था, जिसने दस वर्ष की आयु प्राप्त कर ली थी। उसी बालक की ग्यारहवीं वर्षगांठ की खुशी में सरस्वती ने उक्त ब्रह्मभोज का आयोजन किया था।

जिस समय ब्राह्मणों की पंगत भोजन करने के लिए बैठ रही थी, उसी समय रेवणनाथ ने सरस्वती के दरवाजे पर पहुंचकर भिक्षा मांगने के लिए 'अलख' शब्द का उच्चारण किया। अतिथि को द्वार पर आया हुआ देखकर सरस्वती को अत्यंत प्रसन्नता हुई। उसने अपने दोनों हाथ जोड़कर रेवणनाथ से प्रार्थना की– "महाराज! बहुत अच्छे समय पर पधारे हैं। कृपा कर आज यहीं पर भोजन तथा निवास करके मुझे कृतार्थ कीजिए।"

यह सुनकर रेवणनाथ ने कहा– "हे ब्राह्मण! मैं तो संन्यासी हूं। गृहस्थों के घर मैं नहीं ठहरता। यहां मेरे लिए एकांत स्थान कहां मिलेगा?"

सरस्वती ने उत्तर दिया– "हे प्रभो! मैं आपके ठहरने की व्यवस्था अपनी गोशाला में कर दूंगा। वहां एकांत स्थान है। अतः आप कृपा करके मेरी प्रार्थना स्वीकार कर लीजिए।"

रेवणनाथ ने सरस्वती की प्रार्थना को स्वीकार कर लिया। उन्होंने उसी के यहां भोजन किया और रात के समय उसकी गोशाला में जाकर ठहर गए।

सरस्वती के पुत्र की मृत्यु

आधी रात के समय अचानक ही जाह्नविका के रोने का शब्द सुनाई दिया। सरस्वती ब्राह्मण अपनी पत्नी के रोने की आवाज सुनकर उसके पास पहुंचा। वहां जाकर देखा तो पता चला कि उसके लड़के की तबीयत बहुत खराब है और उसके जीवित बचने की कोई आशा नहीं रही है।

रात्रि के समय उसका क्या उपचार किया जाए? सरस्वती तथा उसकी पत्नी जाह्नविका, दोनों प्रातःकाल होने की प्रतीक्षा करने लगे, परंतु सूर्योदय होने से पूर्व उस बालक के शरीर से प्राणपखेरू उड़ गए। इस स्थिति

को देखकर जाह्नविका तो बेहोश हो गई और सरस्वती किसी प्रकार धैर्य धारण कर उस बालक का अंतिम-संस्कार करने की तैयारी में लग गया।

सरस्वती जिस समय घर से बाहर निकलकर अंतिम संस्कार की वस्तुएं एकत्र करने जा रहा था, उस समय गोशाला में बैठे हुए रेवणनाथ की दृष्टि उस पर पड़ी। उन्होंने आवाज देकर सरस्वती को अपने पास बुलाया और पूछा कि इतने सवेरे तुम कहां जा रहे हो।

रेवणनाथ की बात सुनकर सरस्वती रो पड़ा। जब रेवणनाथ ने रोने का कारण पूछा तो उसने उत्तर देते हुए कहा-- "हे महाराज! मेरे छह पुत्र पहले चार-चार, फिर पांच-पांच दिन के होकर मर चुके हैं। यह सातवां पुत्र जैसे-तैसे दस वर्ष की आयु प्राप्त कर पाया था। उसी की खुशी में कल मैंने ब्रह्मभोज का आयोजन किया था, परंतु मेरा दुर्भाग्य कि यह बालक भी रात में अचानक ही बीमार पड़कर मर गया। अब मैं उसके अंतिम संस्कार के लिए आवश्यक सामान लेने जा रहा हूं।"

सरस्वती की बात सुनकर रेवणनाथ को इस बात का आश्चर्य हुआ कि मेरे यहां उपस्थित रहते हुए भी यमराज के दूतों को इस घर में आने की हिम्मत कैसे पड़ी और वे सरस्वती के बालक के प्राण कैसे ले गए?

तब रेवणनाथ ने बालक की मृत देह को घर से निकालकर गोशाला में ले आने की आज्ञा दी। सरस्वती बालक के शव को लेकर रेवणनाथ के सम्मुख आ पहुंचा। रेवणनाथ ने उस बालक के मृत शरीर पर अमर मंत्र से अभिमंत्रित भस्म लगाया। फिर सरस्वती से यह कहा– "हे ब्राह्मण! तुम इस बालक के मृत शरीर को यहीं पर रखा रहने दो। मैं तीन दिन के लिए एक स्थान पर जा रहा हूं। मेरे वहां से लौटते ही तुम्हारा बालक जीवित हो जाएगा।"

यह सुनकर सरस्वती तथा उसकी पत्नी जाह्नविका बालक की मृत देह को लेकर वहीं बैठ गए और रेवणनाथ यानास्त्र मंत्र की योजना करके यमपुरी जा पहुंचे।

रेवणनाथ यमपुरी में

यानास्त्र की योजना करके जब रेवणनाथ यमपुरी में पहुंचे तो उन्हें देखते ही यमराज अपने सिंहासन से उठ गए और पूजन-अर्चन करने के उपरांत पूछा– "आज अचानक ही आपका यहां आना कैसे हुआ?"

रेवणनाथ ने उत्तर दिया– "हे यमराज! मैं कल वीटे गांव में सरस्वती ब्राह्मण के घर में ठहरा हुआ था। मेरे वहां रहते हुए भी तुम्हारे दूत सरस्वती के पुत्र के प्राण खींच लाए। मैं उसी कारण यहां पर आया हूं। अब तुम सरस्वती के पुत्र का जीव मुझे लौटा दो और साथ ही उसके पहले जो छह बालक तुमने मारे हैं, उन्हें भी वापस कर दो।"

यह सुनकर यमराज बहुत घबराए। उन्होंने रेवणनाथ से कहा– "हे महाराज! मरे हुए लोगों के प्राण लौटा देने का अधिकार मुझे नहीं है। भगवान शंकर ही ऐसा कर सकते हैं। अतः आप इस संबंध में कैलास पर्वत पर जाकर भगवान शंकर से मिलिए।"

रेवणनाथ यमराज से विदा होकर कैलास पर्वत पर गए। वहां शिवगणों ने उनसे पूछा– "तुम कौन हो और कहां से आए हो?"

रेवणनाथ ने उत्तर दिया– "मेरा नाम रेवणनाथ है। मैं मर्त्यलोक से आया हूं।"

"किसलिए आए हो?"

"भगवान शंकर से मिलने के लिए।"

"क्या काम है?"

"मुझे मरे हुए सात जीवों को वापस ले जाना है।"

यह सुनकर शिवगण हंसने लगे। द्वारपाल ने कहा– "इस काम के लिए तुम शिवजी से नहीं मिल सकते।"

रेवणनाथ बोले– "मुझे रोकोगे तो तुम सबको मुसीबत उठानी पड़ेगी।"

शिवगणों ने कहा– "जोगी! ऐसा लगता है कि तुम्हारा दिमाग ठीक नहीं है। इसीलिए ऐसी बातें कर रहे हो। अब भला इसी में है कि तुम यहां से तुरंत वापस चले जाओ।"

यह सुनते ही रेवणनाथ क्रोध में भर गए। उन्होंने स्पर्शास्त्र द्वारा द्वारपाल तथा शिवगणों के पांवों को पृथ्वी पर चिपका दिया। जब उन्होंने अपने हाथ लगाकर पांवों को छुड़ाने की कोशिश की तो उनके हाथ भी पृथ्वी से चिपक गए। वे सब पशु जैसे दिखाई देने लगे। उस समय उन्होंने भयभीत तथा दुःखी होकर जोर-जोर से रोना-चिल्लाना आरंभ कर दिया।

कालभैरव से युद्ध

द्वारपालों के रुदन का शब्द सुनकर शिवजी ने अपने गणों की स्थिति का पता लगाने के लिए दरवाजे पर भेजा। उन्होंने लौटकर बताया कि मनुष्यलोक से कोई योगी आया है, उसी ने द्वारपालों की ऐसी दुर्दशा की है।

यह सुनकर शिवजी ने कालभैरव को आज्ञा दी कि वह अन्य गणों को साथ ले जाकर उस योगी को मारकर भगा दे।

शिवजी का आदेश पाकर कालभैरव अपने साथ बहुत से गणों को लेकर दरवाजे पर जा पहुंचा। यह देखते ही रेवणनाथ ने पुनः स्पर्शास्त्र का प्रयोग किया, परंतु कालभैरव के ऊपर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। इसके विपरीत कालभैरव ने अपना धनुष उठाकर वातास्त्र, आग्नेयास्त्र तथा नागास्त्र को भी रेवणनाथ के ऊपर छोड़ा। उसके उत्तर में रेवणनाथ ने पर्वतास्त्र, पर्जन्यास्त्र एवं गरुड़ास्त्र का प्रयोग किया। इससे कालभैरव के सभी अस्त्र न केवल निष्फल हो गए, बल्कि वे सब उल्टे कालभैरव तथा उनकी सेना को परेशान करने लगे। यह देखकर कालभैरव तथा उनके सभी साथी 'हाय-हाय' चिल्लाने लगे।

इस स्थिति का समाचार पाकर भगवान शंकर स्वयं नंदी पर बैठकर रेवणनाथ से युद्ध करने के लिए आए। शिवजी को युद्ध करने के लिए आया हुआ देखकर रेवणनाथ ने वाताकर्षक अस्त्र का प्रयोग किया। उस अस्त्र के प्रभाव से शिवजी का श्वासोच्छवास बंद होने लगा और वे नंदी से नीचे गिरकर मूर्च्छित हो गए। उनके साथ ही कालभैरव आदि भी बेहोश हो गए।

इस स्थिति को देखकर भगवान विष्णु वहां प्रकट हुए। उन्हें देखते ही रेवणनाथ ने साष्टाग् दंडवत की। विष्णु ने पूछा– "तुम यहां किसलिए

आए हो और शिवजी तथा उनके गणों को तुमने इस प्रकार मूर्च्छित क्यों कर दिया है?''

रेवणनाथ ने उत्तर में सब वृत्तांत कह सुनाया। उसे सुनकर विष्णुजी ने कहा– ''तुम जिन सात बालकों के जीव वापस लेने के लिए आए हो, वे मेरे अधिकार में हैं। मैं उन्हें तुमको दे दूंगा। अब तुम शिवजी तथा उनके गणों को अपने मंत्रों के प्रभाव से मुक्त कर दो।''

यह सुनकर रेवणनाथ ने वातप्रेरक मंत्र का प्रयोग करके शिवजी को सावधान किया। तदुपरांत विभक्तास्त्र का प्रयोग करके शिवगणों को पृथ्वी के स्पर्श से मुक्त कर दिया। उस समय वे सब रेवणनाथ की जय-जयकार करने लगे।

तब विष्णुजी ने प्रसन्न होकर रेवणनाथ को सातों बालकों के जीव दे दिए और कहा कि अब इनके शरीर की रचना तुम्हें स्वयं करनी पड़ेगी।

ब्राह्मण के सब पुत्र जीवित हुए

सरस्वती ब्राह्मण के सब पुत्रों के जीव लेकर तीसरे दिन रेवणनाथ वीटे गांव में जा पहुंचे।

सरस्वती ब्राह्मण तथा उसकी पत्नी अपने मृत पुत्र के शरीर के पास ही बैठे हुए थे। रेवणनाथ को वापस आया हुआ देखकर उनकी प्रसन्नता की सीमा न रही। उन्होंने उठकर रेवणनाथ के चरणों में दंडवत् की।

रेवणनाथ ने आशीर्वाद देते हुए कहा– ''मैं तुम्हारे सातों पुत्रों के जीव विष्णु भगवान के पास से वापस ले आया हूं। ये सातों जीव एक ही शरीर में नहीं आ सकते। अतः तुम ऐसा करो कि अपने इस मृत बालक के शरीर को टुकड़े-टुकड़े करके कूट डालों और मांस का एक बड़ा गोला बना लो। तत्पश्चात् उस एक गोले के सात खंड करके अलग-अलग सात गोले बना दो। उनमें से प्रत्येक गोले में एक-एक बालक के जीव को प्रविष्ट कर दूंगा। इस प्रकार तुम्हारे सातों बालक पुनर्जीवित हो जाएंगे।''

सरस्वती ब्राह्मण को रेवणनाथ के ऊपर पूरा-पूरा विश्वास था। अतः उसने रेवणनाथ की आज्ञा का अक्षरशः पालन किया। अपने मृत बालक

के शरीर को कूटकर उसे सात खंडों में बांट दिया और सात गोले बनाकर रेवणनाथ के सामने रख दिए।

तब रेवणनाथ ने संजीवन मंत्र का पाठ करके प्रत्येक गोले में एक-एक जीव को प्रविष्ट करा दिया। थोड़ी ही देर में वे मांस-पिंड मनुष्यस्वरूप धारण कर श्वास लेने लगे। इस प्रकार ब्राह्मण के सातों बालक पुनर्जीवित हो गए।

सरस्वती ब्राह्मण तथा उसकी पत्नी जाह्नविका को उस समय जो प्रसन्नता हुई, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। अपने सातों पुत्रों को जीवित देखकर हर्ष के मारे उनकी आंखों से आंसुओं की धारा बह निकली।

बारहवें दिन उचित संस्कार आदि करके उन बालकों को अलग-अलग पालनों में लिटा दिया गया। इनमें विशेषता यही थी कि सरस्वती के मृत बालकों का जैसा स्वरूप था– ये सभी बालक ठीक उन जैसी ही आकृति तथा स्वरूप के थे।

रेवणनाथ ने उन बालकों के नाम इस प्रकार रखे– (1) सारंगीनाथ, (2) जागीनाथ, (3) निजानंद, (4) दीनानाथ, (5) नयननाथ, (6) यदुनाथ और (7) निरंजननाथ।

इस प्रकार ब्राह्मण के सातों बालकों को जीवित करने के उपरांत रेवणनाथ वहां से विदा होकर तीर्थयात्रा करने के लिए चले गए।

बारह वर्ष बाद रेवणनाथ ने दोबारा वीटे गांव में पहुंचकर इन सभी बालकों को दीक्षा दी तथा उन्हें सभी विद्याओं का अभ्यांस कराया। थोड़े ही दिनों में वे सब समस्त विद्याओं में प्रवीण हो गए। बड़े होने पर ये सातों भाई अत्यंत यशस्वी हुए और उनकी ख्याति चारों ओर फैल गई।

जिस समय इंद्र ने सोमयज्ञ किया था, उस समय अन्य योगियों के साथ रेवणनाथ भी विमान में बैठकर अमरावती गए थे। वहां से लौटने के बाद वे वीटे गांव में ही आकर स्थायी रूप से रहने लगे।

नवनाथ चरित्र सागर

भाग-९
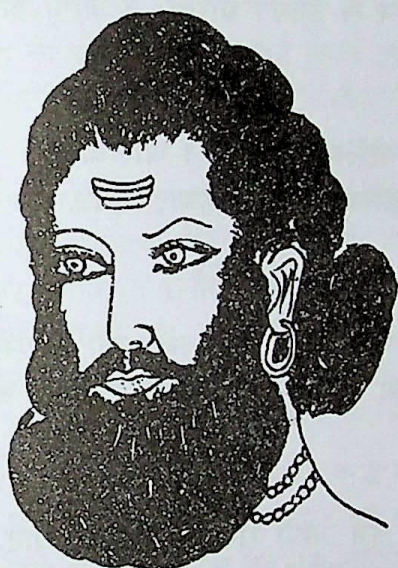
श्री नागनाथ-चरित्र

(आविर्होत्र नारायण के अवतार)

''देवकला ते संजम रहिबा, भूतकला आहारं।
मन पवन ले उनमन धरिया, ते जोगी ततसारं।।''

☆☆☆

''हबकि न बोलिबा ठबकि न चलिबा धीरे धरिबा पांव।
गरब न करिबा सहजै रहिबा, भणंत गोरख रावं।।''

☆☆☆

''गोरख कहै सुणहु रे अबधू, जग में ऐसे रहणा।
आंखें देखिबा कानें सुणिबा, मुख थैं कछू न कहणा।।''

☆☆☆

''नाथ कहै तुम आपा राखौ, हठ करि वाद न करणा।
यहु जग है कांटों की बाड़ी, देखि दृष्टि पग धरणा।।''

राजा परीक्षित की कथा

उत्तरा के गर्भ से परीक्षित का जन्म हुआ था। परीक्षित अभिमन्यु के पुत्र थे। वे महाभारत के युद्ध में किशोरावस्था में ही मारे गए थे। जिस समय अभिमन्यु की मृत्यु हुई, उस समय परीक्षित अभिमन्यु की पत्नी उत्तरा के गर्भ में थे। अभिमन्यु की मृत्यु के बाद परीक्षित का जन्म हुआ था।

महाभारत के युद्ध के बाद पांडवों ने बहुत समय तक धर्मपूर्वक राज्य किया। तत्पश्चात् वे परीक्षित को राजसिंहासन पर बैठाकर स्वयं मिमालय पर गलने के लिए चले गए।

एक दिन राजा परीक्षित शिकार खेलने के लिए वन में गए थे। वहां उन्होंने यह देखा कि एक गाय तथा बैल भागे चले जा रहे हैं। बैल के तीन पांव टूट चुके हैं। वह बेचारा जैसे-तैसे चल पाता है। उनके पीछे-पीछे एक काले रंग के शरीर वाला शूद्र अपने हाथ में मूसल लिये दौड़ रहा है। वह गाय तथा बैल दोनों के ऊपर मूसल का प्रहार करता जा रहा है। उसके भय से गाय तथा बैल दोनों थर-थर कांप रहे हैं।

इस दृश्य को देखकर राजा परीक्षित अत्यंत क्रुद्ध हुए। उन्होंने अपने धनुष पर बाण चढ़ा लिया तथा शूद्र को ललकारते हुए बोले- ''अरे दुष्ट! तू कैसा कुकर्मी है, जो गाय तथा बैल को इस प्रकार कष्ट दे रहा है? अब तू अपने पाप का फल भोगने के लिए तैयार हो जा।''

यह सुनकर वह शूद्र जहां-का-तहां चुपचाप खड़ा हो गया। तब राजा ने पहले गाय और बैल के पास जाकर पूछा- ''तुम कहां भागे जा रहे हो और तुम्हारे ये तीन पांव किसने तोड़े हैं?''

यह सुनकर गाय ने उत्तर दिया- ''हे राजन्! मैं पृथ्वी हूं और यह बैल के रूप में धर्म हैं। इसके तप, क्षमा और दया नामक तीन पांव टूट चुके हैं। यह शूद्र के रूप में कलियुग खड़ा हुआ है। कलियुग में पाप और भी अधिक बढ़ जाएगा। इसलिए हम दोनों इसके भय से भागे चले जा रहे हैं।''

यह सुनकर राजा ने कहा– "अब तुम्हें भयभीत होने की आवश्यकता नहीं है। मैं इस कलियुग को अभी मार डालता हूं।"

यह कहकर राजा ने कलियुग को मारने के लिए अपने धनुष पर पुनः बाण चढ़ाया। यह देखकर कलियुग ने अपने दोनों हाथ जोड़कर राजा परीक्षित से कहा– "हे राजन्! आप मेरे प्राण मत लीजिए। ब्रह्मा का बनाया हुआ विधान कभी अन्यथा नहीं हो सकता। उन्होंने सतयुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग तथा कलियुग– इन चार युगों की सृष्टि की है। उनमें तीन युग बीत चुके हैं। अब मेरा समय आया है। मेरे युग की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि अन्य युगों में सहस्रों वर्षों तक जप, तप, यज्ञ आदि करके मनुष्य अपनी जिन कामनाओं को पूरा कर पाता है, कलियुग में केवल भगवान का नाम लेने मात्र से ही वे सब पूरी हो जाती हैं। अब आप कृपा करके यह कीजिए कि मेरे रहने के लिए कुछ स्थान निश्चित कर दीजिए, मैं वहीं बना रहूंगा।"

यह सुनकर राजा परीक्षित कुछ देर तक मौन रहकर विचार करते रहे। फिर कलियुग से बोले– "तुम जुआ, मदिरा, वेश्या, हिंसा, लोभ तथा स्वर्ण में निवास करो। इनके अतिरिक्त और कहीं मत रहना।"

कलियुग ने राजा कि इस आज्ञा को शिरोधार्य कर लिया। तत्पश्चात् कलियुग, धर्मरूपी बैल और गायरूपी पृथ्वी– ये तीनों अदृश्य हो गए। राजा परीक्षित भी वहां से लौटकर घर आ गए।

परीक्षित को शृंगी ऋषि का शाप

एक दिन फिर राजा परीक्षित शिकार खेलने के लिए वन में गए। उस समय वे अपने मस्तक पर सोने का मुकुट पहने हुए थे। उन्हें यह ध्यान भी नहीं था कि वे कलियुग को सोने में निवास करने की आज्ञा दे चुके हैं। इस प्रकार कलियुग उनके मस्तक पर बैठा हुआ था।

शिकार में राजा ने बहुत से पशुओं को मारा। इस प्रकार उन्होंने कलियुग के आश्रय हिंसा के कर्म को भी खूब किया। कुछ देर बाद राजा को बड़े जोर की प्यास लगी। पानी की तलाश में वे इधर-उधर भटकने लगे।

चलते-चलते राजा परीक्षित शमीक ऋषि के आश्रम में जा पहुंचे। उस समय ऋषि समाधि लगाए बैठे थे। राजा के सिर पर कलियुग तो सवार था ही। अतः उनकी बुद्धि भ्रष्ट हो गई। ऋषि को समाधिस्थ देखकर उन्होंने यह समझा कि इस ढोंगी ने मुझे आया हुआ देखकर जानबूझकर अपनी आंखें बंद कर ली हैं।

वहीं थोड़ी दूर पर एक मरा हुआ सांप पड़ा था। राजा ने कलियुग के वशीभूत होकर उस मरे हुए सांप को अपने धनुष की नोक से उठाकर समाधिस्थ ऋषि के गले में डाल दिया। तत्पश्चात् वे अपनी राजधानी को लौट गए।

राजा परीक्षित की मृत्यु

जिस समय राजा परीक्षित शमीक ऋषि के आश्रम में पहुंचे थे, उस समय वहां और कोई नहीं था। शमीक ऋषि के पुत्र श्रृंगी ऋषि उन दिनों बालक थे। वे आश्रम से बहुत दूर अन्य ऋषि-पुत्रों के साथ खेल रहे थे। ऋषियों के कुछ अन्य बालकों ने राजा परीक्षित को शमीक ऋषि के गले में मरा हुआ सांप डालते हुए देख लिया था। उनमें से कुछ ने श्रृंगी ऋषि के पास जाकर यह समाचार कह सुनाया।

श्रृंगी ऋषि खेलना छोड़कर अपने पिता के पास दौड़े आए। शमीक ऋषि उस समय भी समाधिस्थ बैठे थे तथा वह मृत सर्प उनके कंठ में पड़ा हुआ था।

उस दृश्य को देखते ही श्रृंगी ऋषि का क्रोध चरम सीमा को पार कर गया। उन्होंने उसी समय अजुंलि में जल लेकर राजा परीक्षित को लक्ष्य करके यह शाप दिया- "हे राजा! तूने मेरे समाधिस्थ पिता के कंठ में मृत सर्प को डाला है। मैं शाप देता हूं कि आज से सातवें दिन तक्षक सर्प तुझे डस लेगा और तेरी मृत्यु हो जाएगी।"

श्रृंगी ऋषि ने शाप देने के बाद अपने पिता को सावधान किया तथा उन्हें संपूर्ण वृत्तांत कह सुनाया।

उसे सुनकर परम उदार शमीक ऋषि ने कहा– "हे पुत्र! राजा परीक्षित को शाप देकर तुमने अच्छा काम नहीं किया। वे बहुत धर्मात्मा तथा प्रजापालक हैं। यदि उनसे कोई भूल हो ही गई तो उसके लिए उन्हें क्षमा कर देना चाहिए था। खैर, अब जो जोना था सो तो हो ही चुका, परंतु तुम राजा परीक्षित के पास अपने शाप का समाचार इसी समय पहुंचा दो, जिससे वे इस अवधि में अपनी मुक्ति का कोई उपाय कर सकें तो कर लें।"

पिता की आज्ञा मानकर शृंगी ऋषि ने कुछ ऋषि-पुत्रों को अपने शाप का समाचार देने के लिए राजा परीक्षित के पास भेज दिया।

उधर घर पहुंचकर जब राजा ने अपने मस्तक से सोने का मुकुट उतारकर नीचे रखा तो उन्हें अपने किए हुए कृत्य पर अत्यंत पश्चाताप हुआ। वे अपने मन में अत्यंत दु:खी हुए और सोचने लगे कि इस भयंकर पाप से मेरा उद्धार किस प्रकार होगा।

तभी ऋषि-बालक राजा परीक्षित के पास आ पहुंचे। उन्होंने शृंगी ऋषि के शाप का वृत्तांत राजा से कहा। राजा ने उसके लिए शृंगी ऋषि का आभार माना और कहा कि मुझ अपराधी को दंड देकर शृंगी ऋषि ने बहुत बड़ी कृपा की है।

ऋषि-पुत्रों के चले जाने पर राजा परीक्षित ने अपने पुत्र जनमेजय को राजतिलक करके अपने राज्य का उत्तराधिकारी बना दिया। तदुपरांत वे स्वयं हरिद्वार में गंगातट पर जाकर बैठ गए।

राजा परीक्षित के शाप का समाचार चारों ओर फैल गया था। उसे सुनकर सब ओर से ऋषि-मुनि राजा परीक्षित को ज्ञानोपदेश करने के लिए पहुंचने लगे। उन्हीं में एक भगवान वेदव्यास के पुत्र शुकदेव मुनि भी थे। शुकदेव ने एक सप्ताह तक राजा परीक्षित को श्रीमद्‌भागवत की कथा सुनाई। उसे सुनकर राजा पाप-मुक्त तथा मुक्ति के अधिकारी हो गए।

श्रीमद्‌भागवत सप्ताह की समाप्ति पर ब्राह्मणों ने आशीर्वाद के रूप में राजा के गले में पुष्पमाला पहनाई। उस समय पुष्पमाला के एक फूल में सूक्ष्म कीड़े के रूप में बैठे हुए तक्षक सर्प ने राजा परीक्षित को डस लिया, जिस कारण उसी समय राजा की मृत्यु हो गई। श्रीमद्‌भागवत की कथा सुनने के कारण राजा परीक्षित सांसारिक आवागमन से सदैव के लिए मुक्त हो गए। राजा को डसने के बाद तक्षक सर्प भी तुरंत ही वहां से अपने लोक को चला गया।

जनमेजय का नाग-यज्ञ

सिंहासन पर बैठने के कुछ समय बाद एक दिन राजा जनमेजय ने अपने मन में विचार किया कि मेरे पिता की मृत्यु का कारण एक सर्प है। अतः मुझे उनकी मृत्यु का बदला लेने के लिए कोई ऐसा कार्य करना चाहिए, जिससे संपूर्ण सर्प-जाति ही नष्ट हो जाए।

यह विचार उन्होंने अपने मंत्रियों के सम्मुख प्रकट किया तो उन्होंने राजा जनमेजथ को सर्प-यज्ञ (नाग-यज्ञ) करने की सलाह दी।

राजा जनमेजय ने नाग-यज्ञ आरंभ किया। मंत्रों के प्रभाव से आकर्षित होकर तीनों लोकों के सर्प उस यज्ञ के हवन-कुंड में आ-आकर गिरने और भस्म होने लगे।

तक्षक सर्प ने राजा परीक्षित को डसा था, अतः उसके ऊपर जनमेजय का क्रोध सबसे अधिक था। तक्षक सर्प भयभीत होकर देवताओं के राजा इंद्र की शरण में गया और उनसे अपनी प्राण-रक्षा करने की प्रार्थना की। इंद्र ने उसे अभयदान देकर अपने सिंहासन के नीचे छिपा लिया।

वह यज्ञ कई महीनों तक चला। लाखों-करोड़ों सर्प उसमें आ-आकर भस्म होते रहे, पर अभी तक तक्षक सर्प नहीं पहुंचा था।

यह देखकर राजा जनमेजय ने यज्ञ करने वाले ब्राह्मणों से पूछा कि मेरा शत्रु तक्षक अभी तक इस यज्ञ-कुंड में आकर क्यों नहीं गिरा। तब ब्राह्मण ों ने ध्यान-दृष्टि से देखने के उपरांत जनमेजय से कहा- "हे राजन्! तक्षक सर्प को इंद्र ने शरण दे रखी है और वह इंद्र के सिंहासन से लिपटा हुआ है, इसीलिए वह अभी तक यज्ञ-कुंड में आकर नहीं गिरा है।"

यह सुनकर राजा ने ब्राह्मणों से कहा- "ऐसी स्थिति में आप लोग यह कीजिए कि देवराज इंद्र भी अपने सिंहासन तथा तक्षक सर्प सहित इस यज्ञ-कुंड में आकर गिर पड़े और जलकर भस्म हो जाएं। उन्होंने मेरे शत्रु को शरण दी है, इसका दंड भी उन्हें अवश्य मिलना चाहिए!"

जनमेजय की बात सुनकर ब्राह्मणों ने इस प्रकार के मंत्रों का जाप आरंभ किया कि उसके कारण इंद्र का सिंहासन अपने स्थान से उखड़कर उड़ चला। उसके ऊपर बैठे हुए देवराज इंद्र तथा उससे लिपटा हुआ तक्षक सर्प- ये दोनों भी विवश होकर यज्ञ-कुंड में भस्म होने के लिए ओर अग्रसर हुए।

इस घटना से तीनों लोकों में हाहाकार मच गया। उस समय तीनों लोकों के प्राणियों ने जरत्कारु मुनि के पुत्र आस्तीक से यह प्रार्थना की कि वे राजा जनमेजय के पास जाकर उन्हें समझाएं और सर्प-यज्ञ को बंद कराएं। उनकी प्रार्थना सुनकर आस्तीक राजा जनमेजय के पास गए और उन्हें समझा-बुझाकर सर्प-यज्ञ बंद करा दिया।

आस्तीक का वृत्तांत

जरत्कारु नामक एक परम तपस्वी महात्मा ब्रह्मज्ञान प्राप्त करने की इच्छा लेकर पृथ्वी पर भ्रमण किया करते थे। उन्होंने अपना विवाह नहीं किया था। आजीवन ब्रह्मचारी रहकर ईश्वर की आराधना ही उनका मुख्य ध्येय था।

एक बार वे जंगल में घूम रहे थे। वहां उन्हें प्यास लगी तो एक कुएं पर गए। उस कुएं के भीतर की ओर एक बेल लटक रही थी और उस बेल के ऊपर कुछ छोटे-छोटे जीव बैठे हुए थे। जिस समय जरत्कारु उस कुएं पर पहुंचे, उसी समय कहीं से एक चूहा आकर ऊपर से उस बेल को कुतरने लगा। चूहे को बेल काटते हुए देखकर उस बेल के ऊपर बैठे हुए जीव परस्पर बातें करने लगे। तपस्वी जरत्कारु जीव-जंतुओं की भाषा को समझते थे, अतः उन्होंने उन जीवों की आपसी बातचीत को ध्यानपूर्वक सुनना शुरू कर दिया।

जरत्कारु ने सुना-

एक जीव दूसरे जीव से कह रहा था- "अरे भाई, चूहा ऊपर से बेल काट रहा है। अब हम लोगों की क्या दशा होगी? बेल के कटते ही हम सब कुएं में गिर पड़ेंगे।"

दूसरा जीव बोला- "भाई! हमें तो इस जन्म-मरण के दुःख से छुटकारा मिल ही नहीं सकता।"

तीसरे ने कहा- "आपको तो जन्म लिये हुए बहुत समय हो चुका। संभवतः आप चौरासी लाख योनियों में भ्रमण कर चुके हैं। अब आपके मुक्त होने में विलंब क्यों हो रहा है?"

यह सुनकर दूसरे जीव ने उत्तर दिया- "मुक्ति केवल उन्हीं प्राणियों को मिल पाती है, जिनकी संतानें अपने पितरों को पिंडदान आदि कर्म

करती हों। मेरे वंश में जरत्कारु नामक एक ऐसा हठोला पुत्र उत्पन्न हुआ है कि वह अब तक विवाह किए बिना पृथ्वी पर भ्रमण करता रहा है। जब उसने विवाह ही नहीं किया, तब वंश के आगे चलने की बात तो सोची भी नहीं जा सकती। यदि किसी प्रकार मेरे पुत्र की बुद्धि बदल जाए और वह अपना विवाह करके संतान को जन्म दे तो वंश के आगे चलने पर मेरी भी सद्‌गति हो जाएगी और वह भी पितृ-ऋण से उऋण हो जाएगा, परंतु यह बात उसे जाकर कौन समझाए?''

जीवों की इस बातचीत को सुनकर जरत्कारु ने उस जीवात्मा को संबोधित करते हुए कहा– ''आप मुझे अपने पुत्र का नाम बताइए। मैं उसके पास जाकर आपकी बात कह दूंगा।''

यह सुनकर जीवात्मा ने उत्तर दिया– ''हे महानुभाव! आप कोई परोपकारी पुरुष जान पड़ते हैं, इसीलिए आप मेरे लिए इतना कष्ट उठाने को तैयार हैं। मेरे पुत्र का नाम जरत्कारु है। वह विवाह नहीं कर रहा है। संभवत: वह किसी ज्ञानी स्त्री के साथ विवाह करने के प्रयत्न में है, परंतु जाने उसका विवाह कब होगा?''

यह सुनकर जरत्कारु की आंखें खुल गईं। उन्होंने उसी समय शीघ्र विवाह करके पितृ-ऋण से उऋण होने का निश्चय कर लिया।

पाताल में रहने वाले वासुकि नाग की बहन का नाम भी 'जरत्कारु' था। वह बहुत सुंदर तथा बुद्धिमती थी। वह भी किसी ज्ञानी पुरुष के साथ ही अपना विवाह करना चाहती थी। जरत्कारु मुनि को उसके विषय में पता चला तो उन्होंने वासुकि के पास जाकर अपनी बहन का विवाह अपने साथ कर देने के लिए कहा।

वासुकि की बहन जरत्कारु भी जरत्कारु मुनि के साथ विवाह करने को तैयार हो गई। उस समय जरत्कारु मुनि ने वासुकि की बहन जरत्कारु के सामने यह शर्त रखी कि यदि किसी दिन उसने उनकी (जरत्कारु मुनि की) इच्छा के विरुद्ध कोई काम किया तो वे उसी समय उसे छोड़कर चले जाएंगे।

वासुकि की बहन ने इस शर्त को स्वीकार कर लिया। फलस्वरूप दोनों जरत्कारु परस्पर विवाह-सूत्र में बंध गए और वासुकि नाग के पास पाताललोक में ही रहने लगे।

एक बार यह घटना घटी की जरत्कारु मुनि दिन के समय अपनी पत्नी की गोद में सिर रखकर लेटे हुए थे कि उन्हें नींद आ गई। धीरे-धीरे सूर्यास्त का समय हो आया। जरत्कारु अपने मन में सोचने लगी कि मुनि अभी तक नींद में सो रहे हैं। यदि मैं इन्हें जगाती हूं तो मुझे निद्रा-भंग करने का दोष लगेगा और यदि मैं इन्हें सोने दूं तो इनके संध्या वंदनादि का समय निकल जाएगा और कर्म का लोप हो जाने से इन्हें प्रायश्चित्त करना पड़ेगा।

नागकन्या जरत्कारु बहुत देर तक इसी संकल्प-विकल्प में पड़ी रही। अंततः उसने निश्चय किया कि मुनि को जगा देना ही उचित है। इनके संध्या-वंदन कृत्य का समय नहीं निकलना चाहिए।

यह सोचकर नागकन्या जरत्कारु ने जरत्कारु मुनि को जगा दिया।

निद्रा भंग किए जाने के कारण मुनि नाराज हो गए। उन्होंने अपनी पत्नी से पूछा– "तुमने मेरी निद्रा भंग क्यों की?"

पत्नी ने उत्तर दिया– "हे स्वामी! सूर्य के अस्ताचल हो जाने का समय हो आया था, इसीलिए मैंने आपको जगा देना उचित समझा, ताकि आप अपने संध्या वंदनादि धार्मिक कृत्यों को पूरा कर सकें। यदि इसमें मेरा कोई अपराध हो तो क्षमा प्रदान करने की कृपा करें।"

यह सुनकर मुनि ने कहा– "हे जरत्कारु! जब तक मैं जाग नहीं आता, तब तक सूर्य अस्त हो ही नहीं सकता था। मैं अपने प्रभाव को अच्छी तरह जानता हूं। इसीलिए मैं निश्चिंत होकर सो रहा था, परंतु निद्रा भंग करके तुमने मेरी इच्छा के विरुद्ध कार्य किया है, इसलिए अब मैं तुम्हें त्यागकर चला जाऊंगा।"

यह सुनकर पत्नी रोने लगी। तब मुनि ने यह कहा– "हे जरत्कारु! तू इस समय गर्भवती है। तेरे गर्भ से एक परम धर्मात्मा तेजस्वी बालक का जन्म होगा। वह अपने तप तथा ज्ञान के प्रभाव से अपने दोनों कुलों का उद्धार कर देगा। मैं तो अब यहां ठहर नहीं सकता, परंतु तू चिंता मत कर। ईश्वर तेरा कल्याण करेगा।"

यह कहकर जरत्कारु मुनि वहां से चल दिए। मुनि ने पत्नी से विदा होते समय 'अस्ति' ('है' अर्थात् तेरे पेट में गर्भ है) शब्द का उच्चारण किया था, अतः नागकन्या जरत्कारु ने समय आने पर जब एक परम तेजस्वी बालक को जन्म दिया तो नागराज वासुकि ने उसका नाम 'आस्तीक' रखा।

आस्तीक का लालन-पालन अपने मामा वासुकि के घर में ही हुआ। उसने च्यवन तथा भार्गव मुनि द्वारा वेद-वेदांग की शिक्षा प्राप्त की। वह सूर्य के समान तेजस्वी तथा बृहस्पति के समान मेधावी और विद्वान था। इसी आस्तीक ने ब्राह्मण के वेष में राजा जनमेजय के पास जाकर पहले वचन मांगा था और उसके बाद नाग-यज्ञ बंद कराया था। नाग-यज्ञ बंद हो जाने से इंद्र तथा तक्षक की प्राणरक्षा तो हुई ही, साथ ही संपूर्ण नाग-वंश भी नष्ट होने से बच गया। आस्तीक ने राजा जनमेजय को भी ज्ञानोपदेश देकर उसके मन के दुःख तथा क्रोध के बोझ को हल्का कर दिया था, साथ ही आस्तीक ने राजा जनमेजय को यह वचन भी दिया था कि जो लोग सर्प-यज्ञ के समय आस्तीक की उपस्थिति तथा उनके द्वारा सर्प-यज्ञ बंद कराए जाने की घटना का स्मरण करेंगे, उन्हें सर्पों से कोई भय नहीं होगा।

कहते हैं कि आस्तीक नाम का उच्चारण करने मात्र से ही सर्प दूर भाग जाता है और वह इस नाम का उच्चारण करने वाले व्यक्ति को कभी नहीं काटता। यदि काटेगा तो उसके मस्तक के सैकड़ों टुकड़े होकर बिखर जाएंगे।

आस्तीक द्वारा पद्मिनी की रक्षा

सरस्वती के ऊपर आसक्त हो जाने के कारण ब्रह्माजी का जो वीर्य स्खलित हुआ था, वह सहस्रों खंडों में विभाजित होकर इधर-उधर जा गिरा था और उससे सहस्रों ऋषि-मुनि तथा अन्य महापुरुषों का जन्म हुआ था।

उसी वीर्य का एक भाग तक्षक नाग की कन्या पद्मिनी के मस्तक पर भी जा गिरा। उसे कोई खाद्य-पदार्थ समझकर पद्मिनी ने चाट लिया था, जिस कारण वह गर्भवती हो गई और उसके गर्भ में आविर्होत्र नारायण ने प्रवेश किया।

त्रिकालदर्शी महात्मा आस्तीक को यह बात मालूम हो गई। उन दिनों राजा जनमेजय का नाग-यज्ञ चल रहा था। आस्तीक ने एक ओर तो उस सर्प-यज्ञ को बंद कराने का निश्चय किया और दूसरी ओर तक्षक-पुत्री पद्मिनी की प्राण-रक्षा करने का विचार किया, ताकि उसके गर्भ में स्थित आविर्होत्र नारायण की रक्षा हो सके।

एक दिन आस्तीक ने पद्मिनी से इस प्रकार कहा– "हे साध्वी! तू बड़ी भाग्यशाली है, क्योंकि तेरे गर्भ में आविर्होत्र नारायण ने प्रवेश किया है। वे जन्म लेकर वटसिद्ध नागनाथ के नाम से प्रसिद्ध होंगे और संसार का उपकार करेंगे। इन दिनों राजा जनमेजय का नाग-यज्ञ चल रहा है। ब्राह्मणों के मंत्रों से आकर्षित होकर प्रतिदिन सहस्रों सर्प उस यज्ञ-कुंड में गिरकर भस्म हो रहे हैं। ऐसी स्थिति में तुम अपनी और अपने गर्भ की रक्षा करने के लिए किसी गुप्त तथा सुरक्षित स्थान पर चली जाओ।"

यह सुनकर पद्मिनी ने अत्यंत भयभीत होते हुए प्रार्थना की– "हे महाराज! मैं अपनी रक्षा करने में असमर्थ हूं, अतः आप ही किसी उपाय से मेरी तथा मेरे गर्भ की रक्षा करने की कृपा कीजिए।"

यह सुनकर आस्तीक ने उसे पास के वन में स्थित एक अत्यंत पुराने तथा बड़े वटवृक्ष का पता बताया। उस वृक्ष के तने में एक बहुत बड़ी तथा गहरी पोली गुफा थी। आस्तीक बोले– "हे पद्मिनी! तुम उस स्थान पर जाकर गुप्त रूप से रहो। मैं तुम्हारी सुरक्षा का प्रबंध कर दूंगा।"

तक्षक-पुत्री पद्मिनी उस वटवृक्ष की गुफा में चली गई। तब आस्तीक ने वज्रमंत्रों का जप करके उस स्थान को वज्र के समान दृढ़ तथा सुरक्षित बना दिया।

हस्तिनापुर में सर्प-यज्ञ कराने वाले ब्राह्मण एक-एक सर्प तथा सर्पिणी को यज्ञ-कुंड में आकर्षित करने के लिए मंत्र-पाठ करते थे और वह उसके प्रभाव से आकर्षित होकर यज्ञ-कुंड में आ गिरता था। आस्तीक ने उन ब्राह्मणों से मिलकर गुप्त रूप से यह प्रबंध भी कर दिया था कि वे तक्षक-पुत्री पद्मिनी का आकर्षण न करें। आस्तीक की बात को ब्राह्मणों ने इस रूप में स्वीकार कर लिया था कि वे पद्मिनी का आकर्षण सबके अंत में ही करेंगे, तब तक यदि आस्तीक बीच में ही किसी प्रकार यज्ञ बंद करा सकें तो वैसा प्रयत्न कर देखें।

आस्तीक ने यह बात स्वीकार कर ली और उसके बाद प्रयत्न करके बीच में ही उस सर्प-यज्ञ को बंद करा दिया।

आस्तीक जरत्कारु मुनि के पुत्र होने के कारण ब्राह्मण थे। उनकी माता जरत्कारु नागकन्या थी। इसलिए ब्राह्मण तथा नाग– इन दोनों जातियों के लोग समान रूप से उनकी श्रद्धा और सम्मान करते थे तथा उनके प्रति सहानुभूति रखते थे।

नागनाथ का जन्म

आस्तीक मुनि द्वारा वटवृक्ष की खोह में सुरक्षित नागकन्या पद्मिनी ने यथा समय एक अंडे को जन्म दिया। बाद में उस अंडे को फोड़कर एक परम तेजस्वी बालक प्रकट हुआ। वह बालक आविर्होत्र नारायण का अवतार था। जन्म लेने के उपरांत वह बालक वटवृक्ष की खोह से बाहर निकलकर रुदन करने लगा।

दैवयोग से उसी समय 'कोशधर्म' नामक एक दरिद्र, परंतु सदाचारी ब्राह्मण उधर होकर निकला। बालक के रोने का शब्द सुनकर वह उसके पास जा पहुंचा। कोशधर्म ने वटवृक्ष के नीचे पहुंचकर देखा कि एक परम तेजस्वी बालक अकेला पड़ा हुआ रो रहा है और उसके आस-पास कोई भी स्त्री-पुरुष दिखाई नहीं देता है।

बालक को रोते हुए देखकर कोशधर्म के मन में दया आ गई। उसने बालक को अपनी गोद में उठा लिया। गोद में पहुंचते ही बालक ने रोना बंद कर दिया। उस समय कोशधर्म अपने मन में यह विचार करने लगा कि अब मैं इस बालक के माता-पिता का पता कैसे लगाऊं और इसका क्या करूं।

कोशधर्म इसी ऊहापोह में पड़ा था कि उसी समय यह आकाशवाणी हुई- "हे कोशधर्म! वटवृक्ष के नीचे तुझे जो बालक प्राप्त हुआ है, इसे तू अपने घर ले जा और इसका भली-भांति पालन-पोषण कर। इसके घर पहुंचते ही तेरा दारिद्रय दूर हो जाएगा। यह बालक आविर्होत्र नारायण का अवतार है। इसने पद्मिनी नामक नागकन्या के गर्भ से वटवृक्ष की खोह में जन्म लिया है, अतः तू इसका नाम 'वटसिद्ध नागनाथ' रखना। बड़ा होकर यह बालक परम प्रसिद्ध महापुरुष होगा।"

नागनाथ कोशधर्म के घर में

इस आकाशवाणी को सुनकर कोशधर्म के आनंद की सीमा न रही। वह बालक को उठाकर अपने घर ले गया। उसके कोई संतान नहीं थी। ऐसी स्थिति में उस दिव्य बालक को पाकर कोशधर्म को जो प्रसन्नता हुई, उसका शब्दों में वर्णन नहीं किया जा सकता।

कोशधर्म ने घर लाकर वह बालक अपनी पत्नी की गोद में दे दिया तथा उसके मिलने और आकाशवाणी होने का संपूर्ण वृत्तांत भी कह सुनाया।

कोशधर्म की पत्नी का नाम 'सुरादेवी' था। अपने पति की तरह वह भी बड़ी धर्मात्मा तथा दयालु थी। उसने बालक को अपने हृदय से लगा लिया। दैवेच्छा से उसी समय उसके स्तनों से दूध की धारा बहने लगी। सुरादेवी ने बालक को स्तनपान कराया और उसे अपने पुत्र के समान खिलाने तथा पालन-पोषण करने लगी। दसवें दिन उसने बालक का संस्कार कराकर उसका नाम 'नागनाथ' रख दिया गया।

उस भाग्यशाली बालक के घर में आते ही कोशधर्म की दरिद्रता का दूर होना आरंभ हो गया। ईश्वर की कृपा से उसके यहां धन-धान्य आदि की कोई कमी नहीं रही। बालक धीरे-धीरे बड़ा होने लगा।

सात वर्ष की आयु हो जाने पर कोशधर्म ने उस बालक का यज्ञोपवीत-संस्कार कराया तथा वेद-शास्त्रादि पढ़ाना आरंभ किया। बालक अत्यंत प्रखर बुद्धि का था। थोड़े ही दिनों में उसने अनेक ग्रंथ कंठस्थ कर लिये।

दत्तात्रेयजी से भेंट

खेल-कूद के समय नागनाथ अपने बराबर के बालकों का नेतृत्व किया करता था। एक दिन नागनाथ और उसके समवयस्क मित्रों ने गंगातट पर आहार-गोष्ठी का आयोजन किया। सब बालक दो टोलियों में बंटकर बैठ गए। खाने-पीने की जो वस्तुएं थी, नागनाथ ने उन्हें स्वयं परोसना आरंभ कर दिया। बच्चों ने भोजन करना आरंभ कर दिया। नागनाथ आग्रह कर-करके उन सबको सामग्री परोसने तथा भोजन कराने लगे।

उसी समय उधर से भगवान दत्तात्रेय भी जा पहुंचे। बालकों को भोजन करते हुए देखकर उन्होंने भी अपना स्वरूप बालक जैसा बना लिया और उन बालकों के पास जा पहुंचे।

नए बालक को अपने बीच देखकर कुछ बालकों ने उसकी उपस्थिति पर आपत्ति व्यक्त की। उस समय नागनाथ ने उन्हें समझाते हुए यह कहा कि भोजन करते समय यदि कोई अतिथि आ जाए तो उसे अपना अहोभाग्य समझना चाहिए। अतिथि का सत्कार करना सबसे बड़ा धर्म है।

नागनाथ की बात सुनकर विरोध करने वाले बालक चुप हो गए। तब नागनाथ ने बालरूपधारी दत्तात्रेयजी को पंगत में बैठाकर अत्यंत प्रेम सहित भोजन कराया। नागनाथ के सद्व्यवहार तथा बुद्धिमत्ता को देखकर दत्तात्रेयजी अत्यंत प्रसन्न हुए।

भोजन करने के उपरांत दत्तात्रेयजी ने नागनाथ से कहा– ''मेरा नाम दत्तात्रेय है। मैं तुम्हें एक मंत्र देता हूं। उस मंत्र के प्रभाव से तुम जिस भोजन-सामग्री की इच्छा करोगे, वह तुरंत ही तुम्हारे सामने इच्छित मात्रा में आकर प्रस्तुत हो जाएगी। उसे तुम स्वयं मत खाना। वह केवल दूसरों को खिलाने के लिए होगी।''

यह कहकर दत्तात्रेयजी ने नागनाथ के कान में मंत्र का उपदेश किया और वहां से चले गए।

नागनाथ का सदाव्रत

दूसरे दिन अपने मित्रों के साथ गंगातट पर पहुंचकर नागनाथ ने दत्तात्रेयजी द्वारा दिए गए मंत्र की परीक्षा करनी चाही। उन्होंने विभिन्न खाद्य वस्तुओं का नाम लेकर मंत्र का जप किया तथा पृथ्वी पर अपने दोनों हाथ रख दिए। उसी समय इच्छित खाद्य वस्तुएं वहां प्रस्तुत हो गईं। नागनाथ ने वे सब वस्तुएं अपने मित्रों को खिलाईं। सभी बालक उन मिष्टान्न आदि वस्तुओं को खाकर अत्यंत प्रसन्न हुए।

इस प्रकार नागनाथ प्रतिदिन गंगा तटपर पहुंचकर अपने मित्रों को मनचाही वस्तुएं खिलाने लगे। धीरे-धीरे यह बात चारों ओर फैल गई कि नागनाथ अपने साथियों को प्रतिदिन भरपेट मनचाही वस्तुएं खिलाता रहता है।

एक दिन यह बात जब कोशधर्म के कानों में पहुंची तो उसने नागनाथ से पूछा– ''तुम बालकों को भोजन कहां से कराते हो?''

नागनाथ ने उत्तर दिया– ''एक दिन जब मैं अपने मित्रों के साथ भोजन -गोष्ठी का प्रबंध कर रहा था, उस समय वहां कहीं से एक अपरिचित बालक आ पहुंचा। उसने अपना नाम दत्तात्रेय बताया तथा वहीं मुझे एक ऐसा मंत्र बताया, जिसका जाप करने से इच्छित खाद्य वस्तुएं मेरे

सामने आ उपस्थित होती हैं और मैं उन्हें अपने मित्रों को खिला देता हूं। उन वस्तुओं को मैं स्वयं नहीं खा सकता।''

यह सुनकर कोशधर्म ने कहा– ''तुम मुझे अपने घर में ही खाद्य वस्तुएं मंगाकर दिखाओ।''

नागनाथ ने उसी समय मंत्र पढ़कर पृथ्वी पर हाथ रखा तो जिन-जिन वस्तुओं का उसने नाम लिया, वे सभी वस्तुएं वहां प्रकट हो गईं। यह देखकर कोशधर्म अत्यंत प्रसन्न हुआ और अपने मन में समझ गया कि यह बालक अवश्य ही नारायण का अवतार तथा सिद्ध पुरुष है।

इसके बाद तो नागनाथ ने अपने घर में ही सदाव्रत चालू कर दिया। प्रतिदिन सैकड़ों साधु-संत, भिक्षुक, अतिथि, अभ्यागत आदि कोशधर्म के घर आकर भोजन करने लगे। कोशधर्म तथा नागनाथ की प्रशंसा चारों ओर फैल गई।

कोल्हापुर में ग्राम-भोजन

एक दिन कोशधर्म ने नागनाथ से कहा कि दत्तात्रेय जिस बालक ने आकर तुम्हें यह मंत्र दिया था, वह और कोई नहीं त्रिदेव के अवतार साक्षात् भगवान दत्तात्रेयजी थे, क्योंकि ऐसी सिद्धि उनके अतिरिक्त और कोई नहीं दे सकता। तुम्हारे धन्य भाग्य हैं, जो तुम्हें भगवान दत्तात्रेय के दर्शन करने का सुअवसर मिला। यह सुनकर नागनाथ के हृदय में दत्तात्रेयजी के दर्शन पुनः प्राप्त करने की इच्छा हुई। उन्होंने कोशधर्म से पूछा– ''हे पिता! अब मुझे भगवान दत्तात्रेय के दर्शन कहां होंगे?''

कोशधर्म ने उत्तर दिया– ''वे तो रमते राम हैं। कभी कहीं रहते हैं, कभी कहीं। वे कहां मिलेंगे, इस विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता।''

नागनाथ को यह सुनकर संतोष नहीं हुआ। उन्होंने दत्तात्रेयजी के दर्शन प्राप्त करने का निश्चय किया और अपने माता-पिता से कहा कि अब मैं दत्तात्रेयजी को ढूंढने के लिए जाऊंगा।

माता-पिता पहले से ही जानते थे कि यह बालक अवतारी पुरुष है। यह जो भी निश्चय कर लेगा, उससे डिगाया नहीं जा सकता। अतः उन्होंने लाचार होकर नागनाथ को घर छोड़ने की आज्ञा दे दी।

नागनाथ माता-पिता, मित्र आदि सबसे विदा लेकर दत्तात्रेयजी की खोज में घर से निकल पड़े। उन्होंने महाकालेश्वर, प्रयाग, मथुरा, जगन्नाथपुरी आदि तीर्थस्थानों की यात्राएं कीं। हर जगह दत्तात्रेयजी के विषय में पूछताछ की, परंतु कहीं पर भी कोई पता नहीं चला।

तब वे दक्षिण भारत के तीर्थों की यात्रा के लिए चल दिए। मातापुरी, पांचालेश्वर आदि की यात्रा करते हुए कोल्हापुर में जा पहुंचे। वहां पहुंचने पर उन्हें यह पता चला कि इस नगर में दत्तात्रेयजी प्रतिदिन भिक्षा मांगने के लिए आते हैं, परंतु वे अपना वेष नित्य बदल देते हैं, अतः कोई उन्हें पहचान नहीं सकता। यह सुनकर नागनाथ ने कुछ समय तक कोल्हापुर में ही रहने का निश्चय किया।

वे लक्ष्मी मंदिर में जा पहुंचे। वहां पुजारी से बातचीत करके उन्होंने अपने रहने के लिए उसी मंदिर की एक कोठरी ले ली।

दूसरे दिन नागनाथजी ने मंदिर के पुजारी से कहा कि मेरा विचार प्रतिदिन कोल्हापुर के निवासी सभी स्त्री-पुरुषों को भोजन कराने का है, अतः तुम पूरे गांव में यह घोषणा प्रचारित कर दो कि कल से गांव के सब लोग इसी मंदिर में आकर भोजन किया करें।

पुजारी ने पूछा– "तुम स्वयं प्रतिदिन भिक्षा मांगकर भोजन करते हो, फिर सारे गांव को कहां से खिलाओगे?"

यह सुनकर नागनाथजी ने उसी समय मंत्र का जाप करके ढेरों भोजन सामग्री वहां उपस्थित कर दी। यह देखकर पुजारी को उनकी सामर्थ्य पर विश्वास हो गया। तब उसने सबसे पहले तो नागनाथजी के चरण छुए और यह कहा– "हे चमत्कारी पुरुष! मैंने आपके वचन पर अविश्वास करके जो अपराध किया है, उसके लिए आप मुझे क्षमा कीजिए।" फिर उसने संपूर्ण गांव में यह घोषणा प्रचारित करा दी कि कल से गांव के सब लोग लक्ष्मी मंदिर में ही आकर ही भोजन किया करें।

पुजारी सब लोगों को निमंत्रण देता हुआ गांव में घूमने लगा तो कुछ लोगों ने उससे पूछा कि तुम्हारे पास इतना धन कहां से आया, जो तुम सारे गांव को प्रतिदिन भोजन कराओगे। पुजारी ने उन्हें उत्तर दिया कि मेरे पास तो कुछ नहीं है, परंतु मेरे मंदिर में एक ऐसे चमत्मारी पुरुष आकर ठहरे हैं कि उन्होंने भोजन सामग्री से संपूर्ण मंदिर को भर दिया है। वे इच्छा

करते ही चाहे जितनी मात्रा में प्रत्येक वस्तु को उपस्थित कर सकते हैं। इस भोजन-भंडारे का निमंत्रण भी मैं उन्हीं महापुरुष के कहने से दे रहा हूं।

दूसरे दिन ग्राम-भोजन आरंभ हुआ। गांव के सब लोग भोजन करने के लिए लक्ष्मी मंदिर में गए। नागनाथजी ने सभी को उनकी इच्छा के अनुसार अत्यंत स्वादिष्ट भोजन कराया। सब लोग नागनाथ की जय-जयकार करने लगे। इस प्रकार ग्राम-भोजन का क्रम प्रतिदिन चलने लगा। उस गांव में भिक्षा मांगने के लिए जितने साधु-संन्यासी और भिक्षुक आया करते थे, गांव के लोग उनसे यह कहने लगे कि अब तुम्हें घर-घर भिक्षा मांगने की क्या आवश्यकता है। लक्ष्मी मंदिर में सब लोगों को हर समय मुफ्त भोजन मिलता है, सो अब तुम वहीं जाकर अपना भोजन प्राप्त कर लिया करो।

यह सुनकर गांव में बाहर से भिक्षा मांगने के लिए आने वाले साधु-संन्यासी, भिक्षुक आदि भी लक्ष्मी मंदिर में पहुंचकर भोजन प्राप्त करने लगे। गृहस्थों ने अपने घर से भिक्षा देना बंद कर दिया। इसका प्रभाव दत्तात्रेयजी पर भी पड़ा। वे प्रतिदिन वेष बदलकर भिक्षा मांगने के लिए कोल्हापुर गांव में पहुंचा करते थे। गांव के लोगों ने उनसे भी यही बात कही और उन्हें भिक्षा मिलना बंद हो गया।

दत्तात्रेयजी ने सोचा कि ऐसा कौन-सा आदमी यहां आ गया है, जो सब लोगों को भोजन कराता रहता है। उसे चलकर अवश्य देखना चाहिए।

यह विचारकर दत्तात्रेय लक्ष्मी मंदिर में गए। वहां उन्होंने जब नागनाथ को बैठे हुए देखा तो तुरंत समझ गए कि यह वही बालक है, जिसे बीस वर्ष पूर्व काशी में उन्होंने स्वयं ही सिद्धिमंत्र प्रदान किया था। दत्तात्रेयजी वहां से चुपचाप लौट आए।

दत्तात्रेयजी से पुनर्मिलन

ग्राम-भोजन का नियम चालू रहते हुए एक मास का समय व्यतीत हो गया, परंतु नागनाथ को दत्तात्रेयजी के दर्शन प्रापत नहीं हुए।

तब नागनाथ ने अपने मन में सोचा कि दत्तात्रेय जब यहां नित्य भिक्षा मांगने के लिए आते हैं तो उन्हें निश्चित रूप से यह ज्ञात हो गया होगा

कि यह ग्राम-भोजन तो सिद्धि का चमत्कार है। इसलिए वे मेरे पास न आकर लौट जाते होंगे। अतः अब मुझे ऐसा उपाय करना चाहिए, जिससे उनके दर्शन प्राप्त हो सकें।

यह विचारकर एक दिन नागनाथ ने ग्रामवासियों से कहा कि इस गांव में जो भी भिक्षुक भिक्षा मांगने के लिए आए, परंतु यहां आकर भोजन प्राप्त करना स्वीकार न करे, उसका पता लगाकर मुझे देना। मैं ऐसे भिक्षुक से भेंट करने का इच्छुक हूं।

ग्रामवासियों ने नागनाथ की इस बात को मान लिया। दूसरे दिन दत्तात्रेयजी भिक्षा मांगने के लिए कोल्हापुर में फिर पहुंचे। लोगों ने उनसे कहा- "आप लक्ष्मी मंदिर में जाकर भोजन प्राप्त कर लीजिए।" दत्तात्रेय ने उत्तर दिया कि मैं वहां भोजन प्राप्त करने के लिए नहीं जाऊंगा।

यह सुनकर गांव के कुछ लोगों ने दौड़कर नागनाथ को सूचना दी कि गांव में एक भिक्षुक ऐसा आया हुआ है, जो लक्ष्मी मंदिर में भोजन प्राप्त करने के लिए तैयार नहीं है।

यह सुनते ही नागनाथजी तुरंत अपने स्थान से उठकर उन लोगों के साथ चल दिए और उस स्थान पर जा पहुंचे, जहां भिक्षुक वेषधारी भगवान दत्तात्रेय खड़े हुए थे।

नागनाथ ने समीप पहुचते ही उस भिक्षुक के चरणों में गिरकर साष्टांग दंडवत् किया तथा हाथ जोड़कर कहा- "हे प्रभु! मैं कई वर्षों से आपके दर्शन प्राप्त करने के लिए भटक रहा हूं। आपसे मिलने के लिए ही मैंने यहां आकर ग्राम-भोजन का कार्यक्रम आरंभ किया है। अब आप मुझ पर अनुग्रह करें।"

यह सुनकर दत्तात्रेयजी नागनाथ को एकांत स्थान में ले गए। उन्हें अपना परम भक्त जानकर दत्तात्रेयजी ने मस्तक पर हाथ रखकर आशीर्वाद दिया और कहा- "हे नागनाथ! तुम आविर्होत्र नारायण के अवतार हो, इस बात को मैंने आज से बीस वर्ष पूर्व काशी में गंगातट पर देखते ही समझ लिया था और इसीलिए मैंने तुम्हें सिद्धि-मंत्र दिया था। अब तुम क्या चाहते हो, वह मुझसे कहो।"

नागनाथ ने हाथ जोड़कर कहा– "हे प्रभु! अब आप मुझे कल्याण का मार्ग बताइए।"

दत्तात्रेयजी बोले– "अच्छा! अब पहले तुम मेरे साथ काशीपुरी को चलो।"

नागनाथ चलने के लिए तैयार हो गए। तब दत्तात्रेयजी ने यानमंत्र से अभिमंत्रित भस्म को उनके मस्तक पर लगाया। थोड़ी ही देर में वे काशी. पुरी में जा पहुंचे। वहां पहुंचकर दोनों ने गंगाजी में स्नान करने के पश्चात् भगवान विश्वनाथ के दर्शन किए। उस समय भगवान शंकर ने दत्तात्रेयजी से पूछा– "आपके साथ यह दूसरा व्यक्ति कौन आया है?"

दत्तात्रेयजी ने उत्तर दिया– "ये आविर्होत्र नारायण के अवतार नागनाथ हैं।"

यह सुनकर शिवजी ने प्रसन्न होकर कहा– "हे दत्तात्रेयजी! आप नागनाथ को नाथ-पंथ की दीक्षा दीजिए तथा इन्हें सब विद्याओं का अभ्यास कराइए। मेरे आशीर्वाद तथा आपकी कृपा से इन्हें संसार में बहुत यश प्राप्त होगा।"

नाथनाथ की दीक्षा

शिवजी का आदेश मानकर दत्तात्रेयजी ने नागनाथ को काशीपुरी में ही छह महीने तक रहकर नाथ-पंथ की दीक्षा दी तथा समस्त विद्याओं का अभ्यास कराया। तत्पश्चात् दत्तात्रेयजी नागनाथ को बदरिकाश्रम में ले गए। वहां जाकर उन्होंने नागनाथ से बारह वर्ष तक तपस्या करने के लिए कहा। दत्तात्रेयजी की आज्ञानुसार नागनाथ ने वहां रहकर बारह वर्ष तक तप किया।

तपस्या पूरी हो जाने पर दत्तात्रेयजी ने समस्त देवताओं तथा ऋषियों को बुलाकर नागनाथ को आशीर्वाद दिलाया, जिससे उनकी विद्या सफल हुई। इस अवसर पर एक बहुत बड़ा उत्सव हुआ तथा सभी आगंतुकों को भोजन एवं दक्षिणा देकर संतुष्ट किया गया।

इस प्रकार नागनाथ को पूर्ण रूप से ज्ञानी तथा सिद्ध बनाकर दत्तात्रेयजी ने उन्हें तीर्थयात्रा करने की आज्ञा दी।

मत्स्येंद्रनाथ से युद्ध

दत्तात्रेयजी तो गिरिनार पर्वत पर जा विराजे और नागनाथ उनकी आज्ञा पाकर तीर्थाटन के लिए चले दिए। उन्होंने सब स्थानों के तीर्थों का भ्रमण किया। सैकड़ों-हजारों व्यक्ति उनके उपदेशों को सुनकर शिष्य तथा भक्त बने। वे जहां भी पहुचंते, वहीं उनके दर्शन पाने के लिए लोगों की भीड़ उमड़ पड़ती थी। चारों दिशाओं में उनका यश फैल गया। अनेक शिष्य उनकी सेवा में हर समय साथ रहने लगे।

विभिन्न स्थानों की यात्रा करने के उपरांत नागनाथजी बालेघाट के जंगल में जाकर रहने लगे। शिष्यों ने उनके लिए वहां पर्णकुटी बना दी। नागनाथ के दर्शनों के लिए लोगों की भीड़ उस स्थान पर भी पहुंचने लगी। बहुत से लोगों ने स्थायी रूप से वहीं रहना आरंभ कर दिया। धीरे-धीरे उस जगह एक गांव बस गया। उसका नाम लोगों ने 'बडवाल गांव' रख दिया।

एक बार मत्स्येद्रनाथजी तीर्थाटन करते हुए बालेघाट के जंगल में जा पहुंचे। वहां लोगों के मुंह से नागनाथ की प्रसंशा सुनकर उनसे भेंट करने की इच्छा लेकर वे बडवाल गांव में गए।

मत्स्येंद्रनाथजी ने कुटी के द्वार खोलकर भीतर जाने का प्रयास किया तो नागनाथ के शिष्यों ने उन्हें रोकते हुए कहा– "अभी आप हमारे गुरुजी से भेंट करने के लिए कुटी के भीतर नहीं जा सकते। पहले हम गुरुजी से जाकर आज्ञा ले आएं, उसके बाद आप भीतर जाइए।"

मत्स्येंद्रनाथजी को यह बात बहुत बुरी लगी। किसी साधु-संन्यासी अथवा योगी से भेंट करने के लिए भी आज्ञा लेने की क्या आवश्यकता है? उन्होंने शिष्यों की बात को अनसुना कर दिया और उन्हें एक ओर को हटाते हुए कुटिया के भीतर जाने लगे।

यह देखकर नागनाथ के सात सौ शिष्य मत्स्येंद्रनाथ के ऊपर एक साथ टूट पड़े। तब मत्स्येंद्रनाथजी ने स्पर्शास्त्र का प्रयोग करके उन सबके पांवों को पृथ्वी से चिपका दिया। इस स्थिति को देखकर उन्होंने रोना-चिल्लाना आरंभ कर दिया। उनके शब्द को सुनकर कुटी के भीतर बैठे हुए नागनाथ की समाधि भंग हो गई और वे क्रोध में भरे हुए कुटी के बाहर निकलकर मत्स्येंद्रनाथ के सामने आ पहुंचे।

नागनाथ ने सर्वप्रथम गरुड़ास्त्र के प्रयोग द्वारा अपनी रक्षा-व्यवस्था की। फिर उन्होंने विभक्तास्त्र का प्रयोग किया, जिसके कारण उनके शिष्यों के पांव पृथ्वी से अलग हो गए।

यह देखकर मत्स्येंद्रनाथ ने सब लोगों को एक साथ चूर-चूर कर देने के लिए पर्वतास्त्र का प्रयोग किया। उसके प्रभाव से आकाश में बड़े-बड़े पर्वत उड़कर आने लगे। इससे पूर्व कि वे पर्वत शिष्यों के ऊपर गिरें, नागनाथ ने वज्रास्त्र का प्रयोग करके उन पर्वतों को धूलि बनाकर उड़ा दिया।

तत्पश्चात् दोनों योगी अत्यंत क्रोध में भरकर एक-दूसरे के ऊपर विभिन्न अस्त्रों का प्रयोग करने लगे। कुछ देर बाद नागनाथ ने सर्पास्त्र का प्रयोग किया, उसके प्रभाव से बहुत से सर्प आकर मत्स्येंद्रनाथ को डसने लगे। उन्हें दूर करने के लिए जब मत्स्येंद्रनाथ ने गरुड़ास्त्र का प्रयोग किया तो वह निष्फल सिद्ध हुआ, क्योंकि नागनाथ ने गरुड़ास्त्र को तो सबसे पहले ही अपने बंधन में ले लिया था।

उस समय अपने अस्त्र के प्रयोग को निष्फल होते हुए देखकर मत्स्येंद्रनाथ को बड़ा आश्चर्य हुआ। उधर सर्प उन्हें डस रहे थे। उनके कष्ट से पीड़ित होकर मत्स्येंद्रनाथजी ने उच्च स्वर में दत्तात्रेय का स्मरण करते हुए इस प्रकार कहा– "हे गुरु दत्तात्रेयजी! इस समय आप ही आकर मेरी रक्षा कीजिए।"

मत्स्येंद्रनाथ के मुंह से दत्तात्रेयजी का नाम सुनकर नागनाथ उनके सामने जा पहुंचे और उनसे पूछने लगे– "तुम्हारे गुरु का नाम क्या है?"

मत्स्येंद्रनाथ ने उत्तर दिया– "मेरे गुरु दत्तात्रेय हैं।"

नागनाथ ने फिर पूछा– "तुम्हारा नाम क्या है?"

मत्स्येंद्रनाथ ने उत्तर दिया– "मेरा नाम मत्स्येंद्रनाथ है। मैं दत्तात्रेय का पहला शिष्य हूं। वे मेरे माता-पिता के समान हैं। अब तुम मुझे अपना भी नाम बताओ।"

नागनाथ ने कहा– "मेरा नाम नागनाथ है?"

"और तुम्हारे गुरु कौन हैं?"

"मेरे भी गुरु दत्तात्रेयजी हैं।" नागनाथ ने कहा– "हम दोनों एक ही गुरु के शिष्य होने के नाते गुरुभाई हैं। आप पहले शिष्य हैं, अतः आप मेरे बड़े भाई हैं और मैं आपका छोटा भाई हूं।"

यह कहकर नागनाथ ने गरुड़ास्त्र के बंधन को खोल दिया, जिसके फलस्वरूप गरुड़ों ने आकर सभी सर्पों को खा लिया और मत्स्येंद्रनाथ का कष्ट दूर हो गया।

तत्पश्चात् नागनाथ ने मत्स्येद्रनाथ के चरणों में गिरकर साष्टांग दंडवत् किया और अनजाने में हुए अपने अपराधों के लिए क्षमा मांगी।

मत्स्येंद्रनाथ ने उन्हें अपने हृदय से लगाते हुए कहा– "मैं तो तुमसे मिलने के लिए ही यहां आया था, परंतु पर्णकुटी में प्रवेश करते समय तुम्हारे शिष्यों ने मुझे रोक दिया, जिस कारण इतना सब उपद्रव खड़ा हुआ। योगियों को तो इस प्रकार अपनी कुटी के द्वार पर पहरा लगाने की आवश्यकता नहीं है। फिर क्या करण है, जो तुमने अपने शिष्यों को यह आदेश दे रखा था कि वे किसी को कुटी के भीतर प्रवेश न करने दें?"

नागनाथ ने उत्तर दिया– "जिस समय मैं पर्णकुटी में ध्यानस्थ बैठा होता हूं, उस समय बाहर के लोग आकर मेरा ध्यान भंग कर देते हैं। इसीलिए मैंने अपने शिष्यों को ऐसा आदेश दे रखा है।"

यह सुनकर मत्स्येंद्रनाथ ने कहा– "हे भाई! हम नाथ-पंथियों को तो अपनी ही प्रणाली के अनुसार चलना चाहिए। हमारे यहां रात्रि के समय ध्यान करने की व्यवस्था है। उस समय चारों ओर शांति होती है तथा किसी प्रकार का विघ्न होने की संभावना नहीं रहती। अतः हम लोगों को ध्यान और समाधि के कार्य रात्रि के समय ही करने चाहिए। दिन का समय अपने भक्तों, शिष्यों तथा दर्शनार्थियों के लिए सुरक्षित रखना चाहिए।"

नागनाथ ने मत्स्येंद्रनाथ की इस शिक्षा को स्वीकार कर लिया। तब मत्स्येंद्रनाथजी नागनाथ से विदा लेकर तीर्थाटन के लिए चले गए।

ब्रह्मा का उपदेश

नागनाथ के शिष्यों तथा भक्तों ने बडवाल गांव में एक बहुत बड़े मठ की स्थपना की। नागनाथ उसी में रहने लगे। मत्स्येंद्रनाथ की सम्मति के अनुसार वे केवल रात्रि के समय ही ध्यान एवं समाधि लगाया करते थे। दिन के समय उनके मठ के द्वार प्रत्येक व्यक्ति के लिए खुले रहते थे।

एक बार नागनाथ के गुलसंत नामक शिष्य की पत्नी मर गई। वह नागनाथ के पास जाकर जोर-जोर से रोने लगा। नागनाथ को दया आ गई। उनहोंने उसकी मृत पत्नी के शरीर को अपने पास मंगवाकर संजीवनी विद्या द्वारा उसे पुनर्जीवित कर दिया।

इस घटना की चर्चा चारों ओर फैल गई। उस दिन से सैकड़ों लोग रोगी तथा मृत व्यक्यिों को लेकर नागनाथजी के पास आने लगे। नागनाथ रोगियों को स्वस्थ बना देते थे तथा मृतकों को पुनर्जीवित कर दिया करते थे।

नागनाथ द्वारा जब हजारों मृत व्यक्तियों को पुनर्जीवित किया जाने लगा तो यमलोक में हलचल मच गई। यमराज ने ब्रह्माजी के पास जाकर प्रार्थना की कि मर्त्यलोक में नागनाथ सभी मृत व्यक्तियों को जीवित कर रहे हैं। यदि यही क्रम निरंतर चलता रहा तो फिर पृथ्वी का भार किस प्रकार हल्का होगा। प्राणियों को उनके कर्मों का फल किस प्रकार मिलेगा और नए प्राणियों के रहने के लिए मर्त्यलोक में स्थान कहां से आएगा? इसलिए आप जाकर नागनाथ को समझाने की कृपा करें कि वे भविष्य में मृत व्यक्तियों को पुनर्जीवित करना बंद कर दें।

यमराज की प्रार्थना सुनकर ब्रह्माजी नागनाथ के पास गए और उन्हें समझाते हुए बोले– "हे नागनाथ! यदि तुम सभी मृत प्राणियों को जीवित कर दिया करोगे तो फिर पृथ्वी का भार किस प्रकार हल्का होगा। दूसरे, जब लोगों को मृत्यु का भय ही नहीं रहेगा तो वे अधिक पापकर्म करने लगेंगे। इसलिए तुम मरे हुए लोगों को जीवित करना बंद कर दो। कभी किसी विशेष कारणवश किसी व्यक्ति को पुनर्जीवित कर देना तो ठीक हो सकता है, परंतु इस प्रकार हर व्यक्ति को पुनर्जीवित कर देना अच्छा नहीं है।"

ब्रह्माजी की इस सलाह को नागनाथ ने स्वीकार कर लिया। उसके बाद से उन्होंने मृत व्यक्तियों को पुनर्जीवित करने का काम बंद कर दिया।

इंद्र ने जब सोमयाग किया था, उस समय अन्य नाथयोगियों के साथ नागनाथ भी विमान में बैठकर अमरावती में गए थे। यज्ञ समाप्त हो जाने पर वे पुनः बडवाल गांव में लौट आए और वहीं रहते हुए समाधिस्थ हुए।

❖❖

नवनाथ चरित्र सागर

भाग-10

श्री चर्पटीनाथ-चरित्र

(पिप्पलायन नारायण के अवतार)

''मन में रहणा भेद न कहणा, बोलिका अमृत बाणी।
आगिका आगिनी होइबा अवधू, आपणा होइबा पाणी।।''

☆☆☆

''पहली कीये लड़का लड़की, अबहि पंथ मैं पैठा।
बूढ़े चमड़ै भसम लगाई, वज्रजती ह्वै बैठा।''

☆☆☆

''अमा मारूं बैठा मारूं, मायं जागत सूता।
तीन लोक मग जाल पसारया, कहां जायगौ पूता।''

☆☆☆

''अभी खंडौं, बैठा खंडौं जागत सूता।
तिहूं लोक मैं रहौ निरंतर, तौ गोरख अवधूता।।''

जन्म-कथा

शिव-पार्वती के विवाह में ब्रह्मा, विष्णु, इंद्र आदि सभी देवता तथा ऋषि, मुनि, गंधर्व, किन्नर आदि सम्मिलित हुए थे।

विवाह के समय पार्वतीजी नवयुवती थीं और उनका स्वरूप इतना सुंदर था कि उसका शब्दों में किसी भी प्रकार वर्णन नहीं किया जा सकता।

प्रजापति ब्रह्मा पार्वतीजी के उस अनुपम सौंदर्य को देखकर मोहित हो गए। फलस्वरूप अचानक ही उनका वीर्य स्खलित हो गया।

ब्रह्माजी ने लज्जित होकर अन्य लोगों की दृष्टि बचाते हुए उस वीर्य को अपने पांव की एड़ी से मसलकर बिखरा दिया। फलस्वरूप उस वीर्य का एक भाग साठ हजार हिस्सों में बंटकर एक ओर जा गिरा, उसमें से साठ हजार बालखिल्य[1] ऋषि उत्पन्न हुए। दूसरा भाग वहीं लग्न-मंडप में एक ओर पड़ा रहा। समारोह पूरा होने पर सेवकों ने आकर लग्न-मंडप की झाड़-पोंछ की। उसमें जो कूड़ा-करकट इकट्ठा हुआ, उसे उन्होंने गंगा नदी में पटक दिया। उसी कूड़े-करकट के साथ ब्रह्मा के वीर्य का दूसरा भाग भी गंगा के पानी में जा गिरा। फिर वह बहता हुआ गंगातट पर उगे हुए दर्भ (कुश) के पौधों से जा लिपटा। समय पाकर उसके भीतर पिप्पलायन नारायण प्रविष्ट हुए और उस वीर्य-बिंदु ने एक बालक का रूप ग्रहण कर लिया। वह बालक कुश की झाड़ियों के पास पड़ा-पड़ा रोने लगा।

---

1. ऋषियों का एक वर्ग। पुराणों के अनुसार ये आकार में अंगूठे के बराबर होते हैं और सूर्य के रथ के आगे चलते हैं। इनकी संख्या साठ हजार है।

सत्यश्रवा के घर में

पुनीत गांव में 'सत्यश्रवा' नामक एक ब्राह्मण रहता था। वह वेद-शास्त्रों का ज्ञाता, कर्मकांडी, धर्मात्मा तथा अत्यंत सुशील था। पौरोहित्यकर्म द्वारा वह अपनी आजीविका चलाता था। गांव के बालकों को पढ़ाना तथा यजमानों के यहां कर्मकांड संबंधी धार्मिक कृत्यों को संपन्न कराना यही उसके कार्य थे।

ब्राह्मणों को दर्भ (कुश) की आवश्यकता प्रायः पड़ती ही रहती है। एक दिन सत्यश्रवा दर्भ लेने के लिए गंगातट पर पहुंचा तो वहां उसने दर्भ की झाड़ियों के पास पूर्वोक्त परम तेजस्वी सुंदर स्वरूप वाले शिशु को अकेले पड़े हुए तथा रोते हुए देखा।

उस बालक को रोते हुए देखकर सत्यश्रवा को दया आ गई। उसने उसे अपनी गोद में उठा लिया। सत्यश्रवा की गोद में पहुंचते ही बालक ने रोना बंद कर दिया। उसी समय उस बालक के ऊपर आकाश से पुष्प-वृष्टि होने लगी।

आकाश से बालक के ऊपर पुष्प-वर्षा होती हुई देखकर सत्यश्रवा भयभीत हो गया। उसने समझा यह बालक कोई भूत-प्रेत न हो। तब उसने बालक को अपनी गोद से उतारकर फिर से दर्भ की झाड़ियों के पास रख दिया और स्वयं घर लौटने का उपक्रम करने लगा। उसी समय उसे यह आकाशवाणी सुनाई दी– 'हे ब्राह्मण! तू किसी प्रकार का भय मत कर। यह बालक पिप्पलायन नारायण का अवतार है। तू इसे अपने घर ले जा और इसका पालन-पोषण कर।'

इस आकाशवाणी को सुनकर भी जब सत्यश्रवा का भय दूर नहीं हुआ और वह बालक को वहीं छोड़कर घर लौट जाने को उद्यत हुआ तो देवताओं ने नारदजी को उसे समझाने के लिए भेजा।

नारदजी ब्राह्मण का वेष बनाकर सत्यश्रवा के पास गए और उससे कहने लगे– "हे ब्राह्मण! यह बालक भूत-प्रेत नहीं है। यह तो साक्षात् नारायण का अवतार है। इसीलिए देवतागण आकाश से इसके ऊपर पुष्प-वर्षा कर रहे हैं। तू इस बालक को अपने घर ले जा और इसका भली-भांति

पालन-पोषण कर। बड़ा होने पर यह बालक बहुत बड़ा योगी होगा और इसकी कीर्ति चारों दिशाओं में फैलेगी। तू इसका नाम 'चर्पटीनाथ' रखना। यह बालक तेरे कुल को तारने वाला सिद्ध होगा।''

यह सुनकर सत्यश्रवा का संदेह दूर हो गया। उसने बालक को अपनी गोद में उठा लिया। उसी समय आकाश से फिर पुष्प-वर्षा होने लगी। तब सत्यश्रवा को अच्छी तरह विश्वास हो गया कि यह बालक कोई अवतारी पुरुष है। सत्यश्रवा उस बालक को लेकर अपने घर जा पहुंचा। अपनी पत्नी चंद्रावती से उसने बालक का सब वृत्तांत कहा। चंद्रावती उस दैवी बालक को देखकर अत्यंत प्रसन्न हुई। जैसे ही उसने बालक को अपनी गोद में लिया, वैसे ही उसके स्तनों से दूध की धार बह निकली। यह देखकर सत्यश्रवा तथा उसकी पत्नी चंद्रावती, दोनों ही आनंदित हुए। चंद्रावती उस बालक का पालन-पोषण अपने पेट से उत्पन्न संतान की भांति करने लगी। बालक का नाम उन्होंने चर्पटीनाथ रख दिया।

नारद कुलंब के वेष में

जब बालक की आयु सात वर्ष की हुई, तब एक दिन नारदजी ब्राह्मण का वेष बनाकर सत्यश्रवा के घर गए। वहां जाकर जब उन्होंने यह देखा कि चर्पटीनाथ खूब अच्छी तरह रह रहा है तथा बहुत होशियार बन गया है तो उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई।

नारद ब्रह्माजी के पुत्र हैं। चर्पटीनाथ की उत्पत्ति भी ब्रह्मा के वीर्य से ही हुई थी। अतः नारद और चर्पटीनाथ, दोनों आपस में भाई हुए। नारदजी को अपने छोटे भाई चर्पटीनाथ पर विशेष स्नेह था।

सत्यश्रवा के घर चर्पटीनाथ को देखकर नारदजी बदरिकाश्रम में गए। वहां भगवान शंकर, दत्तात्रेय तथा मत्स्येंद्रनाथ से उनकी भेंट हुई। नारदजी ने उन्हें पिप्पलायन नारायण के अवतार चर्पटीनाथ के विषय में बताया। उस समय भगवान शंकर ने दत्तात्रेयजी से कहा- ''हे दत्तात्रेयजी! आपकी इच्छा नवनारायणों को 'नाथ' बनाने की है। अतः अब आप चर्पटीनाथ को भी दीक्षा देकर नाथ-पंथ में सम्मिलित कीजिए।''

यह सुनकर दत्तात्रेयजी ने उत्तर दिया– "हे शंकरजी! जब तक चर्पटीनाथ को किसी-न-किसी प्रकार का पश्चाताप नहीं होगा, तब तक वे दीक्षा के पात्र नहीं बन सकेंगे।" यह कहकर दत्तात्रेयजी ने नारदजी से कहा– "हे नारद! अब आप कोई ऐसा उपाय कीजिए, जिससे चर्पटीनाथ को पश्चाताप हो। उसके बाद मैं उन पर अपना अनुग्रह करूंगा।"

नारदजी ने ऐसा करना स्वीकार कर लिया।

बदरिकाश्रम से विदा होकर नारदजी एक ब्राह्मण विद्यार्थी का स्वरूप धारण कर सत्यश्रवा के घर गए। उस समय उन्होंने अपना नाम कुलंब रख लिया था।

उन्होंने सत्यश्रवा के पास जाकर उन्हें साष्टांग दंडवत् करने के उपरांत कहा– "हे महाराज! मैं आपके पास विद्या सीखने के लिए आया हूं। मैं आपके घर में विद्यार्थी के रूप में रहूंगा तथा भिक्षा मांगकर अपना निर्वाह करता रहूंगा। आप कृपा करके मुझे अपना शिष्य बना लीजिए।"

सत्यश्रवा ने पूछा– "तुम्हारा नाम क्या है?"

नारदजी ने उत्तर में कहा– "मेरा नाम कुलंब है।"

सत्यश्रवा ने कहा– "ठीक है, तुम मेरे घर में रहकर मेरे पुत्र चर्प. टीनाथ के साथ विद्याभ्यास करते रहना, परंतु तुम्हारी गुरुआनी तुम्हें जो भी काम सौंपे, वह तुम्हें करना पड़ेगा।"

कुलंब ने इसे स्वीकार कर लिया। उस दिन से कुलंबरूपी नारदजी सत्यश्रवा के घर में रहकर चर्पटीनाथ के साथ विद्याभ्यास करने लगे।

चर्पटीनाथ का यजमान से झगड़ा

सत्यश्रवा जिस गांव में रहते थे, उस गांव के पुरोहित, गुरु एवं जोशी का काम भी वे ही करते थे। यजमानों के घर जाकर कर्मकांड संबंधी क्रियाओं को संपन्न कराना उनका मुख्य कार्य था। एक दिन गांव में किसी यजमान के घर कोई मांगलिक संस्कार संपन्न होना था। उसी दिन सत्यश्रवा किसी अन्य कार्य में व्यस्त थे। चर्पटीनाथ कर्मकांड संबंधी क्रियाएं कराने में कुशलता प्राप्त कर चुके थे। अतः उस दिन सत्यश्रवा ने

चर्पटीनाथ को उस यजमान के घर संस्कार करा आने के लिए कहा और उनकी सहायता के लिए कुलंब को भी साथ भेज दिया।

चर्पटीनाथ और कुलंब दोनों ही यजमान के घर पहुंचे। वहां उन्होंने उस संस्कार को यथाविधि संपन्न कराया। अंत में जब यजमान आचार्य-दक्षिणा देने के लिए प्रस्तुत हुआ, उस समय कुलंब ने चर्पटीनाथ को यह सलाह दी कि हम लोग अभी ब्रह्मचारी तथा विद्यार्थी हैं, इसलिए हमें दक्षिणा नहीं लेनी चाहिए। इसके अतिरिक्त हमें छोटी आयु का बालक समझकर यजमान कम दक्षिणा भी दे सकता है। अतः इस समय हमें दक्षिणा लिये बिना ही घर लौट जाना चाहिए। बाद में अवकाश मिलने पर तुम्हारे पिताजी आकर दक्षिणा ले जाएंगे।

कुलंब की इस बात को सुनकर चर्पटीनाथ ने कहा– "बिना दक्षिणा लिये खाली हाथ लौटना ब्राह्मण को शोभा नहीं देता। अतः यजमान यदि दक्षिणा दे रहा है तो मैं उसे अवश्य स्वीकार करूंगा।"

यह सुनकर कुलंब चुप रह गया। तब यजमान ने हाथ में अल्प दक्षिणा लेकर चर्पटीनाथ से संकल्प बोलने के लिए कहा।

उस समय दक्षिणा की राशि को कम देखकर चर्पटीनाथ ने यजमान से कहा– "यह दक्षिणा तो बहुत कम है।"

यजमान से उत्तर दिया– "महाराज! दक्षिणा कम नहीं है। मेरी जितनी सामर्थ्य है, उसी के अनुसार मैं आपको दक्षिणा दे रहा हूं।"

चर्पटीनाथ बोले– "तुम मुझे छोटी आयु का बालक देखकर दक्षिणा कम दे रहे हो, परंतु ऐसा करना तुम्हें उचित नहीं है। विद्या में आयु के कम-अधिक होने से कोई अंतर नहीं पड़ता। मैंने तुम्हारे संस्कार को यथाविधि संपन्न कराया है, अतः तुम्हें दक्षिणा भी पूरी देनी चाहिए।"

यजमान बोला– "इससे अधिक दक्षिणा देने में मैं असमर्थ हूं।"

चर्पटीनाथ ने कहा– "तुम धनवान हो, यह इसी से सिद्ध होता है कि इस संस्कार के समय तुमने अन्य कार्यों में प्रभूत धनराशि व्यय की है। केवल मुझे दक्षिणा देने में ही तुम कृपणता प्रदर्शित कर रहे हो, ऐसा करना उचित नहीं है।"

यजमान ने फिर कहा– "मैं दक्षिणा देने में कृपणता नहीं कर रहा। इससे अधिक दने की सामर्थ्य मुझमें नहीं है।"

चर्पटीनाथ बोले– "मैं इतनी कम दक्षिणा नहीं लूंगा।"

जिस समय यजमान और चर्पटीनाथ के बीच दक्षिणा के संबंध में विवाद चल रहा था, उसी समय कुलंब ने सत्यश्रवा के पास पहुंचकर उसे इस विवाद की सूचना दी। सत्यश्रवा उसे सुनकर यजमान के घर जा पहुंचे।

चर्पटीनाथ को पश्चाताप

यजमान के घर जाकर सत्यश्रवा ने जब चर्पटीनाथ को विवाद करते हुए देखा तो उन्होंने चर्पटीनाथ के दो-तीन तमाचे जड़ दिए और कहा कि तुम्हें यजमान के साथ इस प्रकार झगड़ा करना उचित नहीं था।

पिता के चांटों ने आग में घी का काम किया। वे अत्यंत क्रुद्ध होकर वहां से चल दिए और गांव के बाहर एक देवी के मंदिर में जा बैठे। मंदिर में बैठे हुए चर्पटीनाथ सोचने लगे– 'कुलंब ने पहले ही दक्षिणा न लेने की सलाह दी थी।' परंतु मैंने उसकी सम्मति नहीं मानी। फलस्वरूप मुझे यजमान के सामने ही अपने पिता द्वारा अपमानित होना पड़ा। इससे अधिक दुःख की बात और क्या होगी?' इस प्रकार विचार करते हुए चर्पटीनाथ पश्चाताप करने लगे। उसी समय नारदजी एक ब्राह्मण का वेष बनाकर उस मंदिर में जा पहुंचे। वहां उन्होंने चर्पटीनाथ को उदास तथा दुःखी बैठे हुए देखकर पूछा– "हे वत्स! तुम यहां ऐसी चिंतित अवस्था में क्यों बैठे हुए हो?"

चर्पटीनाथ ने संपूर्ण घटना कह सुनाई और बोले– "पिता ने यजमान के सामने मेरा जो अपमान किया है, उससे मैं अत्यंत दुःखी हुआ हूं।"

नारदजी ने उन्हें और उत्तेजित करने की दृष्टि से कहा– "तुम्हारा पिता सत्यश्रवा मूर्ख है। उसे अपनी इतनी बड़ी आयु के बालक को यजमान के सामने चांटे मारकर अपमानित नहीं करना चाहिए था। तुम्हारे स्थान पर यदि मैं होता तो ऐसे मूर्ख पिता का जीवनभर मुंह नहीं देखता तथा वन को चला जाता।"

चर्पटीनाथ यह सुनकर बोले– "पिता के व्यवहार को देखकर मुझे भी दुःख हुआ है और अब मैं भी अपने घर लौटकर नहीं जाना चाहता,

परंतु मेरे घर में कुलंब नामक मेरा एक सहपाठी रहता है। वह मेरा मित्र है। मैं उससे एक बार भेंट करना चाहता हूं। यदि आप किसी प्रकार उसे खबर दे सकें और उसे यहां आने के लिए कह दें तो मैं आपका अत्यंत आभारी होऊंगा।''

वृद्ध ब्राह्मण वेषधारी नारद ने चर्पटीनाथ की प्रार्थना स्वीकार कर ली। बोले– ''मैं तुम्हारे घर जाकर कुलंब को अभी समाचार दे देता हूं और उसे यहां भेजे देता हूं।''

यह कहकर ब्राह्मण वेषधारी नारद मंदिर से बाहर निकल गए। कुछ देर बाद वे कुलंब का स्वरूप धारण कर पुनः चर्पटीनाथ के पास जा पहुंचे। कुलंब के आ जाने पर चर्पटीनाथ ने उससे अपने मन की वेदना बताई और यह भी कहा कि अब मैं अपने घर नहीं जाऊंगा, इसलिए मुझे किसी अन्य स्थान पर ले चलो।

यह सुनकर कुलंब ने उत्तर दिया– ''पहले हम लोगों को बदरिकाश्रम में जाकर भगवान शंकर के दर्शन करने चाहिए। तत्पश्चात् काशीपुरी में जाकर विद्याभ्यास करना चाहिए।'' चर्पटीनाथ को यह बात पसंद आ गई। तब वे कुलंब के साथ बदरिकाश्रम की ओर चल दिए।

चर्पटीनाथ को दीक्षा

बदरिकाश्रम में जाकर दोनों ने भगवान शंकर के दर्शन किए। वहीं पर दत्तात्रेयजी तथा मत्स्येंद्रनाथ के साथ उनकी भेंट हुई। दोनों ने उन्हें नमस्कार किया। वहीं पर नारदजी ने चर्पटीनाथ को यह बताया– ''मैं नारद हूं। हम दोनों के पिता ब्रह्माजी हैं, इसलिए हम दोनों परस्पर भाई-भाई हैं। मैं तुम्हारी उन्नति के लिए ही विभिन्न रूप धारण करके तुम्हारे साथ रहता चला आया हूं।''

यह सुनकर चर्पटीनाथ ने कुलंब से जब अपने नारदस्वरूप को प्रदर्शित करने के लिए कहा तो नारदजी ने उन्हें यह उत्तर दिया– ''पहले तुम दीक्षा ले लो, उसके बाद तुम मेरे यथार्थ स्वरूप के दर्शन प्राप्त करने के अधिकारी बन जाओगे। तब मैं तुम्हें अपने नारदस्वरूप का दर्शन कराऊंगा।''

चर्पटीनाथ ने पूछा– "मैं किससे दीक्षा लूं?"

नारदजी ने उत्तर दिया– "तुम यहीं पर भगवान दत्तात्रेयजी से दीक्षा ग्रहण करो।"

यह कहकर नारदजी ने चर्पटीनाथ को दत्तात्रेयजी के पास ले जाकर कहा– "हे दत्तात्रेयजी! ये चर्पटीनाथ पिप्पलायन नारायण के अवतार, ब्रह्माजी के पुत्र तथा मेरे भाई हैं। ये सत्यश्रवा नामक एक ब्राह्मण के घर में पले हैं और वहीं रहकर इन्होंने विद्याभ्यास किया है। अपनी एक भूल के कारण इन्हें पश्चाताप भी हो चुका है। अब मैं इन्हें लेकर आपकी सेवा में आया हूं। आप इन्हें दीक्षा देने की कृपा कीजिए।"

नारदजी की बात सुनकर दत्तात्रेयजी ने प्रसन्न होकर चर्पटीनाथ के मस्तक पर हाथ रखा तथा उनके कान में मंत्र फूंककर नाथ-पंथ की दीक्षा दी। मंत्रोपदेश प्राप्त करते ही चर्पटीनाथ का अज्ञान नष्ट हो गया और उन्हें संपूर्ण जगत् ब्रह्ममय भासित होने लगा। तब दत्तात्रेयजी ने उन्हें अपने पास रखकर वेद-वेदांग तथा अस्त्र-शस्त्र विद्याओं का अभ्यास कराया। जब वे सब विद्याओं में कुशल हो गए, तब उन्हें अठारह वर्ष तक तपस्या करने की आज्ञा दी।

बदरिकाश्रम में बारह वर्ष तक रहकर चर्पटीनाथ ने घोर तप किया। तपस्या पूरी हो जाने पर दत्तात्रेयजी ने उन्हें नागअश्वत्थ वृक्ष के नीचे ले जाकर सब देवताओं का आशीर्वाद दिलाया। वहीं पर चर्पटीनाथ ने नौ करोड़ सात लाख साबरी मंत्रों की रचना भी की।

जब चर्पटीनाथ सब विद्याओं में पारंगत हो गए और उन्हें सब देवताओं का आशीर्वाद प्राप्त हो गया, तब दत्तात्रेयजी ने उन्हें तीर्थयात्रा करने का आदेश दिया।

दत्तात्रेयजी की आज्ञा पाकर चर्पटीनाथ तीर्थाटन के लिए निकल पड़े। दत्तात्रेयजी वहां से गिरिनार पर्वत को चले गए।

चर्पटीनाथ देवलोक में

मर्त्यलोक के सब तीर्थों की यात्रा पूरी करने के बाद चर्पटीनाथ पाताललोक में गए। जब वे वहां के भी सब तीर्थस्थानों का भ्रमण कर

चुके, तब उन्होंने देवलोक के तीर्थों की यात्रा करने का विचार किया। अस्तु, यानास्त्र मंत्र द्वारा अभिमंत्रित भस्म को अपने ललाट पर लगाकर सबसे पहले वे ब्रह्मलोक में गए।

ब्रह्माजी ने जब अपने पुत्र को आया हुआ देखा तो उन्हें अत्यंत प्रसन्नता हुई। उन्होंने अत्यंत प्रेम सहित चर्पटीनाथ को अपनी गोद में बैठाकर आशीर्वाद दिया। ब्रह्माजी के आग्रह पर चर्पटीनाथ एक वर्ष तक ब्रह्मलोक में रहे। वहीं पर नारदजी भी थे। नारद ने वहां पर चर्पटीनाथ को अपने यथार्थ रूप का दर्शन कराया। तब उन दोनों के बीच का स्नेह और भी अधिक बढ़ गया।

इंद्र से तकरार

एक बार नारदजी अमरावती में देवराज इंद्र से भेंट करने के लिए गए थे। उस समय इंद्र ने 'आइए कलियुग के नारद' कहकर उनका उपहास किया था। नारदजी ने उसी समय अपने मन में यह निश्चय कर लिया था कि वे किसी समय इंद्र को इस अशिष्टता एवं व्यंग्य का दंड अवश्य दिलाएंगे।

चर्पटीनाथ जब देवलोक में आकर एक वर्ष के लिए रहे तो नारदजी ने उनके द्वारा इंद्र से अपने अपमान का बदला लेने का निश्चय किया। एक दिन चर्पटीनाथ ने अमरावतीपुरी में जाने का विचार किया। उन्होंने नारद से अपनी इच्छा प्रकट की। नारदजी तो चाहते ही थे। वे उन्हें तुरंत अपने साथ लेकर इंद्रपुरी को चल दिए। मार्ग में नारदजी ने चर्पटीनाथ को गमन-कला की सिद्धि दी, जिसके कारण उन्हें यह सामर्थ्य प्राप्त हो गई कि वे पलभर में ही चाहे जहां पहुंच सकें।

ये दोनों इंद्र के सुप्रसिद्ध बाग नंदन वन में जा पहुंचे। उस बाग में खिले हुए सुंदर फूलों को देखकर चर्पटीनाथ के मन में विचार आया कि इन फूलों को तोड़कर अपने पिता ब्रह्माजी के चरणों पर चढ़ाना चाहिए। अस्तु, उन्होंने नंदन वन से सुंदर-सुंदर बहुत से फूल तोड़ लिये और गमन-कला की सिद्धि के प्रयोग द्वारा तुरंत ही ब्रह्मलोक में जाकर उन्हें ब्रह्माजी के चरणों पर चढ़ा दिया।

इस काम को वे प्रतिदिन करने लगे। एक दिन बाग के मालियों को पता चल गया कि यहां पर जो जोगी ठहरा हुआ है, वह प्रतिदिन नंदन वन के फूलों को तोड़कर कहीं ले जाता है।

प्रतिदिन ढेरों फूलों के टूटने से जब बाग की शोभा में कमी आने लगी, तब एक दिन मालियों ने चर्पटीनाथ को फूल तोड़ने से रोका। जब चर्पटीनाथ नहीं माने तो वे सब मिलकर उन पर आक्रमण करने के लिए दौड़ पड़े। यह देखकर चर्पटीनाथ ने स्पर्शास्त्र तथा वाताकर्षण अस्त्र का प्रयोग करके उन सबके पांवों को पृथ्वी से चिपका दिया। उस स्थिति में कुछ माली मर गए, कुछ घायल हो गए और कुछ रोने-चिल्लाने लगे।

जो माली आक्रमण करने के लिए नहीं दौड़े थे, उनमें से कुछ ने इंद्र के दरबार में जाकर यह सब घटना कह सुनाई। इंद्र यह सब सुनकर अत्यंत क्रुद्ध हुआ। उसने अपनी देवसेना को आदेश दिया कि वे जाकर योगी को पकड़ लाएं। देवताओं की सेना जब नंदन वन में पहुंची तो चर्पटीनाथ ने वाताकर्षण मंत्र से अभिमंत्रित भस्म उनकी ओर फेंक दी। उसके प्रभाव से उन सब देवताओं की भी वहीं दशा हुई, जो मालियों की हुई थी। कुछ दूतों ने दौड़कर यह समाचार भी इंद्र से जा कहा।

तब इंद्र अत्यंत क्रोधित होकर ऐरावत हाथी पर बैठकर स्वयं युद्ध करने के लिए नंदन वन में जा पहुंचा। वहां जाकर उसने देखा कि एक योगी खड़ा हुआ है, जिसके हाथ में कोई हथियार नहीं है, परंतु वह लड़ने के लिए आने वाले प्रत्येक व्यक्ति को पृथ्वी पर गिरा रहा है।

उस समय नारदजी वहां से चुपचाप कहीं अन्यत्र खिसक गए थे।

इंद्र ने अपने मन में सोचा कि इस योगी पर विजय पाने के लिए मुझे योगीराज शंकर की सहायता लेनी चाहिए। अतः इंद्र पहले शिवजी के पास गया और उनसे मदद करने की प्रार्थना की। इंद्र की प्रार्थना सुनकर शिवजी योगी से लड़ने के लिए उसके साथ नंदन वन में जा पहुंचे।

शिव तथा विष्णु से युद्ध

इंद्र तथा शंकर को अपनी सेना सहित लड़ने के लिए आया हुआ देखकर चर्पटीनाथ ने पुनः वाताकर्षण मंत्र का प्रयोग किया। उसके प्रभाव से इंद्र और शंकर की भी बहुत बुरी हालत हुई। उस समय नारदजी ने इंद्र के पास जाकर कहा– "तुमने मुझे 'कलियुग का नारद' कहकर व्यंग्य किया था, यह सब उसी का परिणाम है।" नारदजी की बात सुनकर इंद्र लज्जित हो गया।

उसी समय शिवजी के कुछ दूत विष्णु के पास जा पहुंचे ओर उन्हें नंदन वन की संपूर्ण घटना का विवरण सुनाते हुए सहायता करने के लिए चलने को कहा।

विष्णुजी अपने गणों को साथ लेकर नंदन वन में पहुंच गए। यह देखकर चर्पटीनाथ ने सर्वप्रथम विष्णुजी के सुदर्शन चक्र पर मोहनास्त्र का प्रयोग किया। तदुपरांत उन्होंने विष्णुजी पर भी वाताकर्षण मंत्र का प्रयोग कर दिया। विष्णुजी ने अपनी दुर्दशा देखकर जब सुदर्शन चक्र को चर्पटीनाथ के ऊपर छोड़ा, तब मोहनास्त्र से मोहित वह चक्र चर्पटीनाथ के पास तक जाकर उन्हें नमस्कार करने के बाद पुनः विष्णुजी के पास लौट गया।

चर्पटीनाथ पिप्पलायन नारायण के अवतार होने के कारण विष्णु के ही एक अंश थे, अतः अपने स्वामी के अंशरूप पर प्रहार करने की क्षमता सुदर्शन चक्र में नहीं थी, इसीलिए वह उन्हें प्रणाम करने के उपरांत लौट गया था।

तब चर्पटीनाथ ने विष्णु के पास पहुचंकर उनके गले में से वैजयंतीमाल को उतारकर अपने कंठ में धारण कर लिया। इसी प्रकार उन्होंने विष्णु के आयुध शंख, चक्र, गदा, पद्म तथा मुकुट उतारकर स्वयं धारण कर लिये। फिर उन्होंने शंकर के पास जाकर उनका डमरू एवं त्रिशूल भी ले लिया। इसके बाद वे उन सब वस्तुओं को लिये हुए ब्रह्मलोक में ब्रह्माजी के पास जा पहुंचे।

ब्रह्माजी ने जब उनके पास विष्णु तथा शिव के आयुधों को देखा तो उनसे पूछा कि तुम इन सब वस्तुओं को कहां से लाए हो? चर्पटीनाथ ने उन्हें सब घटना कह सुनाई। तब ब्रह्माजी ने यह कहा– "हे पुत्र! विष्णु तो तुम्हारे पिता के समान हैं और शिवजी सब प्राणियों के आराध्य देव हैं। उनकी ऐसी दशा करके तुमने अच्छा नहीं किया। यदि विष्णु और शिव की मृत्यु हो गई तो फिर सृष्टि का संचालन कौन करेगा? उनके अभाव में तीनों लोक निराधार हो जाएंगे। अतः तुम अपनी विद्या के प्रभाव को उनके ऊपर से हटा दो और उनके पांवों पर गिरकर क्षमा मांगो। जहां तक इंद्र का प्रश्न है, उसे दंड देकर तुमने उचित कार्य किया है, परंतु शिवजी तथा विष्णुजी के प्रति तो तुम्हें अत्यंत विनम्र बने रहना चाहिए।"

यह कहकर ब्राह्मजी चर्पटीनाथ को साथ लेकर नंदन वन में जा पहुंचे। वहां जाकर ब्रह्माजी की आज्ञा से चर्पटीनाथ ने अपने वाताकर्षण मंत्र के प्रभाव को दूर कर दिया। तब सब देवताओं की मूर्च्छा भंग हुई तथा जो लोग मर गए थे, वे सब पुनर्जीवित हो गए। घायलों के शरीर भी स्वस्थ हो गए। उस समय सर्वत्र प्रसन्नता की लहर दौड़ गई। सब लोग चर्पटीनाथ की जय-जयकार करने लगे।

संधि और आशीर्वाद

ब्रह्मा ने चर्पटीनाथ के साथ जाकर विष्णु तथा शिवजी को नमस्कार किया। उस समय विष्णुजी ने ब्रह्मा से पूछा– "तुम्हारे साथ यह जो योगी है, यह कौन है?"

ब्रह्माजी ने उन्हें चर्पटीनाथ का संपूर्ण परिचय दिया। तत्पश्चात् चर्पटीनाथ को इंद्र के साथ युद्ध क्यों करना पड़ा था, इस पर भी उन्होंने विस्तारपूर्वक प्रकाश डाला।

उस समय इंद्र ने चर्पटीनाथ के चरणों में गिरकर अपने अपराध के लिए क्षमा मांगी। उसने नारदजी से भी क्षमायाचना की। तब ब्रह्मा, विष्णु और शिवजी ने इंद्र के साथ चर्पटीनाथ की संधि करा दी तथा चर्पटीनाथ को अनेक आशीर्वाद दिए। तदुपरांत सब देवता अपने-अपने स्थान को चले गए। ब्रह्माजी चर्पटीनाथ को साथ लेकर ब्रह्मलोक में लौट आए।

इंद्र का सोमयाग

कुछ समय बाद ब्रह्माजी चर्पटीनाथ को साथ लेकर श्रावणीपर्व पर गंगा-स्नान करने के लिए काशीपुरी में गए। वहां मणिकर्णिका घाट पर अन्य सब देवता भी स्नान करने के लिए पहुंचे थे। ब्रह्माजी ने उन सबसे चर्पटीनाथ का परिचय कराया। उन सबने चर्पटीनाथ को आशीर्वाद देकर कृतार्थ किया।

वहां से ब्रह्माजी तो अपने लोक को चले गए और चर्पटीनाथ तीर्थयात्रा के लिए निकल पड़े। पृथ्वी के सब तीर्थों की यात्रा करने के बाद वे पाताललोक में गए। वहां उन्होंने भोगावती नदी में स्नान किया तथा राजा बलि और वामन भगवान से भेंट की। तदुपरांत पृथ्वी पर आकर उन्होंने ताम्रपर्णी नदी में स्नान किया और उसी नदी के तट पर आश्रम बनाकर रहने लगे।

चर्पटीनाथ से युद्ध में हार जाने के बाद से देवराज इंद्र अत्यधिक लज्जित बने रहा करते थे। एक दिन उन्होंने अपने गुरु बृहस्पतिजी से यह प्रार्थना की कि आप मुझे कोई ऐसा उपाय बताइए, जिससे मैं नाथयोगियों की विद्या को सीख सकूं, अन्यथा इन नाथयोगियों की विद्या के समक्ष मुझे सदैव लज्जित होते रहना पड़ेगा।

यह सुनकर बृहस्पति ने इंद्र को यह परामर्श दिया कि तुम सोमयाग का आयोजन करो। उसमें अन्य ऋषि-मुनियों के साथ नाथ-पंथी योगियों को भी आमंत्रित करो। उस यज्ञ की अवधि में ही तुम किसी उपाय से उनकी विद्या को सीख लेना।

बृहस्पतिजी की सलाह मानकर इंद्र ने यह सोमयाग किया। उसमें देवताओं तथा ऋषि-मुनियों के अतिरिक्त नाथ-पंथी योगियों को भी आमंत्रित किया गया। अन्य नाथयोगियों के साथ मत्स्येंद्रनाथ भी उस यज्ञ में सम्मिलित होने के लिए गए थे।

वह यज्ञ एक वर्ष तक चला। उस अवधि में मत्स्येंद्रनाथजी ने वहीं रहकर अपने पुत्र मीननाथ को नाथ-पंथ की शास्त्रास्त्र विद्या की शिक्षा देने का निश्चय किया। वे एक वृक्ष के नीचे बैठकर मीननाथ को नाथ-पंथी विद्याओं की दीक्षा देने लगे। इंद्र मोर का रूप धारण करके उस वृक्ष पर बैठ जाता था और मत्स्येंद्रनाथजी मीननाथ को जो विद्याएं सिखा रहे थे, उन

सबको गुप्त रूप से स्वयं भी सीख लेता था। इस प्रकार इंद्र ने नाथ-पंथ की संपूर्ण विद्याओं को सीख लिया। यज्ञ की समाप्ति के समय इंद्र ने मत्स्येंद्रनाथजी को यह बात बता दी और अनेक प्रकार से अनुनय-विनय करके अपने अपराधों की क्षमा मांगते हुए यह प्रार्थना की कि वे उसे अपना आशीर्वाद देने की कृपा करें, जिससे सीखी हुई विद्या सफल हो सके।

मत्स्येंद्रनाथ पहले तो नाराज हुए, परंतु बाद में अन्य लोगों समझाने-बुझाने पर उन्होंने इंद्र को आशीर्वाद दे दिया। इस घटना का विस्तृत वर्णन एक पिछले अध्याय में किया जा चुका है।

इंद्र के सोमयाग में सम्मिलित होने के लिए चर्पटीनाथ भी विमान में बैठकर गए थे। यज्ञ समाप्त हो जाने पर वे ताम्रपर्णी नदी के तटवर्ती अपने आश्रम में ही फिर लौट आए और बाद में वहीं पर समाधिस्थ भी हुए।

नवनाथ चरित्र सागर

भाग-11
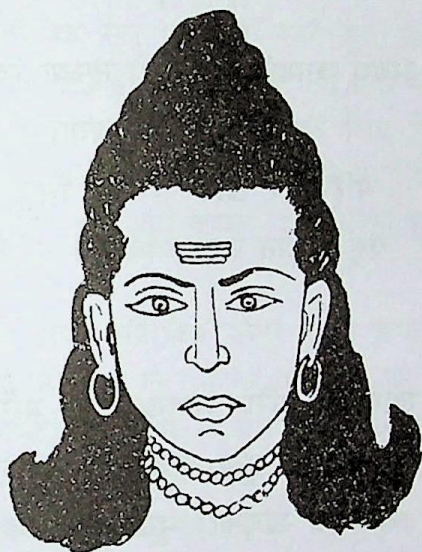
श्री चौरंगीनाथ-चरित्र

(श्री मत्स्येंद्रनाथ के शिष्य)

मारिबा तौ मन मीर मारिबा।
लूटिबा पवन भंडारं।।

☆☆☆

अवधू वनखंड जाऊं तो खुध्या वियापै,
नगरी जाऊं त माया।
भरि-भरि खाऊं त बिंद बियापै,
क्यूं सीझत जल ब्यंब की काया।।

☆☆☆

खाये भी मरिए अणखाऐ भी मरिए।
गोरख कहै पूता संजमि ही तरिए।।
धाये ना खाइबा, भूखे न मरिबा।
अह निसि लेवा ब्रह्म अगिनि का भवं।।
हठ न करिबा, पड़े न रहिबा।
यूं बोल्या गोरख देवं।।

शशांगर को पुत्र-प्राप्ति

किसी समय कौंडिन्यपुर में शशांगर नामक एक राजा राज्य करता था। वह ज्ञानी, सद्गुणी तथा प्रजापालक था। उसकी रानी का नाम मंदाकिनी था। वह भी पतिव्रता, सुशीला एवं धर्मपरायण थी।

राज्य-वैभव आदि के सब सुखों के रहते हुए भी राजा को सबसे बड़ा-दुख यह था कि उसकी कोई संतान नहीं थी। एक बार राजा के मन में यह विचार उठा कि मैं पुत्र-प्राप्ति के लिए शिवजी को प्रसन्न करूं। अपने विचार को कार्यरूप में परिणत करने के लिए राजा ने सेतुबंध रामेश्वर की यात्रा करने और वहां जाकर शिवजी की पूजा एवं तप करने का निश्चय किया।

एक दिन राजा अपने मंत्री के ऊपर राज्य-संचालन का कार्यभार छोड़कर अपनी पत्नी को साथ ले रामेश्वर की यात्रा पर चल पड़ा। मार्ग में कृष्णा नदी तथा तुंगभद्रा का संगम-स्थल पड़ा। राजा-रानी ने वहां ठहरकर स्नान किया। संगम में स्नान करके लौटते समय राजा को एक स्थान पर शिवलिंग दिखाई दिया। उसे देखकर राजा ने यह मान लिया कि शिवजी ने मुझे यहीं पर दर्शन दे दिए हैं, अतः अब मुझे सेतुबंध रामेश्वर तक जाने की आवश्यकता नहीं है।

अस्तु, राजा ने वहीं एक स्थान पर उस शिवलिंग की स्थापना करके प्राण-प्रतिष्ठा कराई। उसी रात शिवजी ने भी राजा को स्वप्न में दर्शन देकर यह कहा कि अब तुझे रामेश्वर जाने की आवश्यकता नहीं है। तेरी मनोकामना यहीं पर पूरी हो जाएगी।

इस स्वप्न को देखकर राजा की श्रद्धा और बढ़ी। वह अपनी रानी सहित वहीं रहकर रामेश्वर महादेव की सेवा-पूजा करने लगा। संगम में स्नान करना और संगमेश्वर महादेव का भजन-पूजन करना यही उसका नित्य का कृत्य बन गया। इसी प्रकार कुछ समय व्यतीत हो गया।

एक दिन राजा कृष्णा नदी में स्नान करने के उपरांत सूर्य को अर्घ्य दे रहा था, उसी समय उसने अपनी अंजुलि में एक छोटे से शिशु को देखा। राजा ने समझा कि संगमेश्वर महादेव ने कृपा करके उसे यह बालक दिया है। देखते-देखते वह बालक बढ़कर पूर्ण शिशु के आकार का हो गया। राजा के हर्ष की सीमा न रही। वह उसे गोद में लेकर रानी के पास जा पहुंचा। रानी उसे देखकर अत्यंत प्रसन्न हुई। राजा ने रानी से उस बालक के प्राप्त होने का संपूर्ण वृत्तांत कह सुनाया। रानी ने जैसे ही उस बालक को अपनी गोद में लिया, वैसे ही उसके स्तनों से दूध की धारा बहने लगी। बालक रानी का स्तनपान करने लगा। यह देखकर राजा-रानी को और भी विश्वास हो गया कि यह दैवी बालक शिवजी की कृपा से ही प्राप्त हुआ है।

दसवें दिन शास्त्र की विधि से उस बालक का नामकरण-संस्कार कराया गया। राजा को वह बालक कृष्णा नदी में प्राप्त हुआ था, अतः पंडितों ने उसका नाम 'कृष्णागर' रखा। कुछ दिन वहां रहने के उपरांत राजा उस बालक को लेकर अपनी राजधानी को लौट गया।

प्रजा को जब यह पता चला कि संगमेश्वर महादेव की कृपा से राजा को कृष्णा नदी में खड़े होकर सूर्यनारायण को अर्घ्य देते समय बालक की प्राप्ति हुई है तो उस राज्य के निवासी सभी स्त्री-पुरुषों ने बड़े समारोहपूर्वक उत्सव मनाया। राज्यभर में चारों ओर प्रसन्नता व्याप्त हो गई। लोग कृष्णागर को देखने के लिए राजभवन में पहुंचने लगे। उस दैवी बालक के दिव्य स्वरूप को देखकर सभी को अत्यंत हर्ष हुआ।

सुरोचना की कथा

एक बार कैलास पर्वत पर बैठे हुए भगवान शंकर के मन में नृत्य-संगीत गोष्ठी का आयोजन करने की इच्छा हुई। उन्होंने अपने एक गण को आदेश दिया कि वह किसी अप्सरा को बुला लाए। गण जाकर सुरोचना नामक अप्सरा को बुला लाया। सुरोचना अपने साजिंदों के साथ आई। शिवजी का आदेश पाकर उसने नृत्य-गायन आरंभ कर दिया।

सुरोचना के नृत्य और गायन को देख-सुनकर सभा में उपस्थित सभी लोग अत्यंत प्रसन्न हुए। उस समय शिवजी भी आनंद में भरकर अपने आसन से उठ खड़े हुए और सुरोचना के साथ स्वयं नृत्य करने लगे।

शिवजी को अपने साथ नृत्य करते हुए देखकर सुरोचना की प्रसन्नता का पारावार न रहा। वह और भी विशेष दक्षतापूर्वक नृत्य करने लगी, परंतु थोड़ी ही देर में स्थिति यहां तक जा पहुंची की सुरोचना शिवजी पर मोहित हो गई। उसके हृदय में काम-वासना उत्पन्न हुई और वह शिवजी के प्रति आकर्षित होकर उनसे लिपटकर नृत्य करने लगी। उस समय ताल-स्वर भी बिगड़ गए।

शिवजी ने जब यह देखा कि सुरोचना के हृदय में काम-विकार उत्पन्न हुआ है तो उन्हें अत्यंत क्रोध आया। उन्होंने उसी समय नृत्य करना बंद कर दिया और सुरोचना से इस प्रकार कहा– "हे सुरोचना! काम-मोहित होने के कारण तेरी बुद्धि भ्रष्ट हो गई है और तू उचित-अनुचित का विवेक भी खो बैठी है। देवलोकवासियों को ऐसा आचरण करना ठीक नहीं है। अतः मैं तुझे शाप देता हूं कि तू स्वर्गलोक से च्युत होकर मर्त्युलोक में जा पड़।"

इस शाप को सुनकर सुरोचना की अक्ल ठिकाने आ गई। तब उसने शिवजी के पांवों पर गिरकर अपने अपराध की क्षमा मांगी तथा शाप-मुक्त होने के लिए अनुनय-विनय करने लगी और रोने लगी।

तब शिवजी ने दयालु होकर यह कहा– "हे सुरोचना! मेरा दिया हुआ शाप तो मिथ्या नहीं हो सकता। अतः तुझे मर्त्यलोक में भद्रसंगम नामक स्थान में मित्राचार्य ब्राह्मण के घर कन्या के रूप में जन्म लेना पड़ेगा। वहां जब तू बड़ी हो जाएगी, तब एक दिन मेरा स्पर्श पाकर तेरा शाप नष्ट हो जाएगा और तू पुनः स्वर्गलोक को प्राप्त कर लेगी।"

शिवजी के शाप के अनुसार सुरोचना ने मित्राचार्य ब्राह्मण के घर उसकी पत्नी सरयू के गर्भ से कन्या के रूप में जन्म लिया। पूर्वजन्म में अप्सरा होने के कारण वह कन्या अत्यंत रूपवती थी। माता-पिता ने उसका नाम 'कदंबा' रख दिया।

मित्राचार्य शिवजी का परम भक्त था। वह अपनी पत्नी तथा पुत्री को साथ लेकर प्रतिदिन शिवालय में जाकर शिवजी का पूजन तथा दर्शन किया करता था। यह क्रम निरंतर चलता रहा।

कुछ समय बाद कदंबा ने युवावस्था में प्रवेश किया। उसका शिवालय में प्रतिदिन जाने का क्रम चालू था। एक दिन कदंबा के माता-पिता किसी काम में व्यस्त थे। उस दिन कदंबा अकेली ही शिवालय में गई। शिवजी उस रूप सुंदरी को अकेला आया हुआ देखकर काम मोहित हो गए और यथार्थ रूप में प्रकट होकर उसे पकड़ने के लिए दौड़े। शिवजी के हाथ का स्पर्श होते ही कदंबा शाप-मुक्त हो गई और उसी समय अप्सरा बनकर स्वर्गलोक को चली गई, परंतु कामातुर शिवजी का वीर्य स्खलित हो गया। वह वीर्य उस समय कृष्णा नदी में खड़े होकर सूर्य को अर्घ्य देने वाले राजा शशांगर की अंजुलि में जा गिरा और उसने अब शिशु का रूप ग्रहण कर लिया। इस घटना का वर्णन पहले किया जा चुका है।

भुजावती का वृत्तांत

कौंडियपुर में आने के बाद कृष्णानगर चंद्रमा के समान दिन-प्रतिदिन बढ़ने लगा। सोलह वर्ष बाद उसे पूर्ण युवावस्था प्राप्त हो गई। उन्हीं दिनों राजा शशांगर की रानी मंदाकिनी की मृत्यु हो गई। रानी का वार्षिक श्राद्ध करने के बाद राजा ने चित्रकूट के राजा भूजध्वज की सुंदर कन्या भुजावती के साथ अपना दूसरा विवाह कर लिया।

राजा शशांगर वृद्ध हो चले थे। उधर उनकी दूसरी पत्नी भुजावती नवयौवना थी। नवयुवक कृष्णागर की आयु उस समय सत्रह वर्ष की थी। वह अत्यंत सुंदर, स्वस्थ तथा आकर्षक शरीर का था। भुजावती उसे देखकर आकर्षित हो गई।

एक दिन राजा शशांगर शिकार खेलने के लिए राजधानी से बाहर गए हुए थे। उसी समय रानी भुजावती ने एक दासी के द्वारा कृष्णागर को अपने पास बुलवाया। जब कृष्णागर रनिवास में पहुंच गया, तब भुजावती

उसका हाथ पकड़कर अपने पर्यंक पर ले गई और उसके साथ सहवास करने की इच्छा प्रकट की।

कृष्णागर ने यह देखकर रानी से कहा– "हे माता! मैं तो आपका पुत्र हूं। मेरे साथ ऐसा व्यवहार करना आपको शोभा नहीं देता। यदि मैं ऐसा कर्म करूं तो वह महापातक की श्रेणी में गिना जाएगा। अत: आप मुझे इसके लिए क्षमा करें।"

यह कहकर कृष्णागर वहां से उठकर चला गया।

कृष्णागर के चले जाने पर रानी भुजावती ने अपने मन में विचार किया कि यदि इसने अपने पिता के लौटने पर उनसे यह सब घटना कह दी तो राजा मुझे जान से मरवा देंगे। अत: कोई ऐसा उपाय करना चाहिए, जिससे कृष्णागर का खटका ही दूर हो जाए।

कृष्णागर को दंड

रानी भुजावती ने अपनी एक विश्वस्त दासी को बुलाकर उससे सब वृत्तांत कहा तो दासी ने उसे यह सम्मति दी कि राजा जब शिकार से लौटकर आए तो आप उनसे यह कह दीजिएगा कि आपके जाने के बाद कृष्णागर ने मेरी इज्जत को लूटना चाहा था। मैंने जैसे-तैसे अपने सतीत्व की रक्षा की है। अब आप जो चाहें वह कीजिए।

दासी की बात रानी की समझ में आ गई। राजा के शिकार से लौ. टने पर रानी भुजावती कोपभवन में जाकर लेट गई। राजा ने उसके पास जाकर कोप करने का कारण पूछा तो रानी ने उसी प्रकार कह दिया, जिस प्रकार कहने के लिए दासी ने उसे सलाह दी थी। राजा यह सुनकर अत्यंत क्रुद्ध हुए।

उन्होंने रानी की बात पर विश्वास करके सेवकों को बुलाकर कृष्णागर के हाथ-पांव काटकर चौराहे पर पटक देने का हुक्म दिया। राजा की आज्ञानुसार राजकर्मचारी कृष्णागर को नगर के बाहर शिव मंदिर में ले

गए। वहां उन्होंने कृष्णागर की आंखों पर पट्टी बांधकर तलवार के प्रहार से उसके हाथ-पांव काट दिए। तत्पश्चात् उसे वहीं पड़ा हुआ छोड़कर राजभवन को लौट गए।

कुछ देर बाद मंदिर में पहुंचने वाले अन्य दर्शनार्थियों ने जब कृष्णागर को इस स्थिति में देखा तो उनहें अत्यंत दया आई। उन्होंने कृष्णागर से पूछताछ की, परंतु वह कोई उत्तर न दे सका। अंततः उन लोगों ने कृष्णागर को एक लकड़ी की चौकी पर लिटा दिया और राजा को सूचना दी कि कोई व्यक्ति राजकुमार के हाथ-पांव काटकर उसे शिवालय में पटक गया है।

राजा-रानी ने तो यह कृत्य कराया ही था। फिर भी लोकदिखावे के लिए वे दोनों शिवालय में पहुंचे और कृष्णागर की उस स्थिति को देखकर नकली आंसू भी बहाए। तदुपरांत यह कहकर कि ऐसे बालक को हम अपने घर में ले जाकर क्या करेंगे, राजमहल को लौट गए। कृष्णागर चौरंगी के ऊपर वहीं पड़ा रहा।

मत्स्येंद्रनाथ का आगमन

इस घटना के कुछ समय बाद ही दैववश मत्स्येंद्रनाथजी अपने शिष्य गोरखनाथ को साथ लिये हुए कौंडियपुर में आ पहुंचे। वहां लोगों ने उनसे कृष्णागर के विषय में चर्चा की। गुरु-शिष्य ने कृष्णागर के पास पहुंचकर उसे देखा और ध्यान-दृष्टि से वास्तविक रहस्य को ज्ञात कर लिया।

गोरखनाथजी ने क्रोध में भरकर उसी समय राजा शशांगर तथा रानी भुजावती को नष्ट कर देने का विचार किया, परंतु मत्स्येंद्रनाथ ने उस समय उनसे शांत रहने के लिए कहा।

तदुपरांत वे दोनों शशांगर के पास गए और बोले- "हे राजन्! हम तुम्हारे हाथ-पांव कटे हुए पुत्र कृष्णागर को अपने साथ ले जाना चाहते हैं। तुम हमें इसके लिए आज्ञा दे दो।"

राजा को भला क्या आपत्ति हो सकती थी? फिर भी उसने लोकदिखावे के लिए उनसे यह कहा कि आप ऐसे अपंग लड़के को अपने साथ ले जाकर क्या करेंगे? यदि आप उसे ले ही जाना चाहते हैं तो मुझे कोई आपत्ति नहीं है।

मत्स्येंद्रनाथ तथा गोरखनाथ ने राजा की स्वीकृति पाकर कृष्णागर को चौरंगी से उठाकर अपनी गोद में ले लिया। उसी समय मत्स्येंद्रनाथजी ने उस बालक का नाम चौरंगीनाथ रख दिया। चौरंगीनाथ को साथ लिये हुए दोनों गुरु-शिष्य बदरिकाश्रम को चले गए।

चौरंगीनाथ की तपस्या

बदरिकाश्रम में जाकर उन्होंने सर्वप्रथम शिवजी के दर्शन किए। फिर गोरखनाथ ने चौरंगीनाथ को पर्वत की एक गुफा में बैठाकर यह कहा कि तुम्हारे मस्तक के ऊपर जो शिला है, उस पर निरंतर दृष्टि जमाए रखकर तुम उस मंत्र का जाप करते रहो, जो मैं तुम्हें देता हूं। यदि तुने एक पल के लिए भी अपनी दृष्टि हटाई तो यह शिला नीचे गिरकर तुम्हारा काम तमाम कर देगी।

यह कहकर गोरखनाथजी ने चौरंगीनाथ के कान में मंत्र फूंका। फिर उस गुफा में अंधेरा करके उसके द्वार को इस प्रकार बंद कर दिया, ताकि किसी वन्य-पशु आदि का प्रवेश उसके भीतर न हो सके। इसके बाद उन्होंने चामुंडा को बुलाकर यह आज्ञा दी कि गुफा में बैठकर तपस्या करने वाले प्राणी के आहार के निमित्त वह प्रतिदिन एक फल गुफा के भीतर पहुंचाती रहे।

इतना सब प्रबंध करके गोरखनाथ पुनः बदरिकाश्रम में पहुंचे। वहां जाकर उन्होंने चौरंगीनाथ की स्थिति को जानने के लिए जब गुफा के भीतर प्रवेश किया तो उन्हें पता चला कि चौरंगीनाथ शिला के ऊपर दृष्टि जमाए हुए मंत्र-जाप करने में संलग्न है। उसके आहार के लिए चामुंडा जो प्रतिदिन एक फल रख जाती थी, वे सब ज्यों-के-त्यों ढेर के रूप में

पड़े हुए हैं। इसके साथ ही इस उग्र तपस्या के प्रभाव से चौरंगीनाथ के कटे हुए हाथ-पावों के स्थान पर नए हाथ-पांव निकल आए हैं।

यह देखकर गोरखनाथ अत्यंत प्रसन्न हुए। उन्होंने आवाज देकर चौरंगीनाथ को सावधान किया। फिर उनके मस्तक पर अपना हाथ रखा, जिससे वे पूर्ण स्वस्थ हो गए। तदुपरांत वे चौरंगीनाथ को शिव-पार्वती के प्रत्यक्ष दर्शन कराने के लिए अपने साथ ले गए।

शिव-पार्वतीजी ने गोरखनाथ तथा चौरंगीनाथ को आशीर्वाद दिया। तब गोरखनाथ ने छह महीने तक वहीं रहकर चौरंगीनाथ को शास्त्र-विद्या तथा अन्य सभी विद्याओं की शिक्षा दी। जब चौरंगीनाथ सभी विद्याओं में निष्णात हो गए, तब उन्हें नागअश्वत्थ वृक्ष के देवताओं तथा अन्य देवताओं का आशीर्वाद दिलाया। तदुपरांत गोरखनाथजी चौरंगीनाथ को साथ लेकर तीर्थयात्रा करने के लिए चल दिए।

शशांगर को पश्चाताप

विभिन्न तीर्थों का भ्रमण करते हुए गोरखनाथजी चौरंगीनाथ को साथ लेकर कौंडियपुर में गए। वहां जाकर वे राजा शशांगर के बाग में ठहर गए।

उस समय गोरखनाथ ने चौरंगीनाथ से कहा कि यहां पर तुम अपने चमत्कार का प्रदर्शन करो, जिससे राजा शशांगर को तुम्हारी शक्ति का पता चल सके। गोरखनाथजी की आज्ञा पाकर चौरंगीनाथ ने वातास्त्र मंत्र से अभिमंत्रित भस्म का प्रयोग करके बाग में बड़े जोर की आंधी चला दी। उसके प्रभाव से बाग के वृक्ष टूट-टूटकर गिरने लगे तथा माली लोग हवा के साथ आकाश में ऊपर उठने तथा बाद में पृथ्वी पर गिरकर पछाड़ खाने लगे।

यह समाचार जब राजा के कानों में पहुंचा तो वे समझ गए कि यह आंधी सामान्य हवा नहीं है, क्योंकि उसका प्रभाव केवल बाग के भीतर ही दिखाई दे रहा है। उसी समय कुछ लोगों ने जाकर राजा को यह खबर

भी दी कि आपके बाग में दो नाथ-पंथी योगी आए हुए हैं और संभवतः यह चमत्कार उन्हीं ने प्रदर्शित किया है।

राजा ने समझा कि मत्स्येंद्रनाथ तथा गोरखनाथ आए होंगे। अतः वह उनका स्वागत करने के लिए हाथी, घोड़ा, पालकी, रथ आदि लाव. -लश्कर साथ में लेकर बाग में जा पहुंचा। उसी समय चौरंगीनाथ ने वातास्त्र की योजना करके राजा के संपूर्ण लश्कर, हाथी, घोड़ा, पालकी आदि को आकाश में उड़ाना और पृथ्वी पर पटकना आरंभ कर दिया।

जब कुछ लोगों ने दोनों बाबाओं के पास जाकर अनुनय-विनय की, तब चौरंगीनाथ ने पवर्तास्त्र का प्रयोग करके वहीं पर एक बड़े पर्वत को उपस्थित कर दिया। फिर राजा को उसके लाव-लश्कर समेत उस पर्वत के ऊपर पहुंचा दिया और पर्वत को आकाश में उठाकर फिर पृथ्वी पर पटक दिया।

कुछ देर बाद जब राजा तथा अन्य लोगों को होश आया, तब गोरखनाथजी ने चौरंगीनाथ से कहा– "हे पुत्र! राजा तुम्हारी शक्ति और प्रभाव से भली-भांति परिचित हो चुका है। अब तुम अपने पिता के चरण स्पर्श करो।"

गोरखनाथ जी की आज्ञा से चौरंगीनाथ ने आगे बढ़कर राजा के पांव छुए। राजा उन्हें पहचान नहीं पाए। तब गोरखनाथजी ने उन्हें बताया कि यह तुम्हारा वही पुत्र है, जिसके हाथ-पांव कटवाकर तुमने शिवालय में फेंक दिया था। इसके बाद गोरखनाथजी ने रानी भुजावती की संपूर्ण करतूत को कह सुनाया। राजा उसे सुनकर बहुत लज्जित तथा दुःखी हुआ। वह दोनों योगियों को अपने घर ले गया। वहां जाकर उसने दोनों का यथाविधि आदर-सम्मान किया तथा रानी भुजावती को अपने राज्य से बाहर निकाल दिया।

तब गोरखनाथजी ने राजा को अपना तीसरा विवाह करने की सलाह दी और यह आशीर्वाद किया कि तीसरी रानी के द्वारा तुम्हें एक अत्यंत सुंदर, योग्य, बुद्धिमान, गुणवान तथा दीर्घजीवी पुत्र की प्राप्ति होगी। वह तुम्हारे राज का उत्तराधिकारी बनेगा तथा तुम्हारे यश को उज्ज्वल करेगा।

एक महीने तक गोरखनाथजी चौरंगीनाथ के साथ कौंडियपुर में रहे। उसके बाद वे राजा से विदा लेकर तीर्थयात्रा को चले गए।

गोरखनाथजी की सलाह के अनुसार राजा शशांगर ने अपना तीसरा विवाह किया। यथा समय उसे एक सुंदर पुत्र की प्राप्ति भी हुई। पुत्र के बड़े हो जाने पर राजा उसे सिंहासन सौंपकर स्वयं तपस्या करने के लिए वन में चले गए।

गोरखनाथ के साथ रहकर चौरंगीनाथ ने समस्त तीर्थों का भ्रमण किया, तदुपरांत वे बदरिकाश्रम में जाकर रहने लगे।

इंद्र ने जब सोमयाग किया था, तब अन्य नाथ-पंथियों के साथ चौरंगीनाथ भी उसमें भाग लेने के लिए अमरावतीपुरी में गए थे। यज्ञ की समाप्ति पर वे पुनः बदिरकाश्रम में लौट आए और वहीं रहने लगे।

नवनाथ चरित्र सागर

भाग-12
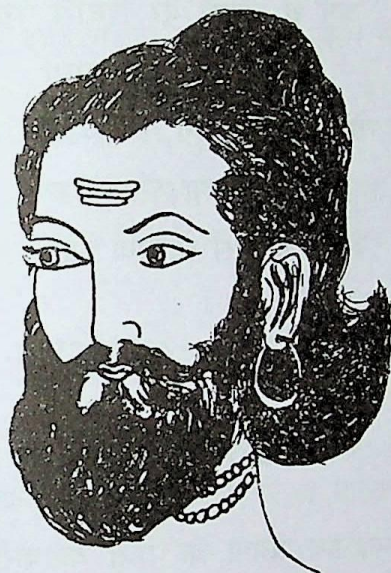
श्री अड़बंगनाथ-चरित्र

(श्री मत्स्येंद्रनाथजी के शिष्य)

गुरुजी ऐसा करम न कीजै।
ताथैं अगी महारस छीजैं।।
नदी तीरे बिरिखा, नारी संगे पुरखा,
अलप जीवन की आसा।
मन थैं उपजी मेर रिवसि पड़ह,
ताथैं कंद बिनासा।।
गोड़ भये डगमग, पेट भया ढीला,
सिर बगुला की पंखियां।
अभी महारस बाघिण सोरूपा।।''

गोरखनाथ से भेंट

एक समय मत्स्येंद्रनाथ प्रयाग के राजा के शरीर में प्रवेश करके राजकाज कर रहे थे। इस कथा का विस्तृत वर्णन 'मत्स्येंद्रनाथ-चरित्र' में किया जा चुका है और गोरखनाथजी तीर्थयात्रा के लिए गए हुए थे। विभिन्न स्थानों का भ्रमण करते हुए एक बार गोरखनाथ जी गोदावरी नदी के तटवर्ती भामानगर की ओर जा रहे थे। दोपहर का समय था और कड़ाके की धूप पड़ रही थी। उसी समय गोरखनाथजी ने देखा कि खेत में हल जोतने वाला एक किसान हल जोतना बंद करके एक वृक्ष के नीचे बैठकर खाना खाने की तैयारी कर रहा है।

गोरखनाथजी 'अलख' शब्द का उच्चारण करते हुए उस किसान के सामने जा खड़े हुए। माणिक नामक वह किसान उन्हें देखते ही उठ खड़ा हुआ तथा उनसे भोजन करने का आग्रह करने लगा।

गोरखनाथजी को भी उस समय बहुत जोर की भूख लग रही थी। किसान के आग्रह करने पर वे भोजन करने के लिए बैठ गए और उसका संपूर्ण भोजन स्वयं खा गए।

भोजन करने के उपरांत गोरखनाथजी ने उस किसान से कुछ मांगने के लिए कहा तो माणिक ने यह उत्तर दिया कि तुम तो स्वयं ही दूसरों से मांगते फिरते हो। ऐसी स्थिति में भला मैं तुमसे क्या मांगू?

गोरखनाथजी ने जब उससे बार-बार कुछ मांगने के लिए कहा तो वह किसान झुंझलाकर कहने लगा– "मैं तुमसे कुछ नहीं मांगूंगा। यदि तुम्हें किसी और वस्तु की आवश्यकता हो तो वह मुझसे मांग लो।"

यह सुनकर गोरखनाथजी ने उससे यह मांग की कि तुम्हारी इच्छा जिस समय जो काम करने की हो, तुम उसके ठीक विपरीत कार्य करना।

किसान ने गोरखनाथजी की इस इच्छा को पूरा करने का वचन दे दिया। उसके बाद गोरखनाथजी वहां से चले गए।

मत्स्येंद्रनाथ द्वारा दीक्षा

बारह वर्ष बाद गोरखनाथ जी मत्स्येंद्रनाथ तथा चौरंगीनाथ को साथ लेकर पुनः उसी स्थान पर पहुंचे, जहां पर वे माणिक किसान से पहले मिले थे।

गोरखनाथजी के चले जाने के बाद से माणिक किसान उन्हें दिए हुए वचन का निर्वाह कर रहा था। उसे भोजन करने की इच्छा होती तो वह खाना नहीं खाता, सोने की इच्छा होती तो जागता रहता और घर जाने की इच्छा होती तो खेत में ही खड़ा रहता। तात्पर्य यह कि उस दिन से वह दिन-रात जागता हुआ भूखा-प्यासा उसी खेत में खड़ा हुआ था। उसका शरीर अस्थिपंजर मात्र रह गया था, परंतु इस उग्र तप के प्रभाव से उसकी देह में प्राण अभी तक मौजूद थे।

गोरखनाथजी ने दोबारा वहीं पहुंचकर माणिक को जब ऐसी स्थिति में देखा तो उसकी सच्ची निष्ठा को देखकर उन्हें अत्यंत प्रसन्नता हुई। तब उन्होंने मत्स्येंद्रनाथ से यह प्रार्थना की कि आप इसे दीक्षा देकर शिष्य बनाइए।

अब माणिक को शिष्य कैसे बनाया जाए? वह तो हर काम को उलटा करने का निश्चय लिये हुए था। अस्तु, मत्स्येंद्रनाथजी ने एक उपाय सोचा और वे माणिक किसान के पास जाकर यह कहने लगे– ''अरे, आप तो कोई बहुत बड़े योगी मालूम होते हैं। मैं आपका शिष्य बनना चाहता हूं। कृपा कर आप मुझे दीक्षा दीजिए।''

माणिक ने यह सुनकर अपने उलटे स्वभाव के अनुसार मत्स्येंद्रनाथजी को यह उत्तर दिया– ''मैं आपको अपना शिष्य क्यों बनाऊं? आप मुझी को अपना शिष्य बना लीजिए।''

मत्स्येंद्रनाथजी ने यह सुनते ही माणिक के कान में मंत्र फूंककर उस दीक्षा दी तथा अपना शिष्य बनाकर मस्तक पर हाथ रखा। मंत्र प्राप्त होते ही माणिक का शरीर हृष्ट-पुष्ट हो गया, उसका सब अज्ञान भ्रष्ट हो गया तथा संपूर्ण जगत् ब्रह्ममय भासित होने लगा। तब उसने मत्स्येंद्रनाथजी तथा गोरखनाथजी के चरणों पर अपना मस्तक रखकर बहुत प्रकार से प्रार्थना की। मत्स्येंद्रनाथजी ने उसे नाथ-पंथ की दीक्षा दी और उसका नाम 'अड़बंगनाथ' रख दिया, फिर मत्स्येंद्रनाथजी की आज्ञा से गोरखनाथजी ने अड़बंगनाथ को अस्त-शस्त्र विद्या तथा अन्य समस्त विद्याएं सिखाईं और बदरिकाश्रम ले जाकर भगवान शंकर के दर्शन कराए।

बदरिकाश्रम में गोरखनाथजी ने अड़बंगनाथ को तपस्या करने के लिए कहा। अड़बंगनाथ ने वहां रहकर बारह वर्ष घोर तपस्या की। जब तपस्या पूरी हो गई, तब गोरखनाथजी ने उन्हें नागअश्वत्थ वृक्ष के नीचे ले जाकर सब देवताओं का आशीर्वाद दिलाया, जिससे उनकी विद्या सफल हुई।

तपस्या पूर्ण हो जाने के उपरांत अड़बंगनाथ तीर्थयात्रा के लिए चल दिए। वे कभी अकेले ही और कभी अन्य नाथयोगियों के साथ रहकर तीर्थयात्रा किया करते थे और अपना अधिकांश समय बदरिकाश्रम में व्यतीत किया करते थे।

इंद्र ने जब सोमयाग किया था, उस समय अन्य नाथयोगियों के साथ अड़बंगनाथ भी अमरावतीपुरी गए थे। वहां से लौटकर वे बदरिकाश्रम में उतर गए और वहीं रहने लगे।

नवनाथ चरित्र सागर

भाग–13
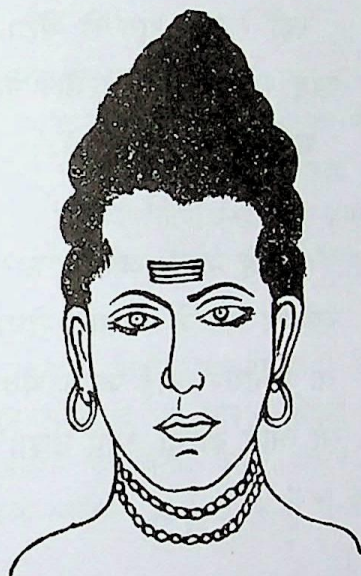
श्री गोपीचंदनाथ–चरित्र

(श्री जालंधरनाथ के शिष्य)

"बड़े बड़े कूल्हे मोटे मोटे पेट।
नहीं रे पूता गुरु से भेंट।।
खड़ खड़ काया निरमल नेत।
भई रे पूरा गुरुसो भेंट।।"

☆☆☆

"व्यंदहि जोग, व्यंदहि भोग।
व्यंदहि हरै जे चौसठि रोग।।
या व्यंदका कोई जाणै भेव।
सो आपै करता आपै देव।।"

☆☆☆

"एक बूंद नरनारी रीधा।
ताही में सिध साधिक सीधा।।"

पूर्व-कथा

भारतवर्ष के पूर्वीय भाग में पहले गौड़-बंगाल नामक एक राज्य था। उसकी राजधानी हेलापट्टन (कंचनपुरी) थी। हेलापट्टन के राजा त्रिलोचन की पत्नी का नाम मैनावती था। उसके एक सुंदर पुत्र भी था, जिसका नाम उसने 'गोपीचंद' रखा था।

गोपीचंद जब बालक ही था, तभी एक दिन राजा त्रिलोचन की मृत्यु हो गई। त्रिलोचन की पतिव्रता पत्नी रानी मैनावती ने अपने पति के साथ सती हो जाने की इच्छा की, परंतु प्रधानमंत्री तथा अन्य अनेक लोगों ने उन्हें यह समझाया कि राजकुमार गोपीचंनद की आयु बहुत छोटी है, अतः उसका लालन-पालन करने की दृष्टि से वे अपने मृत पति के साथ सती न हों।

लोगों की बात मानकर रानी मैनावती सती नहीं हुईं। उन्होंने बड़े मनोयोग से राजकुमार गोपीचंद का पालन-पोषण किया। बड़ा हो जाने पर गोपीचंद राजसिंहासन पर बैठा। उसने अपने अनेक विवाह किए। प्रिया-पालक तथा प्रजा-पालक, दोनों ही रूपों में उसने अत्यधिक ख्याति अर्जित की।

मैनावती को दीक्षा

एक बार योगिराज जालंधरनाथ ने राजा गोपीचंद के राज्य में जाकर कुछ दिनों तक निवास किया। वे हेलापट्टन नगर से बाहर एक कुटी बनाकर रहने लगे। दिन के समय वे अपने सिर पर घास का गट्ठर लादकर नगर में जाते और वहां घूम-घूमकर गायों को घास खिलाया करते थे। योग-विद्या के प्रभाव से घास का गट्ठर उनके सिर से कुछ ऊंचा आकाश में अधर उठा रहता था। नगरनिवासी इस दृश्य को देखकर अत्यंत आश्चर्य किया करते थे।

ऐसे चमत्कारी योगी की प्रशंसा एक दिन राजमाता मैनावती के कानों में भी पहुंची। तब उन्होंने जालंधरनाथ को अपना गुरु बनाकर दीक्षा लेने का निश्चय किया।

एक दिन रात के समय वे अपनी एक विश्वस्त दासी को साथ लेकर चुपचाप नगर से बाहर जालंधरनाथजी की कुटिया में जा पहुंचीं।

जालंधरनाथ ने उन्हें उसी समय घर लौट जाने के लिए कहा, परंतु वे दीक्षा लिये बिना जाने को तैयार नहीं हुईं। तब जालंधरनाथजी ने उन्हें यह आश्वासन दिया कि वे परीक्षा लेने के उपरांत उचित समय आने पर उन्हें दीक्षा देंगे।

राजमाता प्रति रात्रि को जालंधरनाथजी की कुटिया में जाने लगीं। जालंधरनाथजी ने छह महीने तक उनकी अनेक प्रकार से परीक्षाएं लीं और जब उन्हें यह भली-भांति विश्वास हो गया कि रानी की श्रद्धा सच्ची है, तब एक दिन उन्हें मंत्रोपदेश करके अपनी शिष्या बना लिया तथा अमर होने का आशीर्वाद दे दिया।

शेष भाग चार (श्री जालंधरनाथ-चरित्र में पढ़ें।)

नवनाथ चरित्र सागर

भाग-14
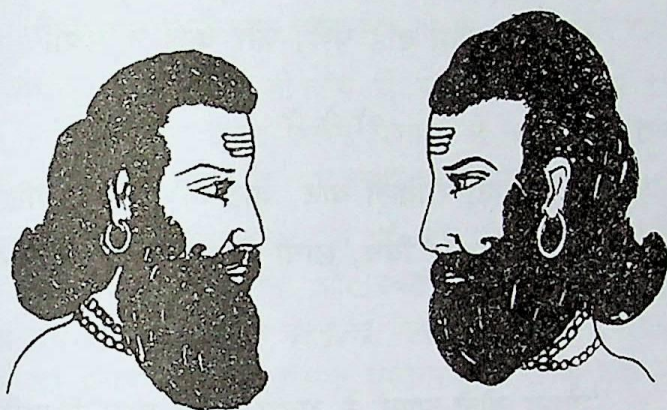
श्री मीननाथ एवं श्री धुरंधरनाथ-चरित्र

(श्री चर्पटीनाथ तथा श्री रेवणनाथ के शिष्य)

''बायू बंध्या सयल जग, वायू किनहूं न बंध।
बाई बिहूणा ढहि पणै, जोरे कोई न संध।।''

☆☆☆

''अवधू नवघाटी रौकिलै बाट, बाई बणि जै चौसठि हाट।
काया पलटै विचल विध, छाया विवरजित निपजै सिध।।''

☆☆☆

''गोरख बोलै सुणहु रे अवधू, पंचौं पसर निवारी।
अपनी आतमा आप विचारो, सोवौ पांव पसारी।।''

धर्म-प्रचार

चर्पटीनाथ तथा रेवणनाथ ने अपना जीवन-कार्य पूरा करके कैलास में जाकर शिवजी के पास निवास करने का निश्चय किया। उस समय उन्होंने नाथ-संप्रदाय के प्रचार और प्रसार का भार मीननाथ तथा धुरंधरनाथ को सौंप दिया, फिर वे दोनों कैलास पर्वत शिवजी के पास जाकर रहने लगे।

उस समय धुरंधरनाथ ने मीननाथ से यह कहा कि हम दोनों तो तीर्थयात्रा करने के लिए अलग-अलग दिशाओं में जाएं तथा शिष्यों को दीक्षा का भार अपने गुरुभाई विलशयननाथ के ऊपर छोड़ दें।

मीननाथ को यह युक्ति पसंद आ गई। तब उन्होंने शिष्यों की दीक्षा का भार विलशयनाथ पर डाला और स्वयं तीर्थ-यात्रा करते हुए धर्म तथा नाथ-पंथ का प्रचार करने के लिए निकल पड़े। पूर्व-उत्तर भारत में योग-मार्ग का प्रचार करने का जिम्मा धुरंधरनाथ ले लिया तथा मीननाथ ने दक्षिण भारत में भ्रमण करने का निश्चय किया।

मीननाथ ने सर्वप्रथम अपने गुरुभाई चंडीश्वरनाथ को गिरिनार पर्वत पर आने वाले शिष्यों की दीक्षा का भार सौंपा, फिर उन्होंने निश्चिंत होकर दक्षिण भारत की यात्रा आरंभ की।

मीननाथ अनेक स्थानों पर धर्म-प्रचार करते हुए नर्मदा नदी के तटवर्ती ओंकारनाथ नामक स्थान पर जा पहुंचे। वहां सहस्रों स्त्री-पुरुषों ने उनके दर्शनों के लिए आना आरंभ कर दिया। मीननाथ के उपदेश सुनकर उनका मोह दूर होने लगा और वे सब योग-मार्ग की दीक्षा लेकर अपना जीवन सफल बनाने लगे।

कुछ दिन वहां ठहरने के उपरांत मीननाथ महाराष्ट्र प्रदेश के भीमाशंकर नामक प्रसिद्ध स्थान पर गए। वहां उन्होंने अपने एक शिष्य पर शरीर-रक्षा का भार सौंपकर सात वर्ष की समाधि लगाई। उसके बाद वे कदरी नामक स्थान में गए। वहां वे अपने एक गुरुभाई के साथ बहुत दिनों तक ज्ञान-चर्चा करते हुए ठहरे रहे। वहां से वे रामेश्वर होते हुए सिंहलद्वीप में गए। वहां बहुत

समय से धर्मप्रचार का कार्य बंद पड़ा था। अतः मीननाथ ने उस द्वीप में जाकर योग-मार्ग की प्रतिष्ठा करने का निश्चय किया।

सिंहलद्वीप में चमत्कार-प्रदर्शन

मत्स्येंद्रनाथजी के बाद बहुत समय से कोई धर्म-प्रचारक सिंहलद्वीप में नहीं गया था, अतः वहां धर्म-प्रचार का काम बहुत मंद पड़ा था। वहां के लोग मत्स्येंद्रनाथजी के उपदेशों को भूल गए थे।

मीननाथ ने वहां जाकर राजधानी में एक अपूर्व महोत्सव करने की घोषणा की, साथ ही उन्होंने यह भी प्रचारित कराया कि जो व्यक्ति इस उत्सव में भाग लेने के लिए आएंगे, उन्हें प्रतिदिन मनवांछित भोजन प्राप्त होगा।

इस घोषणा को सुनकर सिंहलद्वीप के हजारों स्त्री-पुरुष उस महोत्सव में सम्मिलित होने के लिए पहुंचने लगे। जिस जगह महोत्सव का आयोजन किया गया था, वहां बहुत विशाल मैदान था। उसी मैदान में स्त्री-पुरुषों की पंगत बैठाकर मीननाथ उन्हें इच्छित भोजन कराने लगे। वे भोजन करने के लिए आए हुए प्रत्येक व्यक्ति से कहते– "तुम्हें जिन-जिन वस्तुओं की इच्छा हो, उनका अपने मन में स्मरण करते चले जाओ। मन में स्मरण करने मात्र से ही वे सब वस्तुएं तुम्हारी पत्तल पर आकर उपस्थित होती चली जाएंगी।"

मीननाथ की घोषणा सुनकर लोग विविध प्रकार की वस्तुओं का स्मरण करते और आश्चर्य की बात यह थी कि स्मरण करने मात्र से ही वे सब वस्तुएं उनकी पत्तलों पर स्वयमेव आकर उपस्थित हो जाती थीं।

प्रतिदिन भोजन कराने के उपरांत मीननाथ लोगों को उपदेश करते। उसमें वे धर्म, योग तथा ज्ञान की महिमा का वर्णन करते। उसे सुनकर लोग मुग्ध हो जाते, उनका मोह दूर हो जाता और वे मीननाथ के शिष्य बन जाते। सिंहलद्वीप में हजारों-लाखों स्त्री-पुरुषों ने मीननाथ से योग की दीक्षा ली। इस प्रकार कुछ ही दिनों में उस द्वीप में योग-मार्ग का बहुत अच्छा प्रचार हो गया।

जब मीननाथ ने यह देखा कि अब यह धर्म-प्रचार खूब अच्छी तरह हो चुका है, तब वे अपने थोड़े से शिष्यों को योग-प्रचार के लिए वहां

छोड़कर स्वयं गिरिनार पर्वत पर चले गए और वहां पहुंचकर गोरख गुफा में बारह वर्ष की कठोर तपस्या करने के लिए समाधिस्थ हो गए।

धुरंधरनाथ का पर्यटन

जिन दिनों मीननाथ दक्षिण भारत में भ्रमण कर रहे थे, उन्हीं दिनों धुरंधरनाथ सौराष्ट्र से निकलकर कच्छ, सिंध आदि प्रदेशों में धर्म-प्रचार करते हुए गांधार देश में जा पहुंचे थे।

वहां पर 'अजपानाथ' नामक योगी के साथ उनकी भेंट हुई। अजपानाथ यवन होते हुए भी योग-विद्या का अपूर्व विद्वान था। अजपानाथ से सूचना पाकर धुरंधरनाथ सुलेमान पर्वत पर गए। वहां अनेक छोटी-बड़ी गुफाओं में उन्होंने अनेक मुमुक्षुओं को योग-साधन करते हुए देखा।

धुरंधरनाथ को अपने बीच पाकर वे सभी योगी अत्यंत प्रसन्न हुए। उन सबने मिलकर धुरंधरनाथ ने उस समरोह में योग-संबंधी उपदेश देकर सब लोगों को अत्यंत प्रभावित किया। कुछ दिनों तक सुलेमान पर्वत पर रहने के बाद धुरंधरनाथ विभिन्न स्थानों की यात्रा करते हुए तथा लाखों नर-नारियों को अपने उपदेशों से कृतार्थ करते हुए कटासराज नामक तीर्थ में जा पहुंचे। वहां कुछ दिन ठहरने तथा धर्म-प्रचार करने के बाद हिमालय के पास ज्वालादेवी नामक स्थान पर पहुंचे। उस स्थान पर आने वाले विशाल जनसमुदाय को योग-मार्ग की ओर आकर्षित करने की दृष्टि से धुरंधरनाथ ने चमत्कार प्रदर्शित करने का निश्चय किया।

ज्वालादेवी में चमत्कार-प्रदर्शन

ज्वालादेवी मंदिर में प्रतिदिन सैकड़ों बकरों की बलि देने की प्रथा थी। धुरंधरनाथ को इस प्रकार निरीह प्राणियों की हत्या किया जाना बहुत बुरा लगा। एक दिन उन्होंने ज्वालादेवी मंदिर के मुख्य द्वार पर खड़े होकर यह घोषणा की कि आज के दिन से ज्वालादेवी के मंदिर में किसी भी पशु की बलि नहीं दी जाएगी।

पशु–बलि के समर्थक मांसाहारी लोगों ने जब धुरंधरनाथ को यह घोषणा करते हुए सुना तो उन्होंने प्रश्न किया– "इस मंदिर में हमेशा से पशु–बलि दी जाती रही है। पशु–बलि पाकर देवी प्रसन्न होती है, इसलिए हम लोग इस प्रथा को तुम्हारे कहने से बंद नहीं करेंगे।"

यह सुनकर धुरंधरनाथ ने अपने मन में विचार किया कि ये लोग सीधे तरीके से नहीं मानेंगे, इसलिए इन्हें कोई चमत्कार दिखाना चाहिए। अत: कुछ देर मौन रहने के बाद उन्होंने कहा– "यदि कोई व्यक्ति मेरी घोषणा के प्रतिकूल पशु–वध करेगा तो ज्वालादेवी स्थान के चारों ओर महाज्वाला फैल जाएगी और उसमें जलकर सब लोग भस्म हो जाएंगे।"

तब एक पशु–बलि के समर्थक व्यक्ति ने आगे बढ़कर धुरंधरनाथ से कहा– "ज्वालादेवी हजारों वर्षों से पशु–बलि स्वीकार करती आ रही है। आज तुम यह नई बात क्यों कह रहे हो?"

धुरंधरनाथ ने पूछा– "क्या देवी ने कभी अपने मुंह से यह बात कही है कि वे पशु–बलि को स्वीकार करतीं अथवा अच्छा समझती हैं।"

वह व्यक्ति बोला– "तुम तो पागल जैसी बातें करते हो। कहीं देवी भी अपने मुंह से कुछ बोलती है?"

धुरंधरनाथ ने कहा– "तब तो तुम्हारी ही बात से यह प्रमाणित हो जाता है कि देवी स्वयं अपने मुंह से कुछ नहीं कहतीं और बलि को स्वीकार भी नहीं करती हैं। तुम मांसाहारी हिंसक लोग स्वयं ही यह प्रचार करते फिरते हो कि देवी को पशु–बलि स्वीकार है।"

उस आदमी ने कहा– "यदि देवी ने पशु–बलि को स्वीकार करने के लिए नहीं कहा तो उन्होंने बंद करने के लिए भी नहीं कहा है। देवी की प्रत्यक्ष आज्ञा के बिना बलि बंद नहीं हो सकती। तुम्हारा कहना हम लोग नहीं मानेंगे।"

धुरंधरनाथ ने उत्तर दिया– "मुझे देवी ने पशु–बलि को रोकने के लिए ही यहां भेजा है। यदि तुम लोग मेरी बात नहीं मानोगे तो महाज्वाला सबको जलाकर भस्म कर डालेगी।"

धुरंधरनाथ की बात को हिंसको ने नहीं माना। यह देखकर धुरंधरनाथ ने उन्हें उचित शिक्षा देने का निश्चय किया। जैसे ही एक हिंसक पुरुष

बकरे को साथ लेकर देवी के मंदिर में आया और उसने खांडा उठाकर बकरे के सिर को काटना चाहा, वैसे ही धुरंधरनाथ ने आग्नेयास्त्र का आह्वान करके एक मुट्ठी भस्म चारों दिशाओं में फेंक दी, उसी के साथ चारों ओर आकाश को छूने वाली आग की लपटें उठने लगीं। उन लपटों को देखकर सभी हिंसक मनुष्य स्तंभित तथा भयभीत हो गए। किसी ने किसी पशु का वध नहीं किया।

थोड़ी देर बाद जब वे आग की लपटें आगे बढ़ती हुई उन हिंसक लोगों के पास पहुंचने लगीं, उस समय वे हा-हाकार करते हुए धुरंध रनाथ के चरणों में गिरकर क्षमा मांगने और प्राण-रक्षा के लिए प्रार्थना करने लगे।

उस समय धुरंधरनाथ ने उन लोगों से कहा कि यदि तुम लोग सदैव के लिए यहां पर पशु-बलि बंद करने का आश्वासन दो तो मैं इस महाज्वाला से तुम्हारी रक्षा कर सकता हूं।

सब लोगों ने उनकी बात को स्वीकार कर लिया, तब उन्होंने पहले तो वायु अस्त्र का प्रयोग करके अग्नि की ज्वाला को उस स्थान से दूर हटाया, फिर मेघास्त्र का प्रयोग करके वर्षा द्वारा उस ज्वाला को बुझा. कर शांत कर दिया। इस चमत्कार को देखकर सब लोग धुरंधरनाथ की जय-जयकार करने लगे।

उस दिन से ज्वालादेवी के मंदिर में पशु-बलि की प्रथा समाप्त हो गई। बकरे के सिर के स्थान पर लोग देवी की सेवा में नारियल की भेंट चढ़ाने लगे। वहां रहकर उन्होंने लाखों स्त्री-पुरुषों को अपना भक्त और शिष्य बनाया तथा अपने उपदेशों द्वारा उनके मोह को दूर कर दिया।

संदीपक का दृष्टांत

एक बार मुमुक्षुओं को उपदेश करते हुए धुरंधरनाथ ने कहा- ''शिष्य को संदीपक जैसा होना चाहिए। जो व्यक्ति संदीपक के समान अपने गुरु की सेवा करता है, उसकी समस्त कामनाएं पूर्ण होती हैं।''

यह सुनकर एक भक्त ने कहा- ''हे नाथजी! आप हमें संदीपक की कथा सुनाइए।''

तब धुरंधरनाथ ने संदीपक की कथा सुनाई, जो इस प्रकार थी– ''प्रचीनकाल में गोदावरी नदी के तटवर्ती अंगिरस ऋषि के आश्रम में अनेक ऋषि-मुनि रहा करते थे। उन्हीं में वेदधर्म नामक एक विद्वान, पवित्रात्मा तथा धर्मात्मा ब्राह्मण भी थे। वे उस आश्रम में रहकर अपने अनेक शिष्यों को वेद-शास्त्रादि का अध्ययन कराया करते थे।

वेदधर्म के एक शिष्य का नाम 'संदीपक' था। वह अत्यंत कुशाग्र बुद्धि तथा गुरुभक्ति परायण था।

एक दिन वेदधर्म ने अपने शिष्यों की गुरुभक्ति की परीक्षा लेने के उद्‌देश्य से इस प्रकार कहा– 'हे शिष्यो! मैं तुमसे एक बात कहता हूं। उसे तुम ध्यानपूर्वक सुनो।'

सब शिष्यों ने कहा-- 'हे गुरुजी! आप कहिए। हम आपकी प्रत्येक बात सुनने तथा आज्ञा का पालन करने के लिए हर समय प्रस्तुत हैं।'

यह सुनकर वेदधर्म बोले– 'हे शिष्यो! मैंने पूर्वजन्म में सहस्रों पाप कर्म किए थे। इस जन्म में अपने तप तथा अनुष्ठान के प्रभाव से मैंने उनमें से अधिकांश पापों को नष्ट कर दिया, परंतु अभी भी कुछ थोड़े से पाप शेष रह गए हैं, जिनका फल मुझे इसी जन्म में भेग लेना आवश्यक है। उन पापों का फल भोगने के लिए मैं काशी में जाकर रहूंगा। तुममें से ऐसे कितने शिष्य हैं, जो वहां चलकर पापकर्मों के फल को भोगने की अवधि समाप्त होने तक मेरी सेवा करने के लिए तैयार हैं?'

यह सुनकर सब शिष्य चुप रह गए। अकेले संदीपक ने ही यह कहा कि मैं प्रत्येक स्थिति में, प्रत्येक स्थान पर आपकी सेवा करते रहने के लिए तैयार हूं।

उस समय वेदधर्म ने कहा– 'हे संदीपक! अपने पापकर्मों का फल भोगने के लिए मुझे इक्कीस वर्ष तक कोढ़ी, अंधा, पागल, दरिद्र तथा रोगी बनकर जीवित रहना पड़ेगा। ऐसी स्थिति में तुम मेरी सेवा कर सकोगे अथवा नहीं– इस पर खूब अच्छी तरह विचार कर लो।'

संदीपक ने हाथ जोड़कर उत्तर दिया– 'हे गुरुजी! इक्कीस वर्ष क्यों, ऐसी स्थिति में यदि मुझे जीवनभर आपकी सेवा करते रहने का सौभाग्य

प्राप्त हो तो भी मैं उसके लिए तैयार हूं। अब आप मुझे जो करना हो, उसकी आज्ञा दीजिए।'

यह सुनकर वेदधर्म अत्यंत प्रसन्न हुए। दूसरे दिन वे संदीपक को साथ लेकर काशीपुरी को चल दिए।

काशी में जाकर वे मणिकर्णिका घाट के उत्तर की ओर कंवलेश्वर स्थान के समीप जाकर ठहर गए। दो-चार दिन तक तो वे ठीक रहे। प्रतिदिन गंगा में स्नान करते और संदीपक जो भिक्षा मांगकर ले आता, उसका भोजन करते थे। उसके बाद उनके शरीर में कोढ़ प्रकट हुआ। कुछ दिनों बाद वे अंधे और पागल जैसे भी हो गए। संदीपक दिन-रात अपने गुरु की सेवा करने लगा। वह उनके कोढ़ के घावों को धोता, उन पर औषधि लगाता, स्नान कराता, वस्त्रों को साफ करता तथा भिक्षा मांगकर भोजन खिलाता था।

पालगपन की-सी स्थिति में गुरु उसे हर समय डांटते-फटकारते रहते, कभी-कभी क्रोध में आकर तमाचा मार देते तथा अन्य प्रकारों से भी परेशान किया करते थे, परंतु संदीपक उनकी किसी भी बात का बुरा नहीं मानता था। वह दिन-प्रतिदिन अधिकाधिक लगन के साथ उनकी सेवा करता था।

इस प्रकार संदीपक को गुरु की सेवा करते हुए जब कई वर्ष व्यतीत हो गए, तब शिवजी उसकी गुरुभक्ति देखकर अत्यंत प्रसन्न हुए तथा वर देने के लिए उसके पास जा पहुंचे।

शिवजी ने संदीपक से वर मांगने के लिए कहा। उस समय संदीपक ने उनसे यह निवेदन किया कि गुरु की आज्ञा लिये बिना मैं आपसे कोई भी वर नहीं मांग सकता।

शिवजी ने उससे गुरु के पास जाकर उनकी आज्ञा ले आने के लिए कहा। संदीपक अपने गुरु के पास जाकर कहने लगा- 'हे गुरुजी! भगवान शंकर मुझे वर देने के लिए पधारे हैं। यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं उनसे आपके शरीर की व्याधि दूर करने का वर मांग लूं।'

यह सुनकर वेदधर्म ने क्रोध में आकर कहा- 'तू मेरी सेवा करते-क. रते उकता गया प्रतीत होता है। इसीलिए शिवजी से मेरा रोग दूर कर देने के लिए वर मांगना चाहता है, परंतु मूर्ख! तू यह तो सोच कि यदि शिवजी

ने इस समय मुझे रोगमुक्त कर भी दिया तो भी मुझे अपने पापों का फल तो कभी-न-कभी भोगना ही पड़ेगा। उसके लिए मुझे दूसरा जन्म ग्रहण करना होगा और इसी जन्म में मेरी मुक्ति न हो सकेगी। ऐसी स्थिति में तुझे क्या करना चाहिए, यह तू स्वयं ही सोच ले।'

गुरुजी की बात सुनकर संदीपक शिवजी के पास लौटकर गया और उनसे बोला– 'हे प्रभु! गुरुजी ने मुझे वर मांगने की आज्ञा नहीं दी है। इसलिए मैं आपसे कुछ भी मांगने अथवा लेने में असमर्थ हूं।'

यह सुनकर शिवजी आश्चर्यचकित रह गए। वे उसी समय विष्णुजी के पास गए और उनसे कहने लगे– 'हे विष्णुजी! लोग मेरे दर्शन पाने के लिए वर्षों तक जप-तप करते हैं, परंतु इन दिनों काशीपुरी में संदीपक नामक एक ऐसा व्यक्ति आया हुआ है कि उसकी गुरु-भक्ति को देखकर मैं स्वयं उसके पास वर देने के लिए पहुंचा था, परंतु गुरु की आज्ञा प्राप्त न होने के कारण उसने मुझसे स्पष्ट मना कर दिया।'

शिवजी की बात सुनकर विष्णुजी ने संदीपक की परीक्षा लेने का निश्चय किया। वे काशीपुरी में संदीपक के पास गए और उससे कहने लगे– 'हे संदीपक! मैं तुम्हारी गुरु-भक्ति को देखकर प्रसन्न हूं और तुम्हें वर देने के लिए आया हूं। तुम मुझसे कोई वर मांग लो।'

यह सुनकर संदीपक ने उत्तर दिया– 'हे प्रभु! गुरु भक्ति के प्रताप से ही मुझे आपके दर्शन प्राप्त हुए हैं। अतः आप मुझे यही वरदान दीजिए कि गुरु के चरणों में मेरी भक्ति दृढ़ बनी रहे तथा मैं उनकी निरंतर सेवा करता रहूं।'

संदीपक की बात सुनकर विष्णुजी बहुत प्रसन्न हुए तथा कहने लगे– 'हे संदीपक! मैं तुम पर अत्यंत प्रसन्न हूं। मैं तुम्हें यह वर देता हूं कि गुरु-चरणों में तुम्हारी भक्ति निरंतर दृढ़ बनी रहेगी।'

यह कहकर विष्णुजी अंतर्धान हो गए। तब संदीपक ने अपने गुरु के पास जाकर उन्हें विष्णुजी से वर मांगने की घटना कह सुनाई। उसे सुनकर वेदधर्म अत्यंत प्रसन्न हुए और कहने लगे– 'हे पुत्र! तू सब प्राणियों में श्रेष्ठ है। तू समस्त सिद्धियों को प्राप्त करेगा ओर तेरे घर में ऋषि-सिद्धियों का निवास हर समय बना रहेगा।'

यह कहकर वेदधर्म मुनि उसी समय स्वस्थ एवं दिव्य कांतिमान शरीर वाले बन गए। शिष्य की परीक्षा लेने के लिए ही उन्होंने अपने शरीर को ऐसा बना लिया था। उस महापुरुष ने कभी कोई पाप किया ही नहीं था। अतः उसका फल भोगने की बात तो बहुत दूर की थी।

इस तरह वेदधर्म ने अपने शिष्य संदीपक की परीक्षा लेकर उसके संपूर्ण जीवन को सफल बना दिया।''

इस कथा को सुनाकर धुरंधरनाथ ने अपने शिष्यों से कहा– ''जो लोग संदीपक की भांति सच्चे मन से अपने गुरु की सेवा करते हैं और कभी भी अपने कर्तव्य से विचलित नहीं होते, वे ही धर्म के यथार्थ मर्म को जानते हैं। उन्हीं को सब सुखों की प्राप्ति होती है तथा वे ही लोग अपने जन्म को सफल बना पाते हैं।''

धुरंधरनाथजी द्वारा वर्णित इस कथा को सुनकर सभी श्रोता अत्यंत प्रसन्न हुए।

अन्य स्थानों की यात्रा

ज्वालादेवी में पांच व्यक्तियों ने धुरंधरनाथजी का मुख्य शिष्यत्व ग्रहण किया। कुछ समय बाद जब धुरंधरनाथ ने वहां से चलने का निश्चय किया, तब चार शिष्य तो उनके साथ चल दिए, परंतु पांचवां शिष्य अपनी मां के रोने–धोने के कारण वहीं रह गया।

चारों शिष्यों को साथ लेकर धुरंधरनाथ वहां से विभिन्न स्थानों का भ्रमण करते हुए अपने गुरु–भाई शंभुनाथ के आश्रम में पहुंचे। वहां वे कुछ दिनों तक रहे। फिर अपने चारों शिष्यों की शिक्षा का भार शंभुनाथ पर छोड़कर वे हिमालय पर्वत के अनेक स्थान तथा नगरों का भ्रमण करते हुए नेपाल में जा पहुंचे। उन दिनों नेपाल में उनके गुरुभाई अजयनाथ अपने कई शिष्यों के साथ योग–प्रचार का कार्य कर रहे थे। धुरंधरनाथ ने कुछ दिन वहीं रहकर परस्पर धर्म–चर्चा की। तदुपरांत वे भूटान देश होते हुए चीन देश के पिलांग (वर्तमान में पेनांग) नामक स्थान पर गए। वहां पर एक गुफा विद्यमान थी, जिसमें उन दिनों धुरंधरनाथ के गुरुभाई विंदुनाथ

रह रहे थे। धुरंधरनाथ ने विंदुनाथ से भेंट की तथा कुछ दिनों वहीं रहकर योग-प्रचार का कार्य किया। उसके बाद वे ब्रह्मदेश (वर्तमान बर्मा) में गए। वहां से अनेक स्थानों का भ्रमण करते हुए अपने उस स्थान पर लौट आए, जहां अपने गुरुभाई विलशयनाथ को छोड़कर यात्रा पर गए थे। इस अवधि में विलशयनाथ ने तारकनाथ आदि अनेक योग्य शिष्यों का तैयार कर रखा था। धुरंधरनाथ उन्हें देखकर अत्यंत प्रसन्न हुए। फिर उन्होंने अपने सभी शिष्यों को विभिन्न स्थानों का भ्रमण करते हुए धर्म-प्रचार करने की आज्ञा दी। गुरु की आज्ञा पाकर वे सब शिष्य विभिन्न दिशाओं में यात्रा करने के लिए चले गए।

इसके बाद धुरंधरनाथजी बारह वर्ष की समाधि लगाकर बैठ गए और समाधि पूरी हो जाने पर पुनः योग-धर्म के प्रचार में लग गए।

नवनाथ चरित्र सागर

भाग-15
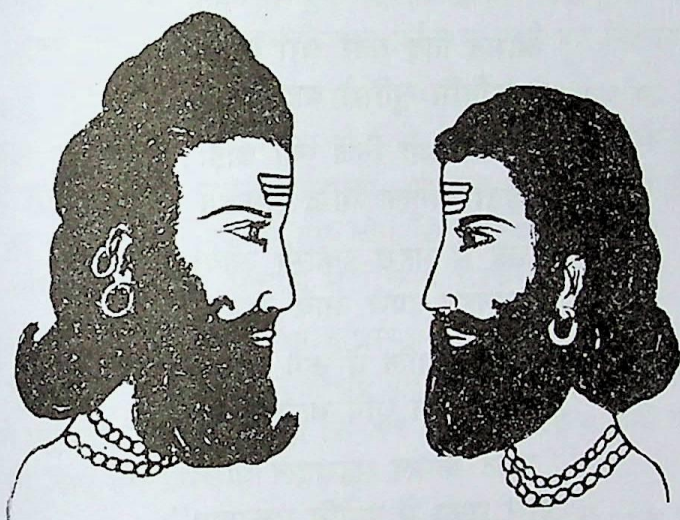
श्री करनारिनाथ एवं श्री निरंजननाथ-चरित्र

(श्री मीननाथ तथा श्री धुरंधरनाथ के शिष्य)

"ऐसा जाप जपो मन लाई।
सोऽहं सोऽहं अजपा गाई॥

आसन दृढ़ करि धरो धियान।
अहनिसि सुमिरो ब्रह्म गियान॥

नासा अग्र निज ज्यों बाई।
इड़ा पिंगुला मधि समाई॥

छह सै सहंस इकीसौ जाप।
अनहद उपजै आपै आप॥

बंक नालि में ऊगै सूर।
रोम रोम धुनि बाजै तूर॥

उलटै कमल सहसदल बास।
भ्रमर गुफा में ज्योति प्रकास॥"

पूर्व-कथा

करनारिनाथ मीननाथ के तथा निरंजननाथ धुरंधरनाथ के मुख्य शिष्य थे। एक समय जब मीननाथ तथा धुरंधरनाथ को यह सूचना मिली कि हिंगलाज नामक स्थान पर समाधिस्थ ज्वालेंद्रनाथ (जालंधरनाथ) बारह वर्ष की समाधि से अब जाग्रत हो चुके हैं, तब उन्होंने धर्म-प्रचार का कार्य अपने शिष्यों पर छोड़कर स्वयं कैलास पर्वत पर रहने का निश्चय किया।

अस्तु, उन्होंने अपने शिष्य करनारिनाथ तथा निरंजननाथ को बुलाकर यह कहा– "हे शिष्यो! अब हम दोनों तो कैलासवास करने के लिए जा रहे हैं। संसार में धर्म-प्रचार करने का भार अब हम तुम दोनों के ऊपर छोड़े जा रहे हैं, सो आज से तुम लोग श्री जालंधरनाथजी की आज्ञा में रहना और उनके बताए अनुसार सभी कार्य करना।"

इतना कहकर मीननाथ तथा धुरंधरनाथ कैलास पर्वत पर चले गए तथा अपने गुरुओं की आज्ञानुसार करनारिनाथ एवं निरंजननाथ ने जालंधरनाथजी की सेवा में पहुंचकर उनसे प्रार्थना की कि अब आप जो आज्ञा दें, उसी का पालन करने के लिए हम प्रस्तुत हैं।

जालंधरनाथजी ने उन दोनों को देश के विभिन्न भागों में भ्रमण करते हुए धर्म तथा योग-विद्या का प्रचार करने का आदेश दिया। तब करनारिनाथ दक्षिण भारत तथा निरंजननाथ उत्तर भारत में धर्म एवं योग का प्रचार करने के लिए चल दिए।

राजपूत स्त्री द्वारा करनारिनाथ की निष्काम सेवा

विभिन्न स्थानों का भ्रमण करते हुए करनारिनाथ दक्षिण दिशा में नर्मदा नदी के तटवर्ती प्रदेश में जा पहुंचे। एक दिन उन्होंने 'भरुच' (वर्तमान भड़ौच) नामक नगर के बाहर एक निर्जन स्थान के जीर्ण देवालय में जाकर अपना आसन लगाया। वे मंदिर के आंगन में बैठकर जप करने लगे।

उस स्थान के समीप ही जंगल था। वहां लोगों का आवागमन नहीं था, परंतु एक राजपूत भील-स्त्री प्रतिदिन उस जंगल में लकड़ियां बीनने के लिए आया करती थी। वह जंगल में से लकड़ियां इकट्ठी करके शहर ले जाती और उससे जो पैसे मिलते, उनसे अपना तथा अपने अर्द्धविक्षिप्त पति का उदर-पोषण करती थी।

एक दिन लकड़ी बीनने के लिए जंगल में आने पर उस स्त्री ने जब निर्जन स्थान वाले जीर्ण देवालय में करनारिनाथ को बैठे हुए देखा तो उसने चुपचाप आकर महात्मा को अपना प्रणाम निवेदित किया। उसके बाद वह लकड़ियां इकट्ठी करके अपने घर चली गई।

शाम के समय वही स्त्री अपने घर से एक मोटी रोटी बनाकर मंदिर में फिर आ पहुंची। वह रोटी उसने करनारिनाथ की सेवा में प्रस्तुत कर दी। करनारिनाथ ने उस दरिद्रा स्त्री द्वारा भेंट की गई भिक्षा को बड़े प्रेम से ग्रहण किया। उन्होंने अपने मन में निश्चय किया कि यह स्त्री अपनी इस सेवा के बदले मुझसे किसी वस्तु की याचना करेगी अथवा कोई इच्छा प्रकट करेगी तो मैं उसे अवश्य पूरा करूंगा, परंतु उस स्त्री ने भिक्षा प्रस्तुत करने के बाद करनारिनाथ से कुछ नहीं कहा और वह चुपचाप अपने घर को लौट गई।

उसकी इस निष्काम भक्ति को देखकर करनारिनाथ अत्यंत प्रसन्न हुए और उन्होंने स्वयं ही उस स्त्री को कुछ देने का विचार किया। स्त्री के जाने के थोड़ी देर बाद ही करनारिनाथ उठकर उस स्त्री की खोज में चल दिए। तब तक वह स्त्री बहुत दूर निकल चुकी थी। करनारिनाथ ने उसे ढूंढ निकालने का निश्चय किया। वे भरुच नगर की ओर चल दिए। जब वे नगर के दरवाजे पर पहुंचे तो उन्हें किसी स्त्री के रोने की आवाज सुनाई दी। उस समय तक रात्रि लगभग संपूर्ण व्यतीत हो चुकी थी और प्रातःकाल होने में थोड़ी-सी देर ही शेष रह गई थी।

मार्ग में एक-दो आदमी आ-जा रहे थे। उनमें से एक आदमी को अपने पास बुलाकर करनारिनाथ ने पूछा- "यह किसके रोने की आवाज आ रही है?"

उस आदमी ने उत्तर दिया- "कुछ दूर आगे चलकर एक वृद्धा राजपूत भील-स्त्री का मकान है। उसका पति पागल-सा था। वह घर में बैठा रहता

था और बुढ़िया जंगल में जाकर लकड़ियां बीन लाती थी तथा उन्हें बेच. कर अपना व अपने पति का उदर-पोषण करती थी। बुढ़िया के पति की आज मध्यरात्रि में मृत्यु हो गई है, सो वही स्त्री इस समय रो रही है।''

यह सुनकर करनारिनाथ आगे बढ़ चले और रोने की आवाज का अनुसरण करते हुए उसी घर के दरवाजे पर जा खड़े हुए, जहां बैठी हुई वह वृद्धा स्त्री रो रही थी।

करनारिनाथ ने देखा कि वह स्त्री वही थी, जिसकी खोज में वे नगर में आए थे। करनारिनाथ को देखते ही उस स्त्री ने रोना-धोना बंद कर दिया और महात्मा के चरणों में सिर रखकर उन्हें बैठने के लिए कहा।

करनारिनाथ ने उससे कहा- ''हे माई! मैं तेरी सेवा से प्रसन्न होकर तेरी मनोभिलाषा पूर्ण करने के लिए यहां आया था। अब तू जो चाहे वह मुझसे मांग ले। मैं तेरे प्रत्येक दुःख को दूर कर दूंगा।''

यह सुनकर उस वृद्धा ने उत्तर दिया- ''हे महाराज! इस मृत-पागल पति के अतिरिक्त संसार में मेरा और कोई नहीं था। अपनी घोर दरिद्रावस्था में भी मुझे अपने पति की सेवा करके आनंद प्राप्त होता था। दुर्भाग्यवश आज ये भी मेरा साथ छोड़कर चले गए हैं। अब मैं और अधिक जीवित नहीं रहना चाहती। यदि आप दे सकें तो मुझे यही वर दीजिए कि मेरी मृत्यु भी इसी समय हो जाए, ताकि मैं परलोक में जाकर अपने पति की सेवा कर सकूं।''

यह सुनकर करनारिनाथजी ने पहले तो उस वृद्धा स्त्री को जीवित रहकर सुखोपभोग करने के लिए बहुत कुछ कहा-सुना, परंतु जब उन्होंने यह देख लिया कि वृद्धा अपने पति के साथ जाना ही चाहती है, तब उन्होंने परलोक सुधारने के लिए वृद्धा को कुछ देर तक ज्ञानोपदेश किया।

इसके बाद जैसे ही करनारिनाथ ने उस वृद्धा से 'तेरी इच्छा पूरी हो' कहा, वैसे ही उस वृद्धा के शरीर से प्राण-पखेरू उड़ गए और वह परलोक में अपने मृत पति के समीप जा पहुंची।

करनारिनाथ वहां से भगवान के नाम का जप करते हुए अपनी कुटिया को लौट आए।

नर्मदा-तट पर सामंत को उपदेश

राजपूत स्त्री को मुक्ति देने के उपरांत करनारिनाथ जब अपनी कुटिया पर लौटे, उस समय तक दिन खूब निकल आया था। करनारिनाथजी के मन में विचार उठा कि अब इस स्थान को छोड़कर कहीं अन्यत्र चलना चाहिए। अस्तु, वे नर्मदा नदी के तट पर जा पहुंचे।

नदी-तट पर उस समय एक नाव खड़ी थी। उसमें मल्लाह भी मौजूद थे। करनारिनाथ ने मल्लाहों से कहा कि वे उन्हें नाव में बैठाकर नदी के पार उतार दें।

करनारिनाथ की बात सुनकर एक वृद्ध नाविक ने उत्तर दिया– "महाराज! आपकी आज्ञा का पालन करके हम लोगों को प्रसन्नता होती, परंतु हम लोगों को राजदरबार से सुबह ही यह आदेश मिला है कि हम अपनी नाव को लेकर तैयार खड़े रहें। सामंत महोदय को नदी के पार जाना है। वे किसी समय भी यहां आ सकते हैं। उन्हें नदी के पार उतारने के बाद हम आपको उस पार पहुंचा देंगे। यदि हम इसी समय आपको नाव में बैठाकर पार ले चलें और बीच में ही सामंत साहब आ गए तो फिर हमारी आफत आ जाएगी। इसलिए आप थोड़ी देर यहीं बैठकर प्रतीक्षा कर लें।"

वृद्ध नाविक की बात सुनकर करनारिनाथ नदी-तट पर बैठ गए। धीरे-धीरे दोपहर का समय हो आया, परंतु सामंत का आगमन नहीं हुआ।

करनारिनाथ ने मल्लाह से पूछा– "अभी मुझे कितनी देर तक और प्रतीक्षा करनी पड़ेगी?"

वृद्ध नाविक ने हाथ जोड़कर उत्तर दिया– "महाराज! राजा और सामंतों के बारे में क्या कहा जाए। फिर भी मैं अपने आदमी को राजदरबार में भेजकर पता लगा लेता हूं। यदि उनके आने में देर होगी अथवा उन्हें नहीं आना होगा तो उस स्थिति में मैं आपको ले चलूंगा।"

यह कहकर नाविक ने एक लड़का राजदरबार में यह पता लगाने के लिए भेजा कि सामंत के आने में अभी कितनी देर है।

नाविक का लड़का राजदरबार में पहुंचा, परंतु सामंत वहां इतने अधिक लोगों से घिरा हुआ तथा कार्य-व्यस्त था कि लड़के को बहुत देर तक खड़े रहने के बाद भी कुछ पूछने का अवसर नहीं मिला। निराश होकर लड़का नाविक के पास लौट आया और उसने सब बात कह सुनाई।

उसे सुनकर करनारिनाथ ने कहा– "हे नाविक! सामंत को राज्य-प्रबंध संबंधी बहुत से कामों में व्यस्त रहना पड़ता है। अत: उनका विलंब से आना अथवा न आना दोनों ही बातें संभव हैं। मैं इसका कोई बुरा नहीं मानता। अस्तु, अब तुम लोग मेरे लिए चिंता मत करो। मैं अपने योगबल से नदी को पार कर लेता हूं। तुम लोग यहीं रहकर निश्चिंत सामंत के आने की प्रतीक्षा करो।"

यह कहकर करनारिनाथ उदान-वायु को वशीभूत कर आकाश-मार्ग द्वारा नदी के पार चले गए। इस दृश्य को देखकर सभी मल्लाह तथा नदी-तट पर खड़े हुए अन्य लोग आश्चर्यचकित रह गए।

"एक योगी नाव के न मिलने पर अपनी योग-शक्ति द्वारा आकाश मार्ग से नदी को पार कर गए।" यह चर्चा पलभर में ही चारों ओर फैल गई। सामंत के कानों में भी यह बात जा पहुंची। तब उसने अपने मन में विचार किया कि मेरे ही कारण योगी को इतना कष्ट उठाना पड़ा है। कहीं वे रुष्ट होकर मुझे शाप न दे बैठें, इसलिए मुझे तुरंत ही उनके पास जाकर अपने अपराध की क्षमा मांग लेनी चाहिए। यह विचार करके सामंत उसी समय उठकर नदी-तट पर गया और वहां से नाव में बैठकर नदी पार जा पहुंचा। करनारिनाथ नदी पार करके एक स्थान पर कुछ देर विश्राम करने के लिए ठहर गए थे। सामंत वहां जाकर करनारिनाथ के चरणों पर गिर पड़ा और उनसे अपने अपराध की क्षमा मांगने लगा।

करनारिनाथ ने उसे क्षमा करते हुए कहा– "हे सामंत! मैं तो जानता हूं कि राज-काज की व्यस्तताओं में पड़कर राज-अधिकारियों को बहुत-सी बातों का ध्यान नहीं रहता, इसलिए सामान्य कारणों से साधु-संन्यासी को उन पर क्रोध प्रकट नहीं करना चाहिए, परंतु सभी लोग एक जैसी प्रकृति के नहीं होते। कुछ क्रोधी स्वभाव के लोग इसे अहंकार की संज्ञा देकर अनिष्ट करने पर भी उतारू हो सकते हैं। इसलिए तुम्हें चाहिए कि भविष्य में तुम इस विषय में सतर्क रहो, ताकि तुम्हारे कारण किसी साधु-संत, महात्मा अथवा योगी को कोई कष्ट न उठाना पड़े।"

करनारिनाथ की इस सलाह को सामंत ने स्वीकार कर लिया और यह वचन दिया कि भविष्य में वह इस संबंध में सदैव सतर्क तथा सावधान बना रहेगा। इसके बाद सामंत राजा करनारिनाथ के चरणों में मस्तक रखकर तथा उनसे आशीर्वाद लेकर विदा हुआ। करनारिनाथ वहां से अन्य स्थान के लिए चल दिए।

त्रिमुख के मेले में चमत्कार-प्रदर्शन

विभिन्न स्थानों में भ्रमण करते हुए करनारिनाथ गोदावरी तटवर्ती त्रिमुख नामक एक गांव में जा पहुंचे। उन दिनों वहां बड़ा भारी मेला लगा हुआ था और उस मेले में योग-विद्या का प्रचार करने के लिए बहुत से योगी भी आए हुए थे। करनारिनाथ के गुरुभाई चंडीश्वरनाथ उनके प्रधान थे, करनारिनाथ उस मेले में योग-प्रचार होते हुए देखकर अत्यंत प्रसन्न हुए।

संध्या के समय जब सब लोग भोजन आदि बना रहे थे, उसी समय एकदम बड़े जोर की आंधी चलने लगी तथा पानी बरसने लगा। मेले में भगदड़ मच गई। उस समय करनारिनाथ ने एक चमत्कार दिखाने का निश्चय किया।

उन्होंने साबरी मंत्रों का प्रयोग करके जिस स्थान पर नाथयोगी ठहरे हुए थे, वहां हवा-पानी का ऐसा स्तंभन कर दिया कि संपूर्ण मेले में तो पानी खूब बरसा, परंतु योगियों की कुटिया में पानी की एक बूंद तक नहीं गिरी।

इस चमत्कार को देखकर मेले में उपस्थित सभी लोगों को अत्यंत आश्चर्य हुआ और वे योग-विद्या की भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे। इस चमत्कार के फलस्वरूप लोगों में योग-शिक्षा के प्रति अत्यधिक आकर्षण उत्पन्न हुआ और उस मेले में हजारों व्यक्तियों ने नाथयोगियों के पास जाकर योग की दीक्षा ली। इस प्रकार योग-विद्या की कीर्ति चारों ओर फैल गई।

मेले की समाप्ति पर जब चंडीश्वरनाथ अपने शिष्यों के साथ कैलास पर्वत पर जाने लगे, तब करनारिनाथ उनसे विदा लेकर अपने नवीन शिष्यों के साथ रामेश्वर की ओर चल दिए। करनारिनाथ जहां-जहां भी जाते, लोगों की भीड़ उनके दर्शनों के लिए उमड़ पड़ती थी। वे सब लोगों को योग तथा भक्ति का उपदेश देते और जो व्यक्ति नाथ-पंथ की दीक्षा लेना चाहते, उन्हें शिष्य बनाते थे। इस प्रकार करनारिनाथ ने सब स्थानों का भ्रमण करते हुए योग-विद्या का अत्यधिक प्रचार-प्रसार किया।

निरंजननाथ का वृत्तांत

पहले बताया जा चुका है कि करनारिनाथ ने दक्षिण भारत में तथा निरंजननाथ ने उत्तर भारत में योग-विद्या का प्रचार-प्रसार करने का निश्चय

किया था। उसी के फलस्वरूप करनारिनाथ तो दक्षिण दिशा में गए और निरंजननाथ ने उत्तर भारत की ओर प्रस्थान किया।

निरंजननाथ ने जिस स्थान से यात्रा आरंभ की थी, उससे थोड़ी ही दूरी पर द्वारिकापुरी थी। अतः निरंजननाथ ने पहले द्वारिकापुरी जाकर भगवान श्रीकृष्ण का दर्शन करने का निश्चय किया।

निरंजननाथ बड़े राजसी ठाट-बाट से रहा करते थे। उनके साथ बहुत से शिष्य थे। हाथी, घोड़ा, पालकी, रथ आदि सभी वाहन उनकी यात्रा में साथ चला करते थे। द्वारिका के लिए प्रस्थान करने से पूर्व निरंजननाथ ने अवंतिराज के पास यह संदेश भेजा कि वे उनकी सवारी के लिए अपना एक हाथी भेज दें। निरंजननाथ की आज्ञानुसार अवंतिराज ने अपना एक सजा हुआ हाथी उनकी सेवा में भेज दिया। निरंजननाथ उस हाथी पर बैठकर द्वारिकापुरी में जा पहुंचे।

योगेश्वर श्रीकृष्ण से भेंट

द्वारिकापुरी में पहुंचकर सब लोगों ने डेरा डाला। दूसरे दिन प्रातःकाल निरंजननाथ ने श्रीकृष्ण मंदिर में जाने का निश्चय किया। वे अपने हाथ में फूलों की एक माला लेकर हाथी के ऊपर बैठ गए। हाथी कृष्ण मंदिर की ओर चल दिया। उस समय निरंजननाथ अपनी योग-शक्ति के प्रभाव से हाथी के ऊपर इस प्रकार बैठे हुए थे कि वे हाथी की पीठ पर स्थित न होकर उससे कुछ ऊंचाई पर आकाश में अधर में उठे हुए थे। जैसे-जैसे हाथी आगे चल रहा था, वैसे-वैसे आकाश में अधर में उठे हुए निरंजन. नाथ भी उसके साथ-साथ आगे बढ़ते चले जा रहे थे। मार्ग में स्त्री-पुरुष इस दृश्य को देखकर आश्चर्यचकित हो रहे थे। वे सब योगी निरंजननाथ की प्रशंसा और जय-जयकार कर रहे थे। हजारों स्त्री-पुरुष उनके हाथी के पीछे-पीछे चलने लगे और श्रीकृष्ण मंदिर के दरवाजे पर जा पहुंचे।

मंदिर के द्वार पर पहुंचकर निरंजननाथ हाथी से उतरकर मंदिर के आंगन में पहुंचे। पुष्पमाला उनके हाथ में थी। उस समय हजारों-लाखों स्त्री-पुरुष मंदिर के आंगन तथा अन्य भागों में उपस्थित थे। वे सब टकटकी लगाकर यह देख रहे थे कि अब आगे क्या घटना घटने वाली है।

जैसे ही निरंजननाथ माला लिए हुए मूर्ति के सामने जाकर खड़े हुए, वैसे ही सब लोगों ने यह देखा कि श्रीकृष्णजी की मूर्ति में से एक चर्तुभुज मूर्ति प्रत्यक्ष प्रकट होकर बाहर निकली। वह शंख, चक्र, गदा, पद्म, पीतांबर तथा वैजंतीमाला को धारण किए हुए थी। भगवान कृष्ण की वह साकार मूर्ति निरंजननाथ के सामने जाकर खड़ी हो गई। निरंजननाथ ने उस मूर्ति के गले में पुष्पमाला पहनाई तथा हाथ जोड़कर स्तुति की। मूर्ति ने निरंजननाथ के मस्तक पर हाथ रखकर आशीर्वाद दिया और अदृश्य हो गई। तब निरंजननाथ मंदिर से बाहर निकलकर अपने निवासस्थान पर चले गए।

इस दृश्य को सब लोगों ने अपनी आंखों से देखा। निरंजननाथ के कारण अन्य लोगों को भी भगवान कृष्ण के प्रत्यक्ष दर्शन प्राप्त हुए। सब लोग निरंजननाथ की जय-जयकार करने लगे। जो लोग उस मंदिर में उपस्थित नहीं थे, उन्होंने जब इस घटना का विवरण सुना तो अपने मंद भाग्य की निंदा करने लगे।

अवंतिराज को सोने की द्वारिका का दर्शन

भगवान श्रीकृष्ण ने योगी निरंजननाथ को मंदिर में प्रत्यक्ष दर्शन दिए, यह समाचार चारों ओर फैल गया। अवंतिराज ने भी उसे सुना तो वह अपने मंत्री, सेनापति, आदि अधिकारियों को साथ लेकर द्वारिकापुरी में जा पहुंचा। वहां जाकर उसने निरंजननाथजी के चरणों में अपना मस्तक रखकर यह प्रार्थना की कि उसे भी भगवान श्रीकृष्ण का दर्शन कराने की कृपा करें।

राजा की प्रार्थना सुनकर निरंजननाथ ने कहा– ''हे राजा! मैं योगी हूं और श्रीकृष्ण योगीराज हैं। इसलिए वे मुझसे प्रत्यक्ष भेंट करने के लिए पधारे थे। मैं उन्हें बार-बार प्रकट होने का कष्ट नहीं दे सकता, परंतु यदि तुम चाहो तो मैं तुम्हें श्रीकृष्णकालीन सोने की द्वारिकापुरी का दर्शन करा सकता हूं।''

राजा ने इस बात को स्वीकार कर लिया। तब निरंजननाथ ने मंत्र द्वारा अभिमंत्रित भस्म राजा और उसके मंत्री तथा सेनापति आदि को देकर उसे अपने ललाट पर लगाने के लिए कहा। भस्म लगाते ही उन लोगों को द्वापरकालीन सोने की द्वारिकापुरी प्रत्यक्ष दिखाई देने लगी।

सब लोगों ने देखा कि संपूर्ण नगरी में सोने के महल तथा घर बने हुए हैं। यादव लोग इधर-उधर घूम रहे हैं। सभी स्त्री-पुरुष अपने कामों में लगे भगवान श्रीकृष्ण के गुणानुवादों का वर्णन कर रहे हैं। सुंदर पशु-पक्षी इधर-उधर भ्रमण कर रहे हैं। नदी-तालाब, झरनों आदि की शोभा का तो वर्णन ही नहीं किया जा सकता। उद्धव, अक्रूर आदि श्रीकृष्ण के सभी साथी तथा मंत्रीगण उन्हें प्रत्यक्ष दिखाई दिए। भगवान श्रीकृष्ण के निवासस्थान का दर्शन भी उन्हें प्राप्त हुआ। एकमात्र भगवान श्रीकृष्ण तथा रुक्मिणीजी को छोड़कर उस समय के सभी व्यक्तियों तथा दृश्यों का अवंतिराज तथा उनके साथियों ने प्रत्यक्ष अवलोकन किया। उस दृश्य को देखकर सब लोग मुग्ध हो गए।

शिष्यों को दीक्षा

अवंतिराज के साथ जो कर्मचारी द्वारिकापुरी में गए थे और जिन्होंने निरंजननाथजी के चमत्कार को प्रत्येक्ष देखा था, उन सबने राजकीय सेवा छोड़कर निरंजननाथजी से दीक्षा लेने का विचार किया। अतः एक दिन उन सबने अवंतिराज की सेवा में पहुंचकर यह निवेदन किया कि महाराज! अब आप हम लोगों को अपनी सेवा से मुक्त करके निरंजननाथजी का शिष्यत्व ग्रहण करने की आज्ञा प्रदान करें।

राजा ने भली-भांति जब यह अनुभव कर लिया कि उसके सब कर्मचारी सच्चे मन से निरंजननाथजी के शिष्य बनना चाहते हैं तो उसने उन्हें प्रसन्नतापूर्वक ऐसा करने की आज्ञा दे दी। अवंतिराज से अनुमति प्राप्त करके वे सब कर्मचारी निरंजननाथजी के पास जा पहुंचे और उनसे दीक्षा देने की प्रार्थना की। निरंजननाथजी ने उन सबकी परीक्षा लेकर केवल सात व्यक्तियों को योग-दीक्षा देने का निश्चिय किया। शेष सब लोगों को उन्होंने यह आज्ञा दी कि वे धर्माचरण करते हुए अवंतिराज की सेवा में रहें। निरंजननाथ का आदेश पाकर अन्य सब लोग अवंतिराज की सेवा में लौट गए।

निरंजननाथजी ने उन सातों शिष्यों को अपने पास रख लिया। कुछ दिनों तक द्वारिका में रहने के बाद वे अपने शिष्यों को साथ लेकर मध्य प्रदेश में चले गए। वहां अनेक स्थानों में भ्रमण तथा धर्म-प्रचार करने के बाद मध्यवाड़ (मेवाड़) में जा पहुंचे। मारवाड़ की सीमा वाले पर्वतीय भाग

में भगवान परशुराम का आश्रम था। उस तीर्थस्थान में पहुंचकर उन्होंने कुछ समय तक निवास किया। इसी स्थान पर निरंजननाथजी ने सातों शिष्यों को नाथ-पंथ की दीक्षा दी और उनका वेश तथा परिधान बदलकर सबके नाम के साथ 'नाथ' शब्द जोड़कर नवीन नामकरण किया। निरंजननाथजी के शिष्यों में दो व्यक्तियों के नाम क्रमशः 'दुर्जन' तथा 'तारक' थे। उनका नामकरण करते समय निरंजननाथजी ने 'तारक' को तो 'तारकनाथ' का नाम दिया, परंतु 'दुर्जन' का नाम 'दूरंगतनाथ' रख दिया। आगे चलकर यही 'दूरंगतनाथ' 'घोरंगनाथ' के नाम से नाथ संप्रदाय में अत्यंत प्रसिद्ध हुए। दूरंगतनाथ के विषय में विशेष वर्णन 'दूरंगतनाथ-चरित्र' नामक अगले अध्याय में किया जाएगा।

दीक्षा देने के बाद निरंजननाथ ने अपने सातों शिष्यों को योगमार्ग का गूढ़ रहस्य समझाया तथा उन्हें मंत्र और शस्त्रास्त्र आदि सभी विद्याओं में प्रवीण बना दिया। इसके बाद उन्होंने प्रत्येक शिष्य को बार-बारह वर्ष तक कठिन तपस्या करने का आदेश दिया। निरंजननाथ के सभी शिष्यों में 'दुर्जन' अर्थात् 'दूरंगतनाथ' यम, नियम आदि का पालन करने में अत्यंत कुशल कठोर तप करने वाले तथा गुरु-भक्त थे, परंतु उनके स्वभाव में अहंकार की मात्रा बहुत अधिक थी। निरंजननाथ उनकी सेवा, नियमादि के पालन तथा जप-तप आदि से अत्यंत प्रसन्न रहते थे, परंतु अहंकारी स्वभाव को देखकर कभी चिंतित भी हो जाते थे। अतः उन्होंने दूरंगतनाथ को विशेष रूप से यह शिक्षा दी कि वे अहंकार नामक प्रबल शत्रु से सदैव बचें। इसी में उनका कल्याण है। यदि उन्होंने ऐसा नहीं किया तो किसी भी समय उन्हें बहुत बड़ा प्रायश्चित्त करना पड़ेगा।

निरंजननाथ ने उन्हें अहंकार से बचने के लिए प्रयत्न करने का आश्वा. सन दिया। इसके बाद निरंजननाथजी अपने शिष्यों के साथ विभिन्न स्थानों का भ्रमण करते हुए बंग देश को चल दिए। मार्ग में मुमुक्षुओं को उपदेश करते हुए तथा योग-धर्म का प्रचार करते हुए उन्होंने हजारों व्यक्तियों को अपना शिष्य बनाया। जब वे संपूर्ण क्षेत्र का भ्रमण पूरा कर चुके, तब अपने शिष्यों को अलग-अलग क्षेत्रों में जाकर धर्म-प्रचार करने की आज्ञा देकर स्वयं कैलास पर्वत पर चले गए और वहीं समाधिस्थ हुए।

नवनाथ चरित्र सागर

भाग-16
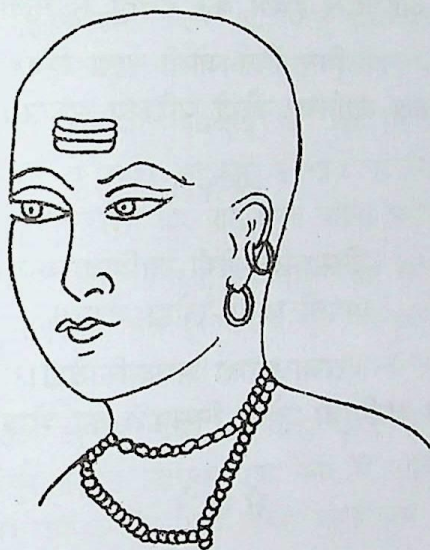
श्री दूरंगतनाथ-चरित्र

(श्री निरंजननाथ के शिष्य)

"परिचय जोगी उत्मन खेला।
अहनिसि इच्छा करै देवता सूं मेला।।
षिन-षिन जोगी नाना रूप।
तब जानिबा जोगी परिचय सरूप।।"

☆☆☆

"निसपति जोगी जाणिवा कसा।
अगनी पाणी लोहा जैसा।।
राजा परजा समकरि देख।
तब जाणिवा जोगी निसपति का भेख।।"

☆☆☆

"बालै जीवन जे नर जती।
काल हू कालां ते नर सती।।
फुरतैं भोजन अलप अहारी।
कहै गोरख सो काया हमारी।।

पूर्व-वृत्तांत

पिछले अध्याय में बताया जा चुका है कि दूरंगतनाथ निरंजननाथजी के शिष्य थे। वे पहले अवंतिराज के यहां नौकरी करते थे, बाद में उन्होंने द्वारिकापुरी वाला चमत्कार देखकर निरंजननाथजी का शिष्य बनना स्वीकार कर लिया। उनका पहला नाम 'दुर्जन' था, परंतु नाथ-पंथ में दीक्षित करते समय निरंजननाथजी ने उनका नाम बदलकर 'दूरंगतनाथ' रख दिया था।

दूरंगतनाथ अत्यंत अहंकारी स्वभाव के थे। निरंजननाथजी ने उन्हें सावधान किया था कि वे अपने अहंकारी स्वभाव पर नियंत्रण रखें, अन्यथा किसी समय उन्हें इसके कारण घोर प्रायश्चित्त करना पड़ेगा।

जब निरंजननाथजी अपने शिष्यों को धर्म-प्रचार की आज्ञा देकर स्वयं कैलास पर्वत पर चले गए, तब दूरंगतनाथ गुरु की आज्ञानुसार धर्म-प्रचार का कार्य करते हुए विभिन्न स्थानों का भ्रमण करने लगे।

बहुत समय तक अनेक तीर्थों की यात्रा करने के उपरांत वे सौराष्ट्र प्रांत के 'वल्लभीपुर पट्टन' नामक एक नगर में पहुंचे। वह स्थान उन्हें बहुत पसंद आया। तब उन्होंने उसी जगह बारह वर्ष की समाधि लगाने का निश्चय किया।

दूरंगतनाथ की समाधि

दूरंगतनाथ के साथ उनका एक अत्यंत प्रिय शिष्य था। दूरंगतनाथ ने उससे कहा कि मैं यहां पर बारह वर्ष की समाधि लगाना चहता हूं। अवधि परी होने तक तुम मेरे शरीर की रक्षा करते रहना। शिष्य अपने गुरु का सच्चा भक्त तथा सेवक था। उसने कहा– "गुरुजी! आप निश्चिंत होकर समाधि में बैठें। मैं बारह वर्ष तक यहीं रहकर आपके शरीर की सुरक्षा करता रहूंगा।"

यह सुनकर दूरंगतनाथ ने नगर से बाहर जंगल में एक निर्जन गुफा तैयार की। वहां वे बारह वर्ष के लिए समाधि लगाकर बैठ गए।

निरंजननाथ का शिष्य गुरु की आज्ञानुसार उनके शरीर की देखभाल करने लगा। वह बेचारा प्रतिदिन भिक्षा मांगने के लिए नगर में जाता और जो कुछ भिक्षा में मिलता, उसी से अपना पेट भरकर गुरु के शरीर की रक्षा करता और अपना समय समाधि लगाने में व्यतीत किया करता था।

दूरंगतनाथ के समाधिस्थ होने के बाद कुछ दिनों तक तो नगर के लोग उसे भिक्षा देते रहे, परंतु फिर उसे प्रतिदिन भिक्षा मांगने के लिए आता देखकर उसका तिरस्कार करने लगे। नगर के लोग कहते– ''तुम्हारा शरीर हट्टा-कट्टा है। या तो तुम कुछ मेहनत-मजदूरी करना आरंभ करो या फिर यदि भिक्षा ही मांगनी है तो किसी दूसरे नगर में चले जाओ। संन्यासी को निरंतर एक ही स्थान पर रहकर भिक्षा नहीं मांगनी चाहिए। इसलिए अब हम लोग तुम्हें भिक्षा नहीं देंगे।''

शिष्य उन सब लोगों के तिरस्कारपूर्ण वचनों को सुनता था, परंतु चूंकि उसके ऊपर अपने गुरु की शरीर-रक्षा का भार था, इसलिए वह उस नगर से बाहर किसी अन्य स्थान पर नहीं जा सकता था।

अंत में एक दिन ऐसा आ गया कि उसे संपूर्ण नगर में घूमने पर भी किसी व्यक्ति ने भिक्षा नहीं दी। निराश होकर वह नगर से बाहर निकलकर एक वृक्ष के नीचे आ बैठा। पहले तो उसने रोष में भरकर उस नगर को दरिद्रता का शाप देने का निश्चय किया, परंतु फिर अपने क्रोध को दबाकर वह चुपचाप भगवान शंकर का स्मरण करने लगा।

उसी समय एक वृद्धा लकड़हारिन अपने सिर पर लकड़ी का गट्ठर रखे हुए उस स्थान जा पहुंची। उसने अपने सिर से लकड़ी का बोझ उतारकर साधु को प्रणाम किया, फिर उन्हें चिंतित देखकर पूछने लगी– ''हे महाराज! आप इस स्थान पर चिंतित क्यों बैठे हैं?''

शिष्य ने लकड़हारिन से अपना कष्ट कह दिया। उसने बताया कि इस नगर के लोगों ने भिक्षा देना बंद कर दिया है, अतः आज उसे उपवास करना पड़ेगा।

सब वृत्तांत सुनकर लकड़हारिन बोली– "महाराज! मैं जाति की कुम्हारिन हूं। लकड़ी बेचकर अपनी आजीविका चलाती हूं। मैं अपने घर से आपके लिए भिक्षा लेकर आती हूं। आप कृपापूर्वक उसे स्वीकार करें।"
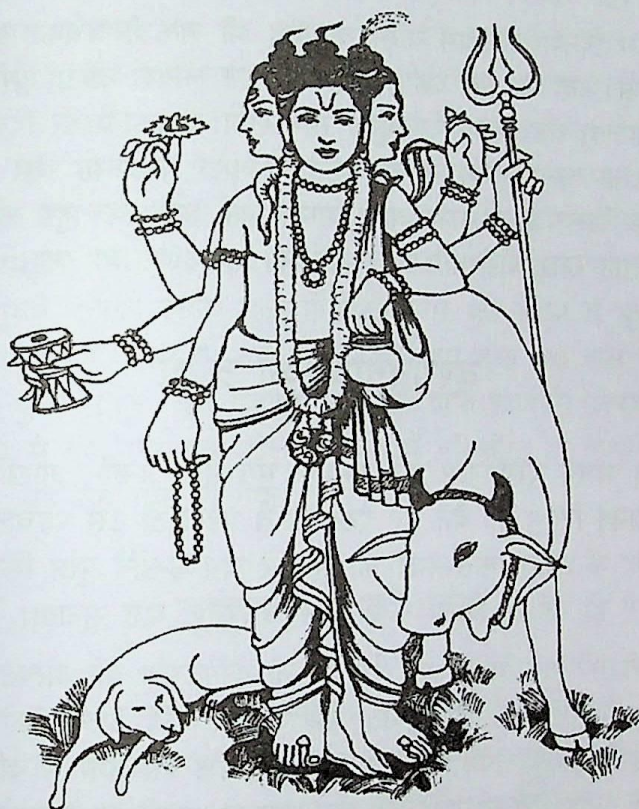
भगवान दत्तात्रेय का चित्र

यह कहकर लकड़हारिन चली गई। थोड़ी देर बाद वह अपने घर से दो रोटियां ले आई। शिष्य ने उन रोटियों को खाकर पानी पिया। फिर लकड़हारिन से यह कहा– "हे माता! अपने गुरु की सेवा के लिए मुझे यहां अभी कई वर्षों तक रहना पड़ेगा। नगर के लोगों ने तो भिक्षा देना बंद कर ही दिया है, इसलिए मेरा विचार है कि मैं भी जंगल से लकड़ियां इकट्ठी करके बाजार में बेच आया करूं। उससे जो पैसा मिलेगा, उसका मैं आटा खरीद लाया करूंगा। तुम मेरे लिए रोटियां बना दिया करना।"

लकड़हारिन ने यह बात स्वीकार कर ली। उस दिन से शिष्य जंगल में जाकर लकड़ियां बीनने और उन्हें नगर में बेचने लगा। उससे जो पैसे मिलते, उनका आटा खरीदकर वह कुम्हारिन को दे देता था। तब कुम्हारिन उसके लिए रोटियां बना देती थी।

शिष्य दिनभर परिश्रम करने के बाद भी लकड़ी बेचकर इतना पैसा नहीं कमा पाता था कि वह अपने पेट भरने लायक आटा खरीदकर ला सके। फलत: वह आधा पेट भूखा रहने लगा। उसका शरीर दिन-प्रतिदिन दुर्बल होता चला गया। आंखें गड्ढे में धंस गई तथा सिर के बाल उखड़कर गिर पड़े, परंतु शिष्य ने हिम्मत नहीं हारी। वह गुरु की सेवा में निरंतर लगा रहा। धीरे-धीरे बारह वर्ष का समय पूरा हो गया।

दूरंगतनाथ का क्रोध

यथा समय दूरंगतनाथ की समाधि भंग हुई। उन्होंने आंखें खोलकर अपने सामने शिष्य को बैठे हुए देखा तो वे पहले तो उसे पहचान ही नहीं पाए, बाद में उसके कंठ-स्वर को सुनकर जब उन्होंने पूछा कि तेरी यह दशा कैसे हो गई तो शिष्य ने उन्हें संपूर्ण वृत्तांत कह सुनाया।

शिष्य की गुरु-भक्ति को देखकर तो दूरंगतनाथ को अत्यंत प्रसन्नता हुई, परंतु नगरवासियों की दुष्टता को देखकर उन्हें अत्यंत क्रोध आया। उन्होंने उसी समय अपने शिष्य से यह कहा कि इस नगर में यदि तुम्हारा कोई प्रिय व्यक्ति हो तो उसे इसी क्षण नगर से बाहर निकल जाने के लिए कह आओ, क्योंकि थोड़ी ही देर में यह नगर मेरी क्रोधाग्नि का शिकार बनकर नष्ट-भ्रष्ट हो जाएगा।

शिष्य ने गुरुजी के क्रोध को शांत करने तथा नगर की रक्षा करने के लिए बहुत कुछ कहा-सुना, परंतु दूरंगतनाथ किसी भी प्रकार अपने क्रोध को शांत करने के लिए तैयार नहीं हुए। यह देखकर शिष्य ने नगर में जाकर उस 'कुम्हारिन' को यह सलाह दी कि वह इसी समय नगर को छोड़कर बाहर चली जाए, क्योंकि उसके गुरु की क्रोधाग्नि के कारण थोड़े ही समय में इस नगर का सर्वनाश होने वाला है।

शिष्य की बात मानकर कुम्हारिन एक गधे के ऊपर अपना सामान लादकर नगर से बाहर निकल गई। 'कुम्हारिन' को नगर छोड़कर बाहर जाते हुए देखकर अन्य लोग उसकी हंसी उड़ाने लगे, परंतु उसने किसी की भी बात पर ध्यान नहीं दिया और नगर से बाहर निकल गई। शिष्य ने गुरु के पास लौटकर जब यह सूचना दे दी कि कुम्हारिन नगर से बाहर निकल गई है और अब नगर में उसका कोई प्रिय व्यक्ति नहीं है, तब दूरंगतनाथ ने अत्यंत क्रोध में भरकर 'पट्टन सो हट्टन' अर्थात् 'पट्टन नगर का नाश हो जाए' वाक्य का उच्चारण करते हुए प्रत्यपास्त्र मंत्र से अभिमंत्रित जल को पृथ्वी पर छिड़क दिया। उस जल के छिड़कते ही 'वल्लभीपट्टन नगर' के साथ ही अन्य जितने भी पट्टन नगर थे, उन सबकी पृथ्वी दहलने लगी। वल्लभीपट्टन नगर की सीमा में पृथ्वी फट गई। मकान गिरकर नष्ट हो गए। वृक्ष उखड़ गए तथा उस नगर के निव. ासी स्त्री-पुरुष सबके नीचे दबकर मृत्यु को प्राप्त हो गए। प्रत्यपास्त्र मंत्र के प्रभाव से वह नगर एक टीले के रूप में परिवर्तित हो गया। वहां जो कुछ था, वह सब नष्ट हो गया।

दूरंगतनाथ को दंड

जिस समय दूरंगतनाथ ने 'पट्टन सो हट्टन' वाक्य का उच्चारण किया था, उस समय उन्होंने अकेले वल्लभीपट्टन नगर का ही नाम नहीं लिया था। इसलिए जिन अन्य नगर के साथ भी पट्टन शब्द जुड़ा हुआ था, उन सबमें भी दूरंगतनाथ के कोप के कारण सर्वनाश की हलचल होनी आरंभ हो गई।

उस समय मत्स्येंद्रनाथजी के शिष्य गोरखनाथजी एक ऐसे नगर में ठहरे हुए थे, जिसके नाम के साथ भी 'पट्टन' शब्द जुड़ा हुआ था। जब उस नगर में भी अचानक हलचल आरंभ हुई तो गोरखनाथ ने ध्यान-दृष्टि से उसके कारण पर विचार किया, तब उन्हें ज्ञात हुआ कि दूरंगतनाथ द्वारा 'पट्टन सो हट्टन' वाक्य का उच्चारण किए जाने के कारण ही 'पट्टन' नामधारी सभी नगरों की दुर्दशा होने जा रही है।

गोरखनाथ समझ गए कि दूरंगतनाथ का अभिप्राय केवल वल्लभीपट्टन नगर को नष्ट करने का है, अन्य नगरों से उन्हें कोई शत्रुता नहीं है। क्रोधावेश में वल्लभीपट्टन का पूरा नामोच्चारण न करने के कारण ही पट्टन नामधारी अन्य नगरों को भी विनाश का शिकार होना पड़ रहा है।

यह देखकर गोरखनाथजी ने अपने योग-बल के प्रभाव से 'वल्लभीपट्टन' को छोड़कर अन्य सभी पट्टन नाम वाले नगरों का दूरंगतनाथ की क्रोध ाग्नि का शिकार होने से बचा लिया। अकेला वल्लभीपट्टन ही पूरी तरह बरबाद हो गया।

अन्य नगरों को विनाश से बचाकर गोरखनाथजी दूरंगतनाथ के पास जा पहुंचे। दूरंगतनाथ ने उन्हें देखते ही प्रणाम किया, तदुपरांत उन्हें आसन देकर अचानक आने का कारण पूछा। उस समय गोरखनाथजी ने कहा– "हे दूरंगतनाथ! तुमने परिणाम का विचार किए बिना ही 'पट्टन सो हट्टन' वाक्य का उच्चारण करके अनेक निरपराध नगरों का नष्ट कर देने का उपक्रम किया है, परंतु मैंने समय रहते अन्य नगरों को बचा लिया। केवल वल्लभीपट्टन ही तुम्हारी क्रोधाग्नि का शिकार बनकर नष्ट हो गया। तुमने जो कुछ किया, उसके कारण नाथ-पंथ को बहुत कलंक लगा है। हम लोग तो सबका कल्याण करने के लिए हैं। हमें अपनी योग-शक्ति का प्रयोग सामूहिक रूप से विनाश के कार्यों में नहीं करना चाहिए। तुम्हें अपनी योग-शक्ति के विषय में बहुत अहंकार हो गया है, अतः तुम्हें इस अहंकार का दंड भोगने के लिए तैयार हो जाना चाहिए।"

गोरखनाथ जी के मुंह से यह शब्द सुनकर दूरंगतनाथ को बहुत पश्चाताप हुआ। उन्होंने हाथ जोड़ते हुए कहा– "महाराज! अपने कृत्य के लिए मुझे बहुत पछतावा हो रहा है। अब मैं इसके लिए प्रत्येक दंड भोगने के लिए तैयार हूं। आप मुझे इस अपराध का प्रायश्चित्त बताने की कृपा करें।"

उन्हीं दिनों जालंधरनाथ तथा नाथ संप्रदाय के अन्य अनेक योगी द्वारिकापुरी के समीप सम्प्रद्रतट पर इकट्ठे रहकर सत्संग कर रहे थे। गोरखनाथजी ने दूरंगतनाथ को उसी स्थान पर चलने के लिए कहा।

दूरंगतनाथ गोरखनाथजी की आज्ञा शिरोधार्य कर अपने शिष्य को साथ लेकर द्वारिकापुरी के समीपवर्ती उस समुद्रतटीय स्थान पर जा पहुंचे।

वहां सब नाथयोगियों ने सम्मिलित रूप से विचार-विमर्श करके दूरंगतनाथ को छत्तीस वर्ष तक कठोर तपस्या करने का दंड दिया, जिसमें पहले बारह वर्ष तक एक पांव पर खड़े रहकर, दूसरे बारह वर्ष तक पीठ के बल खड़े रहकर तथा तीसरे बारह वर्ष तक सिर के बल खड़े रहकर तपस्या करने का प्रावधान था। दूरंगतनाथ ने अपनी भूल का प्रायश्चित्त करने के लिए इस दंड को सहर्ष स्वीकार कर लिया। तदुपरांत वे सभी नाथयोगियों से क्षमायाचना कर तपस्या करने के लिए कच्छ देश की ओर चले गए।

दूरंगतनाथ की तपस्या

कच्छ प्रदेश में एक पहाड़ के ऊपर एकांत स्थान देखकर दूरंगतनाथ ने वहीं तपस्या करने का निश्चय किया। जब वे उस पहाड़ के ऊपर चढ़ने लगे तो उस पहाड़ के सभी पत्थर कांपने लगे। यह देखकर दूरंगतनाथ ने उस पर्वत को संबोधित करते हुए कहा- "अरे दुष्ट पर्वत! मेरे यहां आने के कारण तू बहुत नाराज हो रहा है। मुझे तेरी जरूरत नहीं है। मैं अब दूसरी जगह जाकर तपस्या करूंगा।"

यह कहकर दूरंगतनाथ उस पहाड़ से नीचे उतर आए तथा एक दूसरे सुरम्य पर्वत पर जाकर तपस्या करने बैठ गए।

पहले बारह वर्षों तक उन्होंने एक पांव पर खड़े होकर तपस्या की। फिर दूसर बारह वर्ष पीठ के बल बैठकर तप किया। अंतिम बारह वर्षों की तपस्या को अधिक कठोर बनाने बनाने के लिए उन्होंने सुपारी के ऊपर अपना मस्तक रखकर तथा आकाश की ओर दोनों पांव उठाकर तप किया। इस प्रकार पूरे छत्तीस वर्ष तक उग्र तपस्या करके उन्होंने अपने पाप का पूरा प्रायश्चित्त कर लिया।

तप की समाप्ति पर आंखें खोलने से पूर्व दूरंगतनाथ ने अने शिष्य से कहा– ''हे शिष्य! छत्तीस वर्ष की कठोर तपस्या के बाद जब मैं अपनी आंखें खोलूंगा, उस समय मेरी तपस्या के दु:सह तेज का कुछ अंश आंखों की रास्ते बाहर निकलेगा, जिसकी ज्वाला में सामने की प्रत्येक वस्तु भस्म हो जाएगी। अत: तुम मुझे यह बताओ कि मैं किस दिशा की ओर अपनी आंखें खोलूं।''

यह सुनकर शिष्य ने उत्तर दिया– ''हे गुरुदेव! आप समुद्र की ओर अपनी आंखें खोलिए, क्योंकि आपके तप के दु:सह तेज को वही संवरण कर सकता है।''

यह सुनकर दूरंगतनाथ ने समुद्र की ओर मुंह करके अपनी आंखें खेल दीं। उस समय उनकी नेत्रज्योति के तीव्र प्रभाव से चार-छह कोस तक समुद्र का पानी पीछे हट गया और बहुत देर तक उसमें खलबली मची रही।

इस घटना के बाद से दूरंगतनाथ ने अहंकार का सर्वथा परित्याग कर दिया। सहस्रों लोगों ने उनका शिष्यत्व ग्रहण किया और वे अपने शिष्यों को योग तथा ज्ञान के रहस्य का उपदेश करते हुए उनके जीवन को सार्थक बनाने लगे।

नवनाथ चरित्र सागर

भाग-17
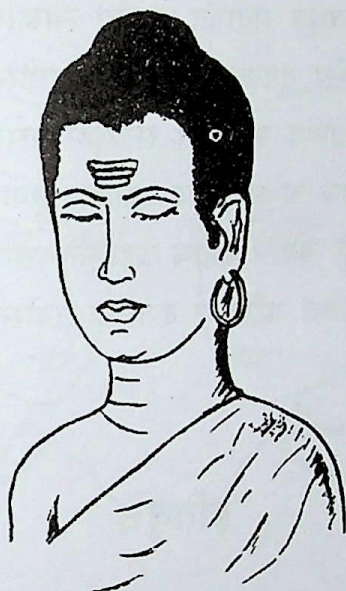
श्री धर्मनाथ-चरित्र

(श्री गोरखनाथ के शिष्य)

''जगदुत्पत्तिकर्त्रेच स्थिति संहार हेतवे।
भवपाश विमुक्ताया दत्तात्रेय नमोस्तुते।।
जराजन्म विनाशाय देहशुद्धिकराय च।
दिगम्बर दयामूर्त्ते दत्तात्रेय नमोस्तुते।।
आदौ ब्रह्मा मध्ये विष्णुरंतेदेवः सदाशिवः।
मूर्त्तित्रय स्वरूपाय दत्तात्रेय नमोस्तुते।।
अवधूत सदानंद परब्रह्म स्वरूपिणे।
विदेह देहरूपाय दत्तात्रेय नमोस्तुते।।
सत्यरूप सदाचार सत्यधर्म परायण।
सत्याय च पराक्षाय दत्तात्रेय नमोस्तुते।।
कर्पूर कांति देहाय ब्रह्ममूर्तिधराय च।
वेदशास्त्र परिज्ञाय दत्तात्रेय नमोस्तुते।।''

इतिवृत्त

श्री धर्मनाथ प्रयागराज त्रिविक्रम के पुत्र थे, लेकिन वास्तव में वे मत्स्येंद्रनाथ के ही पुत्र थे। प्रयाग के राजा त्रिविक्रम की अचानक मृत्यु के बाद राजाविहीन प्रजा का कष्ट देखकर श्री मत्स्येंद्रनाथ परकाया-प्रवेश विद्या द्वारा राजा त्रिविक्रम के शरीर में प्रविष्टि हुए। इस प्रकार राजा त्रिविक्रम पुनरुज्जीवित हुए। त्रिविक्रम रूपधारी मत्स्येंद्रनाथ से ही रानी के गर्भ से धर्मनाथ का जन्म हुआ। मत्स्येंद्रनाथ के निष्प्राण शरीर की रक्षा उनके शिष्य गोरखनाथ ने की।

धर्मनाथजी का संपूर्ण जीवन वृत्त, दीक्षा आदि तथा बाद में उनके द्वारा दिखाए गए चमत्कारों का विशद वर्णन- अध्याय दो (मत्स्येंद्रनाथ-चरित्र) में दिया गया है। अतः यहां पुनः दोहराने की आवश्यकता नहीं है। पाठक वहीं से पढ़ें।

❖❖

नवनाथ चरित्र सागर

भाग-18
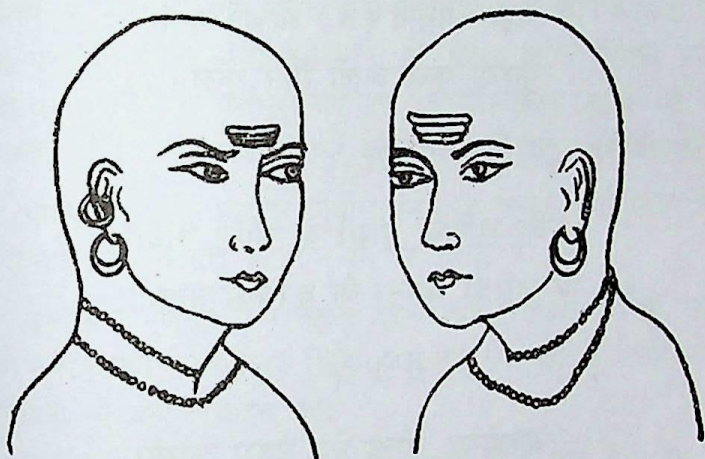
श्री माणिकनाथ-चरित्र

(श्री गोरखनाथ-शिष्य परंपरा के योगी)

''सुणों हे देवल! तजौ जंजालं।
अमिय पिवत तब होइवा बालं।।
ब्रह्म अगिनी (तै) सींचत मूलं।
फूल्या फूल कली फिर फूलं।।''

☆☆☆

''के चलिबा पंथा! के सींबा कंथा।
कै धरिबा ध्यान! कै कथिवा ज्ञान।।''

☆☆☆

''कायागढ़ भीतर देव देहुरा कासी।
सहज सुभाह मिले अविनासी।।''

☆☆☆

''आरम्भ जोगी कथीला एकसार।
षिण षिण जोगी करै सरीर विचार।।''

गोदड़नाथ या माणिकनाथ

पूर्वकाल में साबरमती नदी की एक शाखा माणिक नदी के नाम से प्रसिद्ध थी। उसी माणिक नदी के तट पर एक स्थान में गोरखपंथी महात्मा गोदड़नाथ का आश्रम था। महात्माजी के पास भस्म की एक चपटी के अतिरिक्त और कुछ नहीं था, परंतु उनके शिष्यों तथा भक्तों ने उनके आश्रम के पास ही एक बहुत बड़ी गोशाला तथा अतिथिशाला बनवा दी थी। महात्मा गोदड़नाथजी की कृपा से अनेक लोग धनवान बन गए थे तथा बहुतों की अन्य अभिलाषाएं पूर्ण हुई थीं। अतः उनका यश चारों ओर फैल गया था और उनके शिष्यों की संख्या भी बहुत अधिक हो गई थी।

माणिक नदी के पट पर निवास करने के कारण कुछ समय में महात्मा गोदड़नाथ माणिकनाथ के नाम से भी प्रसिद्ध हो गए।

उन दिनों गुजरात में सुलतान अहमदशाह ने 'अहमदशाह' नामक एक नया नगर बसाने का निश्चय किया। उस नए नगर को ही अहमदशाह अपनी राजधानी भी बनाना चाहता था।

नई राजधानी के लिए जो स्थान चुना गया, वह वहीं था, जहां पर महात्मा माणिकनाथ का आश्रम था। जब नई राजधानी के निर्माण के लिए स्थान की नाप-तौल शुरू हुई तो उसमें महात्मा माणिकनाथ की गोशाला तथा अतिथिशाला वाले स्थान पर भी खूंटे गाड़े गए।

यह देखकर महात्मा माणिकनाथ अत्यंत क्रुद्ध हुए। उन्होंने विचार किया कि सुलतान हम साधु-संन्यासियों को भी चैन से नहीं रहने देना चाहता। अतः मैं उसे शिक्षा दूंगा, जिससे उसकी अकल ठिकाने पर आ जाए।

योजनानुसार कुछ दिनों बाद सुलतान के कारीगरों ने आकर माणिकनाथजी की गोशाला के समीप दीवार खड़ी करनी आरंभ की। दिनभर दीवार की चिनाई करने के बाद जब वे लौट गए तो रात्रि के समय महात्मा गोदड़नाथ उर्फ माणिकनाथजी ने मंत्र अभिमंत्रित भस्म को दीवार की ओर फेंका, जिस कारण दीवार उसी क्षण गिरकर ईंटों के ढेर में बदल गई।

दूसरे दिन कारीगरों ने आकर दीवार की ऐसी दशा देखी तो उन्होंने अपने प्रधान से सब वृत्तांत कहा। कारीगरों के प्रधान ने दूसरे दिन उसी दीवार को पुनः बनाने का आदेश दिया। दूसरे दिन की दीवार उसी रात को फिर पहले की तरह ही गिर पड़ी। तब कारीगरों के प्रधान ने रियासत के दीवान के पास जाकर यह शिकायत की कि हम लोग दिन में जो दीवार खड़ी करते हैं, उसे रात को कोई आकर गिरा जाता है।

यह सुनकर दीवान ने कुछ सिपाही दीवार की सुरक्षा के लिए भेज दिए। उन सिपाहियों ने रातभर पहरा दिया, परंतु उस दिन की बनी हुई दीवार भी पहले की भांति ही रात में फिर गिर पड़ी।

यह समाचार जब सुलतान के पास पहुंचा तो उसे बड़ा क्रोध आया। उसने अपने दरबारियों से पूछताछ की कि यह काम किसका हो सकता है, तब एक दरबारी ने सुलतान से यह कह दिया कि जिस स्थान पर दीवार खड़ी की जा रही है, वहां पर महात्मा माणिकनाथ का आश्रम है। महात्माजी एक पहुंचे हुए योगी तथा सिद्ध पुरुष हैं। संभव है कि यह काम उन्होंने अपने योग-बल द्वारा किया होगा।

यह सुनकर सुलतान ने अपने सेनापति को यह आज्ञा दी कि वह माणिकनाथ को पकड़कर दरबार में हाजिर करें।

सुलतान की आज्ञानुसार सेनापति ने माणिकनाथ के पास जाकर सुलतान का आदेश कह सुनाया, साथ ही यह भी कहा कि यदि आप सीधी राह से नहीं चलेंगे तो उस स्थिति में हम आपको कैद करके सुलतान के पास ले चलेंगे।

यह सुनकर माणिकनाथ के क्रोध की सीमा न रही। उन्होंने उसी समय मंत्र पढ़कर भस्म को सेनापति तथा उसके सैनिकों की ओर फेंका। उस भस्म के प्रभाव से सेनापति तथा उसके साथी सैनिकों के पांव पृथ्वी से जहां-के-तहां चिपक गए और वे पत्थर की मूर्ति जैसे बनकर रह गए।

इस चमत्कार को देखकर सेनापति को अपनी भूल पर बहुत पछतावा हुआ। उसने महात्मा माणिकनाथ से प्रार्थना की कि वे मेरे अपराध को क्षमा कर दें। भविष्य में वह कभी भी इस ओर नहीं आएगा तथा बादशाह से भी जाकर कह देगा कि उसे आश्रम की जमीन पर कब्जा नहीं करना चाहिए। माणिकनाथ ने यह सुनकर अपने मंत्र के प्रभाव को हटा दिया। फलतः वे सभी लोग स्पर्श-मुक्त होकर महात्मा के चरणों में प्रणाम करते हुए सुलतान के पास लौट गए।

माणिकनाथ संकट में

सेनापति ने सुलतान के पास जाकर सब वृत्तांत कह सुनाया तो उसे सुनकर अहमदशाह अत्यंत चिंतित हुआ और अपने दरबारियों से विचार करने लगा कि ऐसे सिद्ध महात्मा ने जिस स्थान पर अपना आश्रम बना रखा है, वहां पर मेरी नई राजधानी किस प्रकार बन सकेगी।

अहमदशाह के दरबारियों में एक बनिया बहुत ही काइयां, चतुर तथा बुद्धिमान था। उसने बादशाह को यह आवश्वासन दिया कि वह महात्मा माणिकनाथ को वश में करने की कोई ऐसी तरकीब ढूंढ निकालेगा, जिसके कारण फिर उस स्थान पर नई राजधानी के बनने में कोई बाधा न रहे।

सुलतान से आज्ञा लेकर बनिया माणिकनाथजी के आश्रम में गया। महात्माजी के भक्त के रूप में उसने कुछ दिनों तक वहीं डेरा जमाया और महात्माजी की किसी कमी को ढूंढने का प्रयत्न करने लगा। अंत में एक दिन महात्माजी के शिष्यों द्वारा उसे यह पता चल गया कि महात्मा माणिकनाथ के गुरु ने अपने शिष्य महात्मा को यह शाप दिया है कि जिस समय माणिकनाथ अत्यंत अहंकार करेंगे, उस समय उनकी सीखी हुई विद्या निष्फल हो जाएगी और उनका पतन होगा।

इस बात को जानकर बनिए की प्रसन्नता की सीमा न रही। वह सुलतान के पास दरबार में लौट गया। वहां जाकर उसने सुलतान के साथ मिलकर एक गुप्त षड्यंत्र की योजना बनाई। फिर उसे मूर्तरूप देने का विचार किया गया।

षड्यंत्र की योजनानुसार दूसरे दिन रियासत का दीवान कुछ अधिकारियों को साथ लेकर महात्मा माणिकनाथ के पास पहुंचा और उनके चरणों का स्पर्श करने के उपरांत अत्यंत विनम्रता तथा भक्ति-भाव का प्रदर्शन करते हुए बोला– "हे महात्माजी! आपके प्रभाव को देख-सुनकर सुलतान अत्यंत भयभीत हो गए हैं और कल वे अपने अपराधों की क्षमा मांगने के लिए आपकी सेवा में हाजिर होना चाहते हैं। उन्होंने मुझे आज इसीलिए भेजा है कि मैं आपसे जाकर सुलतान के लिए आश्रम में आने की आज्ञा ले आऊं।"

दीवान की बातें सुनकर माणिकनाथ का अहंकार और भी अधिक बढ़ गया। उन्होंने बड़े ही गर्वीले शब्दों में कहा– ''यदि सुलतान अपने अपराधों की क्षमा मांगने के लिए यहां आना चाहता है तो वह आ सकता है। तुम उससे जाकर कह देना कि मैंने उसे यहां आने की आज्ञा दे दी है।''

दीवान यह सुनकर सुलतान के पास लौट गया।

दूसरे दिन सुलतान अहमदशाह दीवान, बनिया तथा अन्य दरबारियों को अपने साथ लेकर महात्माजी के आश्रम में जा पहुंचा। सब लोगों ने महात्माजी के चरण छुए तथा उनकी अत्यधिक प्रशंसा की। उसे सुनकर माणिकनाथ का अहंकार और भी अधिक बढ़ गया।

उचित अवसर देखकर बनिए ने महात्माजी से कहा– ''साईं महाराज! सुलतान आपकी सेवा में कुछ चमत्कार देखने के लिए आए हैं, अतः आप इन्हें कोई चमत्कार दिखाने की कृपा करें।''

सुलतान, दीवान तथा अन्य लोगों ने भी कोई चमत्कार दिखाने के लिए बहुत अनुनय-विनय की। उनकी बातों को सुनकर माणिकनाथ का अहंकार और अधिक बढ़ा। तदुपरांत उन्होंने बड़े गर्वीले स्वीर में सुलतान को संबोधित करते हुए यह कहा– ''हे सुलतान! योगियों के लिए कुछ भी कर दिखाना असंभव नहीं है। मैं तुम्हारे सामने एक ऐसा चमत्कार प्रदर्शित करता हूं, जिसे देखकर तुम दंग रह जाओगे।''

सुलतान ने हाथ जोड़कर पूछा– ''महाराज! वह चमत्कार कैसा होगा?''

माणिकनाथ बोले– ''यह जो सामने गंगासागर रखा है, मैं सूक्ष्म रूप धारण कर इसके भीतर प्रवेश करूंगा और फिर उससे भी अधिक सूक्ष्म रूप बनाकर इसकी टोंटी से बाहर निकल आऊंगा।''

सुलतान बोला– ''यह तो वास्तव में बहुत बड़ा चमत्कार है। आप इसे शीघ्र दिखाइए।''

तब माणिकनाथ ने योग-बल द्वारा अपना शरीर बहुत छोटा बना लिया और वे गंगासागर के भीतर प्रविष्ट हो गए।

जैसे ही माणिकनाथ गंगासागर के भीतर पहुंचे, वैसे ही कपटी सुलतान के मन में यह विचार उत्पन्न हुआ कि इस साधु को इसी गंगासागर के

भीतर बंद कर देना चाहिए। उसने अपने दीवान की ओर इशारा किया। दीवान उसके संकेत का अर्थ समझ गया और उसने गंगासागर को अपने हाथ में लेकर एक हाथ से उसका ऊपरी मुंह तथा दूसरे हाथ से टोंटी के छिद्र को बंद कर दिया।

अहंकार में भरे हुए तथा गंगासागर के भीतर बंद माणिकनाथ ने जब यह देखा कि सुलतान ने उनके साथ धोखा किया है तो वे और भी अधिक क्रोध तथा अहंकार में भरकर गंगासागर के भीतर से ही यह कहने लगे– "हे सुलतान! या तो तू अपने वजीर को हुक्म देकर इस गंगासागर के मुंह और टोंटी के छिद्र को खुलवा दे, नहीं तो मैं इस गंगासागर के भीतर रहते हुए ही तेरा और तेरे राज्य का सर्वनाश कर दूंगा।"

सुलतान को बनिए के द्वारा यह पहले ही ज्ञात हो चुका था कि गुरु के शाप के कारण अहंकार में भर जाने पर माणिकनाथ की विद्या निष्फल हो जाएगी। अतः उसने माणिकनाथ की इस धमकी की कोई चिंता किए बिना इस प्रकार कहा– "हे साईं बाबा! आप तो हर प्रकार से समर्थ हैं। अतः अब आप अपनी विद्या के प्रभाव से इस लोटे (गंगासागर) को फोड़कर बाहर निकल आइए। मैं इसी चमत्कार को देखना चाहता हूं। इसीलिए मैंने अपने वजीर से कहकर लोटे का मुह बंद करा दिया है।"

यह सुनकर लोटे के भीतर बंद माणिकनाथ ने और भी अंहकार में भरकर सुलतान को अपनी विद्या का प्रभाव दिखाने के लिए मंत्र शक्ति द्वारा लोटे को फोड़कर बाहर निकलने का निश्चय किया, परंतु यह क्या? जैसे ही उन्होंने लोटे को फोड़ने के लिए विभक्तास्त्र मंत्र का जप करना चाहा, वैसे ही उनकी स्मरण-शक्ति लोप हो गई और वह मंत्र उन्हें याद ही नहीं आया। इसके बाद उन्होंने वज्रास्त्र आदि अन्य मंत्रों का जप करना चाहा, परंतु गुरु के शाप के कारण उस समय एक भी मंत्र उन्हें याद नहीं आ सका। ऐसी स्थिति में वे बहुत छटपटाए और अपने गुरु का स्मरण करते हुए गंगासागर के भीतर ही रो पड़े।

अपने शिष्य की इस स्थिति को देखकर दयालु गुरु उस लोटे के भीतर ही सूक्ष्म रूप धारण कर प्रकट हो गए और उन्होंने माणिकनाथ को संबोधित करते हुए इस प्रकार कहा– "हे शिष्य! मैंने तुझे पहले ही यह कहा था कि तू जिस समय अहंकार में भरकर कोई काम करना चाहेगा, उस समय तेरी विद्या

निष्फल हो जाएगी। तूने पिछले कई दिनों से अपने अहंकार का प्रदर्शन किया है और वह उत्तरोत्तर बढ़ता ही चला गया है। अब तू इस अहंकार को त्याग दे तथा इस सुलतान के नया नगर बसाने के निश्चय में बाधा मत डाल। उसने अपने पिछले जन्मों में साधु-संतों की सेवा करके ही इस जन्म में सुलतान का पद प्राप्त किया है। अतः इसे अपने पुण्यों के फल का उपभोग करने दे। तेरा समय भी अब कैलासवास करने का आ गया है। अतः तू यहां पर अंतिम समाधि लेकर मेरे पास चला आ। मैं वहां पर तेरे आने की प्रतीक्षा करूंगा।''

इतना कहकर गुरु अंतर्धान हो गए। माणिकनाथ की आंखें खुल गई और उनका संपूर्ण अहंकार नष्ट हो गया। तब उन्होंने अत्यंत स्नेहपूर्ण स्वर में सुलतान को संबोधित करते हुए कहा– ''हे सुलतान! अब तू इस गंगासागर के मुंह को खोल दे। मैं तेरे मार्ग में बाधक नहीं बनूंगा, क्योंकि मेरे गुरु ने अभी-अभी मुझे यह उपदेश किया है कि तू पूर्वजन्म का पुण्यात्मा है, अतः मुझे तेरे द्वारा नया नगर बसाए जाने की योजना का विरोध नहीं करना चाहिए। अब तू प्रसन्नतापूर्वक अपना कार्य आरंभ कर। मैं भी अब यहां समाधि लेकर कैलासवास करूंगा।''

मणिकनाथ के इन शब्दों को सुनकर सुलतान ने वजीर को गंगासागर का मुह खोल देने की आज्ञा दी। गंगासागर का मुंह खुलते ही माणिकनाथ बाहर निकलकर अपने पूर्व रूप में आ गए।

उस समय सुलतान ने उनके चरणों पर गिरकर अपने अपराध की क्षमा मांगी तथा आशीर्वाद देने की याचना की। महात्मा माणिकनाथ ने सुलतान का अपराध क्षमा कर दिया तथा उसे आशीर्वाद देकर विदा किया। कुछ दिनों में 'अहमदाबाद' नामक नया नगर बसकर तैयार हो गया। अहमदशाह ने उस नए नगर को अपनी राजधानी बनाया। सुलतान ने महात्मा गोदड़नाथ उर्फ माणिकनाथ की स्मृति में नगर के परकोटे के एक बुर्ज का नाम 'माणिकबुर्ज' तथा नगर के मुख्य चौक का नाम 'माणिक चौक' रख दिया। अहमदाबाद का 'माणिकबुर्ज' तथा 'माणिक चौक' आज भी महात्मा माणिकनाथ की यश-गाथा के प्रत्यक्ष उदाहरण बने हुए हैं।

नवनाथ चरित्र सागर

भाग-19
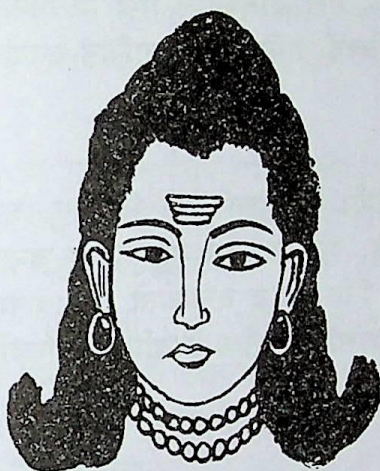
श्री निवृत्तिनाथ एवं श्री ज्ञाननाथ-चरित्र

(श्री भगवान शिव तथा श्री भगवान विष्णु के अवतार)

"योगी पुञ्जीत सततमात्मानं रहसि स्थितः।
एकाकी यतचित्तात्मा निराशीरपरिग्रहः।।
शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः।
नात्युच्छितं नातिनीचं चैलाजिन कुशोतरम्।।"

☆☆☆

"प्राणैः प्रयोजितं चेतो विषयेषु विवर्तते।
बहिः संचरता तेन मुहुर्मुह्यन्ति जन्तवः।।
ततो नियम्यमद्ध क्तश्चेतो योगावलम्बनः।
निराशंसो निरातंक निर्वाणमधिगच्छति।।"

विट्ठलपंत का वृत्तांत

विट्ठलपंत का जन्म योगिराज गहिनीनाथ की कृपा से हुआ था। विट्ठलपंत के माता-पिता आपे गांव के रहने वाले थे। उनकी कोई संतान नहीं थी। एक दिन गहिनीनाथ उनके द्वार पर भिक्षा मांगने के लिए पहुंचे। उस समय उन्होंने कृपा करके विट्ठलपंत की माता को पुत्रवती होने का आशीर्वाद दिया और संतान-मंत्र से अभिमंत्रित भस्म का सेवन करने के लिए दी। उसी भस्म के प्रताप से नौ मास पूरे होने पर विट्ठलपंत ने जन्म लिया।

विट्ठलपंत जन्म से ही मूर्तिमान वैरागी थे। बाल्यावस्था में ही उन्होंने संपूर्ण वेद तथा शास्त्रों का अध्ययन तथा ज्ञान प्राप्त कर लिया था। तत्पश्चात् वे एक दिन माता-पिता से कहे बिना ही तीर्थयात्रा करने के लिए निकल पड़े।

द्वारिका, प्रभास क्षेत्र, सप्त श्रृंगी तीर्थ, त्र्यंबकेश्वर, कुशावर्त, ब्रह्मगिरि आदि स्थानों का भ्रमण करते हुए वे इंद्रायणी नदी के तट पर बसे हुए अलंकापुरी (आलंदी) नामक गांव में जा पहुंचे। वहां जाकर उन्होंने श्रीसिद्धेश्वर मंदिर में कुछ दिनों तक निवास किया।

उसी आलंदी गांव में सिधोपंत कुलकर्णी नामक एक वसिष्ठ गोत्री ब्राह्मण रहता था। उसकी पत्नी का नाम उमाबाई था। दोनों पति-पत्नी अत्यंत धर्मनिष्ठ तथा सदाचारी थे। उनके रुक्मिणीबाई नामक विवाह योग्य एक कन्या थी। सिधोपंत उस कन्या के विवाह के लिए योग्य वर की तलाश में थे।

एक दिन रात को सिधोपंत को स्वप्न हुआ। उसमें भगवान ने उसे यह आज्ञा दी कि श्रीसिद्धेश्वर के मंदिर में विट्ठलपंत नामक जो युवक ठहरा हुआ है, वह परमज्ञानी, धर्मात्मा तथा कुलीन ब्राह्मण है। तू उसके साथ अपनी कन्या का विवाह कर दे। उसके गर्भ से शिव तथा विष्णुपुत्र के रूप में अवतार लेंगे और तेरे कुल का उद्धार हो जाएगा।

इस स्वप्न को देखकर सिधोपंत दूसरे दिन प्रातःकाल होते ही सिद्धेश्वर मंदिर में गया। वहां जाकर वह अनुनय-विनयपूर्वक विट्ठलपंत को अपने घर ले आया और उनसे यह प्रार्थना की कि वे उसकी कन्या रुक्मिणीबाई के साथ विवाह करना स्वीकार कर लें।

विट्ठलपंत ने उत्तर दिया- "मैं तो तीर्थाटन के लिए निकला हुआ हूं। मैंने अपने माता-पिता से विवाह करने की आज्ञा नहीं ली है, अतः मैं विवाह करने में असमर्थ हूं।"

यह सुनकर सिधोपंत चुप रह गया, परंतु उसी रात सोते समय उसे यह स्वप्न दिखाई दिया कि भगवान उसे रुक्मिणीबाई के साथ विवाह कर लेने की आज्ञा दे रहे हैं तथा यह कह रहे हैं कि यह विवाह हो जाने पर रुक्मिणीबाई के गर्भ से शिव तथा विष्णु का अवतार होगा और उसके द्वारा तेरे कुल तथा संपूर्ण संसार का उद्धार हो जाएगा।

इस स्वप्न को देखकर विट्ठलपंत सिधोपंत की कन्या के साथ विवाह करने के लिए तैयार हो गए। तदुपरांत एक दिन शुभ मुहूर्त में सिधोपंत ने अपनी कन्या रुक्मिणीबाई का विवाह विट्ठलपंत के साथ कर दिया।

विवाहोपरांत कुछ दिनों तक विट्ठलपंत ने पंढरपुर, श्री शैल, रामेश्वर, शिवकांची, विष्णुकांची, गोकर्ण आदि तीर्थस्थानों की यात्रा की। रुक्मिणीबाई, सिधोपंत तथा उनके परिवारजन भी इस यात्रा में साथ रहे। तदुपरांत सिधोपंत तो अपने परिवार सहित आलंदी लौट गए और विट्ठलपंत अपनी पत्नी रुक्मिणीबाई को साथ लेकर अपने माता-पिता के पास जा पहुंचे।

अपने रमतेराम पुत्र को सुंदर तथा सुयोग्य पत्नी के साथ घर वापस आया हुआ देखकर माता-पिता को अत्यंत प्रसन्नता हुई। उन्होंने पुत्र तथा पुत्रवधु को बड़े प्रेम से अपने पास रखा। विट्ठलपंत ईश्वराराधना करते हुए गृहस्थाश्रम का निर्वाह करने लगे, परंतु उन्हें गृहस्थी के कामों में कोई रुचि नहीं थी।

कुछ समय बाद विट्ठलपंत के माता-पिता स्वर्गवासी हो गए। तब रुक्मिणीबाई ने अपने पिता सिधोपंत को पत्र लिखकर आपे गांव में बुलाया। सिधोपंत आपे गांव आकर अपनी पुत्री रुक्मिणीबाई तथा जामाता

विट्ठलपंत को अपने साथ आलंदी गांव में ले गए। आलंदी गांव में रहते हुए भी विट्ठलपंत की वैराग्यवृत्ति में कोई अंतर नहीं आया। वे हर एकादशी को पंढरपुर जाकर भगवान के दर्शन और संत समागम करते थे। उनके मन में संन्यास लेने की इच्छा जोर पकड़ने लगी। एक दिन उन्होंने अपनी पत्नी रुक्मिणीबाई से कहा कि मैं संन्यास लेना चाहता हूं। रुक्मिणीबाई ने उत्तर दिया कि जब तक पितृऋण चुकाने के लिए आप किसी संतान के पिता न बन जाएं, तब तक संन्यास लेना उचित नहीं होगा।

विट्ठलपंत पत्नी की सहमति न पाकर उस समय तो चुप रह गए, परंतु फिर एक दिन उन्होंने अपनी पत्नी के पास जाकर कहा– ''मैं गंगास्नान करने के लिए जाना चाहता हूं।'' असावधान पत्नी ने उनके कथन का तात्पर्य समझे बिना स्वीकृति देते हुए कह दिया– ''आप गंगास्नान के लिए चले जाइए।''

विट्ठलपंत ने इस उत्तर को सुनकर 'पत्नी ने स्वीकृति दे दी है' ऐसा मान लिया और वे घर छोड़कर काशीपुरी जा पहुंचे।

विट्ठलपंत का संन्यास

उन दिनों काशी में रामानंद स्वामी की बहुत ख्याति थी। वे बड़े पहुंचे हुए संत तथा संन्यासी थे। सैकड़ों लोगों ने उनसे दीक्षा ग्रहण की और हजारों-लाखों व्यक्ति उनके शिष्य तथा भक्त थे। विट्ठलपंत ने उन्हीं के आश्रम में रहकर सेवा करनी आरंभ की। कुछ ही दिनों में रामानंद स्वामी विट्ठलपंत पर बहुत प्रसन्न हो गए। तब एक दिन विट्ठलपंत ने उनसे यह प्रार्थना की कि हे महाराज! मैं अकेला हूं। मेरे स्त्री-पुत्रादि कोई नहीं है। आप मुझे संन्यास-दीक्षा देने की कृपा करें। रामानंद स्वामी ने विट्ठलपंत की प्रार्थना स्वीकार कर उन्हें संन्यास-दीक्षा दे दी।

कुछ समय बाद आलंदी के रहने वाले कुछ लोग जब काशीपुरी गए और वहां जाकर उन्होंने विट्ठलपंत को संन्यासी वेष में देखा तो उन्होंने आलंदी लौटकर सर्वत्र यह बात फैला दी कि विट्ठलपंत ने काशी में जाकर संन्यास ले लिया है। इस समाचार को सुनकर रुक्मिणीबाई को बहुत

दुःख हुआ। वे अपने पति की पुनः प्राप्ति के लिए उग्र अनुष्ठान और तप करने लगी। इस प्रकार बारह वर्ष का समय व्यतीत हो गया।

विट्ठलपंत का पुनः गृहस्थाश्रम में प्रवेश

एक बार रामानंद स्वामी अपने शिष्यों को साथ लेकर रामेश्वर की यात्रा करने निकले। दैववशात् मार्ग में उन्होंने आलंदी गांव में मुकाम किया। वहां वे हनुमानजी के मंदिर में ठहरे हुए थे। तभी एक दिन रुक्मिणीबाई भी उस मंदिर में दर्शन करने के लिए जा पहुंची। रुक्मिणीबाई ने वहां रामानंद स्वामी को देखकर उनके चरण स्पर्श किए। स्वामीजी ने उसे पुत्रवती होने का आशीर्वाद दिया।

स्वामीजी के आशीर्वाद को सुनकर रुक्मिणीबाई ने कहा– "हे स्वामीजी! आपने तो मुझे पुत्रवती होने का आशीर्वाद दिया है और मेरे पति को आज बारह वर्ष हो गए हैं। उन्होंने काशी में जाकर संन्यास ग्रहण कर लिया है। ऐसी स्थिति में आपका आशीर्वाद सफल कैसे होगा?"

रामानंद स्वामी यह सुनकर चिंतित हो गए। उन्होंने रुक्मिणीबाई से पूछताछ की तो पता चला कि आज से बारह वर्ष पूर्व विट्ठलपंत नामक जिस युवक को उन्होंने संन्यास-दीक्षा देकर उसका नाम 'चैतन्य स्वामी' रखा था, वही पुरुष रुक्मिणीबाई का पति है।

विट्ठलपंत ने उनसे झूठ बोला और उन्होंने विश्वास करके उस निःसंतान गृहस्थ-पुरुष को जिसकी युवा पत्नी घर में मौजूद है, संन्यास-दीक्षा दे दी– यह जानकर रामानंद स्वामी को बहुत दुःख हुआ। तब वे फिर सिधोपंत के घर गए और उनसे बातचीत करके अन्य सब बातें मालूम कीं। तदुपरांत रुक्मिणीबाई को इस बात का आश्वासन दिया कि वे उसके पति को पुनः गृहस्थाश्रम में वापस भेज देंगे। यह कहकर रामेश्वर-यात्रा को अधूरा छोड़कर वहीं से काशीपुरी लौट गए। काशीपुरी में पहुंचकर उन्होंने चैतन्य स्वामी नामधारी विट्ठलपंत को अपने पास बुलाया और कहा– "रामेश्वर की यात्रा के लिए जाते समय मैं आलंदी गांव में ठहरा था। वहां मुझे तुम्हारे विषय में सब बातों का पता चल गया है। तुमने मुझसे झूठ बोलकर संन्यास-दीक्षा ली है। अब जो हुआ सो हुआ, परंतु

अब मेरी आज्ञा है कि तुम यहां से अपने घर वापस लौट जाओ और अपनी पत्नी के साथ रहकर पुनः गृहस्थाश्रम धर्म का पालन करो।"

विट्ठलपंत को संतान-प्राप्ति

संन्यास छोड़कर पुनः गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने के कारण आलंदी निवासियों ने विट्ठलपंत का जातीय बहिष्कार कर दिया। विट्ठलपंत सब लोगों से बहिष्कृत तथा निंदित होने पर भी विचलित नहीं हुए। वे भगवान का भजन करते हुए भिक्षा मांगकर कुटुंब का निर्वाह करने लगे। कुछ दिनों बाद लोगों ने उन्हें भिक्षा देना भी बंद कर दिया, तब उन्होंने फल-फूल खाकर जीवन बिताना आरंभ कर दिया।

बारह वर्ष बाद रुक्मिणीबाई के गर्भ से शिवजी के अवतार निवृत्तिनाथ का जन्म हुआ। उसके दो वर्ष बाद विष्णुजी के अवतार ज्ञाननाथ (ज्ञानेश्वर) का जन्म हुआ। इसके बाद दो-दो वर्ष के अंतर से क्रमशः सोपानदेव नामक तीसरे पुत्र तथा मुक्ताबाई नामक एक कन्या का जन्म हुआ। ये चारों बालक देवताओं के अवतार थे। बाल्यावस्था से ही इन सबमें अपूर्व ज्ञान, वैराग्य तथा भक्ति के लक्षण दिखाई देने लगे।

एक समय मत्स्येंद्रनाथजी तथा गोरखनाथजी ने गर्भाद्रि पर्वत पर समारोह करके सभी साधु-संत, ऋषि-मुनि तथा देवताओं को भोजन कराया था। उस समय शिवजी ने उनसे यह कहा था कि भविष्य में मैं निवृत्तिनाथ के रूप में जन्म लेकर गोरखनाथ के शिष्य गहिनीनाथ से दीक्षा लूंगा। अतः अपने उसी वचन के अनुसार शिवजी ने अपने अंशरूप से, रुक्मिणीबाई के गर्भ से निवृत्तिनाथ के रूप में जन्म लिया था।

आलंदी गांव के लोग उन बालकों को 'संन्यासी के बालक' कहकर अपमानित किया करते थे। विट्ठलपंत को यह सब देखकर बहुत दुःख होता था, परंतु वे किसी से कुछ न कहकर शांत भाव से अपने बालकों के पालन-पोषण एवं शिक्षा-दीक्षा का प्रबंध करते रहते थे। धीरे-धीरे निवृत्तिनाथ की आयु सात वर्ष की हो गई।

निवृत्तिनाथ की दीक्षा

विट्ठलपंत को अपने पुत्र निवृत्तिनाथ के यज्ञोपवीत-संस्कार की बड़ी चिंता थी, परंतु विट्ठलपंत के जाति-बहिष्कृत होने के कारण कोई भी ब्राह्मण उनके पुत्र का यज्ञोपवीत कराने के लिए तैयार नहीं था।

एक बार विट्ठलपंत अपनी पत्नी रुक्मिणीबाई, पुत्री मुक्ताबाई तथा तीनों पुत्रों को साथ लेकर त्रयंबकेश्वर की यात्रा करने गए। वहां कुशावर्त में स्नान करने के पश्चात् जब ब्रह्मगिरि की परिक्रमा कर रहे थे, तभी अचानक एक ओर से सिंह की गर्जना का शब्द सबके कानों में पड़ा। उस शब्द को सुनकर सभी बालक घबराहट में इधर-उधर दौड़ पड़े। वह रात्रि का समय था। प्रातःकाल होने में कुछ समय बाकी था। अतः किसी को एक-दूसरे के विषय में कोई पता नहीं चला।

निवृत्तिनाथ भागते हुए अंजनी पर्वत की एक गुफा में घुस गए। वहां पर महात्मा गहिनीनाथ बैठे हुए तपस्या कर रहे थे। यथार्थ में सिंह की गर्जना तो एक मायामय दृश्य था। उसके बहाने गहिनीनाथ ने निवृत्तिनाथ को अपने पास बुलाया था। अस्तु, जब निवृत्तिनाथ उनके पास पहुंच गए, तब उन्होंने बड़े प्रेम से उनके मस्तक पर हाथ रखकर आशीर्वाद दिया। तदुपरांत गहिनीनाथ ने निवृत्तिनाथ को ब्रह्मज्ञान का उपदेश देकर योगमार्ग की दीक्षा दी।

गहिनीनाथ ने सात दिनों तक निवृत्तिनाथ को अपने पास रखा। इस अवधि में उन्होंने निवृत्तिनाथ को अनेक प्रकार की विद्याओं तथा मंत्रों का अभ्यास कराया। जब निवृत्तिनाथ पूर्णज्ञानी बन गए तथा उन्हें सब प्रकार की सिद्धियों एवं विद्याओं का ज्ञान प्राप्त हो गया। तब युगधर्म के अनुसार गहिनीनाथ ने उन्हें भगवान श्रीकृष्ण की उपासना तथा उनके नाम संकीर्तन का प्रचार करने की आज्ञा दी। गुरु की कृपा से निवृत्तिनाथ इस अल्प अवधि में ही ब्रह्मज्ञानी पद को प्राप्त हो गए। तदुपरांत वे गहिनीनाथ से आज्ञा लेकर अपने माता-पिता के पास लौट गए।

माता-पिता और भाई-बहन तथा बहन को उन्होंने संपूर्ण घटना कह सुनाई तथा गहिनीनाथजी ने उन्हें योग-दीक्षा देकर अपना शिष्य बनाया है। यह रहस्य भी प्रकट कर दिया। उस सब वृत्तांत को सुनकर सभी को अत्यंत प्रसन्नता हुई।

विट्ठलपंत तथा रुक्मिणीबाई की मृत्यु

तीर्थयात्रा करके विट्ठलपंत अपनी पत्नी तथा बच्चों के साथ आलंदी गांव में लौट आए। पहले ही बताया जा चुका है कि विट्ठलपंत को अपने पुत्रों के यज्ञोपवीत-संस्कार की बड़ी चिंता थी। अतः उन्होंने गांव के ब्राह्मणों से यह प्रार्थना की कि वे कोई भी प्रायश्चित्त कराके उनके पुत्रों का यज्ञोपवीत कराने की कृपा करें।

विट्ठलपंत की प्रार्थना सुनकर आलंदी गांव के दुष्ट ब्राह्मणों ने उनसे यह कहा कि तुम्हारा अपराध बहुत बड़ा है। तुमने एक बार संन्यासी होकर फिर गृहस्थाश्रम में प्रवेश किया है। इस पाप का प्रायश्चित्त केवल शरीरांत करना ही है। अतः पहले तुम अपने शरीर का अंत कर दो, उसके बाद ही इस बात पर विचार किया जा सकता है कि इन बालकों को दीक्षा किस प्रकार दी जाए।

ब्राह्मणों की बात सुनकर विट्ठलपंत ने संतानों के हित में अपना शरीर त्याग देने का निर्णय किया। वे आलंदी गांव से चलकर प्रयाग में जा पहुंचे। वहां उन्होंने त्रिवेणी-संगम में जल-समाधि ले ली। उनके पीछे-पीछे रुक्मिणीबाई ने भी त्रिवेणी-संगम में छलांग लगाकर अपने शरीर का अंत कर दिया। उस समय निवृत्तिनाथ की आयु केवल दस वर्ष की थी।

विट्ठलपंत तथा रुक्मिणीबाई द्वारा जीवित जल-समाधि लेने के बाद भी आलंदी के दुष्ट ब्राह्मणों ने निवृत्तिनाथ तथा उनके भाइयों को यज्ञोपवीत देकर अपनी जाति में सम्मिलित करना स्वीकार नहीं किया।

माता-पिता की मृत्यु हो जाने पर निवृत्तिनाथ अपने छोटे भाइयों और बहन को लेकर अपने पैतृक गांव आपे चले गए, परंतु वहां कुटुंबियों ने न तो उन्हें अपने घर में घुसने दिया और न ही उनकी पैतृक संपत्ति में कोई हिस्सा देना ही स्वीकार किया। अतः निवृत्तिनाथ कुछ दिन वहां रहकर फिर अपनी ननसाल आलंदी गांव में लौट आए तथा भिक्षा मांगकर अपने छोटे भाइयों तथा बहन का पालन-पोषण करने लगे।

आलंदी में आकर निवृत्तिनाथ ने वहां के ब्राह्मणों से अनुनय-विनय की कि वे अब उन्हें यज्ञोपवीत देने की कृपा करें। निवृत्तिनाथ तथा ज्ञाननाथ

आदि के ज्ञान तथा व्यवहार को देखकर गांव के सब लोग अत्यंत प्रसन्न थे, परंतु धर्मशास्त्र के मत के विरुद्ध उन्हें दीक्षा देने की हिम्मत उनमें नहीं थी।

उन दिनों 'पैठण' नामक एक गांव में धर्मशास्त्रों के ज्ञाता अनेक विद्वान ब्राह्मण रहा करते थे। आलंदी गांव के ब्राह्मणों ने निवृत्तिनाथ को यह सलाह दी कि वे पैठण गांव में जाकर वहां के ब्राह्मणों से सम्मति-पत्र ले आएं तो वे उन्हें यज्ञोपवीत देकर अपनी जाति में सम्मिलित कर लेंगे।

पैठण के ब्राह्मणों का गर्व-खंडन

आलंदी गांव के ब्राह्मणों की सलाह मानकर निवृत्तिनाथ अपने भाइयों और बहन को साथ लेकर पैठण गांव में गए, परंतु वहां के ब्राह्मणों ने भी उनकी प्रार्थना को स्वीकार नहीं किया। उन सब लोगों ने सभा करके यही निर्णय दिया कि संन्यासी के लड़कों को किसी प्रकार भी यज्ञोपवीत नहीं दिया जा सकता। उन्होंने निवृत्तिनाथ से यह कहा कि अपने माता-पिता के दोष के कारण तुम लोग दूषित हो। अतः तुम यज्ञोपवीत ग्रहण करने की इच्छा को छोड़कर ईश्वर का भजन करते हुए अपना जीवन व्यतीत करो।

पैठण गांव के पंडितों के निर्णय को सुनकर निवृत्तिनाथ तथा उनके भाइयों और बहन को कोई दुःख नहीं हुआ। लोकाचार के निर्वाह के लिए ही वे यज्ञोपवीत धारण करना चाहते थे। वैसे तो वे सभी ब्रह्मज्ञानी थे और उन्हें किसी भी प्रकार के लौकिक संस्कार की कोई आवश्यकता नहीं थी।

जिन दिनों वे सब भाई-बहन पैठण गांव में रह रहे थे, उन्हीं दिनों एक बार किसी दुष्ट ब्राह्मण ने उनके ज्ञान का उपहास उड़ाते हुए यह कहा कि तुम सब लोग आडंबरी हो। तुम्हारे ज्ञान-ध्यान सब मिथ्या हैं। क्या तुम यह सिद्ध कर सकते हो कि सब प्राणियों में एक ही परमात्मा का निवास है और ब्रह्मज्ञानी होने के कारण सब प्राणियों को जो दुःख-सुख भोगना पड़ता है, उसका प्रभाव तुम्हारे ऊपर भी पड़ता है।

यह सुनकर ज्ञाननाथ ने बिना किसी अंहकार के सहज भाव से उत्तर दिया- ''मैं ब्रह्मज्ञानी हूं, यह बात ठीक है और प्रत्येक प्राणी को होने

वाले सुख-दुख का प्रभाव मेरे ऊपर भी पड़ता है, इसमें भी कोई संदेह नहीं है।''

ज्ञाननाथ जिस समय यह बात कह रहे थे, उसी समय वहां एक भैंस का पाड़ा आ पहुंचा। उस दुष्ट ब्राह्मण ने ज्ञाननाथ की बात सुनकर कहा– ''यदि मैं इस पाड़े को मारूं तो क्या तुम्हारे शरीर पर भी चोट लगेगी।''

ज्ञाननाथ ने उत्तर दिया– ''अवश्य।''

यह सुनकर उस दुष्ट ब्राह्मण ने भैंस के पाड़े की पीठ के ऊपर बड़ी जोर से तीन चाबुक मार दिए। पाड़े के चाबुक लगते ही वहां उपस्थित सब लोगों ने अत्यंत आश्चर्यपूर्वक देखा कि ज्ञाननाथ की नंगी पीठ पर चाबुक के तीन निशान उभर आए हैं।

इस दृश्य को देखकर बहुत से लोगों के हृदय में तो उन बालकों के प्रति बड़ी श्रद्धा उत्पन्न हुई, परंतु कुछ दुष्ट ब्राह्मणों ने फिर भी उनकी हंसी उड़ाते हुए इस प्रकार कहा– ''ये लड़के बड़े चालाक हैं। ये कोई जादू सीख आए हैं। उसी के प्रभाव से इनकी पीठ पर ये निशान बन गए हैं। इस प्रकार के लोग ब्राह्मणों को धोखे में डालकर जाति में सम्मिलित होना तथा अपने कुल को पवित्र बनाना चाहते हैं। यदि ये ब्रह्मज्ञानी हैं तो हम भी मान लेंगे।''

उन दुष्ट ब्राह्मणों की बात सुनकर कुछ सज्जन ब्राह्मणों ने ज्ञाननाथ से कहा– ''हे वत्स! ये लोग दुष्ट हैं। इस प्रकार नहीं मानेंगे। अब तुम इनके संतोष के लिए पाड़े के मुंह से वेद-मंत्रों का उच्चारण और करवा दो। यदि तुमने ऐसा कर दिखाया तो उस स्थिति में हम सब तुम्हें अपना निर्णय-पत्र देकर जाति में सम्मिलित करने की स्वीकृति दे देंगे।''

यह सुनकर ज्ञाननाथ ने उस पाड़े के मस्तक पर अपना हाथ रख दिया। ज्ञाननाथ के हाथ रखते ही वह पाड़ा शुद्ध स्वरों में वेद-मंत्रों का उच्चारण करने लगा। लगभग एक पहर तक उसने वेद-मंत्रों का उच्चारण किया। उस दृश्य को देखकर सब लोग चकित रह गए। दुष्ट ब्राह्मणों ने लज्जित होकर अपना मस्तक नीचे झुका लिया। अन्य सब लोग 'धन्य-धन्य' कहकर चारों भाई-बहनों की जय जयकार करने लगे।

पैठण के पंडितों ने उसी समय दूसरी सभा करके आलंदी के ब्राह्मणों के नाम यह निर्णय-पत्र लिख दिया– "हम लोगों ने भली-भांति परीक्षा करके देख लिया है कि ये चारों बालक ब्रह्मज्ञानी हैं। यदि ये लोग ब्राह्मण जाति में सम्मिलित नहीं होंगे तो और कौन होगा? इसलिए इन्हें अविलंब यज्ञोपवीत देकर जाति में सम्मिलित कर लिया जाए।"

पैठण के पंडितों का निर्णय-पत्र लेकर चारों भाई-बहन आलंदी गांव को लौट पड़े। उधर उनके पहुंचने से पहले ही आलंदी गांव में उनके द्वारा पैठण गांव में प्रदर्शित किए गए चमत्कारों की चर्चा पहुंच चुकी थी। इसलिए आलंदी गांव के सभी ब्राह्मण उन चारों को लेने के लिए गांव के बाहर जा पहुंचे। उन्होंने गाजे-बाजे के साथ चारों का स्वागत-सत्कार किया। तदुपरांत उन्हें गांव में लाकर सबका यज्ञोपवीत संस्कार कराया और अपनी जाति में सम्मिलित कर लिया। जिन दुष्ट ब्राह्मणों ने पहले उनका तिरस्कार किया था, उन्होंने भी आकर क्षमा-याचना की।

बिसोबा चाटी को दीक्षा

आलंदी गांव के अन्य ब्राह्मणों ने तो निवृत्तिनाथ आदि को अपनी जाति में सम्मिलित करके उनसे क्षमा-याचना कर ली थी, परंतु बिसोबाचाटी नामक एक धनी, अहंकारी तथा दुष्ट ब्राह्मण फिर भी उन्हें ब्राह्मण मानने के लिए तैयार नहीं हुआ।

एक दिन निवृत्तिनाथ ने मुक्ताबाई से हलुआ बनाने की इच्छा प्रकट की। मुक्ताबाई उसे बनाने के लिए कुम्हार के घर हंडिया लेने गई। बिसोबाचाटी को इस बात का पता चल गया। सभी कुम्हार उसके कर्जदार थे। अतः उसने सब कुम्हारों से जाकर यह कह दिया कि यदि किसी ने मुक्ताबाई को हंडिया दी तो वह उन्हें गांव से बाहर निकाल देगा। उस स्थिति में बेचारे कुम्हारों ने मुक्ताबाई को हंडिया देने से मना कर दिया। मुक्ताबाई निराश होकर घर लौट आई और उसने अपने भाइयों से यह बात कह दी।

यह सुनकर ज्ञाननाथ ने मुक्ताबाई से कहा- "बहन! तुम्हें निराश होने की आवश्यकता नहीं है। मैं योगबल से अपनी पीठ को गरम किए देता हूं। तुम इसी के ऊपर हलुआ बना लो।"

यह कहकर ज्ञाननाथ ने योगबल से जठराग्नि को प्रज्वलित कर अपनी पीठ को अग्नि पर रखी हुई कढ़ाई जैसा गरम कर दिया। मुक्ताबाई ने उसी के ऊपर आटा रखकर हलुआ बना लिया। बिसोबाचाटी छिपकर इस दृश्य को देख रहा था। वह उसी समय जाकर सब भाइयों के पांवों पर गिर पड़ा और उनसे अपने अपराध की क्षमा मांगने लगा।

ज्ञाननाथ ने उसके अपराध को क्षमा करते हुए उसे प्रसाद के रूप में अपना उच्छिष्ट भोजन कराया। बिसोबा उस जूठन को ग्रहण करके सब भाई-बहनों की जय-जयकार करता हुआ अपने घर को लौट गया।

ज्ञाननाथ की यात्रा

ज्ञाननाथ ने अपने बड़े भाई निवृत्तिनाथ से दीक्षा ली थी। जब उनकी आयु पूरे चौदह वर्ष की हो गई और पंद्रहवां वर्ष प्रारंभ आरंभ हुआ, तब

उन्होंने अपने गुरु तथा बड़े भाई निवृत्तिनाथ से आज्ञा लेकर 'ज्ञानेश्वरी' ग्रंथ की रचना का कार्य आरंभ किया। यह ग्रंथ श्रीमद्भगवद्गीता की व्याख्या के रूप लिखा गया है। इसमें सांसारिक प्राणियों के लिए जो ज्ञानोपदेश किया गया है, वह प्रत्येक दृष्टि से अपूर्व तथा महत्त्वपूर्ण है।

ज्ञानेश्वरी ग्रंथ की रचना पूर्ण हो जाने पर ज्ञाननाथ ने तीर्थयात्रा करने का विचार किया। फलतः वे अपने गुरु निवृत्तिनाथ, भाई सोपानदेव तथा बहन मुक्ताबाई को साथ लेकर तीर्थाटन के लिए निकल पड़े।

आलंदी गांव से निकलकर ये लोग 'चाणक' नामक गांव में पहुंचे। वहां महोपतराव नामक एक धनी पुरुष रहता था। वह साधु-संतों का परम भक्त था। उसने ज्ञाननाथ तथा उनके भाई-बहन का बहुत स्वागत-सत्कार किया तथा यह प्रार्थना की कि जब वे लोग कह्लाड गांव में पहुंचे तो वहां उसकी पुत्री सीता, जो कि कह्लाड गांव के जमींदार रामराय को ब्याही थी, को अपना दर्शन देने की कृपा करें। ज्ञाननाथजी ने उसकी प्रार्थना को स्वीकार कर लिया।

तदुपरांत वे लोग वहां से आगे चल दिए। मार्ग में ही भगवान पंढरीनाथ की आज्ञा से नामदेव नामक संत भी इनके साथ आ मिले और इन्हीं की मंडली में रहकर यात्रा करने लगे।

कुछ दिनों बाद यह मंडली कह्लाड गांव में जा पहुंची।

रामराय को शिक्षा

कह्लाड का जमींदार रामराय साधु-संतों के प्रति अवज्ञा का भाव रखता था। अतः उसने इन लोगों की कोई आवभगत नहीं की। यहां तक कि वह दर्शनों के लिए भी नहीं पहुंचा।

रामराय की पत्नी सीता परम साध्वी तथा साधु-संतों की भक्त थी। उसने ज्ञाननाथजी की महिमा तथा प्रभाव को भी सुन रखा था और उनके प्रति उसके हृदय में अत्यंत श्रद्धा तथा भक्ति-भाव था। सो उसने इस

अवसर पर अपने पति रामराय को संत-विरोधी मार्ग से हटाने का एक उपाय सोच लिया। जब ज्ञानदेव की मंडली कह्राड में ठहरी हुई थी, तभी एक दिन सीतादेवी ने अपनी अंगूठी में से हीरा निकालकर पीस डाला और उसे अपने एक पांच वर्षीय पुत्र को खिला दिया।

हीरे का चूर्ण पेट में जाते ही उस बालक की मृत्यु हो गई। रामराय यह देखकर बहुत शोक करने लगा। उसी समय किसी व्यक्ति ने उसे यह सलाह दी कि साधु-संतों में बड़ी सामर्थ्य होती है। वे अपने आशीर्वाद से मृत व्यक्ति को भी जीवित कर सकते हैं। आपने अभी तक तो साधु-संतों का विरोध किया है, परंतु आप इस नगर में ठहरी हुई साधु-मंडली की शरण में जाकर देखिए। संभव है कि उनकी कृपा से आपका मृत पुत्र पुनर्जीवित हो जाए।

पुत्र-शोक से व्याकुल रामराय ने उस आदमी की बात मान ली और वह संत-मंडली की सेवा में जा पहुंचा। वहां जाकर उसने सब लोगों से अपने घर चलने की प्रार्थना की। रामराय की प्रार्थना स्वीकार कर ज्ञाननाथजी सब संतों के साथ उसके घर गए। वहां पहुंचकर उन्होंने रामराय के मृत पुत्र को आशीर्वाद देकर पुनर्जीवित कर दिया। यह चमत्कार देखकर रामराय उनके चरणों में गिर पड़ा। सीतादेवी को उस समय अत्यंत प्रसन्नता प्राप्त हुई।

उस दिन के बाद से रामराय साधु-संतों का भक्त बन गया। ज्ञाननाथजी ने कुछ दिन वहां रहकर रामराय तथा सीतादेवी को ज्ञानोपदेश दिया। तत्पश्चात् वे यात्रा करते हुए तेरगांव में जा पहुंचे।

नामदेव का गर्व-खंडन

संत नामदेव बहुत बड़े भक्त थे। वे हर समय भगवान पंढरीनाथ के ध्यान में मग्न रहते थे और भगवान पांडुरंग उनके साथ प्रत्यक्ष वार्तालाप किया करते थे। परम भक्त होने पर भी नामदेव के मन में यही अहंकार हर समय बना रहता था। उन्हें किसी समर्थ गुरु की कृपा प्राप्त नहीं हुई थी, इसलिए वे सब प्राणियों में समभाव का अनुभव नहीं करते थे।

ज्ञानदेवजी ने एक समय उनके इस गर्व को नष्ट करने का विचार किया।

कह्हाड से चलकर संत-मंडली तेरगांव में पहुंची। वहां 'गोरोबा' नामक एक कुम्हार रहता था। वह साधु-संतों का परम भक्त था। ज्ञाननाथजी की मंडली जब वहां पहुंची तो गोरोबा ने आकर उनकी सेवा करना प्रारंभ कर दी।

एक दिन गोरोबा कुम्हार की थापी (मिट्टी के बरतनों को पीटने की लकड़ी) को अपने हाथ में उठाते हुए मुक्ताबाई ने उससे पूछा- "गोरोबा काका! यह कौन-सा औजार है और इससे क्या काम लिया जाता है?"

गोरोबा ने उत्तर दिया- "बेटी! इस थापी से बरतनों को पीटकर यह देखा जाता है कि कौन-सा बरतन कच्चा है और कौन-सा पक्का है?"

यह सुनकर मुक्ताबाई ने हंसते हुए कहा- "गोरोबा काका! मनुष्य भी ईश्वर के बनाए हुए घड़े हैं। आप हम सब लोगों को इस थापी से पीट-पीटकर देखिए कि हममें कौन पक्का है और कौन कच्चा है?"

मुक्ताबाई की आज्ञा से गोरोबा उस थापी से वहां उपस्थित सभी लोगों के सिर को थपथपाकर उनकी परीक्षा करने लगा। अन्य सब लोगों ने तो इस दृश्य को देखकर कोई आपत्ति नहीं की तथा उन्होंने अपने सिर पर भी थापी लगाने दी, परंतु जब गोरोबा नामदेवजी के पास पहुंचा तो उन्होंने एकदम क्रुद्ध होते हुए कहा- "गोरोबा! मेरे सिर पर थापी लगाने की जरूरत नहीं है। मैं दूसरे लोगों की तरह नहीं हूं। यदि तूने मेरे सिर पर थापी लगाई तो अच्छा नहीं होगा।"

गोरोबा नामदेवजी के क्रोध को समझ गया। फिर भी उसने उसकी कोई चिंता किए बिना नामदेवजी के मस्तक पर थापी लगा दी। उस समय वहां उपस्थित सभी लोग हंस पड़े। यह देखकर नामदेवजी ने स्वयं को बहुत अपमानित अनुभव किया। वे वहां से उठकर तुरंत ही पंढरपुर चले गए। वहां जाकर उन्होंने पांडुरंग भगवान को सब घटना कह सुनाई। उसे सुनकर पांडुरंगजी ने उन्हें समझा-बुझाकर शांत किया और यह कहा कि किसी गुरु से दीक्षा न लेने के कारण ही अभी तुम्हारे हृदय में मानापमान तथा अहंकार की भावनाएं उठा करती हैं, इसलिए तुम अब गुरु-दीक्षा लो।

इसके बाद भगवान पांडुरंग ने नामदेव से कहा– "तुम ज्ञाननाथ के शिष्य बिसोबा बेचर को अपना गुरु बनाओ। तभी तुम्हारा यह अज्ञान दूर होगा।"

पांडुरंग भगवान का उपदेश पाकर नामदेवजी का गर्व नष्ट हो गया। फिर उन्होंने बिसोबा बेचर के पास जाकर उसे अपना गुरु बनाया। गुरु-दीक्षा लेने के बाद नामदेवजी को सच्चे ज्ञान की प्राप्ति हुई और उनके मन में सब प्राणियों के प्रति समभाव उत्पन्न हो गया। गुरु-दीक्षा लेने के उपरांत नामदेवजी पुनः ज्ञाननाथजी की मंडली में आकर सम्मिलित हो गए।

तेरगांव से चलकर संतमंडली अन्य तीर्थों की यात्रा करती हुई सतपुड़ा पर्वत पर जा पहुंची। वहां हरपाल नामक भील को ज्ञानदेवजी ने धर्मोपदेश देकर अनुगृहीत किया। फिर धार में पहुंचकर कमलाकरभट्ट के पुत्र गोपाल की मृत्यु सांप के काटने से हो गई थी, उसे जीवित किया। वहां से उज्जैन में जाकर वीरमंगल नामक ज्योतिषी को कृतार्थ किया और उसे अपने हाथ से समाधि दी। उस समाधि का शिवलिंग वर्तमान में 'मंगलेश्वर' नाम से प्रसिद्ध है।

वहां से प्रयागराज की यात्रा करते हुए सब लोग काशीपुरी पहुंचे। वहां मणिकर्णिका घाट पर मुद्‌गलाचार्य एक बहुत बड़ा यज्ञ कर रहे थे। उस यज्ञ में पहले किसकी पूजा की जाए, जब यह प्रश्न उठा तो पंडितों ने सलाह करके एक हाथी की सूंड में पुष्पमाला दे दी और यह निर्णय किया कि हाथी जिस व्यक्ति के गले में पुष्पमाला डाल देगा, उसी का सर्वप्रथम पूजन किया जाएगा।

हाथी ने वह माला ज्ञाननाथजी के गले में जा पहनाई। तब सब लोगों ने मिलकर ज्ञाननाथजी की ही सर्वप्रथम पूजा की। वहां भगवान विश्वनाथजी ने स्वयं प्रकट होकर यज्ञ का फुरोडाश अपने हाथ से ज्ञाननाथजी को भेंट किया।

काशी में कुछ दिन ठहरने के बाद ज्ञाननाथजी अयोध्या, मथुरा, वृंदावन, द्वारिका, गिरिनार आदि सब तीर्थों की यात्रा पूरी करके पंढरपुर पहुंचे। उस समय वहां बहुत बड़ा उत्सव मनाया गया। पदुपरांत ज्ञाननाथजी अपनी बहन तथा भाइयों को साथ लेकर पुनः आलंदी गांव में जा पहुंचे और वहीं रहने लगे।

चांगदेव का वृत्तांत

ज्ञाननाथजी जिस काल में प्रकट हुए थे, उन्हीं दिनों में चांगा बटेश्वर नामक एक सिद्ध संत चांगदेव के नाम से प्रसिद्ध थे। उनके चमत्कारों को देखकर लोग उन्हें सद्‌गणों का अवतार समझा करते थे।

चांगदेव के पास अनेक प्रकार की सिद्धियां थीं। वे भगवान शंकर के उपासक थे। वे सिंह पर सवारी किया करते थे तथा अपने चौदह सौ शिष्यों के साथ बड़े आडंबरपूर्ण तरीके से रहते थे।

चांगदेव अपने प्राणों को ब्रह्मांड में पहुंचाकर दस दिन तक रोके रखते थे, इस कारण उनकी आयु के दिन चौदह गुने पीछे हट जाते थे। फलस्वरूप वे चौदह सौ वर्ष की आयु हो जाने पर भी बहुत कम अवस्था के दिखाई पड़ते थे। उनके दर्शनों के लिए हजारों लोगों की भीड़ लगी रहती थी। वे अपने भक्तों की मनोकामनाएं पलभर में पूरी कर दिया करते थे। संजीवनी विद्या, परकाया-प्रवेश विद्या, षट्‌चक्र-भेदन, दूसरों के मन की बात जान लेना आदि अनेक प्रकार की कलाएं तथा सिद्धियां उन्हें प्राप्त थीं। उनका यश चारों ओर फैला हुआ था।

चांगदेव के प्रारंभिक जीवन की एक घटना इस प्रकार बताई जाती है कि एक समय वे खान देश में तापी नदी के तट पर बैठे हुए अपनी आंखें बंद करके तपस्या कर रहे थे। उन्होंने योगबल से अपनी आंखों को ऐसा बना लिया था, जैसे वे बिल्कुल अंधे हों।

तभी एक दिन वहां से कुछ दूर वरुण नामक गांव के रहने वाले दो दरिद्र व्यापारी उधर आ निकले। किसी महात्मा को तपस्या करते हुए देखकर उन्होंने उनका अनुग्रह प्राप्त करने के उद्‌देश्य से चांगदेव की सेवा करना आरंभ कर दिया।

चांगदेव की सेवा करने के प्रभाव से उन व्यापारियों को अपने व्यवसाय में लाभ होने लगा। फलतः कुछ ही दिनों में उनकी दरिद्रता दूर हो गई और वे खूब धनवान बन गए।

तब उन्होंने लोकदिखावे के लिए एक मंदिर बनवाया और चांगदेव को उसी में लाकर बैठा दिया, परंतु धनवान होने के बाद उन व्यवसायियों के

मन में गुरु के प्रति भक्ति-भाव दिन-प्रतिदिन कम होता जा रहा था। एक दिन चांगदेव ने पार्थिव-पूजन के लिए उनसे शिवलिंग तैयार कराने के लिए कहा। व्यापारियों ने अपने मन में सोचा कि यह महात्मा तो आंखों से अंधा है, इसे दिखाई कुछ देता नहीं है। अतः हमें शिवलिंग के निर्माण में धन खर्च न करके किसी अन्य उपाय से काम चला लेना चाहिए।

यह विचार करके उन्होंने नदी किनारे की रेत को इकट्ठा करके उसके ऊपर चांगदेव की बाल्टी को औंधा रख दिया और उनसे कह दिया कि शिवलिंग तैयार होकर आ गया है।

चांगदेव ने अंत:दृष्टि से शिष्यों के कपट को जान लिया, परंतु मुंह से कुछ कहे बिना उन्होंने उसी को शिवलिंग मानकर श्रद्धापूर्वक पूजन किया। जब पूजन समाप्त हो चुका, तब चांगदेव ने शिष्यों से अपनी बाल्टी की मांग की। उस मांग को सुनकर शिष्य पहले तो घबराए, फिर वे बाल्टी के ऊपर चढ़ाए बिल्वपत्र, पुष्प आदि को हटाने लगे, ताकि बाल्टी को खाली करके महात्मा को दिया जा सके, परंतु उसी यह समय चमत्कार हुआ कि वह बाल्टी पत्थर की भांति उस पृथ्वी से चिपक गई और हजार प्रयत्न करने पर भी ऊपर नहीं उठी।

इस चमत्कार को देखकर वे दोनों शिष्य भयभीत होकर चांगदेव के चरणों में जा गिरे और उनसे अपने अपराध की क्षमा मांगने लगे।

उदार चांगदेव ने उन्हें क्षमा तो दे दी, परंतु उसी समय वे उस स्थान को छोड़कर अपनी यथार्थ तपोभूमि को चले गए। वह शिवलिंग, जो वहां स्थापित किया गया था, उसने यथार्थ शिवलिंग का स्वरूप धारण कर लिया और वह 'बटेश्वर' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। उस दिन से चांगदेव की कीर्ति चारों ओर फैल गई।

'चांगदेव षट्पंजिका' का वृत्तांत

कुछ समय तक और अधिक उग्र तप करने के बाद चांगदेव ने अनेक प्रकार की सिद्धियां प्राप्त कर लीं और उन्होंने आश्रम बनाकर बड़े आडंबर के साथ रहना आरंभ कर दिया। हजारों व्यक्ति उनके शिष्य बन गए। लाखों

स्त्री-पुरुष उनकी भक्ति करने लगे। उनके आश्रम में चौदह सौ शिष्य हर समय बने रहते थे, इस बात का उल्लेख पहले किया जा चुका है।

ब्रह्मज्ञानी ज्ञाननाथजी की कीर्ति जब चारों ओर फैली तो उसे चांगदेव ने भी सुना। पैठण गांव में पाड़े के मुंह से वेद-मंत्रों का उच्चारण कराने वाली घटना को सुनकर उन्हें अपने विषय में हीनता का अनुभव हुआ। वे सोचने लगे कि इतनी सिद्धियां प्राप्त कर लेने के बाद भी मैं किसी पशु के मुख से वेद-मंत्रों का उच्चारण नहीं करा सकता। अत: ज्ञानदेव की सामर्थ्य मुझसे अधिक है, ऐसे महापुरुष के दर्शन मुझे अवश्य करने चाहिए।

यह विचार कर जब उन्होंने आलंदी गांव जाने का निश्चय अपने शिष्यों से प्रकट किया तो अज्ञानी शिष्यों ने उन्हें यह सम्मति दी कि आप जैसे वयोवृद्ध, ज्ञानवृद्ध तथा विद्यावृद्ध चमत्कारी पुरुष का एक अल्पायु बालक से मिलने के लिए जाना उचित नहीं है। इससे आपकी प्रतिष्ठा कम होगी।

चांगदेव ब्रह्मज्ञानी तो थे नहीं। उन्होंने तो केवल सिद्धियों को प्राप्त किया था। अत: शिष्यों की सलाह को उन्होंने उचित समझा और ज्ञाननाथ से भेंट करने के लिए स्वयं जाने का विचार त्याग दिया।

तब उन्होंने ज्ञाननाथ की परीक्षा लेने का विचार करके उनके पास एक पत्र भेजने का निश्चय किया। जब वे पत्र लिखने बैठे तो उनके मन में तरह-तरह के विचार उठने लगे। उन्होंने पत्र के आरंभ में 'चिरंजीव' लिखना इसलिए उचित नहीं समझा कि यह ज्ञाननाथ की सामर्थ्य को कम आंकना होगा और 'तीर्थरूप' लिखना इसलिए उचित नहीं समझा कि वे स्वयं चौदह सौवर्ष की आयु के हैं। ऐसी स्थिति में चौदह वर्षीय बालक को ऐसा संबोधन क्यों लिखें।

विचारों तथा तर्क-वितर्कों की ऊहा-पोह में पड़कर चांगदेव कागज के ऊपर एक भी अक्षर नहीं लिख सके। अंतत: उन्होंने ज्ञाननाथ के पास कोरा कागज भेज देना ही ठीक समझा। उन्होंने सोचा कि ज्ञाननाथ यदि वास्तव में यथार्थ ज्ञानी होंगे तो वे मेरे कागज को देखकर ही मेरे आशय को समझ जाएंगे।

चांगदेव के उस कोरे कागजरूपी पत्र को लेकर जब उनका एक शिष्य आलंदी गांव में ज्ञाननाथ के पास पहुंचा, उस समय ज्ञाननाथजी अपने सब भाई-बहनों के साथ बैठे हुए ज्ञान-चर्चा कर रहे थे।

चांगदेव के शिष्य को देखते ही ज्ञाननाथ बोले– ''चांगदेव महाराज के शिष्य! आओ। तुम कोरा कागज लेकर आए हो, यह मुझे मालूम है।''

ज्ञाननाथ के मुंह से यह शब्द सुनकर चांगदेव का शिष्य आश्चर्यचकित रह गया। उसने ज्ञाननाथ के चरणों पर अपना मस्तक रख दिया। फिर हाथ जोड़कर कहने लगा– ''हे प्रभु! आप सर्वज्ञ हैं। अब आप मुझे जो भी आज्ञा देना चाहें, वह दीजिए।''

यह सुनकर निवृत्तिनाथजी ने ज्ञाननाथ से कहा– ''हे ज्ञाननाथ! महात्मा चांगदेव सिद्धियों के अहंकार में लिप्त हैं, अतः तुम उनके अज्ञान को नष्ट करने के लिए एक ऐसा पत्र लिख दो, जिससे उनके ज्ञान-चक्षु खुल जाएं।''

यह सुनकर ज्ञाननाथजी ने चांगदेव के लिए पैंसठ चौपाइयों में एक ऐसा पत्र लिखा, जिसमें संपूर्ण ज्ञान का सार गुप्त रूप से भरा हुआ था। वह पत्र बाद में 'चांगदेव षट्पंजिका' के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

चांगदेव का शिष्य उस पत्र को लेकर चांगदेव के पास लौट गया। वहां जाकर उसने संपूर्ण घटना का वर्णन विस्तारपूर्वक किया। चांगदेव ने जब उस पत्र को पढ़ा तो बहुत प्रयत्न करने पर भी वे उसके यथार्थ आशय को नहीं समझ सके। आत्मज्ञान के विषय में उन्हें कुछ भी पता नहीं था। अतः पत्र को बार-बार पढ़ने पर भी उनकी समझ में कोई बात नहीं आ सकी।

चांगदेव की ज्ञाननाथ से भेंट

तब चांगदेव ने ज्ञाननाथ से भेंट करने हेतु आलंदी गांव जाने का निश्चय किया। उन्होंने सोचा कि मुझे अपने संपूर्ण आडंबर तथा शिष्यों के साथ चलना चाहिए, जिससे यदि ज्ञाननाथ कोई सामान्य कोटि के व्यक्ति हुए तो वे मेरे आडंबर को देखकर ही भयभीत हो जाएंगे और यदि वाकई

असाधारण महापुरुष होंगे तो उनके ऊपर मेरे आडंबर का कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। उस स्थिति में मैं उनसे यथार्थ ज्ञान का उपदेश प्राप्त करूंगा।

यह विचार कर चांगदेव अपने चौदह सौ शिष्यों को साथ लेकर, सिंह पर आरूढ़ हो, ज्ञाननाथ से मिलने के लिए आलंदी गांव की ओर चल दिए। सिंह को हांकने के लिए वे अपने हाथ में एक भयंकर काले नाग को चाबुक के रूप में धारण किए हुए थे। उनके इस रूप को देखकर मार्ग में पड़ने वाले सभी गांवों के निवासी भयभीत होकर उनकी जय-जयकार तथा पृथ्वी पर मस्तक रखकर साष्टांग दंडवत् प्रणाम करते थे।

चांगदेव जब आलंदी गांव के समीप पहुंचने को हुए, तब उन्होंने अपने कुछ शिष्यों को अपने आगमन की सूचना देने के लिए ज्ञाननाथ के पास भेजा। उस समय ज्ञाननाथजी अपने गुरु निवृत्तिनाथ, भाई सोपानदेव तथा बहन मुक्ताबाई के साथ अपने मकान के ऊपरी अट्टे पर बैठे हुए ज्ञान-चर्चा कर रहे थे।

चांगदेव के शिष्यों ने उनके पास पहुंचकर जब चांगदेव के आने की सूचना दी, उस समय निवृत्तिनाथ ने ज्ञानदेव से यह कहा– "हे भाई! चांगदेव जैसे बड़े महात्मा हमसे मिलने के लिए यहां आ रहे हैं। ऐसी स्थिति में हमें गांव से बाहर जाकर उनका स्वागत करना चाहिए।"

निवृत्तिनाथ के मुंह से यह शब्द निकलते ही ज्ञाननाथ ने अट्टे से कहा 'चल' और उसी क्षण वह अट्टा, जिस पर वे सब लोग बैठे हुए थे, आकाश में उड़ता हुआ उस ओर चल दिया, जिधर से चांगदेव अपने सिंह पर बैठे हुए चले आ रहे थे। एक ओर तो चौदह सौ वर्ष का वृद्ध तपस्वी सिंह पर बैठा हुआ चला आ रहा था, दूसरी ओर चौदह वर्षीय ब्रह्मज्ञानी ज्ञाननाथजी अपने भाई-बहनों के साथ अट्टे में बैठे हुए आकाश में उड़ते चले जा रहे थे। इस दृश्य को देखकर सभी आलंदी निवासी आश्चर्यचकित रह गए।

चांगदेव ने जब यह देखा कि ज्ञाननाथ उनका स्वागत करने के लिए अट्टे पर बैठकर आकाश में उड़ते हुए चले आ रहे हैं तो उनका संपूर्ण अहंकार उसी समय नष्ट हो गया। वे उसी क्षण सिंह से नीचे

उतरकर पृथ्वी पर खड़े हो गए। उधर वह अट्टा भी आकाश से नीचे पृथ्वी पर उतर आया। ज्ञाननाथजी अपने भाई-बहनों के साथ जैसे ही चांगदेव से भेंट करने के लिए अग्रसर हुए, वैसे ही चांगदेव ने आगे बढ़कर उनके चरणों पर अपना मस्तक रख दिया। ज्ञाननाथजी ने उन्हें अहंकारमुक्त देखकर कृपापूर्वक आशीर्वाद दिया। ज्ञाननाथजी द्वारा मस्तक पर हाथ रखते ही चांगदेव का समस्त अभिमान तथा अज्ञान दूर हो गया। वे अपने दोनों हाथ जोड़कर विष्णुरूप ज्ञाननाथ की स्तुति-प्रार्थना करने लगे।

तदुपरांत ज्ञाननाथजी उन्हें अपने साथ लेकर घर आए और उन्हें सम्मान सहित अपने पास बैठाया।

स्वार्थी शिष्यों का पलायन

आलंदी में भी चांगदेव अपने साथ चौदह सौ शिष्यों को लेकर आए थे। ज्ञाननाथजी से ज्ञानोपदेश प्राप्त करने के बाद उन्हें अपना वह सब आडंबर बहुत बुरा लगने लगा। उनकी इच्छा हुई कि वे किसी प्रकार इन शिष्यों से छुटकारा पाकर एकांत साधना कर अपने भविष्य को सुधारें।

चांगदेव की इस इच्छा को ज्ञाननाथजी ने जान लिया और उन्हें शिष्यों से मुक्त करने का एक उपाय ढूंढ निकाला।

दूसरे दिन चांगदेव ने ज्ञाननाथजी से प्रार्थना की कि वे उन्हें 'षट्पंजिका' के ज्ञान का रहस्य समझाने की कृपा करें। इसके उत्तर में ज्ञाननाथजी ने उनसे कहा कि उसके रहस्य को समझने के लिए पहले एक मनुष्य की बलि देना आवश्यक है।

यह सुनकर चांगदेव ने अपने सभी शिष्यों के पास जाकर कहा कि ज्ञाननाथजी ने 'षट्पंजिका' का रहस्य समझाने के लिए पहले एक मनुष्य की बलि मांगी है। अतः तुममें से जो भी शिष्य अपने गुरु के लिए प्राणों का उत्सर्ग कर सकता हो, वह कल प्रातःकाल मेरे पास आ जाए।

चांगदेव की इस बात को सुनकर उन सब स्वार्थी शिष्यों में घबराहट फैल गई। वे सभी रात में ही आलंदी गांव से बाहर भाग गए।

दूसरे दिन प्रातःकाल जब चांगदेव को यह पता चला कि उनके सभी स्वार्थी शिष्य बलिदान की बात सुनकर उन्हें छोड़कर भाग गए हैं, तब उन्होंने ज्ञाननाथजी के पास जाकर यह कहा कि मेरे सब स्वार्थी शिष्य तो यहां से भाग गए हैं, अब आप मेरी ही बलि लेने की कृपा कीजिए।

यह सुनकर ज्ञाननाथ जी ने हंसते हुए उत्तर दिया– "हे चांगदेवजी! बलि की मांग तो मैंने आपके स्वार्थी शिष्यों की परीक्षा लेने के लिए की थी। ज्ञान का रहस्य समझने के लिए किसी की प्राणहानि की आवश्यकता नहीं है। अब आप अपने स्वार्थी शिष्यों के संकट से मुक्त हो गए हैं, अतः आप निश्चिंत होकर यहां रहिए और 'षट्पंजिका' के रहस्य की जानकारी प्राप्त कीजिए।"

ज्ञाननाथजी की बात सुनकर चांगदेव को अत्यंत प्रसन्नता हुई। उस दिन से उन्होंने निश्चिंत होकर ज्ञाननाथजी से ज्ञानोपदेश प्राप्त करना आरंभ कर दिया।

मुक्ताबाई द्वारा उपदेश

एक दिन मुक्ताबाई ने चांगदेव के हृदय से अज्ञान का संपूर्ण नाश कर देने का विचार कर यह कौतुक किया कि वे एकदम नग्न खड़ी होकर स्नान करने लगीं। उसी समय अचानक चांगदेव उधर आ निकले। मुक्ताबाई को नग्न स्थिति में देखकर उन्होंने अपनी आंखें नीची कर लीं और वे चुपचाप पीछे की ओर लौट गए।

यह देखकर मुक्ताबाई ने हंसते हुए कहा– "जारे पागल! अभी तक तू अज्ञानी ही रहा।"

पीछे लौटते हुए चांगदेव ने इन शब्दों को सुन लिया। कुछ देर बाद जब मुक्ताबाई स्नानादि से निवृत्त होकर आसन पर बैठीं तो उस समय चांगदेव ने उनके पास पहुंचकर हाथ जोड़ते हुए कहा– "हे बाई! मुझसे ऐसी क्या भूल हो गई, जिस कारण आपने मुझे पागल कहकर संबोधित किया था?"

यह सुनकर मुक्ताबाई ने उत्तर दिया– "हे चांगदेव! यदि गुरुकृपा से तुम्हें यथार्थ ज्ञान प्राप्त हो गया होता और तुम्हारे हृदय में किसी प्रकार का विकार न रहा होता तो मुझे नग्न अवस्था में देखकर तुम अपनी आंखें बंद करके पीछे नहीं लौटते। ब्रह्मज्ञानी की दृष्टि में तो स्त्री-पुरुष, सवस्त्र और निर्वस्त्र का कोई भेद नहीं होता। इसीलिए मैंने तुम्हें उस समय पागल कहकर संबोधित किया था।"

यह सुनकर चांगदेव अत्यंत लज्जित हुए। तत्पश्चात् मुक्ताबाई ने उन्हें ब्रह्मज्ञान का उपदेश दिया। उसे सुनकर चांगदेव के मन से माया-मोह तथा अन्य सभी प्रकार के विकार पूर्णरूप से नष्ट हो गए। 'षट्पंजिका' का रहस्य जब पूरी तरह से समझ में आ गया और मन में किसी प्रकार का विकार न रहा, तब एक दिन चांगदेवजी निवृत्तिनाथ, ज्ञाननाथ, सोपानदेव तथा मुक्ताबाई से विदा लेकर निर्जन वन में चले गए और वहीं एकांत स्थान में रहकर तपस्या करने लगे।

ज्ञाननाथ की समाधि

ज्ञाननाथ ने अल्पायु में ही अपने ब्रह्मज्ञान तथा उपदेशों के द्वारा संसार में विपुल ख्याति अर्जित की। उसी तरह निवृत्तिनाथ, सोपानदेव एवं मुक्ताबाई ने भी लोक में सर्वत्र यश एवं प्रशंसा को प्राप्त किया।

उन सब भाई-बहनों ने देशभर में भ्रमण करके लाखों-करोड़ों स्त्री-पुरुषों को ज्ञानोपदेश करके उनकी आध्यात्मिक उन्नति की तथा दैहिक, दैविक और भौतिक तापों से छुटकारा दिलाया।

ज्ञाननाथजी संत ज्ञानेश्वर के नाम से प्रसिद्ध हुए। उन्होंने 'ज्ञानेश्वरी' जैसे अपूर्व ग्रंथ की रचना केवल पंद्रह वर्ष की आयु में की। इसके अतिरिक्त अमृतानुभाव, योगवसिष्ठ की टीका, षट्पंजिका, हरिपाठ आदि अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रथों तथा स्फुट पदों की रचनाएं कीं।

राजा पुंडलीक के समय से आषाढ़ तथा कार्तिक की एकादशी के दिन पंढरपुर में भगवान पांडुरंग की रथ-यात्रा की परंपरा चली आ रही थी।

इन तिथियों में विभिन्न स्थानों के साधु-संत, ऋषि-मुनि, महात्मा आदि आकर पंढरपुर में एकत्र हुआ करते थे।

एक बार कार्तिकी एकादशी की यात्रा के समय पंढरपुर में विभिन्न स्थानों से आए हुए संत-महात्मा एकत्र हुए। उनमें बिसोबा खेचर, नागनाथ, गोरा कुम्हार, जगमित्र, सेनानाई, ज्ञानदेव, चांगदेव आदि भी थे। आलंदी से निवृत्तिनाथ, ज्ञाननाथ, सोपानदेव तथा मुक्ताबाई भी वहां जा पहुंचे। उसी दिन ज्ञाननाथजी ने समाधि लेने का निश्चय किया।

चंद्रभागा नदी में स्नान करने के उपरांत ज्ञाननाथजी ने पहले मंदिर में जाकर पुंडलीक महाराज के दर्शन किए। उसके बाद वे विट्ठल-रुक्मिणी के मंदिर में गए। तदुपरांत उन्होंने संतों की सभा में समाधि लेने की इच्छा प्रकट की। उसी समय भगवान पंढरीनाथ वहां पर प्रत्यक्ष रूप में प्रकट हो गए। उन्होंने सबके समक्ष ज्ञाननाथ को संबोधित करते हुए कहा– "हे ज्ञान के सागर ज्ञानदेव! तुम मुझे अत्यंत प्रिय हो। तुमने अनेक जीवों का उद्धार करके मेरी अपार कृपा प्राप्त की है। अब तुम्हारी इच्छा पूरी हो जाएगी।"

भगवान के मुख से यह सुनकर एक ओर तो सब संत आनंदित हुए, दूसरी ओर ज्ञाननाथजी के वियोग का स्मरण करके उन्हें दुःख भी हुआ। एकादशी की रात्रि में ज्ञाननाथ ने जागरण किया। द्वादशी को क्षीरपति का महोत्सव किया। त्रयोदशी के दिन माता रुक्मिणी ने अपने हाथ से ज्ञाननाथजी को पांच पकवानों का भोजन कराया। उसी समय भगवान पंढरीनाथ ने यह वरदान दिया कि कार्तिक शुक्ला एकादशी को पंढरपुर में जैसा महोत्सव होता है, वैसा ही महोत्सव मार्गशीर्ष कृष्णा एकादशी को ज्ञाननाथ के आलंदी गांव में भी हुआ करेगा। इस प्रकार शुक्लपक्ष की एकादशी मेरी तथा कृष्णपक्ष की एकादशी ज्ञाननाथ की रहेगी।

तत्पश्चात् भगवान पांडुरंगजी स्वयं माता रुक्मिणी एवं अन्य साधु-संतों के साथ ज्ञाननाथजी को लेकर आलंदी गांव में गए। विट्ठलनाथजी स्वयं आलंदी गांव में पहुंचे, इस कारण उस गांव का महत्त्व बढ़ गया। वहां जाकर सब लोगों ने इंद्रायणी नदी में स्नान किया। उस समय चारों ओर खड़ी हुई भक्तों की भीड़ भगवान विट्ठलनाथ तथा ज्ञाननाथजी की जय-जयकार कर रही थी।

स्नान तथा विट्ठलजी का प्रत्यक्ष पूजन करने के उपरांत ज्ञाननाथजी ने समाधि में बैठने की तैयारी की। उस समय ज्ञानी, वेदांत तथा अध्यात्मवादी संतजन भी ज्ञाननाथजी के वियोग-दुःख से दुःखी होकर रुदन करने लगे। भगवान पांडुरंग विट्ठलजी ने उन सबको ज्ञानोपदेश करके शांत किया।

ज्ञाननाथजी ने अपने गुरु तथा बड़े भाई निवृत्तिनाथजी के चरणों में गिरकर साष्टांग दंडवत् किया। फिर उन्होंने छोटे भाई सोपानदेव को हृदय से लगाकर आशीर्वाद दिया। बहन मुक्ताबाई के मस्तक पर हाथ रखकर कृतार्थ किया। अंत में अन्य सब संत-महात्माओं का यथोचित अभिवादन करके उनसे अंतिम विदा मांगी।

तत्पश्चात् समाधि के लिए जो गुफा तैयार की गई थी, ज्ञाननाथ उसकी ओर चल दिए। उस समय उनके एक हाथ को भगवान पांडुरंगजी पकड़े हुए थे और दूसरा हाथ गुरु निवृत्तिनाथ के हाथ में था। इस प्रकार गुरु तथा गोविंद दोनों ने ही मिलकर उन्हें समाधि-स्थान के ऊपर बैठाया। उस समय ज्ञाननाथजी ने हाथ जोड़कर अंतिम बार इन शब्दों का उच्चारण किया– ''हे प्रभो! आपने मुझे सुख प्रदान किया है। भविष्य में भी आप मुझे सदैव अपने चरण कमलों में स्थान दिए रहें।''

तब भगवान पांडुरंग आशीर्वाद देते हुए बोले– ''हे ज्ञाननाथ! जब तक सूर्य, चंद्र और तारागण हैं, तब तक तुम्हारी यह समाधि स्थिर बनी रहेगी। फिर उचित समय आने पर तुम मेरे हृदय में निवास करोगे। जो लोग तुम्हारे नाम का स्मरण करेंगे, उन्हें ज्ञान की प्राप्ति होगी।''

यह आशीर्वाद पाकर ज्ञाननाथजी ने अपने दोनों हाथ जोड़कर भगवान के प्रति तीन बार नमस्कार निवेदित किया। फिर वे अपनी आंखें बंद करके समाधि-स्थल पर बैठ गए। उस समय वे उत्तराभिमुख होकर पद्मासन लगाए हुए थे। नौ दिनों तक सब संत-महात्मा समाधि के पास श्रीसिद्धलिंग के आगे बैठकर कीर्तन तथा भगवद् भजन करते रहे। मार्गशीर्ष शुक्ला दशमी के दिन भजन-कीर्तन आरंभ हुआ था तथा त्रयोदशी के दिन सब संत-महात्मा वहां से विदा होकर अपने-अपने स्थान को चले गए।

समाधि के समय ज्ञाननाथ की आयु इक्कीस वर्ष तीन मास तथा पांच दिन की थी। ब्रह्मज्ञान के कारण उन्होंने अक्षय सुख ब्रह्मानंद को प्राप्त किया। वे संसार में ज्ञाननाथ, ज्ञानदेव तथा ज्ञानेश्वर के नाम से प्रसिद्ध हुए। उस समय से आज तक श्री ज्ञाननाथजी की समाधि का महोत्सव आलंदी गांव में प्रतिवर्ष बड़ी धूम-धाम के साथ मनाया जाता है।

ज्ञाननाथजी द्वारा समाधि लिये जाने के पश्चात् एक वर्ष के भीतर ही निवृत्तिनाथ, सोपानदेव, मुक्ताबाई तथा चांगदेव ने भी समाधि लेकर अपना अवतार कार्य समाप्त कर दिया।

श्री नवनाथ चरित्र सागर

भाग-20

(श्री गोरखनाथजी का पर्यटन)

''आवै संगे जाई अकेला।
ताथैं गोरख राम रमेला।।
काया हंस संगि ह्वै आवा।
जाता जोगी किनहुं न पावा।।
जीवत जुग मैं मुआ मसाण।
प्राण पुरिसकत किया पयाण।।
जामण-मरण बहुतरि वियोगी।
ताथैं गोरख भैला योगी।।

गोरखनाथ की तीर्थयात्रा

दूरंगतनाथ को प्रायश्चित्त करवाने के उपरांत गोरखनाथजी तीर्थयात्रा करने के लिए निकल पड़े। यवन जाति का 'अजपानाथ' नामक एक योगी बहुत पहुंचा हुआ था। उसने एक स्थान पर जाकर गोरखनाथजी से भेंट की। गोरखनाथजी उसे अपने साथ लेकर समुद्र तटवर्ती स्थानों का भ्रमण करते हुए हिंगलाज पर्वत के ऊपर गए। वहां से गांधार देश और बाद में सुलेमान पर्वत के ऊपर गए। सुलेमान पर्वत के ऊपर अजपानाथ के अनेक शिष्य तपस्या कर रहे थे। उन सबने गोरखनाथजी का बहुत आदर-सत्कार किया। गोरखनाथजी ने भी उन्हें योग की अनेक क्रियाएं सिखाकर अपना आशीर्वाद देकर कृतार्थ किया।

सुलेमान पर्वत से चलकर गोरखनाथजी कटासराज तीर्थ में गए। वहां वे उस टीले पर ठहरे, जो अब 'गोरख टीले' के रूप में प्रसिद्ध है। उस स्थान पर रहकर गोरखनाथजी ने अपने नवीन शिष्यों को योग-मार्ग की दीक्षा दी। तदुपरांत वे वहीं पर पचास वर्ष तक समाधिस्थ रहे। अजपानाथ को उन्होंने सुलेमान पर्वत से लौटते समय ही विदा कर दिया था।

समाधि से जागने के बाद गोरखनाथजी उत्तराखंड की यात्रा को चल दिए। वहां वे हिमालय के डुंगराल प्रदेश में एक गांव के पास जाकर ठहरे। उस समय उनके साथ कई शिष्य भी थे।

दरिद्र ब्राह्मण को समृद्धि का दान

एक दिन गोरखनाथजी ने अपने एक शिष्य पवननाथ को गांव में जाकर कहीं से दूध मांगकर लाने के लिए कहा। शिष्य गांव में पहुंचा तो वहां के कुछ दुष्ट लोगों ने उसे एक अत्यंत दरिद्र ब्राह्मण के घर की ओर संकेत करते हुए यह बताया कि इस घर में रहने वाले ब्राह्मण के घर में बहुत-सी गायें हैं और वह साधु-संतों को खूब दूध पिलाता है। अतः आप उसी के पास जाकर दूध ले आइए।

पवननाथ उन लोगों के मजाक को नहीं समझ सका। वह यथार्थ में ही उस दरिद्र ब्राह्मण के घर दूध मांगने के लिए जा पहुंचा। वह ब्राह्मण इतना गरीब था कि उसके घर में केवल एक ही फटी-पुरानी धोती थी। जब ब्राह्मणी पानी भरने के लिए कुएं पर जाती, तब वह उसे पहन जाती और ब्राह्मण घर में नंगा बैठा रहता और जब ब्राह्मण भिक्षा मांगने के लिए गांव में जाता तो वह उस धोती को पहनकर जाता। तब ब्राह्मणी घर में नंगी बैठी रहती।

ऐसे दरिद्र ब्राह्मण के दरवाजे पर जाकर पवननाथ ने जब 'अलख' शब्द का उच्चारण किया तो वे दोनों पति-पत्नी अपनी हीन अवस्था पर अत्यंत लज्जित हुए। पवननाथ ने उनके घर की स्थिति को देखते ही वहां की महादरिद्रता का अनुमान लगा लिया और समझ लिया कि गांव के दुष्ट लोगों ने इस ब्राह्मण को लज्जित करने के लिए ही मुझे भिक्षा मांगने के लिए यहां भेज दिया है।

पवननाथ वहां से तुरंत लौट पड़ा। तत्पश्चात् वह किसी अन्य स्थान से दूध लेकर गोरखनाथजी के पास गया और गांव के दुष्ट लोगों ने दरिद्र ब्राह्मण को लज्जित करने के लिए उसके साथ जो उपहास किया था, वह घटना उन्हें कह सुनाई। उस वृत्तांत को सुनकर गोरखनाथजी को दरिद्र ब्राह्मण पर बड़ी दया आई। उन्होंने उसी समय थोड़ी-सी अभिमंत्रित भस्म पवननाथ को देकर कहा- "तू यह भस्म उस ब्राह्मण के घर में डाल आ। प्रभु की कृपा से वह रातभर में ही इस गांव का सबसे धनी व्यक्ति बन जाएगा। तब मैं कल स्वयं उसके घर जाकर दूध पिऊंगा।"

पवननाथ उस भस्म को ब्राह्मण के घर में डाल आया। भस्म के प्रभाव से उस ब्राह्मण का घर उसी समय धन-धान्य से परिपूर्ण हो गया। कहीं से आकर उसके घर के दरवाजे पर सैकड़ों गायें भी खड़ी हो गई। रातभर में ही उसका मकान भी ऐसा बन गया कि वह राजभवनों को भी मात करने लगा। इस दृश्य को देखकर गांव के सभी लोग आश्चर्यचकित रह गए। जिन दुष्टों ने उस ब्राह्मण की हंसी उड़ाई थी, वे सब अपने मन में अत्यंत लज्जित हुए। दसरे दिन गोरखनाथजी अपने सब शिष्यों को साथ लेकर उस ब्राह्मण के घर गए। ब्राह्मण ने उन सबको प्रणाम किया और आदर-सत्कारादि करके दूध पिलाया। तदुपरांत गोरखनाथजी उस ब्राह्मण को अक्षय सुख का आशीर्वाद देकर वहां से लौट आए।

ज्वालादेवी से भेंट

वहां से चलकर गोरखनाथजी शालिपुर (स्यालकोट) गए। फिर उत्तर तथा दक्षिण भारत के अनेक स्थानों का भ्रमण करते हुए वे ज्वालादेवी के स्थान पर जा पहुंचे।

ज्वालादेवी ने जब गोरखनाथ को आए हुए देखा तो वे स्वयं आगे बढ़कर गोरखनाथ से भेंट करने के लिए मंदिर से बाहर आईं। गोरखनाथ ने नमस्कारादि करके कुछ देर तक उनसे वार्तालाप किया। तदुपरांत जब वे चलने लगे, तब देवी ने उनसे यह आग्रह किया कि वे एक दिन वहीं ठहर कर देवी के हाथ का बनाया हुआ भोजन आवश्य करें।

गोरखनाथजी ने देवी को उत्तर दिया– "हे देवी! आपके यहां मांस-मदिरा आदि अभक्ष्य-भक्ष्य पदार्थों का भोग लगता है, अतः मैं यहां का भोजन नहीं करूंगा।"

यह सुनकर देवी ने उत्तर दिया– "हे गोरखनाथ! मैं स्वयं मांस-मदिरा को पसंद नहीं करती, परंतु मांसाहारी कलियुगी मनुष्य अपनी जिह्वा के स्वाद के लिए मेरे नाम का उपयोग करके मांस-मदिरा चढ़ाते और उसका सेवन करते हैं। इसलिए मैं उन्हें अभीष्ट सिद्धि भी नहीं देती। अस्तु, तुम उस संबंध में मुझे दोष मत दो। मैं तुम्हारे लिए तुम जो चाहोगे, वही भोजन स्वयं बनाकर खिलाऊंगी। इसलिए तुम मेरा आग्रह मानकर यहीं भोजन करके जाओ।"

यह सुनकर गोरखनाथ ने कहा– "मुझे तुम्हारा निमंत्रण स्वीकार है, परंतु शर्त यह रहेगी कि भिक्षा का अन्न मैं स्वयं मांगकर लाऊंगा और बाद में तुम उसे स्वयं अपने हाथ से पकाकर मुझे खिलाओगी।"

देवी ने यह शर्त स्वीकार कर ली। तब गोरखनाथ बोले– "भिक्षा मांगकर लौटने का मेरा कोई निश्चित समय नहीं है। तुम चूल्हा जलाकर बैठी रहो। मैं जब भी लौटकर आऊं, तभी तुम भोजन पकाना।"

यह कहकर गोरखनाथ जी वहां से भिक्षा मांगने के लिए चल दिए। देवी उनके लौटने की प्रतीक्षा में चूल्हा जलाए बैठी रही। ज्वालादेवी से चलकर गोरखनाथ विभिन्न स्थानों का भ्रमण करने लगे। अंत में वे पूर्व दिशा के एक गांव में जाकर अपना भिक्षा-पात्र रखकर बैठ गए। लोगों ने आकर उस पात्र में भिक्षा डालना आरंभ किया, परंतु उस समय

ऐसा चमत्कार प्रकट हुआ कि लोग कितनी ही भीक्षा डालते तो भी गोरखनाथजी का भिक्षा-पात्र खाली ही बना रहता। लोगों ने सैकड़ों-हजारों मन अन्न उस भिक्षा-पात्र में डाल दिया, परंतु वह हमेशा आधा खाली ही रहा। यह देखकर लोग बहुत आश्चर्यचकित हो गए और इस अपूर्व चमत्कार की घटना दूर-दूर तक फैल गई कि गोरखनाथ का भिक्षा-पात्र किसी भी प्रकार से नहीं भर पा रहा है।

उसी समय पाटण नगर के एक मनुष्य ने आकर गोरखनाथजी से यह प्रार्थना की कि आप कृपा कर मेरे घर चलें। मेरे काई संतान नहीं है। मैं अपनी समस्त संपत्ति, घर-द्वार तथा शरीर तक को आपकी सेवा में भेंट करके अपना जन्म सफल करूंगा। उसकी बात सुनकर गोरखनाथजी अत्यंत प्रसन्न हुए। उन्होंने उस आदमी को आशीर्वाद दिया और कहा– "अभी तुम अपने घर जाकर संपत्ति आदि की व्यवस्था करो। कुछ दिनों बाद मैं तुम्हारे गांव आऊंगा, उस समय तुम्हारी भेंट को स्वीकार करूंगा।"

गोरखनाथजी की यह आज्ञा सुनकर वह आदमी अपने गांव को चला गया। तब गोरखनाथजी भी उस स्थान से उठकर पश्चिम दिशा में जा बैठे। वहां उन्होंने एक छोटी झोंपड़ी बनाई और लोगों से यह कहा कि वे भिक्षा का अन्न इसी झोंपड़ी के भीतर डालना आरंभ कर दें। गोरखनाथजी की आज्ञा पाकर लोगों ने थोड़े ही समय में उस झोंपड़ी को अन्न से भर दिया। तब गोरखनाथजी ने लोगों से कहा कि अब तुम सब जगह यह घोषणा कर दो कि जो भी दीन-दरिद्र व्यक्ति हो, वह इस झोंपड़ी में से आकर अपने लिए चाहे जितना अन्न उठा ले जाए।

इस घोषणा के होते ही विभिन्न स्थानों से हजारों दीन-दरिद्र व्यक्ति वहां आ-आकर झोंपड़ी में से अन्न लेने लगे। लाखों व्यक्ति उस झोपड़ी में से अन्न ले गए, परंतु उसका भंडार तनिक भी खाली नहीं हुआ। इस दूसरे आश्चर्य को देखकर सब लोग गोरखनाथजी की जय-जयकार करते हुए उनके योग-बल की प्रशंसा करने लगे।

वहीं पर गोरखनाथ ने एक चमत्कार यह भी दिखाया कि उन्होंने पांच सेर अन्न की खिचड़ी बनाकर उसे अपने खप्पर में भर ली। फिर उस खिचड़ी से लाखों व्यक्तियों को भरपेट भोजन करा दिया। इसके बाद उन्होंने लोगों से कहा कि मैंने ज्वालादेवी के आग्राह्य भोजन को त्यागकर यह लीला तुम लोगों का दिखाई है। यदि तुम लोग चाहते हो कि भविष्य में योगी लोग देवी के हाथ का भोजन ग्रहण कर सकें तो तुम देवी के

मंदिर में जाकर मांस-मदिरा आदि अभक्ष्य पदार्थों का भोग मत चढ़ाना, क्योंकि हिंसा करना प्रत्येक दृष्टि से पाप है।

गोरखनाथजी के इस उपदेश को सुनकर वहां उपस्थित सभी लोगों ने भविष्य में देवी के मंदिर में जाकर मांस-मदिरा का भोग न लगाने की प्रतिज्ञा की। तब गोरखनाथ वहां से पाटण नगर में अपने पूर्वोक्त गृहस्थ भक्त के घर जा पहुंचे।

जिस स्थान पर गोरखनाथजी ने खिचड़ी का प्रसाद बांटा था, वह स्थान 'खिचड़ी का चढ़ावा' नाम से प्रसिद्ध हो गया। गोरखनाथ ने यह लीला 'मानपुर' नामक नगर में की थी, परंतु उसी दिन से लोगों ने उस नगर का नाम बदलकर 'गोरखपुर' रख दिया। यह नगर उत्तर प्रदेश में है।

गोरखनाथ की नेपाल-यात्रा

पाटण के भक्त को अपने साथ लेकर गोरखनाथजी धवलागिरी पर्वत पर गए। वहां कुछ दिन रहकर उन्होंने अपने नए शिष्य को योग-मार्ग का उपदेश देना चाहा, परंतु तभी उन्हें यह सूचना मिली कि उस स्थान से अस्सी-नब्बे कोस की दूरी पर योगियों का एक सम्मेलन हो रहा है और वे लोग गोरखनाथजी से कुछ सहायता लेना चाहते हैं।

गोरखनाथजी इस समाचार को पाकर योग-शिक्षा का कार्य कुछ दिनों के लिए स्थगित रखकर अपने उस नए शिष्य को लेकर त्रिशूल गंगा के उद्गम स्थान के समीप उस पर्वत पर जा पहुंचे, जहां पर योगियों के सम्मेलन का आयोजन किया गया था।

उस स्थान पर पहुंचकर गोरखनाथजी ने यह देखा कि समारोह में सम्मिलित होने वाले सभी योगी वाममार्गी हैं और उनके विचार नाथ-पंथ से मेल नहीं खाते हैं। अतः गोरखनाथजी ने वहां अधिक समय तक न ठहरकर वापस लौटने का निर्णय किया।

जिस समय गोरखनाथजी वहां से वापस लौटने के लिए तैयार हो रहे थे, उसी समय वहां नीलकंठ की यात्रा से लौटने वाले कुछ नेपाली आ पहुंचे। उन्होंने गोरखनाथजी को वहां उपस्थित देखकर यह प्रार्थना की कि हे महाराज! आप कुछ दिनों के लिए नेपाल चलने की कृपा कीजिए। हम लोग मत्स्येंद्रनाथजी के अनुयायी हैं। इन दिनों नेपाल में महींद्रदेव नामक

जो राजा राज्य कर रहा है, वह बौद्ध लोगों का अनुयायी हो गया है और हम लोगों पर अत्याचार कर रहा है। इसलिए आप वहां चलकर हमारे दुःख को दूर कीजिए।

नेपालियों की प्रार्थना सुनकर गोरखनाथजी वहां से नेपाल को चल दिए। वहां ललितपाटन नगर के समीप भोगमती गंगा के तटवर्ती स्थान बैठकर उन्होंने यह घोषणा की कि जब तक कोई व्यक्ति मुझे यहां से उठा नहीं देगा, तब तक इस राज्य में वर्षा नहीं होगी।

गोरखनाथजी की इस घोषणा के होते ही नेपाल राज्य में पानी बरसना बिल्कुल बंद हो गया। प्रजा त्राहि-त्राहि करने लगी तथा राजकोष एकदम खाली हो गया। इस स्थिति को जब तीन वर्ष बीत गए, तब राजा महींद्रदेव अपने मन में बहुत घबराया। उसने ज्योतिषियों को बुलाकर पूछा कि मेरे राज्य में वर्षा न होने का क्या कारण है। ज्योतिषियों ने विचार करने के उपरांत राजा से कहा– ''हे राजन्! आपने मत्स्येंद्रनाथ के शिष्यों पर अत्याचार किए हैं। इसलिए मत्स्येंद्रनाथजी के प्रधान शिष्य गोरखनाथजी यहां आकर भोगमती गंगा के तट पर अपना आसन जमाए बैठ गए हैं। वे जब तक अपने आसन पर बैठे रहेंगे, तब तक इस राज्य में वर्षा नहीं होगी।''

ज्योतिषियों की बात सुनकर राजा ने गोरखनाथजी को आसन से उठाने का उपाय पूछा तो उन्होंने यह कहा– ''हे राजन्! आप मत्स्येंद्रनाथजी की मूर्ति को रथ में बैठाकर बाजे-गाजे के साथ उनकी रथ-यात्रा निकालिए। वह रथ जब गोरखनाथजी के स्थान के पास होकर निकलेगा, उसमें गोरखनाथजी अपने गुरुदेव की मूर्ति को प्रणाम करने के लिए आसन से उठ बैठेंगे। उस समय आपकी मनोकामना पूर्ण हो जाएगी और राज्य में पानी बरसने लगेगा।''

राजा महींद्रदेव को ज्योतिषियों की यह सलाह पसंद आई। उसने उनके बताए अनुसार मत्स्येंद्रनाथजी की मूर्ति को रथ में बैठाकर सवारी निकाली। जिस समय वह रथ-यात्रा उस स्थान के निकट पहुंची, जहां गोरखनाथजी बैठे हुए थे तो गोरखनाथजी अपने गुरु की मूर्ति को प्रणाम करने के लिए आसन से उठ गए। गोरखनाथजी के आसन से उठते ही राज्यभर में पानी बरसने लगा।

उस समय राजा महींद्रदेव ने गोरखनाथजी के चरणों में मस्तक रखकर क्षमायाचना की तथा यह विश्वास दिलाया कि भविष्य में वह

मत्स्येंद्रनाथजी के अनुयायियों पर कोई अत्याचार नहीं करेगा। यह सुनकर गोरखनाथजी वहां से उठकर चल दिए और कुछ दूर जाकर एक पर्वतीय-स्थल में निवास करते हुए अपने नए शिष्य को योग की दीक्षा देने लगे।

महींद्रदेव का पराभव

अपने शिष्य को योग-दीक्षा का उपदेश करते हुए गोरखनाथजी को चौदह वर्ष का समय व्यतीत हो गया। इस बीच वहीं के एक समीपवर्ती स्थान की वृद्धा स्त्री तथा उसका वसंत नामक पुत्र आकर गोरखनाथजी के पास ही रहने और उनकी सेवा करने लगे थे।

नेपाल के राजा महींद्रदेव ने गोरखनाथजी को यह आश्वासन दिया था कि वह भविष्य में कभी मत्स्येंद्रनाथजी के अनुयायियों पर अत्याचार नहीं करेगा, परंतु वह अपने वचन पर स्थिर नहीं रहा। कुछ समय बाद उसने मत्स्येंद्रनाथजी के अनुयायियों पर फिर अत्याचार करना आरंभ कर दिया।

यह समाचार जब गोरखनाथजी को मिला तो उन्हें राजा महींद्रदेव की कृतघ्नता पर बहुत क्रोध आया। उन्होंने निश्चय किया अब मैं महींद्रदेव को नष्ट करके उसके स्थान पर किसी अन्य व्यक्ति को नेपाल का राजा बनाऊंगा।

राजा महींद्रदेव को सिंहासन से हटाने हेतु गोरखनाथजी ने जब निश्चय कर लिया तो उन्होंने यह भी सोचा कि महींद्रदेव के स्थान पर अन्य किस व्यक्ति को राजा बनाया जाए, क्योंकि महींद्रदेव के कोई संतान नहीं थी। अचानक ही गोरखनाथजी की दृष्टि अपनी सेविका के पुत्र वसंत पर पड़ी। उन्होंने तय किया कि वे वसंत को ही महींद्रदेव की गद्दी का उत्तराधिकारी बनाएंगे।

वसंत को यह सुनकर पहले तो कुछ आश्चर्य हुआ, परंतु बाद में गोरखनाथजी की योग-शक्ति पर विश्वास करके उसने उत्तर दिया- ''आप जो भी आज्ञा देंगे, मैं उसका पालन करने के लिए तैयार हूं।''

तब गोरखनाथजी ने वसंत को यह आज्ञा दी कि वह तालाब में से मिट्टी लेकर उसकी पुरुष मूर्तियां बनाना आरंभ कर दे। गोरखनाथजी का आदेश मानकर वसंत ने तालाब की मिट्टी से हजारों पुतले तैयार कर

दिए। गोरखनाथजी ने संजीवन मंत्र पढ़कर उन सब पुतलों को सजीव कर दिया। फिर अपने दिव्यास्त्र मंत्र पढ़कर उन सब सजीव पुतलों को उन्होंने भांति-भांति के हथियारों से सुसज्जित कर दिया। इस प्रकार थोड़ी ही देर में हजारों सैनिकों की फौज वहां खड़ी हो गई।

तदुपरांत गोरखनाथजी ने वसंत के ललाट पर वज्रास्त्र मंत्र से अभिमंत्रित भस्म को लगाया और उसके मस्तक पर हाथ रखकर यह आशीर्वाद दिया कि तू युद्ध में अजेय बना रहेगा। गोरखनाथजी के हाथ का स्पर्श पाते ही वसंत का शरीर अत्यंत हृष्ट-पुष्ट, बलवान तथा राजकुमारों की भांति सुंदर बन गया। फिर वह एक हाथी पर सवार हो अपनी 'वसंत-सेना' को साथ लेकर राजा महींद्रदेव से युद्ध करने के लिए चल पड़ा।

'मत्स्येंद्रनाथजी की जय' का घोष करते हुए वसंत-सेना नेपाल की राजधानी में प्रविष्ट हुई। राजा महींद्रदेव इस अचानक आक्रमण से घबरा गया। उसने अपनी सेना को वसंत-सेना के साथ युद्ध करने के लिए भेजा, परंतु थोड़ी ही देर में राजा महींद्रदेव की सेना पराजित होकर युद्धस्थल से भाग खड़ी हुई। इस बीच राजा महींद्रदेव को यह भी पता चल गया कि उसने गोरखनाथजी की जो अवज्ञा की थी, उसी का परिणाम उसे इस प्रकार भोगना पड़ा है।

राजा विनम्र होकर गोरखनाथजी की शरण में जा पहुंचा और उनसे अपने अपराध की क्षमा मांगने लगा। उस समय गोरखनाथजी ने उससे यह कहा- "हे राजा! मैंने वसंत को नेपाल का राजा बनाने का वचन दिया है। वह अन्यथा नहीं हो सकता। यदि तुम अपनी प्राण-रक्षा चाहते हो तो वसंत को अपने दत्तक पुत्र के रूप में स्वीकार कर लो और अपने राज्य का उत्तराधिकारी घोषित करो, अन्यथा और किसी भी उपाय से तुम्हारे प्राण नहीं बच सकेंगे।"

राजा महींद्रदेव ने गोरखनाथजी की इस सम्मति को स्वीकार कर लिया। उसने वसंत को अपना दत्तक पुत्र बनाकर राजगद्दी का उत्तराधिकारी घोषित कर दिया। विक्रम संवत् 420 में वसंतदेव नेपाल की राजगद्दी पर बैठा। उसने अपने राज्य में मत्स्येंद्रनाथजी की पूजा फिर से आरंभ कर दी। तब गोरखनाथजी ने उसे यह वरदान देते हुए कहा- "जब तक तेरे वंशज मत्स्येंद्रनाथजी की पूजा करते रहेंगे, तब तक उनका राज्य अचल बना रहेगा।" इतना कहकर वहां से तीर्थयात्रा के लिए चल दिए।

गोरखनाथजी के आदेश का वसंतदेव ने अक्षरशः पालन किया। अपने गुरु गोरखनाथ के नाम पर उसने अपने वंश का नाम 'गोरखा' रखा। गोरखनाथजी ने दो सैनिक उत्पन्न किए थे, वे सभी 'गोरखा' के नाम से प्रसिद्ध हुए। इस प्रकार गोरखनाथजी द्वारा नेपाल राज्य में गोरखा जाति की नींव रखी गई। वह परंपरा अभी तक ज्यों-की-त्यों चली आ रही है। नेपाल के निवासी अपने को गोरखा कहते हैं। नेपाल में मत्स्येंद्रनाथजी की पूजा अभी तक प्रचलित है और वहां प्रतिवर्ष उनकी रथ-यात्रा निकाली जाती है।

मक्का में चमत्कार-प्रदर्शन

नेपाल से चलकर तिब्बत, चीन, अरबस्तान आदि अनेक देशों की यात्रा करते हुए गोरखनाथजी मक्का में जा पहुंचे।

एक दिन गोरखनाथजी ने मक्का निवासियों को योग-मार्ग की ओर आकर्षित करने के लिए एक चमत्कार दिखाने का निश्चय किया। अस्तु, वे मक्का मंदिर के मुख्य प्रवेशद्वार पर अपने पांव मंदिर की ओर करके लेट गए। मंदिर में आने वाले एक व्यक्ति ने गोरखनाथजी के दोनों पांव पकड़कर उन्हें मंदिर की विपरीत दिशा में कर दिया, परंतु उस समय वहां उपस्थित लोगों को यह देखकर आश्चर्य की सीमा न रही कि गोरखनाथ के पांव जिस विपरीत दिशा में कर दिए गए थे, मंदिर का दरवाजा भी अपने आप घूमकर ठीक उसी दिशा में हो गया।

इस दृश्य को देखकर लोगों ने गोरखनाथजी के पांवों को बार-बार हटाकर अलग-अलग दिशाओं में किया, परंतु हर बार उसके साथ ही मंदिर का द्वार भी अपने आप घूमता चला गया। अंततः सब लोगों ने यह अच्छी तरह समझ लिया कि मंदिर के प्रवेशद्वार पर लेटा हुआ व्यक्ति कोई साधारण मनुष्य न होकर कोई फरिश्ता है। उस समय सब लोग गोरखनाथजी के सामने हाथ जोड़कर उनकी जय-जयकार करने लगे।

तब गोरखनाथजी ने वहां उपस्थित लोगों को योग की महिमा का वर्णन करते हुए उपदेश दिया। उनके उपदेश को सुनकर चार मुमुक्षु लोगों ने गोरखनाथजी से दीक्षा ग्रहण करने का निश्चय किया और कहा कि हम लोग कुछ समय बाद आपके स्थान पर पहुंचकर आपसे योग-दीक्षा लेंगे।

गोरखनाथजी मंदिर के प्रवेशद्वार से हटकर अपने स्थान को चले गए, परंतु किसी कारणवश उस दिन पूर्वोक्त चारों व्यक्तियों में से एक भी गोरखनाथजी के पास दीक्षा लेने के लिए नहीं पहुंचा। दूसरे दिन गोरखनाथजी वहां से आगे की यात्रा पर चल दिए।

चार मुमुक्षुओं को दीक्षा

जब गोरखनाथजी मक्का से बाहर चले गए, तब दूसरे दिन वे चारों मुमुक्षु दीक्षा लेने का विचार करके उनके स्थान पर पहुंचे। वहां जाकर जब उन्होंने यह देखा कि गोरखनाथजी चले गए हैं तो उन्हें बड़ा दुःख हुआ। फिर वे सब भी गोरखनाथजी को ढूंढते हुए मक्का से बाहर निकल पड़े।

मक्का से निकलकर गोरखनाथजी ने एक पहाड़ के ऊपर जाकर कुछ दिनों तक वहीं ठहरने का निश्चय किया। जिन दिनों वे वहां ठहरे हुए थे, उन्हीं दिनों पूर्वोक्त चारों मुमुक्षु भी गोरखनाथ का पता लगाते-लगाते उस पर्वत के समीप जा पहुंचे। गोरखनाथजी ने ध्यान-दृष्टि से देखा कि चारों मुमुक्षु उन्हें ढूंढते हुए पर्वत के पास तक आ पहुंचे हैं, तब वे उनकी निष्ठा की परीक्षा लेने के उद्देश्य से एक यात्री का वेष बनाकर उनके पास जंगल में जा पहुंचे और उन चारों को संबोधित करते हुए कहने लगे– "हे योगियो! इस भयानक जंगल में चोर, लुटेरों तथा हिंसक जंतुओं का भय है, तुम लोग अपने प्राणों की चिंता किए बिना कहां चले जा रहे हो?"

यह सुनकर उन चारों ने एक साथ उत्तर दिया– "हम लोग गुरु गोरखनाथजी को ढूंढने के लिए निकले हैं। हमें पता है कि वे आजकल सामने वाले पर्वत पर निवास कर रहे हैं, अतः हम वहीं जा रहे हैं। हम लोग उनके दर्शन पाए बिना अपने घर को लौटकर नहीं जाएंगे, भले ही हमें अपने प्राण क्यों न गंवा देने पड़े।"

उन लोगों की यह बात सुनकर गोरखनाथजी को अत्यंत प्रसन्नता हुई। इसके पश्चात् वे उन्हें अपने साथ-साथ पर्वत के ऊपर ले गए। वहां जाकर उन्होंने चारों मुमुक्षुओं को योग-दीक्षा दी, फिर यह आदेश दिया कि अब तुम लोग मेरे शिष्य सूर्यनाथ के पास जाकर योगाभ्यास करो। गोरखनाथजी के आदेशानुसार वे चारों सूर्यनाथजी के पास चले गए और उन्हीं के पास रहकर योगाभ्यास करने लगे। अंत में उन सभी ने मुक्ति-पद को प्राप्त कर लिया।

❖❖

नवनाथ चरित्र सागर

भाग-21
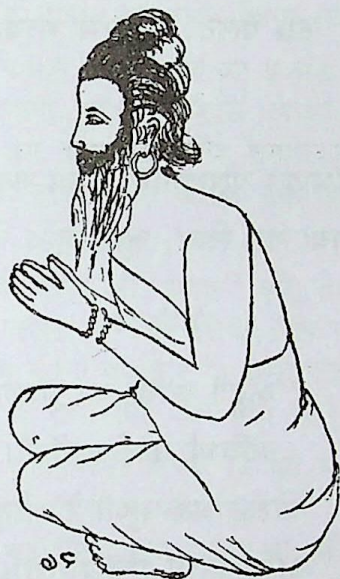
(विविध कथाएं)

"यह तन सौच, सौंच का घरवा।
रुध्र पलट, अमीरस भरवा॥"

☆☆☆

"भणंत गोरखनाथ काया गढ़ लेवा।
काया गढ़ लेवा, जुगि जुगि जीवा॥"

☆☆☆

"कंदर्प काया का मंडण,
अविर्था कोई उलींचौ।
गोरख कहै सुणौ रे भौंदू,
अरंड कभी मज सींचौ॥"

एकनाथ-चरित्र

कुछ समय पूर्व पैठण गांव में एकनाथ नामक एक परम संत पुरुष निवास करते थे। वे भगवान के ऐसे भक्त थे कि श्रीकृष्णजी ने उनके वशीभूत होकर निरंतर बारह वर्षों तक उनके घर में देव-पूजा का साहित्य तैयार करने तथा कपड़े उतारने का काम किया था।

उनका हरिपंडित नामक पुत्र संस्कृत का प्रकांड विद्वान था। एकनाथजी कथा-वार्ता एवं यजमानी की वृत्ति द्वारा अपना निर्वाह करते थे। वे प्राकृत भाषा का प्रयोग करते थे और उनके मुख से कथा सुनकर श्रोतागण ऐसे मुग्ध हो जाया करते थे कि उन्हें अपने तन-मन की सुधि भी नहीं रहती थी।

हरिपंडित को अपने पिता की यजमानी वृत्ति तथा प्राकृत भाषा-प्रेम से बड़ा विद्वेष था। वह चाहता था कि उसके पिता यजमानी की वृत्ति तथा प्राकृत भाषा का प्रयोग करना बंद कर दें। अस्तु, एक दिन वह अपने पिता से रूठकर काशीपुरी में चला गया और वहीं रहने लगा।

कुछ समय बाद एकनाथजी अपने पुत्र को घर वापस लाने के लिए काशीपुरी गए। वहां हरिपंडित ने घर लौटने के लिए उनके आगे अपनी दो शर्तें रखीं। पहली यह कि एकनाथजी कभी भी प्राकृत भाषा का प्रयोग नहीं करेंगे और दूसरी यह कि वे किसी यजमान के घर का बना हुआ खाना नहीं खाएंगे।

एकनाथजी ने पुत्र की इन दोनों शर्तों को स्वीकार कर लिया। तब हरिपंडित उनके साथ अपने गांव को लौट आया। पुत्र को दिए वचन के अनुसार एकनाथजी ने प्राकृत भाषा में कथा-प्रवचन बंद कर दिया। उसका परिणाम यह हुआ कि संस्कृत भाषा में कथा सुनकर उनके अधिकांश श्रोतागण ऊबने लगे और उन्होंने कथा में सम्मिलित होना बंद कर दिया, परंतु एकनाथजी ने इस बात की कोई चिंता नहीं की और अपने पुत्र को दिए हुए वचन के अनुसार वे संस्कृत भाषा में ही कथा प्रवचन करते रहे।

उसी पैठण नगर में एक स्त्री रहा करती थी। पहले जब वह बहुत धनवान थी, तब एक समय उसने एक हजार ब्राह्मणों को एक साथ

भोजन कराने का संकल्प किया था, परंतु दुर्भाग्यवश एक दिन अचानक ही उसके पति की मृत्यु हो गई तथा धन नष्ट हो जाने के कारण उसका वह संकल्प पूरा नहीं हो सका। अत: वह किसी प्रकार अपने संकल्प को पूरा करने के लिए बड़ी चिंतित रहती थी।

एक समय उस स्त्री ने किसी ब्राह्मण से कहा– "हे महाराज! मैं जब धनवान थी, तब मैंने एक बार एक हजार ब्राह्मणों को भोजन कराने का संकल्प किया था, परंतु मेरा वह संकल्प पूरा नहीं हो सका। अब मेरे पास एक हजार ब्राह्मणों को भोजन कराने योग्य धन नहीं है, अत: आप मुझे कोई ऐसा उपाय बताइए, जिससे मेरा संकल्प पूरा हो सके।"

यह सुनकर उस ब्राह्मण ने उत्तर दिया– "हे माता! उसी नगर में रहने वाले परम संत एकनाथजी महान ज्ञानी तथा धर्मात्मा हैं। उन अकेले को भोजन कराना एक हजार ब्राह्मणों को भोजन करा देने के बराबर है, अत: तुम एकनाथजी को अपने यहां भोजन करने के लिए आमंत्रित करो। इसी प्रकार तुम्हारा एक हजार ब्राह्मणों को भोजन कराने का संकल्प पूरा हो जाएगा।"

ब्राह्मण की सलाह मानकर वह स्त्री एकनाथजी के पास गई और उनसे यह निवेदन किया कि आप कल मेरे घर पधारकर भोजन करने की कृपा करें।

एकनाथजी ने उस स्त्री की प्रार्थना सुनकर यह उत्तर दिया– "हे देवी! मैं अपने पुत्र हरिपंडित को किसी यजमान के घर भोजन न करने का वचन दे चुका हूं, अत: मैं तुम्हारी प्रार्थना को स्वीकार नहीं कर सकता। तुम हरिपंडित के पास जाकर पूछ लो। यदि वह कह देगा तो उस स्थिति में मुझे तुम्हारे घर-भोजन करने में कोई आपत्ति न होगी।"

यह सुनकर वह स्त्री हरिपंडित के पास गई और उनसे अपनी मांग कह सुनाई, परंतु हरिपंडित उसे स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं हुआ।

यह देखकर वह स्त्री अत्यंत निराश तथा दु:खी हो गई। उसे दु:खी देखकर दयालु एकनाथजी ने हरिपंडित को अपने पास बुलाकर यह कहा– "हे पुत्र! तुमने किसी यजमान के हाथ का बनाया हुआ भोजन न करने का मुझसे वचन लिया है। इधर यह स्त्री अपना संकल्प पूरा न होने के कारण दु:खी है। अत: दोनों बातों की रक्षा करने का एक उपाय यह है कि कल के दिन हम दोनों ही इस स्त्री के घर चलें। वहां यह स्त्री भोजन बनाने की सामग्री अपने पास से देगी। तुम स्वयं उसके द्वारा भोजन तैयार करना। तदुपरांत हम-तुम दोनों ही उस भोजन को ग्रहण करेंगे।"

पिता के आग्रह को देखकर हरिपंडित ने यह बात मान ली। उस समय उस स्त्री ने यह कहा– "हे महाराज! आप मेरे हाथ की बनाई हुई वस्तु का जब तक भोजन नहीं करेंगे, तब तक मुझे संतोष नहीं होगा। अतः आप मेरे हाथ की बनी हुई वस्तु को भी ग्रहण करने की स्वीकृति दीजिए।"

यह सुनकर एकनाथ ने कहा– "अच्छा! जब हम लोग भोजन करने बैठ जाएं, तब बीच में तुम अपने हाथ की बनी हुई कोई खास वस्तु परोस देना, उसे हम ग्रहण कर लेंगे और भगवान भी उसका भोग लगाएंगे।" यह सुनकर स्त्री प्रसन्नतापूर्वक अपने घर चली गई।

दूसरे दिन एकनाथजी अपने पुत्र हरिपंडित को साथ लेकर उसके घर जा पहुंचे। स्त्री ने भोजन-सामग्री उनके सामने रख दी। हरिपंडित ने खाना तैयार किया। जब दोनों पिता-पुत्र खाने के लिए बैठ गए और वे आधा भोजन कर चुके, वह स्त्री अपने हाथ के बने हुए लड्डू आदि मिष्टान्न पदार्थ लेकर आ गई और उसने दोनों की थाली में उन पदार्थों को रख दिया।

एकनाथजी तो उन मिष्टान्न पदार्थों को प्रेमपूर्वक खाने लगे, परंतु हरिपंडित को यह बहुत बुरा लगा, लेकिन उस समय और किया भी क्या जा सकता था? अधूरा भोजन छोड़कर उठना मर्यादा के विरुद्ध होता, अतः हरिपंडित ने भी मजबूर होकर उन पदार्थों को खा लिया।

भोजनोपरांत उस महिला ने दोनों पिता-पुत्र को पान-सुपारी देकर दक्षिणा भेंट की। उस समय एकनाथजी ने हरिपंडित से यह कहा– "हे पुत्र! यह स्त्री अकेली है और हम ब्राह्मण दो हैं। दक्षिणा ग्रहण करते समय संकल्प बोलना आवश्यक है। मैं तो प्राकृत भाषा का संकल्प जानता हूं और तू संस्कृत का ज्ञाता है। एक ही स्थान पर दो विभिन्न भाषाओं में संकल्प बोलना ठीक नहीं होता। इसलिए तू मेरी तथा अपनी संकल्प भाषा-पत्रावली को बाहर फेंक आ।"

पिता की आज्ञा सुनकर पुत्र ने पिता की संकल्प पत्रावली के ऊपर अपनी पत्रावली को रख दिया, परंतु उसी समय यह आश्चर्यजनक घटना घटी कि हरिपंडित की पत्रावली के ऊपर एकनाथजी की दूसरी पत्रावली आ गई। हरिपंडित इस आश्चर्य को देखकर अत्यंत चकित हुआ। उसने पिता की पत्रावली को उठाकर नीचे फेंक दिया, परंतु इस बार फिर वही आश्चर्य हुआ। उसकी पत्रावती के ऊपर एकनाथजी की एक पत्रावली आकर जम गई। इस प्रकार हरिपंडित ने हजारों बार एकनाथजी की पत्रावली को उठाकर फेंका, परंतु हर बार नई पत्रावली आकर हरिपंडित

की पत्रावली के ऊपर जमने लगी। अंत में जब हरिपंडित के हाथ एकनाथजी की पत्रावली को हटाते-हटाते थक गए, तब उसे यह ज्ञान हुआ कि उसके पिता तो नारायण के स्वरूप हैं और अब तक उनकी अवज्ञा करके उसने बहुत बड़ा अपराध किया है।

हरिपंडित उसी क्षण अपने पिता के पांवों पर गिरकर क्षमा मांगने लगा। दयालु एकनाथजी ने उसे क्षमा करते हुए पत्रावली की लीला को बंद कर दिया। उस समय हरिपंडित ने उस स्त्री से कहा– "हे बाई! तू बड़ी भाग्यशालिनी है, जो तूने सहस्रों ब्राह्मणों से भी अधिक पुण्यशाली मेरे महात्मा पिता को अपने घर में भोजन कराकर अक्षय पुण्य का लाभ प्राप्त किया है।"

तदुपरांत उस स्त्री को आशीर्वाद देकर दोनों पिता-पुत्र अपने घर लौट आए। उसी दिन हरिपंडित ने एकनाथजी को अपनी दोनों शर्तों के बंधन से मुक्त कर दिया और एकनाथजी पुनः प्राकृत भाषा में कथा-प्रवचन तथा यजमानी-वृत्ति करने लगे। हरिपंडित का मिथ्याभिमान सदैव के लिए नष्ट हो गया।

शंकराचार्य का परकाया-प्रवेश

जगद्‌गुरु शंकराचार्य भगवान शंकर के अवतार माने जाते हैं। वे बहुत बड़े योगी थे। पांच वर्ष की अल्पायु में ही उन्होंने संपूर्ण शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त करके संन्यास-दीक्षा ले ली थी।

उस समय भारतवर्ष में बौद्ध धर्म का बहुत प्रचार था। उस वेद-विरुद्ध मत का खंडन करने के लिए शंकराचार्य ने संपूर्ण देश का भ्रमण किया तथा स्थान-स्थान पर बौद्ध-विद्वानों को शास्त्रार्थ में पराजित करके वेद धर्म की पुनः स्थापना की।

उन दिनों मंडनमिश्र नामक एक विद्वान बौद्ध धर्म का बड़ा पंडित था। उसकी पत्नी सरस्वती भी परम विदुषी थी। वह माहिष्मतीपुरी नामक नगरी में निवास करता था। शंकराचार्य मंडनमिश्र से शास्त्रार्थ करने के लिए माहिष्मतीपुरी में पहुंचे। वहां जाकर उन्होंने कुएं पर पानी भरने वाली पनिहारिनों से मंडनमिश्र के घर का पता पूछा तो उनमें से एक विद्वान पनिहारिन ने उन्हें कविता में यह उत्तर दिया कि जिस घर के बरामदे में

तोता-मैनाओं के पिंजरे टंगे हुए हों और वे तोता-मैना परस्पर दर्शनाशास्त्र एवं वेदांत की चर्चा कर रहे हो, उसी घर को तुम मंडनमिश्र का निवास समझ लेना। यह सुनकर शंकराचार्यजी ऐसे ही मकान का पता लगाते हुए मंडनमिश्र के घर जा पहुंचे।

मंडनमिश्र तथा शंकराचार्य के बीच कई महीनों तक शास्त्रार्थ चलता रहा। अंत में शंकराचार्यजी ने मंडनमिश्र को पराजित कर दिया। शास्त्र से पूर्व रखी गई शर्त के अनुसार जो व्यक्ति शास्त्रार्थ में हारे उसे दूसरे व्यक्ति का शिष्य बनना आवश्यक था। अतः शर्त के अनुसार मंडनमिश्र शंकराचार्यजी के शिष्य बनकर संन्यास लेने को तैयार हुए।

उसी समय उनकी पत्नी सरस्वती ने शंकराचार्यजी के सामने पहुंचकर यह कहा– "हे शंकराचार्यजी! गृहस्थ पति-पत्नी दोनों के शरीर मिलकर एक माने जाते हैं। जिस प्रकार पति अपनी पत्नी का अर्द्धांग होता है, उसी प्रकार पत्नी भी अपने पति की अर्द्धांगिनी कही जाती है। आपने मेरे पति को शास्त्रार्थ में पराजित करके केवल अर्द्धांग को ही पराजित किया है। जब तक आप इनकी अर्द्धांगिनी (मुझे भी) शास्त्रार्थ में पराजित नहीं कर देते, तब तक आपकी विजय अधूरी ही रहेगी। अतः पहले आप मुझे भी शास्त्रार्थ में पराजित कीजिए। उसके बाद ही मेरे पति को अपना शिष्य बनाइए।"

सरस्वती की इस बात को शंकराचार्यजी ने स्वीकार कर लिया। तब सरस्वती और शंकराचार्य, दोनों ही परस्पर शास्त्रार्थ करने लगे।

सत्तर दिन तक उन दोनों के बीच वाद-विवाद चलता रहा, परंतु सरस्वती शंकराचार्यजी पर विजय प्राप्त नहीं कर सकी। सरस्वती ने अच्छी तरह समझ लिया कि संपूर्ण शास्त्रों के पारंगत महाविद्वान शंकराचार्यजी को पराजित करना संभव नहीं है, तब उसने युक्ति से काम लेने का निश्चय किया।

सरस्वती इस बात को जानती थी कि शंकराचार्यजी संन्यासी तथा बाल ब्रह्मचारी हैं और इन्हें कामशास्त्र संबंधी बातों का कोई ज्ञान नहीं है। अतः सरस्वती ने कामशास्त्र संबंधी एक प्रश्न शंकराचार्यजी से पूछ लिया।

शंकराचार्यजी उस विषय के जानकार नहीं थे, परंतु यदि उत्तर न दें तो उन्हें पराजय स्वीकार करनी पड़ती। अतः उन्होंने सरस्वती को उसके प्रश्न का उत्तर देने के लिए एक मास की अवधि की मांग की। सरस्वती ने बात को स्वीकार कर लिया।

शंकराचार्यजी कामशास्त्र का अनुभव प्राप्त करने के लिए वहां से चल दिए। आकाश-मार्ग में भ्रमण करते समय उन्होंने अमरुक नामक एक राजा के मृत-शरीर को देखा। उसे प्रजाजन दाह-संस्कार के लिए श्मशान भूमि की ओर ले जा रहे थे तथा मृत राजा की रानियां विलाप करती हुई उनके शव के पीछे-पीछे चल रही थीं।

शंकराचार्यजी परकाया-प्रवेश विद्या के जानकार थे, अतः उन्होंने निश्चय किया कि वे इस मृत राजा के शरीर में अपने प्राणों को प्रविष्ट करके इसकी रानियों के साथ रहकर कामशास्त्र का प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त करेंगे और कुछ समय बाद पुनः अपने शरीर में प्रवेश कर जाएंगे।

यह विचार करके उन्होंने अपने शरीर को शिष्यों की देख-रेख में छोड़ दिया तथा प्राणों को राजा अमरुक के मृत शरीर में प्रविष्ट कर दिया।

शंकराचार्यजी के प्राणों का प्रवेश होते ही राजा अमरुक का मृत शरीर पुनरुज्जीवित हो गया। यह देखकर श्मशान भूमि की ओर जा रहे सभी स्त्री-पुरुषों को अत्यंत प्रसन्नता हुई। वे जीवित राजा को लेकर राजभवन में लौट गए। वहां जाकर राजारूपधारी शंकराचार्यजी एक मास तक राजा अमरुक की दस रानियों के साथ निष्काम भाव से भोग-विलास करके कामशास्त्र का यथार्थ अनुभव एवं ज्ञान प्राप्त करने लगे।

जब एक मास की अवधि पूरी होने को आई, तब शंकराचार्य के कुछ शिष्य गवैयों का वेष बनाकर राजा अमरुक के दरबार में गए। वहां जाकर उन्होंने सांकेतिक रूप में ऐसा गीत गाया कि अमरुक वेषधारी शंकराचार्य उसे सुनकर समझ गए कि अब मुझे अपने मूल शरीर में वापस लौट आना चाहिए।

राजदरबार से तो राजारूपी शंकराचार्यजी ने अपने गवैयेरूपी शिष्यों को पुरस्कार आदि देकर विदा किया, तदुपरांत दूसरे ही दिन वे राजा के शरीर को त्यागकर अपने मूल शरीर में लौट गए।

इस प्रकार कामशास्त्र का यथार्थ एवं संपूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के उपरांत शंकराचार्य जब पुनः माहिष्मतीपुरी में मंडनमिश्र के घर पहुंचे और उन्होंने सरस्वती से शास्त्रार्थ में दोबारा बैठने के लिए कहा तो बुद्धिमती सरस्वती

को यह समझते देर नहीं लगी कि शंकराचार्यजी परकाया-प्रवेश विद्या द्वारा कहीं से कामशास्त्र का ज्ञान एवं अनुभव प्राप्त कर आए हैं। अतः उसने अधिक शास्त्रार्थ किए बिना ही शंकराचार्यजी के समक्ष अपनी पराजय स्वीकार कर ली। तब शंकराचार्यजी ने मंडनमिश्र तथा सरस्वती दोनों को ही दीक्षा देकर अपना शिष्य बना लिया।

सरस्वती साक्षात् देवी सरस्वती का अवतार थी। भगवान शंकराचार्य ने उसे 'शारदा' नाम से अपने आश्रम में निवास करने तथा भक्तों की कामनापूर्ण करते रहने का आशीर्वाद दिया।

शंकराचार्यजी द्वारा स्थापित शारदापीठ में सरस्वती आज भी दिव्यशक्ति के रूप में प्रतिष्ठित हैं तथा अपने भक्तों की मनोभिलाषाओं को पूरा करती रहती हैं।

जिस प्रकार शंकराचार्यजी ने राजा अमरुक के मृत शरीर में अपने प्राणों का प्रवेश करके कामशास्त्र का ज्ञान प्राप्त किया था, उसी प्रकार मत्स्येंद्रनाथजी ने भी एक बार गोरखनाथजी की प्रार्थना स्वीकार करके परकाया-प्रवेश विद्या द्वारा प्रयाग के मृत राजा त्रिविक्रम के शरीर में अपने प्राणों का प्रवेश किया था और वहां बारह वर्ष रहकर गृहस्थाश्रम धर्म का पालन किया था। इस कथा का विस्तृत वर्णन 'मत्स्येंद्रनाथ-चरित्र' में किया जा चुका है।

स्वार्थी गुरु-शिष्य की कथा

किसी गांव में भगाभाई नामक एक किसान रहता था। उसके पास थोड़ी-सी जमीन थी। उसी में खेती करके वह अपना तथा अपने परिवार का उदर-पोषण करता रहता था। उस बेचारे के पास कभी इतना अतिरिक्त धन नहीं हो सका कि वह उससे मालपुआ, खीर, लड्डू आदि मिष्टान्न पदार्थ खरीदकर खा सके। एक बार उसके गांव के बाहर वाले तालाब के समीप कुछ साधुओं ने आकर डेरा डाला। उनमें एक साधु उन सबका गुरु अथवा महंत था। शेष सब उसके शिष्य थे।

वे लोग तालाब के किनारे प्रतिदिन बढ़िया-बढ़िया वस्तुएं खीर, पूड़ी मालपुआ, लड्डू आदि तैयार करते और उन्हें पेट भरकर खाया करते थे। उन वस्तुओं को देख-देखकर किसान की जीभ ललचाने लगी और वह स्वयं भी उन्हें भरपेट खाने का उपाय सोचने लगा।

विचार करते-करते अंत में उसे एक तरकीब सूझ गई। एक दिन संध्या के समय वह उन साधुओं के डेरे पर जा पहुंचा और सबको प्रणाम करने के उपरांत हाथ जोड़कर बैठ गया। महंत तथा कुछ अन्य साधुओं के उसने हाथ-पांव भी दबाए, फिर दो-तीन घंटे का समय बिताने के बाद वह वहां से वापस लौट आया। इसी प्रकार उसने प्रतिदिन उन साधुओं के पास जाना और उनकी सेवा करना आरंभ कर दिया। साधु लोग भी उसकी इस निष्काम भक्ति को देखकर अत्यंत प्रसन्न रहने लगे।

चार-छह दिन बीत जाने पर एक दिन उस किसान ने एक साधु से कहा– "महाराज! मुझे अब आप लोगों के बिना चैन नहीं पड़ता है। मेरी इच्छा है कि आप मुझे भी दीक्षा देकर अपने समूह में सम्मिलित कर लें, ताकि मैं हर समय आप लोगों की सेवा में रह सकूं।"

यह सुनकर साधु ने उससे पूछा– "तुम्हारे पास घर-मकान, जमीन-जायदाद, धन-संपत्ति आदि भी कुछ है अथवा वैसे ही हो?"

चालाक किसान ने उत्तर दिया– "भगवान की दया से मेरे पास जमीन-जायदाद, धन-संपत्ति आदि सब कुछ है, परंतु अब तो मैं उन सबको त्यागकर आप लोगों की शरण में रहना तथा भगवान का भजन करना चाहता हूं।"

स्वार्थी साधु ने यह सुनकर सोचा कि यह किसान दरिद्र न होकर धन-संपत्ति वाला है। ऐसी स्थिति में यदि यह संन्यास-दीक्षा लेगा तो अपनी धन-संपत्ति भी हमारी साधु-मंडली को सौंप देगा। इसलिए इसे अपनी मंडली में अवश्य सम्मिलित कर लेना चाहिए।

यह विचार करके उस साधु ने किसान से कहा– "अच्छा, हम तुम्हारे लिए अपने गुरुजी से कहेंगे। वे तुम्हें दीक्षा देकर अपना शिष्य बना लेंगे।" किसान ने कृतज्ञता प्रकट करते हुए अपने दोनों हाथ जोड़ दिए।

उस दिन पहली बार स्वार्थी साधुओं ने उस किसान को अपने साथ ही भरपेट मिष्टान्न भोजन कराया। कुछ देर बाद किसान प्रसन्न होकर अपने घर को लौट गया।

दूसरे दिन जब किसान फिर आया तो सभी स्वार्थी साधुओं ने उसकी बड़ी आव-भगत की। साधुओं के महंत ने भी उसे अपने पास बुलाकर कुछ उपदेशात्मक बातें कहीं तथा यह भी बताया कि वे उसे अगली एकादशी को दीक्षा देकर अपनी मंडली में सम्मिलित कर लेंगे।

एकादशी के आने में अभी सात दिन बाकी थे। किसान और भी अधिक भक्ति-भाव का प्रदर्शन करते हुए उनके यहां प्रतिदिन जाने लगा और साधु लोग उसकी संपत्ति हड़प करने के लालच में उसे प्रतिदिन एक-से-एक बढ़िया वस्तुओं का भोजन कराने लगे।

अंत में एकादशी भी आ गई। उस दिन किसान को दीक्षा देने की तैयारी की गई। स्वार्थी किसान भी भक्ति-भाव का नाटक करता हुआ दीक्षा लेने के लिए महंतजी के सामने जा बैठा। अन्य सभी साधु उसे घेरकर खड़े हो गए।

दीक्षा का मुहूर्त अब बिल्कुल समीप आ गया। उस समय मंडली के एक साधु ने किसान से कहा– "बच्चा! दीक्षा लेने हेतु तुम गुरुजी को भेंट करने के लिए कुछ दक्षिणा भी अपने साथ लाए हो या नहीं?"

यह सुनकर किसान ने उत्तर दिया– "दक्षिणा की क्या आवश्यकता है? गुरुजी के पास क्या कमी है, जो आप लोग मुझसे दक्षिणा प्राप्त करने के आशा रखते हैं?"

किसान के इस उत्तर को सुनकर एक दूसरा साधु बोला– "भले आदमी! गुरुजी तो तेरे गले में कंठी बांधकर तुझे तीनों लोकों का राज्य देने जा रहे हैं और तू उसके बदले उन्हें कुछ भी नहीं देना चाहता?"

किसान ने कहा– "क्या यह बात सत्य है कि गुरुजी मुझे तीनों लोकों का राज्य दे रहे हैं?"

साधु बोला– "इसमें संदेह करने की क्या बात है, परंतु तुम भी तो उन्हें कुछ दो।"

किसान ने कहा– "ठीक है, गुरुजी मुझे तीनों लोकों का राज्य दे रहे हैं, तो उसमें से गुजरात देश का राज्य मैं गुरुजी को सौंप देता हूं।"

साधु ने यह सुनकर गरम होते हुए कहा– "गुजरात देश का राज्य क्या तेरे बाप का राज्य है, जो तू उसे गुरुजी को सौंप रहा है?"

किसान बोला– "तीनों लोकों का राज्य क्या गुरुजी के बाप है, जिसे वे मुझे देने जा रहे हैं?" किसान के इस उत्तर को सुनकर महंतजी सहित सभी साधु अत्यंत क्रुद्ध हो उठे और वे उसे मारने के लिए तैयार हो गए।

यह देखकर किसान ने कहा– "अरे, मैं तो गुरुजी का चेला बनने के लिए आया हूं और तुम लोग मुझे मारने को तैयार हो। यह कैसी बात है?"

इस पर साधुओं ने उसे धक्का देते हुए कहा– "भाग जा बदमाश यहां से। ऐसे चेले बनने वाले आदमी हमने बहुत देखे हैं।"

किसान अपने मन में अत्यंत प्रसन्न होता हुआ अपने घर लौट आया। घर आकर उसने अपनी पत्नी से सब किस्सा कह सुनाया और बोला– "वे बदमाश तो मेरी धन-संपत्ति को हड़पना चाहते थे, परंतु मैंने उन्हें कुछ न देकर दस-पंद्रह दिन तक उनका मिष्टान्न भोजन खूब कर लिया।" उसकी बात सुनकर पत्नी भी खूब खिलखिलाकर हंसने लगी।

स्वार्थी गुरु-शिष्यों के बीच इसी प्रकार की घटनाएं घटित होती हैं।